आचार्य नरेन्द्रदेव-युग और नेतृत्व



प्रो॰ मुकुट बिहारीलाल

आचार्य नरेन्द्रदेव समाजवादी संस्थान

जनवरी १९७१—२००० प्रतियां
मूल्य १५)

मिलने का पता—
आचार्य नरेन्द्रदेव समाजवादी संस्थान
डी० ४५/१८८ विवेकानन्द मार्ग, कमच्छा, वाराणसी–१

प्रकाशक—
मुकुटबिहारीलाल, आचार्य नरेन्द्रदेव समाजवादी संस्थान
कमच्छा, वाराणसी–१

मुद्रक—तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी ।

आचार्य नरेन्द्रदेव

(युग और नेतृत्व)



लेखक

मुकुट बिहारीलाल

प्राक्कथन

जयप्रकाश नारायण

आचार्य नरेन्द्रदेव समाजवादी सं

वाराणसी



आचार्य नरेन्द्रदेव का अन्तिम चित्र परेन्

प्राक्कथन

आचार्य नरेन्द्रदेव के विचारों तथा जीवन के सम्बन्ध में जितनी भी जानकारी सर्वसाधारण, विशेषकर युवकों को दी जा सके देश के लिये उतनी ही लाभकारी होगी। सार्वजनिक जीवन की जो आज दुर्दशा है तथा युवक जिस प्रकार दिग्भ्रमित हो रहे हैं उस परिस्थिति में आचार्यजी से सम्बन्धित साहित्य जन-मानस पर, विशेषकर शिक्षक, विद्यार्थी तथा सार्वजनिक कार्यकर्ताओं के मानस पर, स्वस्थ प्रभाव डाल सकता है। वैसे तो सारे देश में सार्वजनिक जीवन का स्तर गिरता जा रहा है और विद्यार्थी-समाज दिशा-हीन तथा नकारात्मक बनता जा रहा है। परन्तु इन दोनों दृष्टियों से उत्तर प्रदेश, बिहार आदि राज्यों की दशा और भी चिन्तनीय है। आचार्य जी यूँ तो सारे भारत के थे, परन्तु इन राज्यों से उनका घनिष्टतम सम्बन्ध था। इसलिये नरेन्द्रदेव-साहित्य इन राज्यों के लिये विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होगा।

इसके अतिरिक्त हम लोगों के ऊपर नरेन्द्रदेवजी का बड़ा भारी ऋण है। ऋण है उनके अपूर्व व्यक्तित्व का, उनके सौजन्य तथा स्नेह का, उनके बौद्धिक दान का, उनके नेतृत्व का और सबसे अधिक उनके निश्छल, निस्पृह तथा भावुक चरित्र का, उनके त्याग और तप का। हम जो इन सबका भरपूर लाभ उठा चुके हैं इस ऋण से कभी उऋण नहीं होंगे और नरेन्द्रदेवजी का स्मरण हमारे हृदयों को सदा निर्मल करता रहेगा। परन्तु हम नालायक साबित होंगे अगर जो कुछ हमने और हमारी पीढ़ी ने आचार्य जी से पाया है, उसमें से जितना भी संभव हो उतना आगे की पीढ़ियों के लिये छोड़ न जायें।

मुझे खुशी है कि आचार्य नरेन्द्रदेव के विचारों के अध्ययन, प्रकाशन और प्रशिक्षण के निमित्त उनकी पुण्यस्मृति में उनके नाम पर काशी में एक संस्थान खोला गया है। मुझे आशा है कि इस 'आचार्य नरेन्द्रदेव समाजवादी संस्थान' द्वारा उनके विचार इस तरह प्रस्तुत किये जायेंगे जिससे आज की समस्याओं को सुलझाने में मदद मिल सके और समाजवादी आन्दोलन का मार्गदर्शन हो सके।

इस दृष्टि से प्रोफेसर मुकुट बिहारीलाल आचार्य नरेन्द्रदेव के जीवन तथा विचारों को देश के सामने जिस योग्यता, गम्भीरता तथा मनोयोग से प्रस्तुत कर रहे हैं वह अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। इस पाण्डित्यपूर्ण कार्य के लिये उनके जैसा योग्य व्यक्ति देश में और कोई नहीं है।

सन् १९२०-२१ के असहयोग आन्दोलन में शामिल होने के लगभग पौने दो वर्ष के बाद मैं सन् १९२२ के अगस्त में अध्ययन के लिये अमेरिका चला गया। सन् १९२९ के नवम्बर के अन्त में मैं वहां से स्वदेश लौटा। तब तक आचार्य नरेन्द्रदेव से मेरा कोई परिचय नहीं था न उनके विषय में कोई जानकारी ही थी। सन् १९३० की जनवरी में समाजशास्त्र के मेरे अध्यापक प्रोफेसर हर्बर्ट मिलर अमेरिका से भारत यात्रा पर आये। उस समय वह मुझसे मिलने के लिये पटना भी आये और मैं उनको साथ लेकर वाराणसी गया जहां काशी विद्यापीठ में उनका और मेरा परिचय नरेन्द्रदेवजी से हुआ। वाराणसी में जो थोड़ी बातचीत आचार्यजी से मेरी हुई उसका मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा। मैं उन दिनों मार्क्सवादी था। मेरी यह दृढ़ मान्यता थी कि लेनिन की शिक्षा के अनुसार कम्युनिस्टों को गुलाम देशों के राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन से कदापि पृथक् नहीं होना चाहिये, भले ही वह आन्दोलन बुर्जुवा वर्ग के नेतृत्व में चलता हो। अतः राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग रहकर कांग्रेस तथा गांधीजी का विरोध करने की जो नीति कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के आदेश पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने उस समय अपना रखी थी उसे मैं गलत समझता था। आचार्यजी से बात करके मुझे लगा कि मुझे मेरे विचारों के सर्वथा अनुकूल एक मार्क्सवादी विद्वान् मिल गया। मुझे तो भारत में उन दिनों कोई जानता भी नहीं था, परन्तु आचार्य जी उत्तरप्रदेश के एक प्रभावशाली नेता तथा काशी विद्यापीठ के अध्यक्ष थे।

आचार्य जी से मिलने के कुछ ही दिन बाद मैं आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में काम करने लगा। कुछ ही महीने बाद नमक सत्याग्रह शुरू हुआ। तब से आचार्यजी और मैं अपने-अपने क्षेत्रों में आन्दोलन में ही लगे रहे। सन् १९३३ में नासिक रोड सेन्ट्रल जेल में हम कुछ मित्रों ने कांग्रेस के अन्दर एक सोशलिस्ट पार्टी संगठित करने का निर्णय लिया। उसके बाद जब हम लोग जेल से छूटे तो काशी में कुछ मित्रों से मशविरा करने के बाद बिहार

सोशलिस्ट पार्टी की तरफ से, जो पहले ही स्थापित हो चुकी थी, मैंने एक अखिल भारतीय सम्मेलन ऐसे कांग्रेसजनों का जो समाजवादी विचार के थे पटने में बुलाया। उसकी अध्यक्षता के लिये मैंने नरेन्द्रदेवजी से प्रार्थना की जिसे उन्होंने स्वीकार किया। इस सम्मेलन के बाद राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-संघर्ष तथा समाजवादी आन्दोलन में आचार्यजी का और मेरा निकटतम साथ हुआ। यह सम्बन्ध लगभग बीस वर्ष तक चलता रहा। हम दोनों ने मिलकर राष्ट्र की सेवा की. समाजवादी विचारों और शक्तियों को पुष्ट किया, कांग्रेस द्वारा संचालित राष्ट्रीय आन्दोलन की एकता और क्षमता को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए उसे अधिक गतिशील, शक्तिशाली और क्रान्तिकारी बनाने की कोशिश की। सर्वश्री अच्युत पटवर्धन, मेहर अली, राममनोहर लोहिया से भी हम दोनों के घनिष्ट सम्बन्ध थे। पांचों मिलकर काम करते थे। कांग्रेस समाजवादी पक्ष के कई शीर्षस्थ नेता मार्क्सवाद को उतना नहीं मानते थे जितना कि आचार्यजी और मैं। इस कारण से कई बार हम दोनों में और बाकी साथियों में मतभेद पैदा हो जाता था, परन्तु शुरू में हम सब में ऐसा सौहार्द था कि मतभेदों के कारण कटुता पैदा नहीं होती थी।

सन् ३० के दशक के प्रारम्भ में भारतीय कम्युनिस्ट कांग्रेस के विरोधी थे और उससे अलग किसान मजदूर पार्टी बनाकर राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व करने का प्रयास कर रहे थे, जिसका एकमात्र परिणाम राष्ट्रीय आन्दोलन की एकता तोड़ना ही हो सकता था। यद्यपि उनकी शक्ति इतनी थोड़ी थी और उनके तरीके इतने गलत थे कि उनके विरोध का कोई विशेप प्रभाव गांधीजी के आन्दोलन पर नहीं पड़ पाता था। उस समय उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को भी सामाजिक फासिज्म आदि अपशब्दों से सम्बोधित करते हुए उसका विरोध किया। लेकिन जब जर्मनी में नात्सीवाद विजयी हुआ और स्तालिन की नीति सर्वथा विफल हुई तब उसने उस नीति को एकदम बदला। उस परिवर्तन की जानकारी भारतीय कम्युनिस्टों को देर से हुई, लेकिन जब हुई तब उन्होंने संयुक्त मोर्चे की बात शुरू की तथा कांग्रेस में भी घुसने का प्रयास किया। उसी समय कम्युनिस्ट पार्टी के तत्कालीन महामंत्री श्री पी० सी० जोशी से मेरा घनिष्ठ परिचय हुआ। कम्युनिस्टों को कांग्रेस

सोशलिस्ट पार्टी में प्रवेश करने की नीति का अनुसरण करना मैंने उचित समझा। मुझे उस समय आशा थी कि नात्सीवाद की सफलता से कम्युनिस्टों ने जो सबक सीखा था उसकी वजह से मेरी नीति द्वारा भारत के मार्क्सवादी और साम्यवादी तत्त्वों का एक सम्मिलित दल बन सकेगा और वह दल कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी होगी। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के वे नेता जो मार्क्सवादी नहीं थे, इस नीति से असन्तुष्ट थे। परन्तु चूंकि आचार्य जी का समर्थन था इसलिये इस नीति पर पार्टी चलती रही।

यहां इस बात को स्पष्ट करना आवश्यक है कि यद्यपि आचार्यजी ने मेरी नीति का समर्थन किया, फिर भी उस पर जितना मुझे विश्वास था उतना उन्हें नहीं था। वह किसी भी हालत में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का संगठन कम्युनिस्टों के हाथ में देने को तैयार नहीं थे। खेद है कि मेरे अंध-विश्वास के कारण दक्षिण के कुल प्रदेशों में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की बागडोर कम्युनिस्टों के हाथ में चली गयी जिसके कारण कम्युनिस्ट संगठन और आन्दोलन से पृथक् कोई कांग्रेस समाजवादी संगठन या आन्दोलन केरल, तमिलनाडु, आन्ध्र आदि प्रदेशों में नहीं बन सका। इसी काल में अन्य प्रान्तों में भी कम्युनिस्टों ने अपनी गुप्त नीति के अनुसार कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अन्दर धीरे-धीरे अपने प्रभाव को बढ़ाने की तथा उसके कार्यकर्ताओं को तोड़कर अपने में मिलाने की कोशिश की। उनकी 'बोरिंग फ्राम विदिन' की नीति बहुत अंश में सफल हुई। जब इस नीति के दुष्परिणाम सामने आने लगे तब मेरी आंखें खुलीं। द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ जाने के बाद कम्युनिस्टों की नीति और गतिविधि से तंग आकर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में जितने कम्युनिस्ट थे उनको पार्टी से निष्कासित किया गया। उस समय मैं जेल में था परन्तु यदि बाहर होता तो इस निर्णय से पूर्णतः सहमत होता। यद्यपि आचार्यजी का विश्वास मार्क्सवाद में अटल रहा, लेकिन मुझसे काफी पहले ही वह कम्युनिस्टों की चाल समझ चुके थे और इस निर्णय पर पहुंच चुके थे कि उनके साथ मिलकर काम नहीं हो सकता।

स्वराज्य प्राप्ति के बाद जब मेरे मन में यह विचार उठा कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को कांग्रेस से अलग हो जाना चाहिये तो आचार्य जी

इस बात से पूरे सहमत नहीं थे। फिर भी कानपुर में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का युद्धोपरान्त जब पहला सम्मेलन हुआ तो उसमें पार्टी के नाम से 'कांग्रेस' शब्द को हटा देने का उन्होंने विरोध नहीं किया। मेरे लिये कॉंग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का कांग्रेस से अलग होकर एक स्वतंत्र समाजवादी दल बनाने की दिशामें यह बड़ा कदम था। कांग्रेस से अलग होने में आचार्य जी की जो हिचक थी वह उस समय दूर हुई जब कांग्रेस के विधान में संशोधन करके यह नियम बनाया गया कि कांग्रेस के अन्दर कोई ऐसी दूसरी संगठित पार्टी नहीं हो सकती जिसका अपना विधान और अनुशासन हो।

यहां यह भी उल्लेख करना अनुचित न होगा कि जब नासिक में इस बात का आखिरी फैसला हुआ तो चर्चाओं में राममनोहर लोहिया कांग्रेस छोड़ने के बारे में उतने मज़बूत नहीं थे। फिर भी सर्वसम्मति से नासिक सम्मेलन में निर्णय लिया गया। यह भी उल्लेखनीय है कि उस निर्णय के पहले कांग्रेस के नेताओं के साथ समाजवाद की दृष्टि से कांग्रेस को क्या करना चाहिये इस प्रश्न पर काफी चर्चा हो चुकी थी। उस चर्चा का हम लोगों के लिये कोई सन्तोषजनक परिणाम नहीं निकला था और हम लोग इस नतीजे पर पहुँच चुके थे कि उस समय कांग्रेस जिस प्रकार की बनी हुई थी वह समाजवाद की दिशा में अग्रसर नहीं हो सकती। नासिक के सर्वसम्मत निर्णय के पीछे हम लोगों की यह प्रतीति भी थी।

पिछले वर्षों में दल-बदल का जो संक्रामक रोग देश के राजनीतिक जीवन में पैदा हुआ है उसको ध्यान में रखते हुए यहां यह भी उल्लेखनीय है कि जब नासिक में यह निर्णय हुआ कि समाजवादी कांग्रेस से पृथक हो जाएँ तो साथ साथ यह भी तय पाया कि उनमें से जो कांग्रेस टिकट पर चुनाव में सफल होकर विधान सभाओं के सदस्य बने हैं उनको इस्तीफा देना चाहिये और फिर से उप-चुनाव लड़ना चाहिये। उस निर्णय का सभी सम्बन्धित व्यक्तियों ने पालन किया। यह एक ऐसा आदर्श था जिसको स्मरण करके आज भी गौरव का अनुभव होता है।

सन् १९५२ में सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रजा पार्टी के विलयन के सम्बन्ध में मेरा तथा राम मनोहर लोहिया एवं अशोक मेहता आदि का आचार्य जी से मतभेद हो गया। आचार्य जी

उन दिनों चीन गये हुए थे और उनकी अनुपस्थिति में ही कृपालानी जी आदि के०एम०पी०पी० के नेताओं से बातचीत होकर यह तय हो चुका था कि दोनों पार्टियों का संगम हो। जब आचार्य जी चीन से लौटे और इस निर्णय का उन्हें पता चला तो उन्हें बड़ा खेद हुआ। आज इतने वर्षों के बाद पीछे मुड़कर देखने पर मुझे भी लगता है कि अगर यह संगम नहीं होता तो शायद समाजवादी आन्दोलन के लिये श्रेयस्कर हुआ होता।

अपने मतभेदों की चर्चा छिड़ गयी है तो एक और मतभेद ध्यान में आता है। सन् १९५३ में जब मैं पूना में डा० दीनशा मेहता के क्लिनिक में तीन सप्ताह का उपवास कर रहा था तभी जवाहरलालजी का एक पत्र मिला कि जब दिल्ली आओ तो मुझसे मिलना। मैंने उत्तर दिया कि उपवास के बाद जब स्वास्थ्य लाभ कर लूंगा तो रंगून एशियन सोशलिस्ट कान्फ्रेन्स में जाऊँगा और वहां से लौटने के बाद दिल्ली आकर उनसे मिलूँगा। मुझे दुःख है कि मेरे कतिपय मित्रों ने इतनी सी बात पर ही यह सन्देह करना शुरू कर दिया कि जवाहरलालजी के साथ मेरी कोई साजिश चल रही है।

दिल्ली में जवाहरलाल जी से तीन दिनों तक कांग्रेस और प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी के परस्पर सहयोग के विषय पर चर्चा हुई। बाद में मैंने जवाहरलालजी को एक पत्र में १४ सूत्री कार्यक्रम लिख भेजा जिसको मैंने दोनों पार्टियों के परस्पर सहयोग का आधार बताया। लगभग तीन सप्ताह के बाद जवाहरलालजी से मिलकर फिर आखिरी निर्णय करना था। उन दिनों कृपालानीजी हमारी पार्टी के अध्यक्ष थे। उन्होंने पूरी तरह से सहयोग के विचार का समर्थन किया। दिल्ली वापस जाने के पहले मैं काशी गया और वहां काफी विस्तार से नरेन्द्रदेवजी से उस विषय पर चर्चा की। वह जवाहरलालजी के प्रस्ताव के विरुद्ध थे। उनका कहना था कि कांग्रेस के साथ मिलकर काम करना असम्भव होगा। कांग्रेस, चाहे जवाहरलालजी की निजी राय कुछ भी हो, समाजवाद से बहुत दूर है। उनका तीसरा कारण यह था कि शासन में घुसने के बाद अपने लोगों पर बुरा असर पड़ सकता है और उनकी दुर्बलताएँ बढ़ सकती हैं। इन दलीलों में ताकत थी। फिर भी मैं नरेन्द्रदेवजी से सहमत नहीं हुआ। मैंने उनसे कहा

कि अपने लोगों पर हमें विश्वास करना चाहिये। कांग्रेस समाजवादी संस्था न होते हुए भी यदि हमारे १४ सूत्री कार्यक्रम को, या उसमें से अधिकांश को, मान लेती है तो हमारे और उसके सहयोग से समाजवाद को कुछ आगे बढ़ने का मौका मिलेगा, पार्टी की शक्ति और प्रभाव बढ़ेगा, और यदि अनुभव से यह सिद्ध हुआ कि कांग्रेस ने हमारे कार्यक्रम को सिर्फ ऊपरी दिल से माना था और हम आगे प्रगति नहीं कर रहे हैं तो हम इस्तीफा देकर बाहर आ सकते हैं और जनता के सामने इस चीज को सफाई से पेश करके उसको प्रभावित कर सकते हैं। मेरा यह विचार आजतक बदला नहीं है और आज भी मैं मानता हूँ कि यदि हमारी शर्तों पर सहयोग हो पाता तो समाजवाद के लिये अच्छा होता।

पाठकों को स्मरण होगा कि जवाहरलालजी के प्रस्ताव का कोई परिणाम नहीं निकला। इसका एक मात्र कारण यही था कि जब दुबारा दिल्ली में उनसे मेरी मुलाकात हुई तो उन्होंने कहा कि मैं ने सहयोग के लिये जो आधार बताया है उसके लिये समय अनुकूल नहीं है। बिना किसी शर्त के सहयोग हो, यह तो संभव था। परन्तु उसके लिये मैं स्वयं तैयार नहीं था और बात वहीं पर खतम हो गयी।

यह बात तो खतम हो गयी, परन्तु दुर्भाग्यवश उसकी प्रतिक्रियाएं पार्टी में बहुत खराब हुई। जिसको अंग्रेजी में कैरेक्टर असेसिनेशन (चरित्र-वध) कहते हैं उसका पूरा कैम्पेन (अभियान) ही शुरू हो गया जिसका प्रमुख शिकार मैं स्वयं था। चूंकि आचार्य जी सहयोग के विरुद्ध थे, इसलिये चरित्र-वध के शस्त्रों से सौभाग्यवश वे उस समय सुरक्षित रहे।

आचार्यजी से मेरा एक दूसरा मतभेद उस समय हुआ जब मैंने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से और सत्ता की राजनीति से अलग होकर सर्वोदय आन्दोलन में प्रवेश किया। मैंने यह कदम उठाने के पहले आचार्यजी से कोई परामर्श नहीं किया था, इसलिये भी कि मैं जानता था कि मैं अपनी बात उन्हें समझा नहीं पाऊंगा। उन्हें इस बात की शिकायत रही, लेकिन इससे भी बड़ी शिकायत यह थी कि मैंने पार्टी और राजनीति ही छोड़ दी।

जिन कारणों ने मुझे पार्टी और राजनीति छोड़कर सर्वोदय आन्दोलन में जाने को प्रेरित किया उनमें से वह आत्मिक दुःख भी था जो पार्टी में चरित्र-वध और उसके विघटन के समय मुझे हुआ। राजनीति में मतभेद तो पैदा होते ही हैं और जब वह एक मर्यादा के बाहर चले जाते हैं तो फिर जिनके मत मिलते नहीं उनका अलग हो जाना स्वाभाविक होता है। परन्तु हर मतभेद के लिये कोई गुप्त कारण है, कोई बुरी नीयत है, कोई आन्तरिक दुर्बलता है, इस प्रकार की जब चर्चा और प्रचार होता है तो वह अत्यन्त दुःखदायी होता है। आजतक मुझे विश्वास है कि उस समय के मतभेद इतने बड़े नही थे कि उनके कारण साथी अलग हों। परन्तु जिनको ऐसा लगा कि वह साथ नहीं चल सकते उनका अलग होना अनावश्यक होते हुए भी समझने लायक हो सकता है। परन्तु नीयत पर शक करना, चरित्र-वध का जहर फैलाना यह तो राजनीति के दायरे के बाहर की बात होती है। मैं अपने तथा आचार्यजी दोनों ही के बारे में कह सकता हूं कि हममें से कोई भी न थक गया था, न पद-लोलुपता का ही शिकार हो गया था, न हम यहीं चाहते थे कि पार्टी कांग्रेस में मिल जाय। हां, इतना है कि आचार्यजी का और मेरा जवाहरलालजी से बड़ा निकट का सम्बन्ध था। लेकिन जब हम लोगों की उनसे मुलाकात हो तो उसका यह कोई मानी नहीं था कि उनके साथ समाजवादी आन्दोलन को खतम कर देने का कोई षड्यन्त्र हम रच रहे हैं। उस एक बार को छोड़कर जबकि जवाहरलालजी ने मेरा तथा पार्टी का सहयोग चाहा था, कभी भी उन्होंने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को अथवा जब सोशलिस्ट पार्टी थी तो उसको, कांग्रेस में मिलाने की या उसके साथ सहयोग करने की कोई बात मुझसे नहीं छेड़ी। परन्तु व्यक्तिगत मित्रता का भी जब ऐसा राजनीतिक अर्थ निकाला जाता था तो उसका हमारे पास कोई जवाब नहीं था।

श्री अशोक मेहता ने 'कम्पलशन्स आफ बैकवर्ड इकानामी' की जो बात अपनी बैतूल रिपोर्ट में लिखी थी मैं उससे सहमत नहीं था। उस पर बौद्धिक विचार हो सकता था। पर बैतूल में तो हवा ही कुछ ऐसी जहरीली हो गयी थी जिसमें विचारों का आदान प्रदान असम्भव था। वहां तो रूप यही दिया गया कि अशोक मेहता ने

जयप्रकाश नारायण और सम्भवत: नरेन्द्रदेव के इशारे से यह बात लिखी है। इस वातावरण से क्षुब्ध हो मैंने पार्टी की कार्यकारिणी से वहां इस्तीफा घोषित किया। यद्यपि लोगों के आग्रह पर मैंने अपना इस्तीफा वापस ले लिया, पर मेरे लिये पार्टी में काम करना कठिन हो गया और मैं धीरे-धीरे पार्टी से अलग हो गया। मेरे विचार में बैतूल कान्फ्रेन्स के दिन भारतीय समाजवाद के लिये बुरे दिन थे। उसने विघटन की प्रक्रिया को बढ़ाया। उसका दुःखद प्रभाव आज भी उस आन्दोलन पर बना हुआ है और ऐसा नहीं लगता कि कभी उससे उसका उद्धार होगा। मैं तो पार्टी से अलग ही हो गया, परन्तु आचार्यजी उसमे कायम रहे और यथाशक्ति उसको आगे ले जाने का प्रयास करते रहे। इस प्रयास में जो मानसिक और हार्दिक क्लेश उन्हें हुआ उसका घातक असर उनके स्वास्थ्य पर पड़ा। उनके जैसे निष्कपट, उदारचरित् और महान् व्यक्ति के विषय में जो बातें उन दिनों कही गयीं, और उन लोगों के द्वारा जो चारित्र्य में उनको छू तक नहीं सकते थे, वह भारतीय समाजवादी आन्दोलन का एक अत्यन्त काला पृष्ठ है।

आचार्यजी के व्यक्तित्व, उनकी विद्वत्ता, उनकी अपूर्व वक्तृत्व शक्ति, इन सबके बारे में कुछ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है। वर्तमान पीढ़ी उनके इन गुणों से भलीभांति परिचित है। फिर भी प्रकृत सौजन्य, ईर्ष्या-द्वेष आदि से परे निर्मल चित्त, प्रसन्न मुद्रा, हास्य-रस, सहज प्रेम, निस्पृही सेवा, विद्वत्ता, भाषण शक्ति उनके व्यक्तित्व के कुछ ऐसे गुण हैं जिनका संक्षेप में उल्लेख आवश्यक लगता है। मैंने उनके साथ न जाने कितना समय बिताया होगा, अकेले भी और मित्र-मंडलियों में भी। परन्तु मैंने कभी दूसरों की निन्दा करते हुए उन्हें नहीं सुना, ज्यादा-से-ज्यादा किसी के बारे में वह कह सकते तो इतना ही कि अमुक आदमी बहुत गड़बड़ है या तिकड़मी है। इससे कठोर या कटुतापूर्ण शब्द का प्रयोग उन्होंने उस काल में भी कभी नहीं किया जबकि उनके ही निकट के साथी उन पर तीखे और दूषित बौछार कर रहे थे। मैंने यह भी देखा कि दमे का दौरा पड़ने पर भी उनकी खुशमिजाजी बनी रहती थी और वे खुद अपने या दूसरे के मजाक में आनन्द लेते रहते थे। उनको

लोगों ने अजातशत्रु की उपाधि दी थी। उनकी इन्सानियत अद्भुत थी। वहां कोई नहीं पहुँच पाता था। उनकी बौद्धिक शक्ति, उनका ज्ञान, उनकी वाक् पटुता, उनकी भाषण शक्ति भी अद्भुत थी। आचार्य नरेन्द्रदेव राजनीतिक नेता तथा इतिहास और दर्शन के महान् पण्डित तो थे ही, साथ ही साथ समाजवाद के भी प्रकाण्ड विद्वान् थे। वे नि सन्देह विश्वव्यापी समाजवाद के एक बड़े नेता और विचारक थे। सिद्धान्त और व्यवहारिकता का उनमें उत्तम समन्वय था। उनकी विद्वत्ता के विषय में, खासकर इतिहास, दर्शन, समाजवाद, समाजशास्त्र, राज-शास्त्र, संस्कृति आदि के ज्ञान के बारे में, कुछ कहना गैर जरूरी होगा। उसका सबूत तो उनकी पुस्तकें, उनके लेख और भाषण आदि ही हैं जिनका परिचय प्रोफेसर मुकुट बिहारीलाल जी की इस पुस्तक में पाठकों को मिलेगा। जहां तक वक्तृता की बात है आज बहुत से लोग जीवित हैं जिन्होंने उनके हिन्दी और उर्दू के भाषण सुने होंगे। इनमें उनका मुकाबला कर सकने योग्य देश में उंगली पर भी गिनने लायक लोग नहीं थे। उनके भाषण में जितनी ही भाषा की उत्तमता होती थी उतनी ही विचार और तर्क की ऊंचाई और उसी प्रकार बोलने का तर्ज भी।

प्रो० मुकुटबिहारीलाल जी ने इस पुस्तक में आचार्यजी के जीवन की मुख्य मुख्य घटनाओं का उल्लेख करते हुए उनके व्यक्तित्व और नेतृत्व का विस्तार से विश्लेषण बहुत अच्छे ढंग से किया है। पुस्तक के पढ़ने से समाजवादी आन्दोलन के साथ साथ कांग्रेस द्वारा संचालित राष्ट्रीय आन्दोलन का तथा देश के वैधानिक विकास का भी अच्छा परिचय प्राप्त हो सकता है। पुस्तक में भिन्न-भिन्न विषयों पर आचार्यजी के विचार भी बहुत ही उत्तम ढंग से संजोये हुए मिलेंगे। आज के भारत के लिये, विशेषकर युवाजनों के लिये, राजनीति के लिये, शिक्षा और संस्कृति के लिये, इस पुस्तक की बड़ी उपादेयता है। अन्त में इस पुस्तक को संपादित करने के लिये प्रोफ़ेसर साहब को एक बार फिर साधुवाद कहते हुए मैं विचारवान् पाठकों से इसे अपनाने का आग्रह करता हूं।

वाराणसी
१४ मार्च सन् १९६९ — [signature]

प्रस्तावना

यद्यपि आचार्य नरेन्द्रदेवजी के जीवन और नेतृत्व की व्याख्या ही इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य है। पर उनका जीवन समाज से समरस था, उनके व्यक्तित्व और नेतृत्व का विकास सामाजिक परिस्थिति और राष्ट्रीय संघर्षों की पृष्ट भूमि में हुआ था। इनके संदर्भ में ही उनके जीवन का अध्ययन सम्भव था। इसलिये इस पुस्तक में उनके युग की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय परिस्थितियों एवं गतिविधियों का भी विश्लेषण किया गया है। यद्यपि इस पुस्तक में क्रान्तिकारी आन्दोलन की तथा कुछ दूसरे आन्दोलनों की समुचित चर्चा नहीं है, फिर भी पुस्तक के पढ़ने से कांग्रेस द्वारा संचालित राष्ट्रीय आन्दोलन का तथा देश के वैधानिक विकास का परिचय प्राप्त हो सकता है।

काशी विद्यापीठ नरेन्द्रदेवजी का मुख्य कार्यक्षेत्र रहा। यहीं उन्होंने बहुत से कार्य-कर्ताओं को शिक्षा दीक्षा दी, उनके जीवन को अनुप्राणित किया। स्वाधीनता-संग्रामों में सक्रिय भाग लेने के फल-स्वरूप उत्तर-प्रदेश और आगे चलकर राष्ट्र की राजनीति में विद्यापीठ के प्राध्यापकों और स्नातकों को जो कीर्ति प्राप्त हुई, उसका संक्षिप्त परिचय भी इस पुस्तक से मिल सकता है।

स्वतन्त्रता संघर्ष के अंतिम पच्चीस वर्षों में नरेन्द्रदेवजी का महत्त्वपूर्ण नेतृत्व और योगदान रहा है। दमे के भयंकर रोग में ग्रस्त रहने पर भी अपने स्वास्थ्य की चिन्ता को छोड़ कर वे जिस तरह निष्कामभाव से स्वाधीनता-संघर्षों और राष्ट्र की दूसरी सेवाओं में लगे रहे उन सब का इस पुस्तक में विवरण है। राष्ट्रीय संघर्षों की पृष्टभूमि में नरेन्द्रदेवजी के राजनीतिक और सांस्कृतिक नेतृत्व की व्याख्या की गयी है। उनके नेतृत्व की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए दूसरे वामपक्षी तथा दक्षिणपक्षी नेतृत्व और दृष्टि के प्रति उनकी प्रतिक्रिया का विश्लेषण किया गया है इसके पढ़ने से नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व के

मई सन् १९३४ में जो सोशलिस्ट कन्वेंशन पटना में हुआ, उसके अध्यक्ष नरेन्द्रदेवजी ही थे। इसके बाद उन्होंने आजीवन समाजवादी आन्दोलन का नेतृत्व किया। इसका विवरण काफी विस्तार से इस पुस्तक में दिया गया है। यद्यपि किसी एक व्यक्ति की जीवनी द्वारा सारे समाजवादी आन्दोलन का समुचित ज्ञान असम्भव है, फिर भी इस जीवनी के पढ़ने से समाजवादी आन्दोलन के इतिहास की रूपरेखा का काफी ज्ञान जरूर हो सकता है।

अगस्त सन् १९४७ में राष्ट्र के स्वतन्त्र होने के बाद भी राजसत्ता का मोह छोड़कर जिस निष्पृहता से नरेन्द्रदेवजी ने राष्ट्र की सेवा की तथा राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने के लिये जनता के समक्ष सुझाव उपस्थित किए उनका विस्तार से उल्लेख इस पुस्तक में किया गया है। इस पुस्तक में जिन समस्याओं का जिक्र है उनमें से अधिकांश का समाधान होना अब भी बाकी है। उनके सम्बन्ध में नरेन्द्रदेवजी के विचार अब भी सजीव हैं। उनका अध्ययन आज भी उतना ही जरूरी है जितना पहले था।

इस पुस्तक के अन्तिम चार अध्यायों में नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व का, उनके विचारों का संक्षेप में विश्लेषण किया गया है। उसमें बताया गया है कि व्यक्ति, समाज, शिक्षा, संस्कृति, राष्ट्रीयता, मानवता, समाजवाद, जनतन्त्र, धर्म-निरपेक्षता आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर नरेन्द्रदेवजी के क्या सिद्धान्त थे। इसमें यह भी बताया गया है कि मार्क्सवाद को मार्क्सवादी नरेन्द्रदेवजी की क्या देन है। इन अध्यायों को पढ़ने से नरेन्द्रदेवजी द्वारा प्रतिपादित जनतान्त्रिक समाजवाद, जनतान्त्रिक शिक्षा पद्धति तथा अन्य सामाजिक सिद्धान्तों का अच्छा ज्ञान हो सकता है। पर उनके विचार तो सारी पुस्तक में बिखरे हुए हैं, अतः सारी पुस्तक को पढ़कर ही उनके सिद्धान्तों और नेतृत्व का समुचित परिचय हो सकता है। वास्तव में सारी पुस्तक ही जनतान्त्रिक समाजवाद की एक पोथी है।

इस पुस्तक में नरेन्द्रदेवजी के चरित्र और व्यक्तित्व के विकास का भी विश्लेषण किया गया है। उनके जीवन का विकास इतिहास की घटनाओं की पार्श्वभूमि में हुआ। अत सारी पुस्तक पढ़ने पर ही ठीक-ठीक पता चल सकता है कि किन परिस्थितियों में उनके जीवन

का विकास हुआ। पर एक अध्याय में उनके व्यक्तित्व के सद्गुणों का विशेष रूप से विश्लेषण है।

सिद्धान्तों के व्यापक तत्त्वों को ध्यान में रखते हुए दूसरों के विचारों से अपने को मिलाकर अधिक से अधिक सहयोग से काम करना नरेन्द्रदेवजी आवश्यक समझते थे। वे सहयोग को सार्वजनिक जीवन का प्राण समझते थे। उनके योगदान में साथियों के सहयोग का ऊँचा स्थान था। इसलिए इस पुस्तक में उनके सहपाठियों और सहयोगियों की भी संक्षेप में चर्चा की गयी है।

लेखक को दुःख है कि वह नरेन्द्रदेवजी के सब मित्रों के सम्पर्क में नहीं आ सका और इसलिए बहुत सी ऐसी बातें इस पुस्तक में नहीं लिखी जा सकीं जिनसे उनके क्रिया-कलापों की पूरी जानकारी हो सके। फिर भी वह जिन व्यक्तियों से मिला उन्होंने बहुत प्रेम से नरेन्द्रदेवजी के सम्बन्ध में अपने अनुभवों को बताकर लेखक को कृतार्थ किया और इस पुस्तक की तैयारी में योगदान किया। वह उन सबका आभारी है और उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है।

इन सबमें श्री जयप्रकाश नारायण का प्रमुख स्थान है। उन्होंने बहुत से दूसरे कामों में घिरे रहने हुए भी बहुत ही सहृदयता से समाजवादी आन्दोलन से सम्बन्धित सब अध्यायों को पढ़कर उनकी प्रामाणिकता को पुष्ट किया, पुस्तक के लिये प्राक्कथन लिखने का कष्ट किया तथा इसकी छपाई के लिये साधन जुटाये।

प्रोफेसर राजाराम शास्त्री, आचार्य बीरबल सिंह, श्री विश्वनाथ शर्मा ने भी पुस्तक के बहुत से अध्यायों को पढ़कर तथा आचार्यजी के जीवन-सम्बन्धी बहुत से तथ्यों की जानकारी कराकर पुस्तक को अधिक प्रमाणिक बनाने में सहायता दी। श्री अच्युत पटवर्धन, प्रोफेसर रंगा, श्री रामनन्दन मिश्र, डाक्टर सैयद महमूद, ठाकुर जयदेवसिंह, श्री रामनाथ सांगलू, श्री सुखनलाल मेहरोत्रा, श्री सर्वजीतलाल वर्मा आदि ने भी आचार्यजी के जीवन के सम्बन्ध में बहुत सी महत्त्वपूर्ण बातें बताकर लेखक को कृतार्थ किया। वह उन सबका आभारी है। सर्वश्री गंगाशरण सिंह, अच्युत पटवर्धन, रामवृक्ष बेनीपुरी, ठाकुर जयदेव सिंह, दामोदर स्वरूप सेठ, बनारसी दास चतुर्वेदी, चेलापति राव, जगन्नाथ

उपाध्याय एवं श्रीमती शकुंतला श्रीवास्तव के प्रकाशित संस्मरणों से तथा श्री श्रीप्रकाशजी और महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज के प्रकाशित तथा अप्रकाशित लेखों से भी लेखक को सामग्री जुटाने में तथा आचार्य जी के व्यक्तित्व के विश्लेषण में भरपूर सहायता मिली। प्रोफेसर परमानन्द ने युक्तप्रान्तीय युनिवर्सिटी कमेटी के सम्बन्ध में एक विस्तृत नोट देकर लेखक को इस पुस्तक में उसका विवरण देना सम्भव किया। लेखक इन सबके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है।

इस पुस्तक की तैयारी में बहुत से दूसरे सज्जनों का भी भरपूर हाथ है। श्री सत्यप्रकाश मित्तल ने इस पुस्तक के कतिपय अध्यायों की पाण्डुलिपि पढ़कर उनकी प्रेस कापी तैयार करने का तथा कुछ अध्यायों का प्रूफ देखने का कष्ट किया। इसी प्रकार स्वामी द्वारिका दास शास्त्री तथा श्री मणिभूषण घोष ने कई अध्यायों का प्रूफ पढ़ कर लेखक को अनुगृहीत किया। आचार्य नरेन्द्रदेव समाजवादी संस्थान के लिपिक श्री परमानन्द का तो इस सम्बन्ध में बहुत ही भरपूर योगदान है। इस पुस्तक के प्रकाशन में तारा प्रिंटिंग प्रेस, वाराणसी के संचालकों तथा कर्मचारियों का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। लेखक उन सबका विशेषतः श्री रमाशंकर पण्ड्या का आभारी है। इस पुस्तक की तैयारी में ज्ञानमण्डल कार्यालय, वाराणसी द्वारा प्रकाशित "समाजवाद तथा राष्ट्रीयता" और पद्मा प्रकाशन, बम्बई, द्वारा प्रकाशित "सोशलिज्म और नेशनल रिवोल्यूशन" से भी काफी सहायता मिली है। लेखक इन दोनों का भी बहुत कृतज्ञ है। आचार्यजी के परिवार से मिले मूल्यवान् सहयोग के लिये भी आभार प्रकट करना लेखक अपना कर्तव्य समझता है।

इस पुस्तक में काफी त्रुटियां रह गयी हैं। इनका मूल कारण लेखक की अपनी क्षमता की कमजोरियां हैं। आशा है कि पाठकगण उसे इन त्रुटियों के लिये क्षमा करते हुए पुस्तक को अपनाने का कष्ट करेंगे।

वाराणसी
२४ मई, सन् १९६९

मुकुट बिहारी लाल

विषय-सूची

पुस्तक में उल्लिखित मुख्य तिथियों की सूची

मई सन् १८५७—ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध भारत में विप्लव।

सन् १८६१—इन्डियन कौंसिल एक्ट द्वारा व्यवस्थापिका सभाओं का गठन।

दिसम्बर १८८५—इन्डियन नेशनल काग्रेस की स्थापना।

सन् १८८६—संयुक्त प्रान्त मे व्यवस्थापिका सभा का गठन।

३१ अक्तूबर सन् १८८९—नरेन्द्रदेव का जन्म।

सन् १८९२—नये इन्डियन कौंसिल एक्ट द्वारा राजनितिक सुधार।

सन् १९०४—रूस-जापान युद्ध ; जापान की विजय ; एशिया मे नयी राजनीतिक चेतना।

सन् १९०५—लार्ड कर्जन द्वारा बंगाल का विभाजन तथा मुस्लिम साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन ; बंगाल मे आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन का जोर।

सन् १९०५—गोखले द्वारा सर्वेन्ट आफ इन्डिया सोसायटी की स्थापना।

दिसम्बर १९०५—काग्रेस के बनारस अधिवेशन में गरम दल तथा नरम दल में तीव्र संघर्ष।

सन् १९०६—मुस्लिम लीग का संगठन तथा मुसलमानों द्वारा पृथक प्रतिनिधित्व की माग ; लार्ड मिन्टो का प्रोत्साहन।

दिसम्बर १९०६—दादा भाई नौरोजी की अध्यक्षता मे काग्रेस का कलकत्ते में अधिवेशन तथा अध्यक्ष द्वारा स्वराज्य की माग।

जनवरी १९०७—नरेन्द्रदेवजी द्वारा स्वदेशी का व्रत तथा गरम दलीय राजनीति मे दिलचस्पी।

दिसम्बर १९०७—काग्रेस के सुरत अधिवेशन में झगड़ा और फूट ; गरम दलीय कार्यकर्ताओ द्वारा काग्रेस का बहिष्कार।

सन् १९०९—नये राजनीतिक सुधार (मार्ले-मिण्टो सुधार)।

अगस्त सन् १९१४—यूरोप में प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ ; भारत में विशेषतः मुसलमानों मे नई राजनीतिक चेतना।

जुलाई सन् १९१५ द्वारा फैजाबाद में शुरू करना

सन् १९१६—फैजाबाद में नरेन्द्रदेव द्वारा होमरूल लीग की शाखा की स्थापना तथा उसके माध्यम से राजनीतिक कार्य शुरू करना।

दिसम्बर सन् १९१६—काग्रेस का लखनऊ अधिवेशन; काग्रेस तथा मुस्लिम लीग का समझौता; गरमदल के कार्यकर्ताओं का काग्रेस में पुन: प्रवेश।

२० अगस्त सन् १९१७—राजनीतिक सुधारों के सम्बन्ध में भारत मन्त्री की घोषणा।

अक्तूबर सन् १९१७—रूस में क्रान्ति: जारशाही तथा पूंजीवाद का अन्त; कम्युनिस्टों का आधिपत्य।

सन् १९१८—नरेन्द्रदेवजी का पहली बार अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का सदस्य निर्वाचित होना।

सन् १९१९—राजनीतिक सुधार सम्बन्धी कानून ब्रिटिश पार्लियामेन्ट द्वारा पारित; दमनकारी राउलेट एक्ट भी पारित; गांधी जी के नेतृत्व मे राउलेट एक्ट के विरोध मे आन्दोलन: पंजाब में भीषण दमन तथा अत्याचार, जलियावाला बाग में गोलीकांड।

सितम्बर सन् १९२०—कलकत्ते मे काग्रेस का विशेष अधिवेशन; गान्धी जी के नेतृत्व में काग्रेस के तत्वावधान मे असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ।

सन् १९२०—लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में इन्डिय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का स्थापना सम्मेलन।

जनवरी सन् १९२१—वकालत छोड़कर नरेन्द्रदेवजी का असहयोग आन्दोलन मे शामिल होना।

सन् १९२०-१९२१—अवध में किसान आन्दोलन।

जनवरी–जून सन् १९२१—नरेन्द्रदेवजी द्वारा फैजाबाद जिले के अकबरपुर तहसील के किसान आन्दोलन का नेतृत्व करना।

१० फरवरी सन् १९२१—काशी विद्यापीठ की स्थापना।

जुलाई सन् १९२१—नरेन्द्रदेवजी द्वारा काशी विद्यापीठ में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ करना।

दिसम्बर सन् १९२२—कांग्रेस का गया अधिवेशन; परिवर्तन तथा अपरिवर्तन वादियों में संघर्ष; स्वराज्य पार्टी की स्थापना।

सितम्बर सन् १९२३—दिल्ली मे कांग्रेस का विशेष अधिवेशन: कांग्रेसजनों को विधान सभाओं के चुनाव में हिस्सा लेने की छूट।

फरवरी १९२४—केन्द्रीय असेम्बली में पण्डित मोतीलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत स्वराज्य सम्बन्धी प्रस्ताव बहुमत से स्वीकृत

दिसम्बर १९२५—कानपुर में कांग्रेस का अधिवेशन; स्वराज्य पार्टी की कार्य विधि पर कांग्रेस का नियन्त्रण।

अक्तूबर सन् १९२७—साइमन कमीशन की नियुक्ति; भारतीय जनता तथा कांग्रेस आदि द्वारा उसका बहिष्कार।

दिसम्बर सन् १९२७—मद्रास में कांग्रेस का अधिवेशन; पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव स्वीकार; सर्वदलीय कान्फ्रेन्स के गठन का प्रस्ताव भी स्वीकार।

दिसम्बर सन् १९२७—इन्डिपेन्डेन्स आफ इन्डिया लीग की स्थापना।

सन् १९२८—पण्डित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में सर्वदलीय कमेटी द्वारा भारत के संविधान की रूपरेखा तैयार।

दिसम्बर सन् १९२८—कांग्रेस का कलकत्ता अधिवेशन; नेहरू कमेटी रिपोर्ट का समर्थन।

२० मार्च सन् १९२९—मेरठ षडयन्त्र केस प्रारम्भ।

मार्च सन् १९२९—सोवियत रूस की एशिया सम्बन्धी नीति पर नरेन्द्रदेवजी का लेख।

३१ अक्तूबर सन् १९२९—लार्ड इरविन द्वारा गोलमेज कान्फ्रेन्स की घोषणा।

१ जनवरी सन् १९३०—कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन मे पूर्ण स्वराज्य के लक्ष्य की घोषणा तथा गोलमेज कान्फ्रेन्स का बहिष्कार करते हुए सत्याग्रह शुरू करने का निर्णय।

२६ जनवरी सन् १९३०—पहला पूर्ण स्वराज्य दिवस।

जनवरी सन् १९३०—नरेन्द्रदेव और जयप्रकाश नारायण की पहली बार राजनीति पर बातचीत।

१२ मार्च सन् १९३०—नमक सत्याग्रह के निमित्त गान्धीजी की डाडी यात्रा।

६ अप्रैल सन् १९३०—नमक सत्याग्रह प्रारम्भ।

मई सन् १९३०—नरेन्द्रदेव युक्त प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के स्थानापन्न मन्त्री नियुक्त हुए; संयुक्त प्रांत में नमक सत्याग्रह तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन का नेतृत्व।

जून सन् १९३०—बस्ती में सर्वश्री नरेन्द्रदेव, पुरुषोत्तमदास टंडन और शिवप्रसाद गुप्त की गिरफ्तारी तथा तीन तीन मास की सजा।

नवम्बर-दिसम्बर सन् १९३०—लन्दन में गोलमेज कान्फ्रेन्स।

५ मार्च सन् १९३१—गांधी-इरविन समझौता; नमक सत्याग्रह स्थगित।

मार्च सन् १९३१—कांग्रेस का करांची अधिवेशन; गांधी-इरविन समझौते की स्वीकृति, मौलिक अधिकारों का प्रस्ताव स्वीकृत; गोलमेज कान्फ्रेन्स के लिए गांधीजी कांग्रेस के प्रतिनिधि नियुक्त।

सितम्बर-नवम्बर सन् १९३१—लन्दन में गोलमेज कान्फ्रेन्स का दूसरा सम्मेलन।

दिसम्बर सन् १९३१—संयुक्त प्रान्त के किसानों की बेचैनी के सिलसिले से पण्डित जवाहर लाल नेहरू की गिरफ्तारी।

२८ दिसम्बर सन् १९३१—खान अब्दुल गफ्फार खाँ की गिरफ्तारी।

४ जनवरी सन् १९३२—सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ।

मार्च सन् १९३२—पण्डित मदनमोहन मालवीय द्वारा स्वदेशी संघ की स्थापना।

८ अगस्त सन् १९३२—प्रधान मन्त्री मेकडानल्ड द्वारा साम्प्रदायिक निर्णय।

२०-२६ सितम्बर सन् १९३२—साम्प्रदायिक निर्णय द्वारा हरिजनों को पृथक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था के विरुद्ध गांधी जी का अनशन; इस प्रश्न पर हरिजनो से सवर्ण हिन्दुओं का समझौता।

सितम्बर सन् १९३२—अस्पृश्यता—निवारण सम्मेलन का संगठन; पुनः सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ।

अक्तूबर सन् १९३२—नरेन्द्रदेव की गिरफ्तारी और एक वर्ष की सजा।

सन् १९३३-३४—गांधीजी का उपवास तथा हरिजन दौरा।

सन् १९३३—नासिक जेल में समाजवाद के कार्यक्रम पर जयप्रकाश नारायण आदि से बातचीत।

१५ जनवरी सन् १९३४—बिहार में भूकम्प।

मई सन् १९३४—नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में पटना में सोशलिस्ट कन्वेन्शन, कांग्रेस के अन्दर समाजवादी पार्टी बनाने का निर्णय।

अक्तूबर सन् १९३४—सम्पूर्णानन्द जी की अध्यक्षता में बम्बई में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का स्थापना सम्मेलन।

सन् १९३५—नया गवर्नमेन्ट आफ इन्डिया एक्ट पारित।

जून सन् १९३५—नरेन्द्रदेवजी की अध्यक्षता में गुजरात कांग्रेस सोशलिस्ट सम्मेलन।

जनवरी सन् १९३६—कमलादेवी चट्टोपाध्याय की अध्यक्षता में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का मेरठ में अधिवेशन।

नवम्बर १९३६—नरेन्द्रदेवजी उत्तरप्रदेशीय राजनीतिक सम्मेलन के सभापति।

सन् १९३६—नरेन्द्रदेवजी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष तथा कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य।

फरवरी सन् १९३७—विधान सभाओं का चुनाव; नरेन्द्रदेव प्रान्तीय विधान सभा के सदस्य निर्वाचित।

मार्च सन् १९३७—कम्युनिस्टों द्वारा संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे की आवश्यकता की घोषणा।

जुलाई सन् १९३७—कई प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल गठित।

मार्च-मई सन् १९३८—संयुक्त प्रान्त की कांग्रेस सरकार द्वारा युनिवर्सिटी कमेटी तथा माध्यमिक और प्रारम्भिक शिक्षा समितियों की नियुक्ति।

सन् १९३८—एम० आर० मसानी की अध्यक्षता में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का लाहौर मे अधिवेशन; पार्टी पर अपना आधिपत्य जमाने का कम्युनिस्टों द्वारा विफल प्रयत्न।

मई सन् १९३८—कानपुर में मजदूरों की हड़ताल।

मई-जून सन् १९३८—जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व मे सोनपुर मे वृहद् समाजवादी प्रशिक्षण शिविर।

मार्च सन् १९३९—कांग्रेस का त्रिपुरी अधिवेशन, तीव्र विवाद।

मई-जून सन् १९३९—नरेन्द्रदेव जी के नेतृत्व मे लखनऊ मे समाजवादी प्रशिक्षण शिविर।

जुलाई सन् १९३९—कॉंग्रेस सोशलिस्ट पार्टी (दिल्ली) में नरेन्द्रदेवजी का अध्यक्षीय भाषण।

अप्रैल-जुलाई सन् १९३९—कांग्रेस की अध्यक्षता से श्री सुभाषचन्द्र बोस का त्यागपत्र; कॉंग्रेस की नीति के विरुद्ध कार्यों पर सुभाषचन्द्र बोस का कांग्रेस से निष्कासन, फारवर्ड ब्लाक का गठन।

सितम्बर सन् १९३९—दूसरा विश्वयुद्ध प्रारम्भ।

अक्टूबर सन् १९३९—हिन्दी साहित्य सम्मेलन के समाजपरिषद विभाग की सभा में नरेन्द्रदेव का अध्यक्षीय भाषण।

अक्टूबर सन् १९३९ कॉंग्रेस मन्त्रिमण्डलों का पदत्याग।

२२ नवम्बर सन् १९३९—मुस्लिम लीग द्वारा मुक्तिदिवस।

सन् १९३९—किसान सभा के गया अधिवेशन मे नरेन्द्रदेवजी द्वारा अध्यक्षता।

मार्च सन् १९४०—मौलाना अबुल कलाम आजाद की अध्यक्षता में कॉंग्रेस का रामगढ़ अधिवेशन।

मार्च सन् १९४०—सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता मे समझौता विरोधी सम्मेलन।

मार्च सन् १९४०—मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में पाकिस्तान का प्रस्ताव स्वीकृत।

जून सन् १९४०—अहिंसा के प्रश्न पर गांधीजी तथा कांग्रेस वर्किंग कमेटी मे मतभेद ; गाँधीजी काँग्रेस के नेतृत्व से मुक्त किये गये।

८ अगस्त सन् १९४०—वाइसराय द्वारा राजनीतिक परिस्थिति पर घोषणा।

१७ अक्टूबर सन् १९४०—गांधीजी के नेतृत्व मे व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ।

अक्टूबर सन् १९४०—नरेन्द्रदेवजी का वक्तव्य ; उत्तर प्रदेश में सत्याग्रह का नेतृत्व तथा जेल।

अक्टूबर सन् १९४०—एम० एन० राय के नेतृत्व मे रेडिकल डेमोक्रेटिक पीपिल्स पार्टी का गठन।

जून सन १९४१—जर्मनी का रूस पर आक्रमण।

दिसम्बर सन् १९४१—जापान युद्ध में शामिल ; सब सत्याग्रही रिहा तथा सत्याग्रह स्थगित।

सन् १९४२—नरेन्द्रदेवजी का विश्वयुद्ध के सम्बन्ध मे लेख।

मार्च सन् १९४२—क्रिप्स मिशन ; विफल।

२७-३० अप्रैल सन् १९४२—काँग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक में भारत—छोड़ो प्रस्ताव पर पहली बार विचार ; नरेन्द्रदेव द्वारा गाधीजी के प्रस्ताव का समर्थन तथा पण्डित नेहरू द्वारा उसका विरोध।

जुलाई सन् १९४२—वर्धा मे कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक ; भारत छोड़ो प्रस्ताव स्वीकृत।

७-८ अगस्त सन् १९४२—अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का बंबई में अधिवेशन ; भारत—छोड़ो प्रस्ताव स्वीकृत।

९ अगस्त सन् १९४२—बम्बई में गांधीजी आदि नेताओं की गिरफ्तारी और भारत—छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ।

नवम्बर सन् १९४२—श्री जयप्रकाश नारायण का हजारीबाग जेल से निकल भागना।

नवम्बर सन् १९४२—श्री एम. एन. राय के नेतृत्व में फासिस्ट विरोधी मजदूर कान्फ्रेन्स।

सन् १९४३—श्री सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व मे आजाद हिन्द फौज का संगठन।

१० फरवरी सन् १९४३—गांधीजी का इक्कीस दिन का उपवास।

मार्च सन् १९४४—आजाद हिन्द फौज भारत की सीमा पर

७ मई सन् १९४४—गाँधीजी की रिहाई।

१७ जून सन् १९४४—गाँधीजी का वाइसराय को पत्र।

जुलाई सन् १९४४—राजगोपालचारी का जिन्ना को पाकिस्तान के प्रश्न पर पत्र।

अगस्त सन् १९४४—वाइसराय का गाँधी जी को निराशाजनक पत्र।

सितम्बर सन् १९४४—गाँधी-जिन्ना वार्ता; विफल।

१ जनवरी सन् १९४५—लियाकत अली–भूलाभाई समझौता।

अप्रैल सन् १९४५—निर्दलीय कान्फ्रेन्स द्वारा देश के विभाजन का विरोध।

मई सन् १९४५—जर्मनी का पराजय।

जून सन् १९४५—वाइसराय की घोषणा तथा कांग्रेस के नेताओं की रिहाई।

२७ जून-१४ जुलाई सन् १९४५—शिमला कान्फ्रेन्स; विफल।

४ जुलाई सन् १९४५—ब्रिटेन में चुनाव; कंजरवेटिव पार्टी की हार।

८ जुलाई सन् १९४५—ब्रिटेन मे मजदूर सरकार का गठन।

१४ जुलाई सन् १९४५—प्रान्तीय विधान सभाओं के चुनाव के सम्बन्ध में वाइसराय की घोषणा।

१८-१९ सितम्बर सन् १९४५—वाइसराय तथा प्रधान मन्त्री द्वारा ब्रिटेन को मजदूर सरकार की नीति की घोषणा।

फरवरी सन् १९४६—नरेन्द्रदेवजी का भारतीय क्रान्ति के भविष्य पर वक्तव्य।

मार्च सन् १९४६—प्रान्तीय विधान सभा का चुनाव।

मार्च-मई सन् १९४६—भारत मे केबिनेट मिशन।

अप्रैल सन् १९४६—प्रान्तों में मन्त्रिमण्डलो का गठन।

अप्रैल सन् १९४६—जयप्रकाश नारायण, डाक्टर लोहिया आदि रिहा।

१६ मई सन् १९४६—केबिनेट मिशन द्वारा दीर्घ कालीन तथा अल्पकालीन योजनाओं की घोषणा।

८ अगस्त सन् १९४६—यू० पी० विधान सभा द्वारा जमींदारी उन्मूलन सम्बन्धी प्रस्ताव।

२ सितम्बर सन् १९४६—केन्द्र में कांग्रेस द्वारा मध्य कालीन सरकार का गठन।

अक्तूबर सन् १९४६—मुस्लिम लीग मध्यकालीन सरकार मे शामिल।

मार्च सन् १९४७—कानपुर में डा० लोहिया की अध्यक्षता में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का अधिवेशन–पार्टी का नया नामकरण।

मई सन् १९४७—इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन काग्रेस की स्थापना।

३ जून सन् १९४७—सरकार द्वारा देश के बटवारे की घोषणा।

जून सन् १९४७—देशी रियासतों के सम्बन्ध में नरेन्द्रदेवजी का वक्तव्य।

१५ अगस्त १९४७—देश का विभाजन तथा स्वतन्त्रता।

सन् १९४७—लखनऊ विश्वविद्यालल के उपकुलपति पद पर नरेन्द्रदेवजी की नियुक्ति।

सन् १९४७—आगरा विश्वविद्यालय के उपाधिवितरण पर नरेन्द्रदेवजी का भाषण।

३० जनवरी सन् १९४८—गाँधीजी का बलिदान।

मार्च सन् १९४८—कॉग्रेस का निर्णय कि किसी दूसरी पार्टी का सदस्य कॉग्रेस का सदस्य नही हो सकता।

मार्च सन् १९४८—सोशलिस्ट पार्टी का नासिक अधिवेशन; कॉग्रेस से सम्बन्ध विच्छेद।

३१ मार्च सन १९४८—नरेन्द्रदेवजी आदि समाजवादी विधायकों का विधानसभा से इस्तीफा।

२९ मई सन् १९४८—डाक्टर लोहिया की अध्यक्षता मे लखनऊ में पचसम्मेलन :—नरेन्द्रदेवजी का उद्घाटन भाषरा।

सन् १९४८—देहली मे अखिल भारतीय युनिवर्सिटी टीचर्स कान्फ्रेन्स में नरेन्द्रदेवजी का अध्यक्षीय भाषण।

२७-२८ नवम्बर सन् १९४८—बम्बई में जयप्रकाश नारायण के निमन्त्रण पर मजदूर कार्यकर्ताओं की कान्फ्रेन्स।

२४-२७ दिसम्बर सन् १९४८—कलकत्ते मे मजदूर कार्यकर्ताओं की कान्फ्रेन्स मे हिन्द मजदूर सभा का गठन।

मार्च सन् १९४९—नरेन्द्रदेवजी की अध्यक्षता में सोशलिस्ट पार्टी का पटना अधिवेशन; नरेन्द्रदेवजी की अध्यक्ष पद पर नियुक्ति।

मार्च सन् १९४९—हिन्द किसान पंचायत का संगठन।

२५ नवम्बर सन् १९४९ लखनऊ तथा पटना मे किसान प्रदर्शन।

सन् १९५०—डाक्टर लोहिया की अध्यक्षता मे किसान पँचायत का रींवा में सम्मेलन।

फरवरी सन् १९५०—नरेन्द्रदेव द्वारा बर्मा तथा श्याम की यात्रा।

मार्च सन् १९५०—नरेन्द्रदेवजी काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष निर्वाचित।

अप्रैल सन् १९५०—सोशलिस्ट पार्टी (पंजाब) सम्मेलन में नरेन्द्रदेव का अध्यक्षीय भाषण।

जून सन् १९५०—श्री अशोक मेहता को अध्यक्षता में सोशलिस्ट पार्टी का मद्रास सम्मेलन।

अगस्त-सितम्बर सन् १९५०—बम्बई मे मजदूर हड़ताल।

३ जून सन् १९५१—देहली मे जनवाणी दिवस।

जून सन् १९५१—नरेन्द्रदेव द्वारा श्रीमती अरुणा आसफअली के मार्क्सवाद की समीक्षा।

नवम्बर सन् १९५१—नरेन्द्रदेवजी का पजाब का दौरा।

नवम्बर सन् १९५१—नरेन्द्रदेवजी बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के उपकुलपति।

सन् १९५१—उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता मे माध्यमिक शिक्षा समिति का गठन।

सन् १९५१—बम्बई में अखिल भारतीय टीचर्स कान्फ्रेन्स मे नरेन्द्रदेव का भाषण।

फरवरी सन् १९५२—लोकसभा तथा विधानसभा के आम चुनाव।

अप्रैल सन् १९५२—नरेन्द्रदेवजी राज्यसभा के सदस्य निर्वाचित।

अप्रैल सन् १९५२—नरेन्द्रदेवजी की चीन यात्रा।

मई सन् १९५२—सोशलिस्ट पार्टी का पचमढ़ी सम्मेलन।

१ जून सन् १९५२—सोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रजा पार्टी के संसदीय सदस्यो का सहकार सम्बन्धी समझौता।

जून सन् १९५२—सोशलिस्ट पार्टी (यू० पी०) का डाक्टर लोहिया की अध्यक्षता मे हरदोई सम्मेलन।

अगस्त सन् १९५२—सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्य समिति की विलयन के सम्बन्ध में वाराणसी मे बैठक।

सितम्बर सन् १९५२—बम्बई मे सोशलिस्ट पार्टी की जनरल कौंसिल की बैठक; आचार्य कृपालानी की अध्यक्षता मे प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का गठन।

मार्च सन् १९५३—काशी नागरी प्रचारिणी सभा की हीरक जयन्ती के अवसर पर आयोजित सांस्कृतिक सम्मेलन में नरेन्द्रदेवजी का अध्यक्षीय भाषण।

फरवरी-मार्च सन् १९५३—कांग्रेस तथा प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के सहयोग पर जयप्रकाश नारायण-जवाहरलाल वार्ता।

जून सन् १९५३—प्रजासोशलिस्ट पार्टी की बैतूल कान्फ्रेन्स।

अगस्त सन् १९५३—कांग्रेस से समझौता करने के विरुद्ध नरेन्द्रदेव का वक्तव्य।

दिसम्बर सन् १९५३—प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का प्रयाग अधिवेशन।

२१ अप्रैल सन् १९५४—बिहार राष्ट्र भाषा परिषद में नरेन्द्रदेव का अध्यक्षीय भाषण।

जून सन् १९५४—स्वास्थ्य लाभ के लिये नरेन्द्रदेव की यूरोप यात्रा।

अगस्त-अक्टूबर सन् १९५४—ट्रावन्कोर-कोचीन मे गोलीकांड पर प्रजासोशलिस्ट पार्टी में वादविवाद।

नवम्बर सन् १९५४—नागपुर में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का विशेष अधिवेशन; नरेन्द्रदेव जी अध्यक्ष बने।

२१ दिसम्बर सन् १९५४—नरेन्द्रदेवजी का अनुशासन पर परिपत्र।

दिसम्बर सन् १९५४—समाजवादी ढंग की योजना पर लोक सभा का प्रस्ताव।

जनवरी सन् १९५५—कांग्रेस का अवाड़ी अधिवेशन, समाजवादी ढंग की योजना पर प्रस्ताव।

२६ जनवरी सन् १९५५—अशोक मेहता का लेख, बम्बई में विवाद का प्रारम्भ

२१ फरवरी सन् १९५५—नरेन्द्रदेवजी का बम्बई के विवाद पर परिपत्र।

२६ फरवरी सन् १९५५—अशोक मेहता की नीति तथा कांग्रेस से मेल के विरुद्ध नरेन्द्रदेवजी का लेख।

२६ मार्च सन् १९५५—मधुलिमये का प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से निलम्बन।

अप्रैल सन् १९५५—प्रजा सोशलिस्टपार्टी की राष्ट्र कार्यसमिति की बैठक।

अप्रैल-मई सन् १९५५—उत्तर प्रदेश प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की कार्यसमिति द्वारा राष्ट्रीय कार्यसमिति के निर्णयों का विरोध।

४ तथा ५ जून सन् १९५५—दिल्ली में राष्ट्रीय कार्यसमिति की बैठक; उत्तर प्रदेश की प्रान्तीय कार्यसमिति की मुअत्तली।

६ जून सन् १९५५—उत्तर प्रदेश मे प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की तदर्थ समिति का गठन।

११, १२, १३ जून सन् १९५५—गाजीपुर में मुअत्तल कार्यसमिति द्वारा सम्मेलन।

२६ जून सन् १९५५—गाजीपुर में नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में कार्यकर्ता सम्मेलन।

१५ से २२ जुलाई सन् १९५५—जयपुर शिविर; डाक्टर लोहिया के विरुद्ध अनुशासन।

अन्तिम सप्ताह दिसम्बर सन् १९५५—प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का गया अधिवेशन; नया नीति—वक्तव्य स्वीकृत।

३ जनवरी सन् १९५६—स्वास्थ्य लाभ के लिये नरेन्द्रदेवजी का परन्दुराई को प्रस्थान।

११-१२ फरवरी सन् १९५६—कोयम्बटूर मे प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति की बैठक।

१३ फरवरी १९५६—परेन्दुराई में राष्ट्रीय कार्यसमिति की बैठक—नरेन्द्रदेवजी को तीन मास की छुट्टी।

१९ फरवरी १९५६—नरेन्द्रदेवजी का इरोड मे निधन।

२० फरवरी १९५६ मैं नरेन्द्रदेवजी का अन्तिम संस्कार

१. सामाजिक वातावरण

विप्लव के परिणाम

सन् १८५७ के विप्लव की विफलता ने सामन्तशाही की रीढ़ तोड़ दी। उसके लिये साम्राज्यशाही से संघर्ष असम्भव हो गया। विरोधी सामन्तों की जागीरें छीनकर साम्राज्यशाही के पिट्ठुओं को दे दी गयीं और उन्हें साम्राज्यशाही का अंग बना लिया गया। ब्रिटिश साम्राज्यशाही ने रियासतों के राजाओं और नवाबों पर भी अपना प्रभुत्व दृढ़ कर, इनको भी अपनी कठपुतली बना लिया। इस गठबन्धन के बाद, आजादी के संघर्ष का नेतृत्व मध्यम श्रेणी के शिक्षितों को वहन करना पड़ा।

कांग्रेस

नव-जागृति के अग्रदूत राममोहन राय ने विप्लव से तीस वर्ष पहले ही बंगाल के नवयुवकों में उदारवादी विचारों का प्रसार प्रारम्भ कर दिया था और विप्लव से कुछ दिन पहले ही राष्ट्रपिता दादाभाई नौरोजी ने देश के नवयुवकों को उनके जनतान्त्रिक उत्तरदायित्व के लिये तैयार करना शुरू कर दिया था। उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे चरण के अन्त तक शिक्षितों में इतनी शक्ति पैदा हो गयी थी कि वे भिन्न-भिन्न प्रान्तों में राजनीतिक संस्थाएँ बनाकर साम्राज्यशाही की आलोचना और शासन में उदारवादी सुधार की माँग कर सके। जहाँ बहुत से शिक्षित नौकरशाही का अंग बन साम्राज्यशाही को पुष्ट करते हुए अपना जीवन निर्वाह करते थे, वहाँ कतिपय शिक्षितों ने प्रान्तीय संगठनों द्वारा काम करते-करते अन्त में सन् १८८५ में सारे देश की एक राजनीतिक संस्था 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की बुनियाद डाली।

उदारवादी राष्ट्रीयता और राजनीतिक वैधानिकता इस आन्दोलन के आधार थे। सब वर्गों, सम्प्रदायों और प्रान्तों से सम्बद्ध भारतीयों को एक सूत्र में बाँधना, उदारवादी विचारों का प्रसार करना, जनतान्त्रिक

व्यापक देशहित के आधार पर आर्थिक और सांस्कृतिक निर्माण के लिये प्रयत्न करना इस आन्दोलन के प्रमुख लक्ष्य थे। परन्तु इस आन्दोलन के प्रायः सभी नेताओं को अंग्रेजों की न्याय-परायणता पर विश्वास था। वे समझते थे कि कानून की पाबन्दी करते हुए वैधानिक आन्दोलन के जरिये ही अंग्रेज-अधिकारियों को अपनी भूल सुधारने और शासन-प्रणाली को उदार बनाने के लिये राजी किया जा सकता है। इस आन्दोलन का कार्यक्षेत्र काफी सीमित था। देश के किसान और मजदूरों का इससे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था। गावों में इसका प्रभाव नगण्य था। छोटे-छोटे नगरों में भी इने-गिने लोग ही इस आन्दोलन में दिलचस्पी लेते थे। इसका आर्थिक कार्यक्रम शोषित वर्गों के संघर्षों की उपेक्षा करते हुए कुछ सामान्य राष्ट्रीय हितों की पुष्टि और वृद्धि पर ही विशेष जोर देता था। कांग्रेस एक ओर भारत सरकार की रेलवे और मुद्रासम्बन्धी नीतियों की कड़ी आलोचना करती थी, फौज के बढ़ते हुए खर्च का कड़ा विरोध करती थी तथा ब्रिटेन को धन-दौलत की बढ़ती हुई निकासी पर अत्यन्त रोष और क्षोभ व्यक्त करती थी, दूसरी ओर वह मध्यम श्रेणी के शिक्षितों के लिये ऊँची-ऊँची सरकारी नौकरियों की मांग करती थी। वह जमींदारों के हित में मालगुजारी के स्थायी बन्दोबस्त पर जोर देती थी और किसानों के हित में मालगुजारी के साथ साथ लगान में कमी के लिये तथा आबपाशी के उचित प्रबन्ध के लिये आग्रह करती थी। वह देश के औद्योगिक विकास की जरूरत पर भी सरकार का ध्यान दिलाती थी। इस आन्दोलन के प्रमुख नेता दादाभाई नौरोजी थे, जिन्हें भारत की धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीयता का पिता कहा जा सकता है। उन्होंने बहुत से शिक्षित नवयुवकों को देशसेवा के लिये अनुप्राणित किया और धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीयता में दीक्षित किया, जिनमें से कुछ ने आगे चलकर इस उदारवादी आन्दोलन का संचालन और नेतृत्व किया।

राममोहनराय

इस उदारवादी आन्दोलन का सूत्रपात राजा राममोहनराय द्वारा हुआ था, जिन्हें गोखले के शब्दों में 'आधुनिक उदारवाद का पिता' कहा जा सकता है।

राजा राममोहन राय की नव-जागृति मूलत. धार्मिक और सांस्कृतिक थी। वे स्वयं धार्मिक पुरुष थे। ईश्वर पर उनकी पूरी आस्था थी और प्रार्थना को ही वे उपासना की सबसे अच्छी विधि समझते थे। वे नैतिक सिद्धान्तों को धर्म का सार समझते थे और मानव के सर्वांगीण विकास के पोषक थे। उनके विचार में 'धार्मिक पवित्रता और लौकिक आनन्द का समन्वय सम्भव और वांछनीय है'। वे तर्क और शास्त्रीय प्रमाण दोनों की मदद से सत्य की खोज करते थे और बुद्धिसंगत शास्त्रीय वाक्य को ही प्रामाणिक समझते थे। वे सतीप्रथा के विरोधी और विधवाविवाह के समर्थक थे और जातिप्रथा के जटिल बन्धनों को राष्ट्रीय भावना के विकास में बाधक समझते थे। मानव-समाज की एकता और स्वतन्त्रता पर उनका अटल विश्वास था। पश्चिमी योरोप की जनतान्त्रिक हलचलों और उदारवादी विचारों का उनपर गहरा प्रभाव था। उनकी उदारवादी जागृति बंगाल में ब्रह्मसमाज के रूप में प्रकट हुई। पर यह मुख्यतः पाश्चात्त्य विद्याओं में शिक्षित व्यक्तियों तक ही सीमित रही। यद्यपि ब्रह्मसमाजी आगे चलकर तीन हिस्सों में बँट गये और उनके पारस्परिक झगड़ों ने ब्रह्मसमाज की प्रगति को भारी धक्का पहुँचाया, पर इस जागृति से अनुप्राणित सज्जनों ने देश की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक प्रगति में योगदान किया और उसका नेतृत्व किया। साहित्यिक क्षेत्र में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर उनमें सर्वश्रेष्ठ थे, जिन्होंने बीसवीं शताब्दी में विश्वविख्याति प्राप्त की। वे आदि-ब्रह्मसमाज के प्रमुख नेता महर्षि देवेन्द्रनाथ जी के सुपुत्र थे। पिता की तरह उनकी भी उपनिषदों पर गहरी आस्था थी। उन्होंने उपनिषदों के ज्ञान के आधार पर आध्यात्मिक मानवता का प्रतिपादन किया, ब्रह्म के रूप में मानव का दर्शन किया, जगत् को ब्रह्ममय महामानव का उपदेश दिया। ज्ञान के साथ साथ भक्ति की भी उनपर गहरी छाप थी। वे सौन्दर्य के उपासक थे, तथा लालित्य और माधुर्य के साधक थे। वे आधुनिक भारत के सबसे बड़े कवि थे और अपनी पुस्तक 'गीताञ्जलि' पर विश्वविख्यात 'नोबेल' पुरस्कार प्राप्त कर उन्होंने अपने तथा अपने देश के लिये अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। वे समाज-सुधार के पूर्ण समर्थक थे। अपनी रचनाओं द्वारा उन्होंने जनता को समाज-सुधार की ओर ही प्रेरित किया

प्रार्थनासमाज

ब्रह्मसमाज बन जाने के कुछ वर्षों बाद महाराष्ट्र में प्रार्थनासमाज के नाम से सामाजिक जागृति का प्रादुर्भाव हुआ। यह जागृति ब्रह्म-समाज से प्रभावित थी, पर महाराष्ट्र के संतों की उदार मानवीय प्रेरणा इसका मूलाधार थी और वह भागवत धर्म से सम्बद्ध थी। ईश्वर पर अटल निष्ठा और व्यापक मानव-प्रेम इस जागृति के मूल मन्त्र थे। ब्रह्मसमाज की तरह प्रार्थनासमाज भी मुख्यतः मध्यम श्रेणी के शिक्षितों की हलचल थी। इसने भी कई प्रतिभाशाली विद्वानों को अपनी ओर आकृष्ट किया जो समाजसुधार के बड़े समर्थक थे और जिन्होंने देश के प्राचीन इतिहास और संस्कृति के ज्ञान की वृद्धि की, एवं विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों में बहुत कार्य किया और बड़ी ख्याति प्राप्त की। इनमें जस्टिस महादेव गोविन्द रानडे प्रमुख थे। रानडे स्वयं एक व्यापक संस्था थे। इन्होंने अनेक नवयुवकों को समाजसेवा में प्रेरित, अनुप्राणित और दीक्षित किया तथा विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों में प्रशंसनीय कार्य किया। उन्होंने जहाँ गोपाल कृष्ण गोखले जैसे प्रतिभाशाली नवयुवक को राजनीतिक नेतृत्व के लिये तैयार किया तथा बहुत से नवयुवकों को देश की औद्योगिक समस्याओं के वैज्ञानिक अध्ययन के लिये प्रेरित किया, वहाँ सोशल कान्फ्रेन्स और औद्योगिक कान्फ्रेन्स के जरिये समाज-सुधारों और औद्योगिक विकास को आगे बढ़ाने की कोशिश की एवं हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय अर्थतन्त्र के कुछ मुख्य सिद्धान्तों को प्रतिपादित कर उसकी बुनयाद डाली।

जस्टिस रानडे का चिन्तन ऐतिहासिक था। उनके विचार में 'गतिशील संसार में परिवर्तन जीवन का लक्षण है और किसी व्यक्ति या समूह के लिये विकास के किसी भी स्तर पर शनैः शनैः पतन और ह्रास की ओर बढ़े वगैर अधिक काल तक स्थायी रहना सम्भव नहीं।' वे विकास के सिद्धान्त को मानते थे और उसके लिये प्रयत्नशील रहना मनुष्य का कर्तव्य समझते थे। वे शास्त्रीय प्रमाणों का आदर करते हुए अन्तरात्मा की पुकार को ही सर्वोच्च प्रमाण मानते थे। यद्यपि वे किसी विदेशी संस्कृति की अधीनता को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे, पर विदेशी होने के कारण ही किसी अच्छे विचार को त्याज्य भी

नहीं समझते थे। सारे संसार के संचित ज्ञान से समुचित लाभ उठाना वे प्रगति के लिये जरूरी समझते थे। ऐतिहासिक सामाजिक विज्ञान के पोषक रानडे इंग्लैण्ड की आर्थिक व्यवस्था से सम्बद्ध आर्थिक सिद्धान्तों को सनातन, अक्षुण्ण और सार्वभौम मानने को तैयार नहीं थे। उनका निश्चित मत था कि सामाजिक विकास के इतिहास में ही सामाजिक एवं आर्थिक नियमों की खोज की जा सकती है, ये विभिन्न देशों में इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न होते हैं। रानडे सिद्धान्त और व्यवहार की एकरूपता पर विश्वास करते थे और दोनों के पार्थक्य के विचार को हानिकर एवं भ्रामक समझते थे। उनके विचार में सिद्धान्त केवल विस्तृत व्यवहार ही था। रानडे जीवन के महत्त्व पर जोर देते थे और जीवन को एकमात्र स्वप्न मानना 'नास्तिकता' समझते थे। रानडे मानवतावादी थे और चाहते थे कि हमारे सब विचार तथा व्यवहार मानव-प्रेम से अनुप्राणित हों, हम अपने जीवन को पवित्र और समाजोपयोगी बनाये तथा अपने समस्त प्रयत्नों द्वारा अपना और समाज का उद्धार एवं विकास करें। वे उदारवादी थे, पर व्यक्तिवाद की बजाय सामाजिक न्याय ही उनके उदारवाद का मूलाधार था। वे कल्याणराज्य के समर्थक थे तथा सामूहिक कल्याण को व्यक्तिगत हितों से कहीं ऊँचा स्थान देते थे। उनके विचार में राज्य एक ऐसी 'राष्ट्रीय संस्था' है जिसका काम उन सब मामलों में राष्ट्रीय आवश्यकताओं की देख-भाल करना है जिनमें व्यक्तिगत और सहकारी प्रयत्न राष्ट्रीय प्रयत्न जैसे लाभप्रद नहीं हो सकते।

आर्यसमाज

दूसरी ओर स्वामी दयानन्द ने वैदिक संस्कृति के पुनरुज्जीवन पर जोर दिया और प्रचलित हिन्दू धर्म को पौराणिक बताकर मूर्तिपूजा आदि बहुतसे धार्मिक कृत्यों और रिवाजों का जोरदार खण्डन किया। आर्यसमाज के रूप में इस आन्दोलन ने पंजाब और उत्तर भारत में धीरे-धीरे काफी जोर पकड़ा और कतिपय निम्न मध्यम जाति के नवयुवकों को विशेष रूप से प्रभावित किया। जहाँ एक ओर इसने जातिगत बन्धनों को ढीला किया, छोटी जातियों के लोगों को आगे

बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया एवं समाज-सुधार के कुछ क्षेत्रों में आगे बढ़ाया ; वहाँ दूसरी ओर धार्मिक कट्टरता और साम्प्रदायिक असहिष्णुता को भी प्रोत्साहित किया।

सनातनधर्मसभा

आर्यसमाजों के जवाब में सनातनधर्मसभाएँ कायम हुई और सनातनधर्म के प्रचार ने भी तेजी पकड़ी। ये दोनों ही वेदों पर आस्था रखते थे, उन्हें अपने धर्म का मूलाधार मानते थे और संस्कृत साहित्य के अध्ययन पर जोर देते थे। प्राचीन भारतीय संस्कृति को संसार की सर्वोत्तम संस्कृति समझते थे, दोनों ही अपने पूर्वजों के गुणगान से थकते नहीं थे तथा धार्मिक नित्य नैमित्तिक कार्यों और संस्कारों को विधिवत् करने पर जोर देते थे। फिर भी अवतारवाद, पुराणों की प्रामाणिकता, मूर्तिपूजा, सामाजिक सुधारवाद आदि विषयों पर दोनों में काफी प्रतिद्वन्द्विता थी। इस प्रतिद्वन्द्विता में बहुतसे समाजसुधारक आर्य-समाज की ओर झुकते थे, पर बहुतसे गतिशील व्यक्तियों को उसकी कट्टरता और रूढिवादी संकीर्णता खटकती थी। उन्हें किसी गतिशील आध्यात्मिक प्रेरणा की खोज थी।

विवेकानन्द और रामतीर्थ

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में यह प्रेरणा रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने प्रदान की। इसी को आगे चलकर अपने ढंग पर स्वामी रामतीर्थ ने पुष्ट किया। दोनों संन्यासी और राजयोग के साधक थे। पर वे ज्ञानयोग और राजयोग के साथ-साथ भक्तियोग और कर्मयोग के महत्त्व को भी स्वीकार करते थे। जीवन के उत्कर्ष के लिए व्यवहार में ज्ञान का अवतरण आवश्यक समझते थे। व्यावहारिक वेदान्त ही उनकी विशिष्ट शिक्षा थी। उसी में वे समाज को दीक्षित करना चाहते थे। उन्होंने संयुक्त राष्ट्र अमरीका आदि देशों का भ्रमण किया और वहाँ अपने भव्य व्यक्तित्व, भारतीय ज्ञान एवं संस्कृति की सारगर्भित व्याख्या से देश के गौरव को बढ़ाया। पर साथ ही साथ वे स्वयं भी पश्चिम की अर्वाचीन उदार चिन्तनधारा तथा प्रगति एवं गतिशीलता से प्रभावित हुए और उन्होंने कतिपय उदारवादी विचारों का व्यावहारिक वेदान्त की व्याख्या में ऐसा समावेश किया

कि वे भारतीय संस्कृति में समरस हो गये और व्यावहारिक वेदान्त के महत्त्वपूर्ण अविच्छन्न अंग बन गये। उनके विचार में वेद किसी विशिष्ट पुस्तक का नाम नहीं है, वह तो 'विभिन्न समयों में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा खोज किये गये आध्यात्मिक नियमों का संचित भंडार है।' वे ज्ञान को मोक्ष के लिए जरूरी समझते थे, भारतीय संस्कृति के धार्मिक और आध्यात्मिक आधार पर जोर देते थे। पर इसके साथ ही साथ पश्चिम के मौलिक ज्ञान से लाभ उठाना और उसका उचित उपयोग करना भी वे राष्ट्र के उत्थान के लिए आवश्यक समझते थे। उनके विचार में 'परा-विद्या और अपरा-विद्या दोनों ही ज्ञान के अंग हैं, दोनों की ओर समुचित ध्यान देना आवश्यक है'। स्वामी विवेकानन्द का विचार था कि 'व्यक्ति का जीवन समष्टि में है, व्यक्ति का आनन्द समष्टि के आनन्द में है, समष्टि से पृथक् व्यक्ति का अस्तित्व अचिन्तनीय है।' वे तो समष्टि से पृथक् व्यक्तिगत मोक्ष के सिद्धान्त को भी अपूर्ण समझते थे। उनके विचार में 'अनन्त समष्टि की ओर धीरे-धीरे बढ़ना, उसके साथ गाढ़ सहानुभूति और अभेदता की भावना बराबर बनाये रखना, उसके आनन्द में आनन्दित होना और उसके कष्टों में व्यथित होना ही व्यक्ति का एकमात्र कर्तव्य है'। उनका यह भी विचार था कि 'जिन देवताओं की हमें सबसे पहले पूजा करनी है वे हैं हमारे देशवासी।' स्वामी रामतीर्थजी का भी विचार था कि 'कोई मनुष्य उस समय तक सर्वरूप परमात्मा के साथ अपनी अभेदता कदापि अनुभव नहीं कर सकता, जब तक समस्त राष्ट्र के साथ अभेदता उसके रोम रोम में जोश न मारने लगे। उनका कहना था कि 'राष्ट्र-हित की वृद्धि के लिये प्रयत्न करना ही आधिदैविक शक्तियों अर्थात् देवताओं की आराधना करना है।' वे चाहते थे कि 'सारी मातृभूमि को देवीरूप समझा जाय और उसकी प्रत्येक आंशिक विभूति हमारे अन्तर में सारे भारतवर्ष की भक्ति भर दे।' उनके विचार में 'पूर्ण जनतान्त्रिक शासन, समता, विदेशी शासन से मुक्ति, संग्रह की भावना से दूर रहना, समस्त साधारण अधिकार को दूर फेंकना, बड़प्पन की शान को ठुकरा देना और छुटपन के हीनभाव को उतार डालना— यही मौलिक क्षेत्र में वेदान्त है।' उनका निश्चित मत था कि 'आगे बढ़नेवाला साहसपूर्ण परिश्रम, काम में आराम, चित्त की शान्ति,

संगठन, समुचित सुधार, गम्भीर और सत्यभावना, तथ्य तथा सत्य भरी कविता, घटनाओं के आधार पर तर्क, जीता-जागता अनुभव, यही सब मिलकर व्यावहारिक वेदान्त बनता है।' स्वामी विवेकानन्दजी का भी यही उपदेश था। स्वामी रामतीर्थजी की धारणा थी कि 'वेदान्त के अनुसार किसी व्यक्तिगत सम्पत्ति पर अधिकार जमाना आन्तरिक निजस्वरूप आत्मा के विरुद्ध घोर पाप है।' दोनों ही धर्म पर अटल निष्ठा रखते हुए संकीर्ण साम्प्रदायिकता, धार्मिक कट्टरता, जटिल जातीय बन्धनों और सामाजिक असमानताओं के विरोधी तथा सार्वभौमिकता, समान स्वतन्त्रता, विवेक, गुणग्राहकता, गतिशीलता और निर्भीकता के समर्थक थे। उनका कहना था कि 'मत-मतान्तरों की साम्प्रदायिकता ने मनुष्य के मनुष्यत्व को मेघाच्छादित कर डाला है और उनके सर्वसामान्य स्वदेशाभिमान को ग्रहण लगाकर ग्रस लिया है।' उनका निश्चित मत था कि 'राष्ट्र की अभिवृद्धि के लिये जाति-पांति के कठोर बन्धनों को ढीला करने और तीक्ष्ण जातीय भेद-भाव की कट्टरता को राष्ट्रीय सहानुभूति से दबा देने की आवश्यकता है'। वे चाहते थे कि उनके देशवासी दीन-हीन भावना से मुक्त हों, अपनी आध्यात्मिक शक्ति का अनुभव करें, अपने ही को 'अपने भाग्य का विधाता' समझें। सच्चा काम ही आराम समझें, निष्काम भाव से 'सम्पूर्ण भारत की सेवा में तत्पर' रहते हुए देश का निर्माण करें तथा अपने जीवन को ऊँचा उठायें।

वैधानिक व्यवस्था

इस तरह सन् १८५७ के विप्लव के बाद पैंतीस-चालीस वर्षों में मध्यम श्रेणी के कतिपय व्यक्तियों ने देश को राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में किसी हद तक आगे बढ़ाया। पर सन् १८९२ तक देश की राजव्यवस्था में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। विप्लव के बाद ब्रिटिश पार्लियामेंट ने द्विविध शासन को खत्म कर राज्य के प्रबन्ध का सारा अधिकार और भार ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को सौंप दिया और उसने अगले पच्चीस-तीस वर्षों में अधिकारों का इतना केन्द्रीकरण कर दिया कि प्रान्तीय सरकारों को केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति के बिना एवं केन्द्रीय सरकार को ब्रिटेन के भारत-मन्त्री की स्वीकृति के बिना कोई काम करना

भी असम्भव हो गया। सन् १९६१ की एक व्यवस्था के अनुसार अधिनियम बनाने के अवसर पर गवर्नर जनरल और गवर्नर की कौंसिलों में सरकार द्वारा सरकारी अफसरों के साथ गैर-सरकारी व्यक्तियों को भी अतिरिक्त सदस्य मनोनीत किया जाता था। पर इनमें से अधिकांश गैरसरकारी सदस्य सरकार के हाथ की कठपुतली जैसे ही थे। इनकी संख्या भी इतनी कम थी कि वे चाहते भी तो अधिनियम की रूपरेखा में कोई खास तबदीली नहीं कर पाते। धीरे-धीरे भारत-मन्त्री ने केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के अधिनियम-सम्बन्धी अधिकारों पर प्रशासनीय आज्ञाओं के जरिये ऐसे प्रतिबन्ध लगा दिये कि भारत-मन्त्री की स्वीकृति के बिना उनके लिये कौंसिलों मे किसी विधेयक को पेश करना या उसमें किसी महत्त्वपूर्ण संशोधन को स्वीकार करना तक असम्भव हो गया। देश की शासन-व्यवस्था इस तरह ब्रिटिश साम्राज्यशाही की नौकरशाही के फौलादी शिकंजे में जकड़ी हुई थी। साम्राज्यशाही के प्रशासनिक शिकंजे से भी अधिक मजबूत और भयानक साम्राज्यशाही का फौजी शिकंजा था। सन् १८५७ के विप्लव के बाद फौजी व्यवस्था में ऐसे परिवर्तन कर दिये गये कि भारतीय सिपाहियों के लिये आपस में मिलकर किसी प्रकार की बगावत करना सम्भव ही न हो। तोपखाने में हिन्दुस्तानी सिपाहियों की भरती बन्द कर दी गयी, हिन्दुस्तानी सिपाहियों की पल्टनें जाति, प्रान्त और मजहब के आधार पर संगठित की गयीं, फौज में गोरों की संख्या बढ़ा दी गयी और बड़े बड़े ओहदे गोरे अफसरों के लिये सुरक्षित रखे गये।

कांग्रेस की मांग पर सन् १८६१ के इंडियन कौंसिल एक्ट में पार्लियामेंट ने सन् १८९२ में कुछ महत्त्वपूर्ण संशोधन किये। नये अधिनियम के जरिये कौंसिलों के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गयी और गैरसरकारी अतिरिक्त सदस्यों में से लगभग आधे निर्वाचन के आधार पर मनोनीत होने लगे। इन निर्वाचनों की प्रथा नितान्त परोक्ष थी। एक तो निर्वाचित व्यक्ति गवर्नर या गवर्नरजनरल द्वारा मनोनीत किये जाने पर अतिरिक्त सदस्य बन सकते थे, दूसरे जनता को स्वयं निर्वाचन करने का अधिकार नहीं था। जनता की ओर से केन्द्रीय कौंसिल के लिये प्रान्तीय कौंसिल के गैरसरकारी अतिरिक्त सदस्य, तथा प्रान्तीय कौंसिल के लिये नगरपालिकाओं और जिला बोर्डों के

गैरसरकारी सदस्य चुनाव करते थे। कुछ विशिष्ट हितों की संस्थाओं को भी अतिरिक्त सदस्यों के लिये कुछ व्यक्तियों को चुनने का अधिकार दिया गया था। इस अधिनियम के जरिये इन बृहद् कौंसिलों के सदस्यों को सार्वजनिक मामलों की जानकारी के लिये प्रश्न पूछने और बजट पर आम बहस करने के अधिकार दे दिये गये थे। कांग्रेस इन सुधारों से सन्तुष्ट नहीं थी, पर इनका पूरा पूरा प्रयोग करने के पक्ष में थी। इसीलिये कांग्रेस के नेताओं ने मौका मिलते ही अतिरिक्त सदस्यों की हैसियत से इन कौंसिलों के जरिये देश की सेवा करने की चेष्टा की।

संयुक्त प्रान्त

संयुक्त प्रान्त की दशा बम्बई, मद्रास और बंगाल प्रदेशों से गिरी हुई थी। सन् १८५७ के विद्रोह की विफलता ने संयुक्तप्रान्त की रीढ़ तोड़ दी और उसके बाद इन तीनों प्रदेशों की तुलना में संयुक्त प्रान्त में राजनीतिक चेतना बहुत कम हो गयी। जहाँ बम्बई और मद्रास प्रदेशों का शासन एक्जीक्यूटिव कौंसिल के सहयोग से गवर्नर करता था, वहाँ संयुक्तप्रान्त का प्रबन्ध बिना किसी एक्जीक्यूटिव कौंसिल के लेफटिनेन्ट गवर्नर करता था। जहाँ बंगाल, बम्बई और मद्रास में अधिनियम बनाने वाली कौंसिलों का संगठन सन् १८६२ में ही हो गया था, वहाँ संयुक्त प्रान्त में इस कौंसिल का संगठन भी सन् १८८६ में हुआ और सन् १८९२ तक इस कौंसिल ने संयुक्त प्रान्त के लिये कोई महत्त्वपूर्ण अधिनियम पास नहीं किया था। लार्ड लिटन और लार्ड रिपन के प्रस्तावों के अनुसार बम्बई, मद्रास और बंगाल की तरह संयुक्त प्रान्त में भी जिला बोर्ड और म्यूनिसिपल कमेटियाँ बन गयी थीं, पर जिला अधिकारी ही इन सबके अध्यक्ष थे और ये सब बहुत हद तक इन अधिकारियों के हाथ की निर्जीव कठपुतलियाँ थी। फिर भी देश के कई दूसरे प्रान्तों और अंचलों की तुलना में संयुक्त प्रान्त की दशा अच्छी थी। सन् १८८८ में कांग्रेस का चौथा वार्षिक अधिवेशन प्रयाग में हुआ था। सार्वजनिक कामों में इस प्रान्त का चौथा नम्बर समझा जाता था।

आर्थिक परिस्थिति

सन् १८५७ के विप्लव से पहले ही ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने

एक सौ वर्ष की आर्थिक गतिविधि के जरिये देश की आर्थिक व्यवस्था को काफी छिन्नभिन्न कर दिया था। बहुतसे पुराने उद्योग-धन्धे नष्टप्राय हो गये थे, औद्योगिक पदार्थों का निर्यात बहुत कम हो गया था। सारा देश बहुत हद तक कृषिप्रधान बन गया था। देश के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की भूमि-व्यवस्थाएं लाद दी गयी थीं। इन व्यवस्थाओं को लागू करते समय खेतिहर किसानों और मजदूरों के हितों की नितान्त उपेक्षा की गयी थी। देश के एक बहुत बड़े हिस्से में किसानों को जमींदारों के भयंकर शोषण और दमन का शिकार बना दिया गया था।

विप्लव के बाद भी अंग्रेजी सरकार ने देश की भूमि-व्यवस्थाओं को किसी सामाजिक आधार पर सुसंगठित करने की कोई जरूरत महसूस नहीं की। लगभग पचीस वर्ष के बाद किसानों के हितों के संरक्षण की ओर कुछ ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम बीस वर्षों में तीन-चार अधिनियम जरूर बनाये गये, पर वे किसानों के हितों का संरक्षण करने में विशेष सफल नहीं हुए। किसान जमींदारों के जब्र और जुल्म से बराबर सताये जाते रहे। मुक्त व्यापार के सिद्धान्त के नाम पर कृषि-विकास और औद्योगिक विकास दोनों की उपेक्षा होती रही। पुराने उद्योग-धन्धों का ह्रास जारी रहा, नये उद्योग-धन्धों का विकास भी दो-चार केन्द्रों तक ही सीमित रहा। समुचित संरक्षण और सरकारी सहायता के बगैर इन नये उद्योग-धन्धों का विकास बड़ी धीमी गति से ही सम्भव हो सका। खेती के जरिये जीवन निर्वाह करनेवाले कुटुम्बों की और लोगों की संख्या बढ़ती चली गयी। गतिविहीन आर्थिक व्यवस्था के कारण अधिकांश जनता के जीवन-स्तर में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। बहुतों की दशा तो सुधरने की बजाय बिगड़ गयी। दूषित भूमि-व्यवस्था से त्रस्त किसानों के लिये शोषण और दमन सहन करना कठिन हो रहा था। पर वे नेतृत्वहीन और संगठन-विहीन असहाय कुछ कर नहीं पाते थे। कभी कभी कुछ स्थानों पर थोड़ा बहुत नेतृत्व मिल जाने पर किसानों का रोष विद्रोह का रूप धारण कर लेता था, पर यह विद्रोह भी व्यापक संगठन के अभाव के कारण व्यापक प्रभाव नहीं डाल पाता था और सफलता के कगार पर पहुँचने के पहले ही आसानी से दबा दिया जाता था।

दशा

इस तरह उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में जहाँ सारे देश पर ब्रिटिश साम्राज्यशाही का बोल-बाला था, देश की श्रमिक जनता—किसान, मजदूर और कारीगर—असहाय, असंगठित और दीन-हीन अवस्था में किसी तरह अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे, राजा और जमींदार ब्रिटिश साम्राज्यशाही के पिछलग्गू की हैसियत से आदर्शहीन ऐश की जिन्दगी बसर कर रहे थे, सारे सामाजिक जीवन पर पुरानी जीर्ण परम्पराओं और अन्धविश्वासों की छाप थी; वहां कतिपय शिक्षित समाजसेवियों के प्रयास से पुनर्जागरण की ज्योति फैलने लगी थी, सामाजिक और सांस्कृतिक सुधार और विकास का काम शुरू हो गया था, नये मानव-मूल्यों के प्रति आस्था बढ़ने लगी थी और कांग्रेस के तत्त्वावधान में उदार राजनीतिक चेतना ने संगठित रूप भी धारण कर लिया था।

२. बाल्यकाल और विद्यार्थी-जीवन

प्रारम्भिक जीवन

ऐसी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थिति में ३१ अक्टूबर, सन् १८८९ अर्थात् कार्तिक शुक्ल ८, संवत् १९४६ वि० को एक मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी परिवार में नरेन्द्रदेव ने जन्म लिया। उनके पूर्वज स्यालकोट के निवासी थे। उनके जन्म के समय उनके दादा श्री कुंजबिहारीलाल अवध के प्रसिद्ध नगर फैजाबाद में बर्तनों का कारोबार करते थे और पिता श्री बलदेवप्रसाद सीतापुर में अपने चाचा श्री सोहनलाल के शिष्य मुंशी मुरलीधर के साथ वकालत करते थे। दोनों सगे भाई की तरह रहते थे। दोनों की आमदनी और खर्च एक ही जगह से होते थे। मुंशी मुरलीधर को कोई सन्तान नहीं थी। वे अपने भतीजे और नरेन्द्रदेव के बड़े भाई लालजी को पुत्र के समान मानते थे। नरेन्द्रदेवजी के जन्म से लगभग दो वर्ष बाद उनके दादा की मृत्यु हो गयी और उनके पिता सीतापुर से फैजाबाद चले गये और वहीं वकालत करने लगे।

बाबू बलदेवप्रसाद प्रभावशाली वकील थे। उन्होंने वकालत में काफी नाम और धन कमाया, पर इस समृद्धि और प्रसिद्धि ने उनके जीवन में अहंकार की वृद्धि नहीं की। उनका सनातन धर्म में गाढ़ विश्वास था। जब वे सीतापुर में थे तभी उनकी धार्मिक प्रवृत्ति शुरू हो गयी थी। किसी संन्यासी के प्रभाव में आने से ऐसा हुआ था। वे बहुत ही सात्त्विक वृत्ति के थे। वेदान्त में उनकी बहुत अभिरुचि थी और इस शास्त्र का उनको अच्छा ज्ञान था। वे सदा संन्यासियों का सत्संग किया करते थे। जिस समय उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी उस समय फारसी का चलन था, किन्तु अपनी संस्कृति और धर्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिये उन्होंने फारसी के साथ-साथ संस्कृत का भी अभ्यास किया था। धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन में उनकी रुचि थी, पर वे कांग्रेस और सोशल कान्फ्रेंस के कामों में भी थोड़ी-बहुत दिलचस्पी लेते थे। उनके पिता सनातनधर्मी थे उन्होंने फैजाबाद में

कायम की थी। नरेन्द्रदेवजी अपने एक अप्रकाशित संस्मरण में लिखते हैं कि 'इन दिनों सनातन धर्म और आर्यसमाज में बहुत शास्त्रार्थ होते थे। आर्यसमाजी पण्डित मूर्तिपूजा, अवतार और पुराणों की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में सनातन धर्म की कड़ी आलोचना करते थे, दिल दुखाने-वाले कटु शब्दों का प्रयोग करते थे'। उनके पिता को आर्यसमाजियों का यह व्यवहार बहुत कष्ट देता था और सनातनधर्मी वातावरण में पलने के कारण नरेन्द्रदेव में भी आर्यसमाज के प्रति विद्वेष की भावना पैदा हो गयी थी।

बाबू बलदेवप्रसादजी अपनी आमदनी का एक बड़ा भाग विद्वानों और साधु-सन्तों की सेवा, आतिथ्य सत्कार, विद्यार्थियों की सहायता तथा धर्म के दूसरे कामों में लगाते थे। अयोध्या में उन्होंने एक ब्रह्मचर्य-आश्रम खोला था, जिसमें संस्कृत की निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। उन्हें मकान बनाने, बाग लगाने, अच्छी अच्छी पुस्तकों के संग्रह करने तथा छोटी छोटी पुस्तकें लिखने का भी शौक था। बालकों के लिये उन्होंने अंग्रेजी, हिन्दी और फारसी में पुस्तकें लिखी थीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने कई संग्रह-ग्रन्थ भी लिखे थे और एक छोटा-सा पुस्तकालय भी बना लिया था।

नरेन्द्रदेव चार भाई और दो बहनें थीं। वह अपने पिता के दूसरे पुत्र थे। उनके एक भाई सुरेन्द्रदेवजी की, जो बचपन में ब्रजवासीलाल के नाम से प्रसिद्ध थे, नौजवानी में ही मृत्यु हो गयी। बाकी दो भाइयों ने अपने जमाने में अपने अपने काम में बहुत ख्याति प्राप्त की। उनके बड़े भाई श्री महेन्द्रदेव, जो लालजी के नाम से प्रसिद्ध थे, फैजाबाद के नामी वकील माने जाते थे और उनके सबसे छोटे भाई डाक्टर योगेन्द्रदेव, जो बचपन में पुरुषोत्तमलाल के नाम से विख्यात थे, फैजाबाद के नामी डाक्टर थे। वे गरीबों पर विशेष दया करते थे, उनका मुफ्त इलाज करने में उन्हें बड़ा सन्तोष होता था।

नरेन्द्रदेव पर उनके पिता का विशेष स्नेह था। वह उनके साथ कचहरी करीब करीब रोज ही चले जाते थे। पिताजी उन्हें कभी-कभी अपने साथ बाहर भी ले जाते थे। पिताजी के स्नेह और चरित्र का नरेन्द्रदेव के जीवन पर गहरा असर पड़ा उनके पिता की शिक्षा भी

कि नौकरों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाय। नरेन्द्रदेवजी ने इस शिक्षा का सदा पालन किया। पिताजी का आदेश था कि सदा सत्य ही बोलना चाहिए। नरेन्द्रदेव ने इस आदेश का भी यथाशक्य पालन किया। इसकी उपेक्षा हो जाने पर उन्हें बड़ा संताप होता था।

नरेन्द्रदेव का दस वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। उसके बाद वह पिताजी के साथ नित्य संध्या, वन्दना और भगवद्‌गीता का पाठ करते थे। उन्हें एक समय समग्र रुद्री और गीता कंठस्थ थी। एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण से उन्होंने सस्वर वेदपाठ की शिक्षा भी प्राप्त की। उन्होंने बचपन में ही तुलसीकृत रामायण, हिन्दी महाभारत और सूरसागर के साथ साथ अमरकोश और लघुकौमुदी का अध्ययन कर लिया था। इस तरह उन्होंने पिताजी के सम्पर्क तथा उपदेश से सदाचार का पाठ पढ़ा और भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रति निष्ठा प्राप्त की। सनातन धर्म के वातावरण में पलने के कारण वह आर्यसमाज के प्रभाव से अछूते रहे। पर आगे चलकर दूसरे सांस्कृतिक प्रभावों के कारण वह सनातन धर्म की साम्प्रदायिकता से भी अलग हो गये। उनके जीवन का विकास धार्मिक जीवन की बजाय नैतिक और सांस्कृतिक जीवन के रूप में हुआ।

फैजाबाद में हिन्दू और मुसलमानों के सम्बन्ध अच्छे थे। वे एक दूसरे के उत्सवों और त्योहारों में शामिल होते थे। बहुतसे हिन्दू मुहर्रम के अवसर पर ताजिया रखते और शर्बत पिलाते थे। अवध के पुराने नवाबों का हिन्दुओं के साथ अच्छा व्यवहार था। वे हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं का आदर करते थे और उन्होंने एक साधु को हनुमानगढ़ी, जो पहले एक छोटा किला था, दान में दी थी और मन्दिर को कई गांव भी दिये थे। अच्छे शिया परिवारों में गाय का गोश्त नहीं खाया जाता था। नरेन्द्रदेव के मन पर इस शील और वजहदारी का गहरा प्रभाव था। वह आजीवन साम्प्रदायिकता से दूर रहे और मुसलमानों के साथ वजहदारी का पालन करते रहे। वजहदारी तो उनके शील का अलङ्कार था।

सत्संग

अपने बाल्यकाल में नरेन्द्रदेव जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आये

उनमें पण्डित माधवप्रसाद मिश्र, स्वामी रामतीर्थ और पण्डित मदनमोहन मालवीय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मिश्रजी नरेन्द्रदेवजी के पिता के स्नेही थे और महीनों उनके घर रहा करते थे। मिश्रजी ने बंगला की प्रसिद्ध पुस्तक 'देशेर कथा' का हिन्दी में अनुवाद किया था। वे बंगला भाषा से प्रभावित थे और राष्ट्रीय विचार रखते थे। उन्होंने घर भर के बच्चों का नाम बदला। आचार्यजी का नाम नरेन्द्रदेव रखा जो पहले अविनाशीलाल के नाम से पुकारे जाते थे। नरेन्द्रदेव उनके निकट सम्पर्क में आये और उनसे प्रभावित भी हुए।

पण्डित मदनमोहन मालवीय और स्वामी रामतीर्थ, जिनके दर्शन नरेन्द्रदेव को सन् १९०४ और १९०६ में हुए और जिनके व्यक्तित्व का उनपर प्रभाव पड़ा, भारतीय संस्कृति के दो उज्ज्वल रत्न थे। दोनों की धर्म में गहरी निष्ठा थी। दोनों ही हिन्दू धर्म की मानवीय नैतिकता और मानवकल्याण की भावना से अनुप्राणित थे। धार्मिक पुरुष होते हुए भी मालवीयजी ने कभी स्वर्ग या मोक्ष की कामना नहीं की। वे तो प्रतिदिन श्रीमद् भागवत के उस श्लोक का पाठ किया करते थे जिसमें रन्तिदेवजी ने कहा था कि उन्हें ऋद्धि और सिद्धि नहीं चाहिए, वह तो यही चाहते हैं कि सन्तप्त प्राणियों के ताप से तप्त हो उनके तापों का निवारण करते रहें। मालवीयजी की यही कामना थी कि वे बार बार जन्म लेकर देश की सेवा करें। दरिद्रनारायण की सेवा, भूखे नारायणों की पूजा ही रामतीर्थ का संदेश था। पर दोनों में बहुत कुछ साम्य होते हुए भी उनके कार्यक्षेत्र, दृष्टिकोण और चिन्तन में काफी भेद था। रामतीर्थजी संन्यासी थे, मालवीयजी गृहस्थ थे। अध्यात्म का प्रचार करना, वेदान्त के व्यवहारिक स्वरूप को पुष्ट करना, तथा सांस्कृतिक मूल्यों को विकसित और प्रसारित करना रामतीर्थ का कार्यक्षेत्र था। धार्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक सिद्धान्तों को पुष्ट करते हुए विभिन्न राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का समाधान करना मालवीयजी का कार्यक्षेत्र था। जहां मानवता ही रामतीर्थजी के शील का आधार थी, वहां मानवता के साथ साथ हिन्दू-आचार और कुलपरम्परा का पालन भी मालवीयजी के शील का अंग था। उन्हें हिन्दू धर्म के नैतिक सिद्धान्त और कर्मकाण्ड दोनों प्रिय थे की भावनाओं का आदर करते हुए हिन्दुओं की दशा

सुधारना, उनकी समस्याओं का समाधान करना, उनके हितों की रक्षा करना मालवीयजी के नेतृत्व का विशिष्ट अंग था। अत. उन्हें आजादी के प्रयत्नों में संलग्न रहते हुए भी साम्प्रदायिक झंझटों और झगड़ों में हिस्सा लेना पड़ता था, हिन्दुओं का नेतृत्व करना होता था। पर उनका कहना था कि उन्होंने अपने जीवन में किसी का अहित नहीं चाहा।

नरेन्द्रदेवजी ने अपने संस्मरण में लिखा है कि जब मालवीयजी उनके घर पर आये तब उन्होंने मालवीयजी को भगवद्गीता के कुछ श्लोक सुनाये जिसे सुनकर वे उनके शुद्ध उच्चारण से बहुत प्रसन्न हुए। नरेन्द्र-देवजी ने यह भी लिखा कि मालवीयजी के साथ साथ स्वामी रामतीर्थजी के व्यक्तित्व का भी उनपर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने बताया कि इस समय पण्डित माधवप्रसादजी मिश्र ने स्वामी रामतीर्थजी से कहा कि संन्यासी को किसी सामग्री की क्या आवश्यकता! यह सुनकर रामतीर्थ जी अपना सामान छोड़कर चले गये और पहाड़ से उनकी चिट्ठी आई कि "राम खुश है"।

स्वामी रामतीर्थजी ने सन् १९१० में गंगा में समाधि प्राप्त की। अत नरेन्द्रदेव उनसे फिर नहीं मिल पाये, गो उनके सब ग्रन्थों का उन्होंने बाद में अध्ययन किया। आगे चलकर नरेन्द्रदेवजी का मालवीय जी से काफी सम्पर्क हुआ। नरेन्द्रदेव मालवीयजी की वैधानिकता और साम्प्रदायिकता के विरुद्ध थे। पर उनके व्यक्तित्व के प्रति उनका बड़ा आदर था। मालवीयजी को भी भारत के होनहार सपूत नरेन्द्रदेव के लिये बहुत स्नेह था। सन् १९३२ में दूसरे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के जमाने में नरेन्द्रदेवजी मालवीयजी के अधिक सम्पर्क में आये। मालवीयजी की मदद से उन्होंने डाक्टर बीरबल साहनी आदि सज्जनों से आन्दोलन को चलाने के लिये धन एकत्र किया। सन् १९३७ में मालवीयजी ने विधानसभा के चुनाव में नरेन्द्रदेवजी के समर्थन में एक वक्तव्य वोटरों में बँटवाया और स्वयं फैजाबाद एवं अयोध्या में जाकर भाषण दिये।

गतिविधि

नरेन्द्रदेव की प्रारम्भिक शिक्षा उनके घर पर उन पुस्तकों द्वारा हुई जो उनके पिताजी ने स्वयं बच्चों के लिये लिखी थीं। पिताजी स्वयं

उन्हें प्रतिदिन आध घण्टा पढ़ाते थे। उनके एक मित्र नरेन्द्रदेव को अंग्रेजी पढ़ाते थे। नरेन्द्रदेव के प्रथम गुरु कालीदीन अवस्थी थे जो सब भाई-बहनों को हिन्दी, गणित और भूगोल पढ़ाया करते थे। सन् १९०२ में वह बारह वर्ष की आयु में स्कूल में भर्ती हुए और उन्होंने सन् १९०६ में इन्ट्रेन्स परीक्षा पास की। इस जमाने में नरेन्द्रदेव काफी सौम्य थे और उनकी चमकती आंखे उनकी प्रखर बुद्धि की परिचायक थीं। वह सबसे मित्रवत् व्यवहार करते थे। वह अपने से बड़ों का और गुरुजनों का बहुत आदर करते थे। दूसरों की बुराई में उनका मन नहीं लगता था। वह सायंकाल अपने मित्रों के साथ नदी के किनारे बैठ कर घंटों प्राकृतिक दृश्य देखते रहते। इसी में उनको आनन्द आता था। उनके उस समय के मित्रों का कहना है कि वह बचपन में ही इतने कोमल स्वभाव के थे कि खिलवाड़ में भी किसी पशु-पक्षी को कष्ट नही पहुंचा सकते थे। एक मित्र ने बताया कि जब एक बार उन्होंने पत्थर का एक छोटा टुकड़ा बन्दर की तरफ फेंका तो वह भी इतने हल्के ढंग से कि देखनेवाले हंस पड़े। इसपर नरेन्द्रदेव ने गम्भीर होकर कहा कि क्या उनका काम बन्दर को मारना है ?

नरेन्द्रदेव बचपन में ही कितने सीधे और सच्चे थे इसका पता एक अन्य घटना से भी चलता है। एक दिन कोई सज्जन नरेन्द्रदेव के मामा को पूछते हुए आये। नरेन्द्रदेव ने अन्दर जाकर अपने मामा को खबर दी। मामा ने कहा कि जाकर कह दो कि अन्दर नही हैं। नरेन्द्रदेव ने यह बात ज्यों की त्यों उस सज्जन से कह दी। मामा बहुत नाराज हुए, पर नरेन्द्रदेव यह भी न समझ पाये कि मामा क्यों नाराज हैं !

नरेन्द्रदेव अपनी आदतों में भी बहुत सरल थे। वह कभी कभी ताश खेलते थे। और किसी खेल से उन्हें कोई मतलब नहीं था। उन्होंने अपने संस्मरण में लिखा है कि एक बार शौकिया उन्होंने सिगरेट की डिबिया खरीदी। सिगरेट जलाकर जो पहला कश खींचा तो सर घूमने लगा। इलायची-पान खाने पर तबीयत सम्हली। उन्हें आश्चर्य हुआ कि लोग सिगरेट क्यों पीते हैं ! इसके बाद उन्होंने सिगरेट कभी नहीं छूई। श्वांस का कष्ट कम करने को कभी कभी वे स्ट्रैमोनियम के सिगरेट पी लेते थे, पर उन्हें यह भी अच्छा नहीं लगता था।

उनके संस्मरण से यह भी पता चलता है कि दूसरे बच्चों की तरह

वह भी मुहर्रम के जमाने में ताजियों के साथ हँसते-खेलते कर्बला तक चले जाते थे और अयोध्या में होने वाले मेलों को देखने के लिये भी दूसरे बच्चों के साथ खुशी खुशी जाते थे। रामलीला बच्चों के मनोरंजन का अच्छा साधन था। उसे देखने में वे बड़ी दिलचस्पी लेते थे। नरेन्द्रदेव के संस्मरण से पता चलता है कि उन्होंने बेतालपच्चीसी, सिंहासनबत्तीसी के साथ चन्द्रकान्ता को अठारह बार और चन्द्रकान्ता-संतति को एक बार बड़ी दिलचस्पी के साथ पढ़ा। बाबू देवकीनन्दन खत्री द्वारा लिखित ये दोनों जासूसी उपन्यास उस जमाने में बहुत पढ़े जाते थे। अपने शील के कारण नरेन्द्रदेव ने इनसे अय्यारी करना तो नहीं सीखा, हाँ, दूसरों की अय्यारी समझने की कला जरूर प्राप्त की। नरेन्द्रदेवजी ने अपने एक अप्रकाशित संस्मरण में लिखा है कि अपने पिता के शील और सदाचार तथा दो तीन शिक्षकों के प्रभाव के कारण बचपन में वह सब प्रकार की बुरी सोहबत से बचे रहे और अच्छी आदतें बना पाये। उन्होंने लिखा कि 'अच्छा घर और अच्छे अध्यापक बड़ी नियामत हैं।'

प्रारम्भिक शिक्षा

स्कूल में नरेन्द्रदेव पर दत्तात्रेय भीखाजी रानडे का बहुत प्रभाव पड़ा। वे बहुत योग्य शिक्षक थे और उनके पढ़ाने का ढंग निराला था। मास्टर राधेश्यामजी का भी उनपर अच्छा प्रभाव पड़ा था। जब वह आठवीं कक्षा में थे उस समय उस कक्षा के मास्टर राधेरमण लाल थे। उनके चरित्र का भी नरेन्द्रदेव के जीवन पर प्रभाव था। वे नरेन्द्रदेव से इतने खुश थे कि उन्होंने स्कूल के पुस्तकालय की, जिसके वे अध्यक्ष थे, कुञ्जी नरेन्द्रदेव को दे दी थी और वही किताबें निकाल कर अध्यापकों तथा विद्यार्थियों को देते थे।

नरेन्द्रदेव अपनी कक्षा में सर्वोत्तम रहा करते थे तथा शील और संयम के लिये प्रसिद्ध थे। उनके गुरुजन उनसे बहुत प्रसन्न रहते थे। वे उन्हें आदर्श विद्यार्थी समझते थे। केवल संस्कृत के पण्डित कुछ दिनों के लिये उनसे और उनके साथियों से इसलिये नाराज हो गये थे कि कुछ विद्यार्थियों ने उनके विरुद्ध यह शिकायत कर दी थी कि वे ठीक तौर पर काम नहीं करते। यह अध्यापक सात्त्विक परीक्षा

में एक बड़ा कठिन परचा देकर विद्यार्थियों को परेशान करना चाहते थे। नरेन्द्रदेव इससे दुःखी थे। पर इस क्षोभ में ही उन्हें याद आया कि संस्कृत के अध्यापक महोदय ने पुस्तकालय से दो वर्ष के इन्ट्रेन्स के पर्चे निकलवाये थे। यह समझ कर कि इन्हीं पर्चों से सवाल आयेंगे, नरेन्द्रदेव ने उन पर्चों की नकल करके परीक्षा के एक दिन पहले सब विद्यार्थियों के साथ उन पर्चों के सब सवालों को कर डाला। अनुमान ठीक निकला। सब सवाल उन्हीं में से आये थे। सबने खूब अच्छा पर्चा किया। संस्कृत के अध्यापक ने मजबूर हो, नरेन्द्रदेव को पचास में से छियालीस नम्बर दिये, दूसरों को भी अच्छे नम्बर मिले। कोई भी नाकामयाब नहीं हुआ।

राजनीतिक चेतना

जब नरेन्द्रदेवजी स्कूल में पढ़ते थे, उनके कोई खास राजनीतिक विचार नहीं थे, केवल कांग्रेस के प्रति आदर भाव था। वह अपने पिता के साथ दर्शक के रूप में कांग्रेस के दो अधिवेशनों में भी गये थे। वह सबसे पहले सन् १८९९ में दस वर्ष की अवस्था में कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में गये थे। वहाँ उन्हें रानडे, तिलक और रमेशचन्द्र दत्त के दर्शन हुए, इनके बारे में उनके पिता ने उन्हें बताया कि ये बड़े नेता हैं, इन सबकी इज्जत करना चाहिए। पर उस समय उनके लिये यह अधिवेशन तमाशा ही था। बच्चों की तरह डेलिगेटों का झूठा बिल्ला लगाकर वह दर्शकों के कक्ष में चले गये और शोर मचाने के कारण प्रतिनिधियों द्वारा डांटे जाने पर पंडाल के बाहर भागकर चले आये। सन् १९०५ में वह फिर कांग्रेस का बनारस अधिवेशन देखने गये। यहाँ कांग्रेस के आन्तरिक संघर्ष की कुछ ध्वनि उन्हें उस समय सुनायी पड़ी जब लोकमान्य तिलक ने प्रिंस आफ वेल्स के स्वागत के प्रस्ताव का घोर विरोध किया, पर अन्त में बहुत दबाव पड़ने पर उसे वापस ले लिया।

नरेन्द्रदेव स्वयं बनारस में सेन्ट्रल हिन्दू कालिज में पढ़ना चाहते थे, पर वह अपने साथियों के साथ प्रयाग में म्योर सेन्ट्रल कालिज में दाखिल हो गये। वहाँ नरेन्द्रदेवजी के विचार तेजी से बनने लगे। उस समय बंग-भंग और रूस-जापानयुद्ध के कारण विद्यार्थियों में बहुत जोश था। हिन्दू बोर्डिंग हाउस उग्र विचारों का केन्द्र बन गया था।

वहाँ रात-दिन राजनीतिक चर्चा हुआ करती थी। इस वातावरण में नरेन्द्रदेव गरम दल के विचारों के हो गये। कांग्रेस के पुराने नेतृत्व, उसकी पुरानी नीति-रीति पर से उनका विश्वास बिल्कुल ही उठ गया।

बंग-भंग भारत की राजनीति में एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। उसने अंग्रेजों की न्याय-प्रियता का भंडाफोड़ कर दिया और सिद्ध कर दिया कि न्याय की दुहाई देने से काम नहीं चल सकता, बल्कि अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये किसी न किसी रूप में संघर्ष करना ही होगा। उसी समय जापान ने रूस को युद्ध में पराजित किया था। जापान की इस विजय ने एशिया में एक नयी रूह फूंक दी। एशियावासियों ने पुन अपना आत्मविश्वास प्राप्त किया। उन्हें विश्वास होने लगा कि योरप की साम्राज्यशाही शक्तियों का मुकाबला किया जा सकता है और संघर्ष के जरिये खोये हुये अधिकार प्राप्त किये जा सकते हैं। इन सबके कारण देश में कांग्रेस के पुराने नेतृत्व का प्रभाव घटने लगा। जहाँ कुछ नौजवानों ने रूस के अराजकतावादी विचारों के प्रभाव में आकर आतंक और षडयन्त्र द्वारा क्रान्ति का रास्ता अपनाना शुरू किया, वहाँ दूसरे बहुतसे नवयुवकों को बहिष्कार का रास्ता ठीक जँचा। कांग्रेस में दो दल हो गये। पुराने नेता नरम दलवाले कहे जाने लगे तथा नया दल गरम दल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसके प्रमुख नेता बाल गंगाधर तिलक, विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष और लाला लाजपतराय थे। यह गरम दल कांग्रेस की पुरानी नीति-रीति के विरुद्ध था। उसका निश्चित मत था कि आजादी तर्क और प्रार्थना से प्राप्त नहीं हो सकती, उसके लिये जन-जागृति करनी होगी, आन्दोलन करना होगा, जनशक्ति को संगठित करना होगा। स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा गरम दल के कार्यक्रम के प्रधान अंग थे। स्वराज्य की प्राप्ति उसका लक्ष्य था। उसकी धारणा थी कि अंग्रेजी माल का बहिष्कार अंग्रेजों को जनता की माँग पर ध्यान देने पर मजबूर करेगा। उनका यह भी विचार था कि जनता के सहयोग के बिना विदेशी सरकार देश पर शासन नहीं कर सकती और यदि जनता सरकार का बहिष्कार करने को तैयार हो जाय तो स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है। गरम दल के नेताओं का निश्चित मत था कि निरंकुश शासन-व्यवस्था में वैधानिक आन्दोलन को कानून के दायरे के भीतर नहीं

रखा जा सकता और अनैतिक कानून का सविनय प्रतिरोध उचित और नैतिक है और वैधानिक भी समझा जा सकता है।

कांग्रेस का पुराना नेतृत्व स्वदेशी का सिद्धान्त तो मानने को तैयार था, पर वह बहिष्कार और सविनय प्रतिरोध के सिद्धान्तों को मानने को तैयार नहीं था। वह देश में उत्तरदायी शासन तो स्थापित करना चाहता था, पर वह अपनी राजनीतिक माँग के लिये स्वराज्य शब्द का प्रयोग करने के विरुद्ध था। वह लार्ड कर्जन की नीति और कार्यों से क्षुब्ध तो था, पर आवेश में आकर बहिष्कार और प्रतिरोध का अवलम्बन गलत समझता था।

विचारों के संघर्ष के कारण सन् १९०६ में कांग्रेस टूटती दिखायी देती थी। कांग्रेस के अधिवेशन का कौन अध्यक्ष हो इस बात पर ही गहरा विवाद उठ खड़ा हुआ था। वयोवृद्ध नेता दादाभाई नौरोजी को लन्दन से बुलाकर उन्हें अध्यक्ष का भार सौंप कर संकट का निवारण किया जा सका। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में दोनों विचार-धाराओं के तर्कों से देश की माँग को पुष्ट करते हुए स्वराज्य को जनता का मौलिक अधिकार बताया। उनके व्यापक नेतृत्व के कारण नये दल के कतिपय विचारों का भी कांग्रेस के प्रस्तावों में समावेश हुआ। पर कांग्रेस के अधिवेशन के बाद दादाभाई नौरोजी लन्दन चले गये और उनकी अनुपस्थिति में दोनों दलों के समर्थकों में वाद-विवाद बढ़ता ही गया जिसके कारण सन् १९०७ में कांग्रेस में फूट पड़ गयी।

नरेन्द्रदेव सन् १९०६ में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में गये और वहाँ से लौटने पर उन्होंने स्वदेशी का व्रत लिया और उसे दृढ़ता से पालन किया। माघ-मेले आदि के अवसर पर स्वदेशी पर उन्होंने भाषण भी दिये। उस समय उन्होंने गरम दल के 'वन्दे मातरम्' आदि पत्रों को पढ़ना शुरू किया। दैनिक 'वन्दे मातरम्' के लेख गरम दल से सम्बद्ध नवयुवकों को बहुत प्रभावित करते थे। उनके करीब-करीब सभी लेख नरेन्द्रदेव जी बहुत चाव से पढ़ते थे। श्री अरविन्द घोष के लेखों ने उन्हें विशेष रूप से प्रभावित किया। जब अरविन्द राजनीति से अलग हो पांडेचेरी चले गये, तब भी बहुत अर्से तक नरेन्द्रदेव पर उनका प्रभाव बना रहा। उन्हें आशा थी कि अरविन्द बाबू अपनी

साधना पूरी करके बंगाल लौटेंगे और फिर राजनीति में प्रवेश करेंगे। पर जब वे नहीं लौटे तब उनसे मुंह मोड़ लिया। अरविन्द के सादा जीवन, उनके ओजस्वी विचार और प्राचीन संस्कृति के प्रति उनकी निष्ठा ने नरेन्द्रदेव को उनकी ओर आकृष्ट किया था। पर नरेन्द्रदेव कर्मयोगी अरविन्द के ही भक्त थे, उनका राजयोग उन्हें पसंद नहीं था।

कांग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन से लौटते हुए लोकमान्य तिलक इलाहाबाद आये और यहाँ एक वकील के अहाते में उनका भाषण हुआ जिसका विद्यार्थियों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। नरेन्द्रदेव का कहना था कि लोकमान्य तर्क और युक्ति से काम लेते थे, उनके भाषण में हास्य-रस का पुट भी रहता था, किन्तु वे भावुकता से बड़े दूर थे। तिलकजी के बाद गरम दल के अन्य कई नेता इलाहाबाद आये। श्री विपिनचन्द्र पाल आये; लाला लाजपतराय और हैदर रजा भी आये। नरम दल के कई नेताओं ने भी इलाहाबाद आकर अपने विचारों को भाषणों द्वारा पुष्ट किया। नरम दल के नेताओं में से गोखले ही विद्यार्थियों पर अपना प्रभाव डाल सके। उनके कई व्याख्यान कायस्थ पाठशाला में हुए। उनमें से एक व्याख्यान में उन्होंने वैधानिक आन्दोलन की व्याख्या करते हुए कहा कि जहाँ वैधानिकता हमें बगावत करने, किसी विदेशी शक्ति से साजबाज करने, हिंसात्मक कार्रवाईयाँ करने को मना करती है, वहाँ वैधानिक आन्दोलन में सविनय अवज्ञा भी शामिल है, जरूरत पड़ने पर टैक्स देना भी बन्द किया जा सकता है। गोखले ने एक गरीब परिवार में जन्म लेकर बड़े भाई और भाभी की आर्थिक सहायता से बहुत कष्ट सहते हुए शिक्षा प्राप्त की थी। बी ए. की परीक्षा पास करने के कुछ दिन बाद ही उन्होंने समाजसेवा करने का निर्णय किया था। उन्होंने सन् १९०५ में 'सर्वेण्ट आफ इण्डिया सोसायटी' को स्थापित कर उसके पहले सदस्य की हैसियत से निष्काम राष्ट्र सेवा का व्रत लिया था। उनके शील, निष्काम सेवा और कर्तव्यपरायणता से प्रभावित हो गान्धीजी ने उन्हें अपना गुरु माना था। पर अपने नरम विचार और नरम दल से सहयोग के कारण वे नरेन्द्रदेव को अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सके।

इस जमाने में नरेन्द्रदेवजी पर बंगला साहित्य और लाला हरदयाल के विचारों का भी गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने रमेशचन्द्र दत्त और बंकिमचन्द्र चटरजी के उपन्यास बंगला भाषा में ही पढ़े। लाला हरदयाल इस जमाने के एक बड़े प्रतिभाशाली नवयुवक थे। श्री श्यामजी कृष्णजी वर्मा के सम्पर्क से तथा एडविन अर्नाल्ड की प्रसिद्ध पुस्तक 'लाइट आफ एशिया' के अध्ययन से उनके विचारों में इतना क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया था कि वे अपनी छात्रवृत्ति छोड़ कर विलायत से लौट आये और उन्होंने सरकारी विद्यालयों में दी जानेवाली शिक्षाप्रणाली का विरोध करना शुरू कर दिया। हरदयालजी का विश्वास था कि कोई बड़ा काम कठोर साधना के बिना होना सम्भव नहीं। उन्होंने हमारी 'शिक्षासमस्या' पर चौदह लेख पंजाबी भाषा में लिखे। इन लेखों के प्रभाव में आकर कुछ विद्यार्थियों ने पढ़ना छोड़ दिया। उनकी पढ़ाई का प्रबन्ध लाला हरदयाल ने अपने ऊपर ले लिया। नरेन्द्रदेव ने हरदयालजी के प्रभाव में आकर अपना अध्ययन तो नहीं छोड़ा, पर उसे अधिक गम्भीर बना दिया। लाला हरदयाल ने विद्यार्थियों के लिये दो पाठ्यक्रम तैयार किये थे। इन सूचियों की पुस्तकों को नरेन्द्रदेव ने पढ़ना शुरू किया और वे इस तरह इटली के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता मेजनी आदि के विचारों से परिचित एवं प्रभावित हुए। आगे चलकर उन्होंने लाला हरदयाल का 'वन्दे मातरम्', बर्लिन से प्रकाशित होनेवाले 'ललकार' और पेरिस से प्रकाशित होनेवाले 'इण्डियन सोशियालोजिस्ट' आदि क्रान्तिकारी पत्रों को पढ़ा, वीर सावरकर की प्रसिद्ध पुस्तक 'वार आफ इंडिपेंडेंस' भी पढ़ी।

म्योर सेंट्रल कालिज

जब वह म्योर सेंट्रल कालेज में पढ़ते थे तब एक बार चेचक से इतने बीमार हुए कि वह उस वर्ष परीक्षा नहीं दे सके और इस तरह बी० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिये उन्हें प्रयाग में चार वर्ष की बजाय पाँच वर्ष रहना पड़ा। यद्यपि प्रयाग में नरेन्द्रदेव के विचार काफी उग्र हो चले थे, पर उसके कारण उनके व्यवहार और बातचीत में कोई कटुता नहीं आयी थी वह सबसे प्रेम से मिलते, दूसरों

की बात सुनते, अपनी बात कहते। दूसरों की नुकताचीनी करने में वह अपना समय नष्ट करना नहीं चाहते थे। यद्यपि खेल में दक्ष साथियों की वह प्रशंसा करते रहते थे, पर उनको स्वयं उसमें कोई दिलचस्पी नहीं थी।

नरेन्द्रदेव अपने सभी अध्यापकों का आदर करते थे और सदा संयम और शील का पालन करते थे। कहा जाता है कि भारतीय इतिहास के एक अध्यापक प्रोफेसर स्टूअर्ट को भारत के इतिहास का समुचित ज्ञान नहीं था। पर जहाँ उनके दूसरे सहपाठी स्टूअर्ट साहब की बुराई करते रहते थे, नरेन्द्रदेव ऐसा करना उचित नहीं समझते थे।

यद्यपि नरेन्द्रदेव भारत के मध्यकालीन इतिहास के प्राध्यापक प्रोफेसर ब्राउन के ज्ञान के भी प्रशंसक थे, पर जिस विद्वान् प्राध्यापक ने उनको सबसे अधिक आकृष्ट और प्रभावित किया वे थे डाक्टर गङ्गानाथ झा। डाक्टर साहब मिथला के सुप्रसिद्ध पण्डितपरिवार के उज्ज्वल रत्न थे। संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन तथा अध्यापन ही उनके परिवार का विशिष्ट कार्य था। अपने पूर्वजों की तरह डाक्टर साहब भी संस्कृत वाङ्मय की सेवा में ही संलग्न रहे। उन्होंने जहाँ अपनी विद्वत्ता, शील और स्नेह के कारण अपने विद्यार्थियों में आदर एवं प्रतिष्ठा प्राप्त की, वहाँ संस्कृत वाङ्मय की प्रतिष्ठा की अभिवृद्धि में महत्त्वपूर्ण योग देकर उस विषय के प्रमुख विद्वानों में भी गौरव प्राप्त किया। आगे चलकर डाक्टर साहब ने प्रयाग विश्वविद्यालय के उपकुलपति पद को भी कई वर्षों तक बहुत योग्यता और प्रतिभा के साथ सुशोभित किया।

जब नरेन्द्रदेवजी प्रयाग में पढ़ते थे तभी धीरे धीरे उनके कुछ क्रान्तिकारियों से सम्बन्ध होने लगे थे। उस समय कुछ क्रान्तिकारियों का विचार था कि आई० सी० एस० की परीक्षा में बैठकर सरकार के इस सेवाविभाग में शामिल होना चाहिए, ताकि क्रान्ति के समय जिले का शासन सम्हाला जा सके। इससे प्रभावित होकर नरेन्द्रदेव के चार साथी इंगलैण्ड गये। नरेन्द्रदेवजी भी सन् १९११ में इसी उद्देश्य से प्रभावित हो इंगलैण्ड जाना चाहते थे, किन्तु माताजी की आज्ञा न मिलने से नहीं जा सके।

क्वीन्स कालिज

बी०ए० की परीक्षा पास करने के बाद नरेन्द्रदेव पुरातत्त्व पढ़ने काशी चले गये और सन् १९१३ में उन्होंने क्वीन्स कालिज से एम० ए० की परीक्षा पास की। यहाँ उन्होंने डाक्टर वेनिस, पण्डित केशवदेव शास्त्री और प्रोफेसर नारमन से संस्कृत, प्राकृत, पालि तथा पुरातत्त्व की शिक्षा प्राप्त की तथा महामहोपाध्याय श्रीराम शास्त्री और पण्डित जीवननाथ मिश्र से अलङ्कार शास्त्र एवं न्याय का अध्ययन किया। इस काल में नरेन्द्रदेव डाक्टर वेनिस और प्रोफेसर नारमन की योग्यता से विशेष रूप से प्रभावित हुए। जहाँ नारमन साहब के प्रति उनकी 'विशेष श्रद्धा' थी, वहाँ उनके विचार में डाक्टर वेनिस जैसा योग्य शिक्षक मिलना कठिन था। डाक्टर साहब का अध्ययन बहुत व्यापक और गम्भीर था। वह वर्तमान पाश्चात्य दर्शन के साथ साथ प्राचीन यूनानी दर्शन के भी अच्छे ज्ञाता थे। हिन्दुस्तान आने के बाद उन्होंने प्राचीन पद्धति के अनुसार वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन किया और वेदान्त के कतिपय उच्च कोटि के विशिष्ट ग्रन्थों का बहुत निपुणता के साथ अंग्रेजी में अनुवाद भी किया। भारतीय इतिहास के क्षेत्र में भी वे प्राचीन शिलालेख तथा प्राचीन मुद्राविज्ञान आदि विषयों के विशेषज्ञ थे। एम० ए० के द्वितीय वर्ष में नरेन्द्रदेव ने 'डी' ग्रूप लिया था और प्रोफेसर नारमन और डाक्टर वेनिस ही उनके मुख्य अध्यापक थे। उनसे शिक्षा प्राप्त करने के लिये उन्हें प्रातः डाक्टर वेनिस के पास और अपराह्न में भोजन के बाद प्रोफेसर नारमन के पास जाना होता था। दोनों अपने बंगले में ही अध्यापन का काम करते थे।

डाक्टर वेनिस 'इपिग्राफी', 'पेलियोग्राफी' और 'न्यूमेस्मेटिक्स' पढ़ाते थे। उनका भारत सरकार के आरकियालोजी विभाग के उच्चतम अधिकारियों से विशेष परिचय था और जहाँ से उनके पास शिलालेखों की छाप आया करती थी। सामूहिक परिश्रम द्वारा इनका पाठोद्धार शिक्षा का विशेष विषय बन गया था। इसके अलावा प्राचीन भारतीय इतिहास में अशोक, कनिष्क प्रभृति विषयों प लिखे उन सब लेखों पर, जो जर्मन, फ्रांसीसी तथा इटालियन भाषाओं में प्रकाशित होते थे, सामूहिक समीक्षा होती थी ब्राह्मी लिपि कुशाण लिपि,

गुप्त लिपि आदि लिपियों के ऐतिहासिक क्रमविकास पर भी आलोचना चलती रहती थी।

प्रोफेसर नारमन जर्मन, फ्रांसीसी, पालि और प्राकृत पढ़ाते थे। उनके पढ़ाने का ढंग निराला था। वह व्याकरण से अधिक भाषा पर जोर देते थे और पाठ के अध्ययन के साथ साथ व्याकरण का अध्ययन सुगम और उचित समझते थे। प्राकृत के लिए रिचार्ड फिशल (Richard Fiscal) का जर्मन भाषा में लिखा प्राकृत व्याकरण जरूर पढ़ाते थे। पर उसका भी यह ढंग था कि विद्यार्थी इस ग्रन्थ का अंग्रेजी में अनुवाद करके नारमन साहिब को सुनाते थे और वे उसे सुनकर उसमें यथोचित सुधार कर देते थे। एण्डरसन की पालि रीडर नियमित रूप से पढ़ायी जाती थी। पर इसके साथ ही साथ पालि ग्रन्थों का भी समुचित बोध कराया जाता था। प्रोफेसर नारमन, जो उस समय धम्मपद पर बुद्धघोष की टीका 'अट्ठकथा' प्रकाशित कर रहे थे, कभी कभी उसके उद्धरण भी सुनाते थे। इस तरह से नरेन्द्रदेव ने पालि भाषा के साथ साथ बौद्ध धर्म और दर्शन का परिचय भी प्राप्त किया और उनमें इसके विस्तृत अध्ययन की अभिरुचि पैदा हुई।

इस समय नरेन्द्रदेव के विशेष आकर्षण का विषय समाजविज्ञान था। लियो टालस्टाय उनके विशेष ग्रन्थकार थे। उनकी अनेक रचनाओं के साथ साथ उनका 'कन्फेशन्स' नाम का ग्रन्थ नरेन्द्रदेव को विशेष रूप से रुचिकर था। वह उस जमाने में क्रान्तिकारी साहित्य के अध्ययन में भी विशेष अभिरुचि रखते थे। उनके पास विदेश से बहुत सा क्रान्तिकारी साहित्य आता था जिसे वह बड़ी रुचि और उत्साह के साथ पढ़ते थे।

नरेन्द्रदेवजी काफी विनोदप्रिय थे। वह मित्रों से काफी मजाक करते, काफी वादविवाद भी करते, पर मजाक या वादविवाद में कभी बिगड़ते नहीं थे। उन्हें खेल-कूद में इस समय भी कोई विशेष दिलचस्पी नहीं थी। कभी कभी बिना पैसे का ताश खेल लेते थे, पर उसमें भी जीत का कोई विशेष आग्रह नहीं होता था। वह स्वयं ही कभी कभी अपने प्रतिद्वन्द्वी को जिता देते थे।

डाक्टर वेनिस अजमेर कालिज के संस्कृत अध्यापक के कार्य के लिये नरेन्द्रदेव की संस्तुति करने को तैयार थे। पर नरेन्द्रदेवजी यह नौकरी

नहीं करना चाहते थे। उनकी अपनी इच्छा थी कि वह कुछ दिन फ्रांसीसी और जर्मन भाषाओं के अध्ययन तथा ऐतिहासिक गवेषणा का काम करें। गवेषणा के उद्देश्य की सिद्धि के लिये वह पुरातत्त्व विभाग में काम करने को तैयार थे। पर जब उन्हें वहाँ स्थान नहीं मिला, तब वकालत के प्रति अरुचि रखते हुए भी अपने माता-पिता के आग्रह पर यह सोचकर कि वकालत करते हुए राजनीति में भाग लेना सम्भव होगा वकालत पढ़ने प्रयाग चले गये और वहाँ से सन् १९१५ में एल० एल० बी० की परीक्षा पास की।

हिन्दी

वकालत के अध्ययन के लिये प्रयाग जाने के कुछ दिन बाद ही नरेन्द्रदेवजी ने 'हमारा हिन्दी के प्रति कर्तव्य' शीर्षक से एक लेख हिन्दी में लिखा। यह लेख 'मर्यादा' पत्रिका के नवम्बर सन् १९१३ के अंक में प्रकाशित हुआ। इस लेख में अत्यन्त सन्तप्त हृदय से उन्होंने हिन्दी साहित्य की कमजोरियों पर हिन्दीप्रेमियों का ध्यान दिलाते हुए लिखा कि हिन्दी भाषा तभी देशव्यापी हो सकती है कि जब हिन्दीभाषा-भाषी अपनी भाषा के प्रति अपना कर्तव्य ध्यान में रख हिन्दी-साहित्य के भंडार को दूसरी देशी भाषाओं के समान समृद्ध बनाये। उन्होंने लिखा कि 'मिथ्याभिमान से काम नहीं चलेगा...अन्य भाषा-भाषी हमारी भाषा तब तक स्वीकार नहीं करेंगे, जबतक हमारा साहित्य उनकी भाषा के साहित्य से बढ़ा-चढ़ा न हो।' उन्होंने मौलिक ग्रन्थों के लिखने के साथ-साथ दूसरी भाषाओं के उत्तम ग्रन्थों के अनुवाद पर जोर दिया और अपनी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने एवं हिन्दी के भण्डार को भरने के लिये अंग्रेजी पढ़े-लिखे नवयुवकों का आह्वान किया।

हीरालाल खन्ना

अपने विद्यार्थी-जीवन में नरेन्द्रदेवजी बहुत से सहपाठियों, संगी-साथियों के सम्पर्क में आये और उनमें बहुतों से काफी मधुर सम्बन्ध भी हो गये। इन सब में चार व्यक्ति विशेष रूप से उल्लेख-नीय हैं। वे हैं—सर्वश्री हीरालाल खन्ना, शिवप्रसाद गुप्त, कविराज गोपीनाथ, शचीन्द्रनाथ सान्याल।



म्योर सेन्ट्रल कालिज में जिन व्यक्तियों से नरेन्द्रदेव का विशेष स्नेह हो गया था उनमें श्री हीरालाल खन्ना प्रमुख थे। एक गरीब परिवार में उनका जन्म हुआ था। जब वह बच्चे थे, तभी उनके पिता का देहान्त हो गया था। उनकी विधवा माता के लिये अपने बच्चे की देख-रेख करना, उसका पालन-पोषण करना कठिन था। हीरालाल को इस कारण बचपन में काफी कष्टों और कटु अनुभवों का सामना करना पड़ा। पर वह बड़े स्वाभिमानी, साहसी और उद्यमी थे। अपमान सहना उनके लिये असम्भव था, अपमान का प्रतिकार करना उनका सहज स्वभाव था। इस कारण भी उन्हें कभी कभी विशेष कष्टों का सामना करना पड़ता था। पर उन्होंने सब कष्टों का साहस से सामना किया और अपने उद्यम से विभिन्न प्रकार की विघ्नबाधाओं को सहते हुए वे आगे बढ़ते गये और अन्ततोगत्वा म्योर सेन्ट्रल कालिज में पढ़ने के लिये पहुंच गये।

नरेन्द्रदेवजी ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि विचारों के साम्य के कारण उनका और हीरालालजी का स्नेह हुआ। निःसन्देह दोनों मित्र विद्याव्यसनी, हिन्दी के प्रेमी और स्वाधीनता के पुजारी थे। साहस, उत्साह, लगन, आत्माभिमान, समाजसेवा की भावना दोनों के जीवन के मूलाधार थे। अध्ययन के बाद दोनों के कार्यक्षेत्र काफी भिन्न हो गये। सरस्वती की सेवा ही हीरालाल जी का मुख्य काम रह गया, अध्यापन का काम करते करते वह वि० एन० एस० डी० कालिज, कानपुर के प्रिंसिपल बने और उनके परिश्रम और क्षमता से अल्प काल में ही वह प्रान्त के सर्वश्रेष्ठ कालेजों में माना जाने लगा। नरेन्द्रदेवजी ने सरस्वती की आराधना के साथ साथ राष्ट्र के स्वातन्त्र्य संग्राम में सक्रिय भाग लिया तथा समाजवादी आन्दोलन का नेतृत्व किया। पर आजीवन दोनों का पारस्परिक स्नेह बना रहा। वे अन्त तक एक दूसरे को तुम कह कर ही पुकारते रहे। जरूरत पड़ने पर दोनों एक दूसरे को उसके काम में मदद भी देते रहे। कई क्रान्तिकारियों से नरेन्द्रदेव जी ने खन्ना साहब के मकान पर ही भेंट की। नरेन्द्रदेवजी के निधन के बाद उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाना खन्ना साहब की एक मुख्य आकांक्षा थी। इस सम्बन्ध में वे जो कुछ चाहते थे वह नहीं कर पाये, पर उनके परिश्रम से नरेन्द्रदेवजी की पुण्य-स्मृति में दो कालिज कानपुर में जनता की सेवा कर रहे हैं।

शिवप्रसाद गुप्त

श्री शिवप्रसादजी गुप्त काशी के एक धनी मानी परिवार के व्यक्ति थे। इन केपूर्वज आजमगढ़ जिले के अजमतगढ़ नाम के कसबे में रहते थे। उनके छोटे भाई हरप्रसादजी का बचपन में ही स्वर्गवास हो गया था। विद्यार्थी-अवस्था से ही उनपर स्वामी दयानन्द, पण्डित मदनमोहन मालवीय और लाला लाजपतराय का प्रभाव पड़ा था और वे मालवीयजी महाराज के प्रति विशेष श्रद्धा रखते थे। उनके मित्र श्री श्रीप्रकाशजी तो हँसी में उनको मालवीयजी का पुत्र ही कहते थे। इसमें सन्देह नहीं कि मालवीयजी की सेवा-शुश्रूषा, उनकी आवश्यकताओं की देखरेख वे अपना पुनीत कर्तव्य समझ पुत्रवत् करते थे। वे उग्र राष्ट्रवादी विचार के व्यक्ति थे। विचारों में साम्य होने के कारण ही उनका और नरेन्द्रदेवजी का, उस समय जब कि वे दोनों म्योर सेंट्रल कालिज में पढ़ते थे, स्नेह हो गया और इस स्नेह ने आगे चल कर गाढ़ी मैत्री का रूप धारण कर लिया। सन् १६१३-१४ में उन्होंने संसार का भ्रमण किया। वे विशेष रूप से फ्रान्स, ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमरीका और जापान में बहुत दिन तक ठहरे। लौटने पर उनके उग्र राष्ट्रवादी विचारों से क्रुद्ध हो सरकार ने उन्हें ६ महीने माण्डले जेल में रखा। शिवप्रसादजी सचमुच देशभक्त और स्वतन्त्रता संग्राम के वीर सेनानी थे। गान्धीजी के नेतृत्व में वे कई बार जेल गये और आखिर सन् १९३२ में सविनय अवज्ञा आन्दोलन में जेल में फालिज पड़ जाने के बाद अशक्त हो लगभग बारह वर्ष रोग की यातनाओं को सहते रहे। २४ अप्रैल सन् १९४४ को उनका निधन हुआ। विशालहृदय और राष्ट्रसेवा के कारण कांग्रेस में उनका बड़ा मान था। वे सन् १६३० में कांग्रेस की कार्यसमिति के सदस्य और कांग्रेस के कोषाध्यक्ष चुने गये थे। कांग्रेस की बहुतसी महत्त्वपूर्ण बैठकें काशी में बाबू शिवप्रसादजी के निवासस्थान पर ही होती थीं। दान और अतिथिसत्कार उनके विशिष्ट गुण थे। उनके घर पर कोई न कोई अतिथि सदा ही बना रहता था। काशी में आयोजित राष्ट्रीय समारोहों के आतिथ्य का भार बहुधा शिवप्रसादजी पर ही होता था। उनके दान की कोई सीमा नहीं थी। उन्होंने कब किसको कितना दान दिया—इसका पता लगाना भी असम्भव था उनका दान निराडम्बर

और अहंकार से रहित होता था। गुप्तदान ही गुप्तजी के दान की विशेषता थी। शिवप्रसादजी राष्ट्रीय शिक्षा और राष्ट्र भाषा के उपासक समर्थक थे और उन दोनों की प्रगति में उनका विशेष योगदान था। उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा के लिये दस लाख रुपये लगा कर 'काशी-विद्यापीठ' स्थापित किया और कई लाख रुपये से राष्ट्र भाषा की प्रगति के लिए 'ज्ञानमण्डल' प्रेस और दैनिक 'आज' का संचालन किया। संगमरमर पर भारत के विशाल चित्र का निर्माण शिवप्रसादजी की एक दूसरी महत्त्वपूर्ण देन है। शायद इस प्रकार का कोई दूसरा मानचित्र इस देश में नहीं है। इस 'भारत माता मन्दिर' की एक विशेषता यह भी है कि जहां बड़े बड़े मोटे अक्षरों में संगमरमर के पटों पर उन सब कारीगरों के नाम अंकित हैं जिन्होंने मानचित्र के निर्माण में काम किया, वहाँ बाबू शिवप्रसादजी का अपना नाम मन्दिर की सीढ़ियों के छोर में भी नहीं है। यह शिवप्रसादजी के सद्गुणों का परिचायक है। शिवप्रसादजी और नरेन्द्रदेवजी के बड़े मधुर सम्बन्ध थे। नरेन्द्रदेवजी उनसे हँसी-दिल्लगी भी करते, राष्ट्र की समस्याओं पर बातचीत भी करते, साथ साथ राष्ट्र की सेवा भी करते। शिवप्रसादजी के अनुरोध पर ही नरेन्द्रदेवजी ने काशी विद्यापीठ में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया और अपनी प्रतिभा का विकास किया तथा उसके द्वारा समाज की सेवा की।

कविराज गोपीनाथ

कविराज गोपीनाथ जी से तो नरेन्द्रदेव जी का परिचय प्रयाग में ही हो गया था। जब वह वहाँ म्योर सेन्ट्रल कालिज में पढ़ते थे, तभी मार्च सन् १९११ में कविराज जी एम. ए. प्रथम वर्ष की परीक्षा देने काशी से प्रयाग गये और अपने मित्र गंगाप्रसाद गुप्त के माध्यम से नरेन्द्रदेव जी के पास ठहरे। वहाँ कविराज जी बीमार हो गये और नरेन्द्रदेव जी को उनकी विशेष सेवा शुश्रूषा करनी पड़ी। उस समय कविराज जी उनके स्नेह, सेवापरायणता चित्त के औदार्य आदि गुणों से परिचित और प्रभावित हुए। दोनों सहृदय नवयुवक एक दूसरे के भाव, विचार और सहज व्यवहार तथा भारतीय संस्कृति के प्रति अनुराग से इतने आकृष्ट हुए कि यह आकस्मिक परिचय स्नेह में परिपक्व हो गया।

जब नरेन्द्रदेव जी बी. ए. परीक्षा में उत्तीर्ण हो काशी आये तब कविराज जी को अकस्मात् कठिन रोग से आक्रान्त होने के कारण एक वर्ष के लिये अपना अध्ययन छोड़कर चिकित्सा के निमित्त बनारस से बाहर चला जाना पड़ा, पर दूसरे वर्ष दोनों का एम. ए. द्वितीय वर्ष में साथ हो गया। इस समय घनिष्ठता ने गाढ़ी मैत्री का रूप धारण कर लिया जो अन्त तक पूर्ववत् बनी रही। दोनों ही अध्ययनशील तथा भारतीय संस्कृति के अनुरागी थे। पर जहाँ नरेन्द्रदेव जी के लिये भारतीय स्वतन्त्रता-संघर्ष तथा समाजविज्ञान विशेष आकर्षण के विषय थे, वहाँ कविराज गोपीनाथ जी अपने विषय के अतिरिक्त 'मिस्टिसिज्म' तथा 'आगम साहित्य' की ओर विशेष रूप से आकृष्ट थे तथा योरप के भिन्न २ देशों के मध्यकालीन साहित्य के अध्ययन में विशेष अभिरुचि रखते थे। एम. ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद कविराज जी ने कुछ महीने विशिष्ट साधोलाल स्कालर के रूप में पोस्टग्रेजुएट रिसर्च कार्य किया। अप्रैल सन् १९१४ में वाराणसी के संस्कृत कालिज की लाइब्रेरी 'सरस्वतीभवन' में अध्यक्ष का पद ग्रहण किया। सन् १९२४ में वे संस्कृत कालिज के प्रिन्सिपल नियुक्त हुए, जहाँ वे सन् १९३७ तक काम करते रहे। संस्कृत कालिज से अवकाश ग्रहण करने के बाद भी कविराज जी संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन-अध्यापन में संलग्न रहे और उनकी प्रतिभा का उत्तरोत्तर विकास एवं संस्कृत वाङ्मय के विद्वानों में उनकी प्रतिष्ठा तथा मान की अभिवृद्धि होती रही। नरेन्द्रदेव जी भी देश के दूसरे कार्यों में फँसे रहने पर भी संस्कृत वाङ्मय का गम्भीर समीक्षात्मक अध्ययन करते ही रहे।

जहाँ नरेन्द्रदेव जी का बौद्ध दर्शन के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान हुआ, वहाँ कविराज जी का संस्कृत वाङ्मय के अनेक क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण योगदान हुआ। बहुत कुछ साम्य होते हुए भी दोनों की प्रतिभा विभिन्न क्षेत्रों में साकार हुई। जहाँ नरेन्द्रदेवजी की प्रतिभा और कीर्ति अन्याय के विरुद्ध संघर्षों में तथा लोकतन्त्र और समाजवाद पर आधृत मानवीय संस्कृति के विकास और प्रसार में अभिव्यक्त हुई, वहाँ कविराज जी की विशिष्ट अभिरुचि और प्रतिभा तन्त्र और रहस्यवाद के गम्भीर अध्ययन एवं प्रक्रियाओं तथा साधु-सन्तों के सत्संग के रूप में प्रादुर्भूत हुई।

शचीन्द्रनाथ सान्याल

श्री शचीन्द्रनाथ सान्याल से नरेन्द्रदेव जी का परिचय उस समय हुआ जब वे काशी में पुरातत्त्व का अध्ययन कर रहे थे। कुछ दिनों में ही परिचय घनिष्ठ सम्बन्ध में परिपक्क हो गया। इस सम्बन्ध का मूल स्रोत दोनों युवकों के हृदय में निहित देश-कल्याण की उच्चाकांक्षा थी। शचीन्द्रनाथ के ज्येष्ठ पितृव्य काशी के प्रसिद्ध अध्यापक परिकेशव सान्याल थे। शचीन्द्रनाथ जी स्वयं क्रान्तिकारी थे। वे नरेन्द्रदेव जी से क्रान्तिकारी साहित्य ले जाते और उन्हें क्रान्तिकारियों का समाचार सुना जाते। सान्याल जी के माध्यम से ही नरेन्द्रदेव जी का आगे चलकर बहुत से क्रान्तिकारियों से परिचय हुआ। देश के क्रान्तिकारी-संग्राम में सान्याल जी का विशिष्ट नेतृत्व था। उनके जीवन का अधिकांश समय कारागार में ही व्यतीत हुआ। नरेन्द्रदेव जी भी उनके साहस और त्याग के प्रशंसक थे। यद्यपि वे स्वयं क्रान्तिकारी दल में कभी शामिल नहीं हुए, पर वे क्रान्तिकारियों की यथायोग्य सेवा करते रहते थे। नरेन्द्रदेव जी का अपना जीवन क्रान्तिकारियों की उच्चाकांक्षाओं और बलिदान से अनुप्राणित था।

किंकर जी

सम्भवत. शचीन्द्रनाथ सान्याल के माध्यम से ही नरेन्द्रदेव के पिता बाबू बलदेवप्रसाद जी काशी के सुप्रसिद्ध महात्मा शशिभूषण सान्याल के सम्पर्क में आये। ये गृहस्थ होते हुए भी वीतराग परमहंसों के पूजापात्र थे, कई विद्वान् साधु-सन्त उनके अनुरागी भक्त थे और वे स्वयं शिवराम किंकर योगत्रयानन्द के नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने कई विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों की रचना की थी और स्वामी अभेदानन्द, बाबा प्रियानन्द भारती आदि विद्वानों को वेदान्त की शिक्षा दी थी। बाबू बलदेवप्रसाद जी भी उनसे बहुत प्रभावित हुए और उनके अनुरागी भक्त बन गये। इन्हीं के प्रेरणा से बलदेवप्रसादजी ने 'गायत्री मन्त्र भास्कर' नाम से एक ग्रन्थ तैयार किया जो गायत्री के सम्बन्ध में शास्त्रों के आधार पर संकलित सुन्दर रचना थी। एम० ए० परीक्षा पास करने के पश्चात् नरेन्द्रदेव जी ने इसका सम्पादन कर इसे प्रकाशित किया।

३. नागरिक जीवन

वकालत में कोई विशेष अभिरुचि न रखते हुए भी, नरेन्द्रदेवजी ने वकालत की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद लगभग साढ़े पाँच वर्ष फैजाबाद में वकालत की। जनवरी सन् १९२१ में वकालत का काम छोड़ने के बाद भी लगभग छः महीने वे फैजाबाद में सार्वजनिक काम करते रहे। इस प्रकार नरेन्द्रदेवजी इस बार छः वर्ष अपने परिवार के साथ फैजाबाद में रहे।

परिवार

जब नरेन्द्रदेवजी स्कूल के विद्यार्थी थे तभी सन् १९०४ में बिहार के प्रसिद्ध नगर गया में उनका विवाह हुआ था। पर जब वे प्रयाग में वकालत पढ़ते थे तभी उनकी पत्नी का देहावसान हो गया था। फैजाबाद में वकालत प्रारम्भ करने के दो-तीन वर्ष बाद माता-पिता के बहुत आग्रह करने पर वे दूसरे विवाह के लिये तैयार हो गये। उनका दूसरा विवाह आगरे में प्रेमा देवी जी के साथ हुआ। यह बहुत साध्वी सिद्ध हुईं। विवाह के कुछ वर्ष बाद ही पतिदेव धन-सम्पत्ति और सांसारिक सुखों के मोह का परित्याग कर राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े। इसने प्रेमाजी के सारे जीवन का नक्शा ही बदल दिया, सम्पन्न जीवन की सारी आशाओं पर पानी फेर दिया, उन्हें वर्षों पतिदेव का बिछोह सहन करने को बाध्य किया, पतिदेव की यातनाओं के समाचारों को दिल मसोस कर सुनने को मजबूर किया। जब पतिदेव के साथ रहने का अवसर मिला, तब भी उन्हें कष्टमय सादा जीवन ही व्यतीत करना पड़ा। इन सब बातों को प्रेमादेवी जी ने बहुत साहस और धैर्य के साथ सहन किया और अपने पतिदेव के कष्टों से तप्त हृदय को सान्त्वना देते हुए वे सदा उनके हित और सौख्य की भगवान से याचना करती रहीं। वर्षों ईश्वर की आराधना और अपने पतिदेव की सेवा ही उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य रहा। ऐसी साध्वी देवी को भी अन्त में वैधव्य का महान् दुःख सहन करना पड़ा। अब तो



श्रीमती प्रेमादेवी





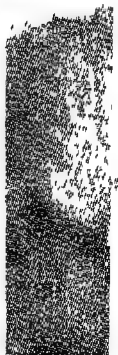


हर्षवर्धन ग्रान

`क नाथ वर्मा आचार्य जी के ज्येष्ठ पुत्र



श्रीमती प्रेमादेवी अपनी पुत्री सरोज
तथा सुष्मा के साथ



आचार्य नरे

ईश्वर की आराधना ही उनका एकमात्र सहारा है। आज कल पूजापाठ में ही उनका सारा दिन बीतता है।

दूसरे विवाह से नरेन्द्रदेव जी के दो पुत्र और तीन पुत्रियाँ हुईं। बड़े पुत्र का नाम अशोक और छोटे का हर्षवर्धन रखा गया। पुत्रियों का नाम सरोज, विद्या और सुषमा रखा गया। नरेन्द्रदेव जी के बड़े पुत्र अशोक से उनके भाई महेन्द्रदेव बड़ा स्नेह करते थे। वह उन्हें उनके लड़के से भी अधिक प्यारा था। महेन्द्रदेवजी बूढ़े होने पर अशोक के हक में अपनी सारी जायदाद की वसीयत करना चाहते थे। पर नरेन्द्रदेव जी ने इसे स्वीकार नहीं किया।

मित्रमण्डली

वकालत के जमाने में नरेन्द्रदेवजी के करीब करीब सभी वकीलों से अच्छे सम्बन्ध थे। वे सर्वश्री परमेश्वरनाथ सप्रू प्रभृति बड़ों का आदर करते और समवयस्क साथियों से स्नेह करते। श्री सुन्दरलालराजे, पण्डित श्रीराम मिश्र, पण्डित कालिका प्रसाद, श्री रामनाथ संगलू, श्री माधवप्रसाद सिंह, श्री महाराज बहादुर धवन, श्री बलभद्र सहाय, पण्डित जयजयराम, श्री शम्भूनाथकौल आदि से तो उनके खास तौर पर अच्छे सम्बन्ध थे। पण्डित श्रीराम मिश्र उनसे कुछ वर्ष बड़े थे और कुछ मुकदमों में नरेन्द्रदेवजी ने उनके साथ जूनियर की हैसियत से काम किया था।

वकीलों के अलावा दूसरे बहुतसे सम्मानित महानुभावों से भी उनके बहुत ही मधुर सम्बन्ध थे। इनमें महाशय केदारनाथ, लछनजी, श्री रघुनाथप्रसाद महरोत्रा, ठाकुर जयदेव सिंह, मास्टर माधवप्रसाद शुक्ल, ठाकुर चण्डीप्रसाद सिंह, श्री विशननारायण सेठ, श्री दयाकृष्ण गंजूर, श्री गिरजाप्रसादमिश्र, विष्णुनारायण अग्रवाल प्रमुख थे।

श्री रघुनाथप्रसाद महरोत्रा तो नरेन्द्रदेवजी के स्कूल के साथी थे। दोनों में बहुत स्नेह था। महरोत्राजी के छोटे भाई श्री सुक्खनलालजी को भी, जो उम्र में दस बारह वर्ष छोटे थे, नरेन्द्रदेवजी बहुत प्यार करते थे। अक्सर तीनों सायंकाल को साथ टहलने जाते और उस समय नरेन्द्रदेवजी सुक्खनलाल को प्रत्यक्ष-विधि से अंग्रेजी के शब्दों का बोध कराते जाते। इस तरह लगभग एक हजार शब्दों का बोध सुक्खनलाल को करा दिया गया।

फैजाबाद के सार्वजनिक जीवन में महाशय केदारनाथजी का विशिष्ट व्यक्तित्व था। वे सदा अपने पास एक चांदी का त्रिशूल रखते और केसरिया रंग के कपड़े पहनते थे। वे सारे जिले में घूम-घूम कर आर्य-समाज का प्रचार करते तथा जनता को स्वामी दयानन्द का सन्देश सुनाते। वे एक प्रभावशाली वक्ता थे। उनकी वाणी में ओज और आकर्षण था। राष्ट्रवादी विचारों के कारण नरेन्द्रदेवजी के साथ उनके घनिष्ठ सम्बन्ध हो गये थे। महाशय केदारनाथजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में काफी आगे बढ़ कर काम किया, सन १९२१ के किसान आन्दोलन में तो उनका काम बहुत ही विशिष्ट और सराहनीय था।

लल्लनजी एक धनी-मानी परिवार के विद्याव्यसनी राष्ट्रसेवी थे। फैजाबाद के राजनीतिक जीवन में उनका ऊँचा स्थान था। उन्होंने गान्धीजी द्वारा संचालित संघर्षों में सक्रिय भाग लिया और कई बार जेल की यातनाएँ सहीं। सन् १९२१ के किसान-आन्दोलन में भी उन्होंने डटकर काम किया। उनसे नरेन्द्रदेवजी के बहुत मधुर और घनिष्ठ सम्बन्ध थे। जब नरेन्द्रदेवजी फैजाबाद में वकालत करते थे तब उन्होंने लल्लनजी से मिलकर हिन्दी में प्रगतिशील साहित्य के प्रकाशन की एक योजना बनायी और 'प्रबुद्ध भारत ग्रन्थावली' नाम से कई पुस्तकें प्रकाशित करायीं।

ठाकुर जयदेवसिंहजी वस्ती जिले के रहने वाले हैं। सन् १९१८-२० में वे फैजाबाद के हिन्दू स्कूल में, जो आजकल मनोहर इण्टर कालिज कहलाता है, अध्यापक थे। यहीं भारतीय संस्कृति के प्रति विशेष अनुराग के कारण नरेन्द्रदेवजी से उनकी गाढ़ी मैत्री हो गयी। दोनों प्रतिदिन सायंकाल साथ-साथ टहलने जाते, प्रतिसप्ताह रामतीर्थ लीग के समारोह में सम्मिलित होते और अन्य बहुतसे अवसरों पर साथ दिखायी देते। छुट्टी के दिन ठाकुर जयदेवसिंहजी नरेन्द्रदेवजी के घर चले जाते और वहीं उनके पुस्तकालय की पुस्तकों और पत्रिकाओं का अध्ययन करते और उनसे बातचीत में समय बिताते। नरेन्द्रदेवजी की प्रेरणा से ही ठाकुर साहब ने अरविन्द घोष के शिक्षासम्बन्धी लेखों का अनुवाद कर उन्हें 'राष्ट्रीय शिक्षा' के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित कराया। दो वर्ष के अनन्तर वे फैजाबाद से चले गये, पर दोनों

का पुराना स्नेह आजीवन बना रहा। ठाकुर जयदेवसिंहजी बड़े गुणी व्यक्ति हैं। दर्शनशास्त्र उनके अध्ययन का विशेष विषय है। पर भारतीय संस्कृति और संगीत में भी उनकी विशेष अभिरुचि है। तीनों का ही उन्हें अच्छा ज्ञान है। जब वे सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल की दसवीं कक्षा के विद्यार्थी थे तब उन्होंने अखिल भारतीय प्रतिद्वन्द्विता में सर्वोत्तम लेख के द्वारा स्वर्णपदक प्राप्त कर श्रीमती ऐनी बेसेन्ट और डाक्टर भगवान्दास का आशीर्वाद और प्रोत्साहन प्राप्त किया था। कई स्थानों में अध्यापन का काम करने के बाद उन्होंने लखीमपुर खीरी जिले में युवराजदत्त कालिज में प्रधानाचार्य का उत्तरदायित्व ग्रहण किया। वे विद्याचरणसम्पन्न प्रधानाचार्य, आदर्श अध्यापक और कुशल प्रबन्धक सिद्ध हुए। उन्होंने कुछ वर्षों देहली में आकाशवाणी के संगीत विभाग के चीफ प्रोड्यूसर का कार्य भी पूर्ण दक्षता से सम्पन्न किया। अब भी ठाकुर जयदेव सिंह का सारा समय अध्ययन में ही बीतता है।

वकालत

नरेन्द्रदेवजी ने थोड़े समय में ही वकालत के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा के कारण बहुत मान प्राप्त कर लिया। कई बार अच्छे-अच्छे नामी वकीलों से मुकाबला करने का मौका पड़ गया। उस समय नरेन्द्रदेवजी ने अपनी योग्यता का परिचय देकर अपने प्रतिद्वन्द्वी प्रसिद्ध वकीलों का आशीर्वाद प्राप्त किया। कहा जाता है कि उस समय फैजाबाद में एक अंग्रेज जज थे जो वकीलों की बहस सुनने से पहले ही फैसला लिख डालते थे और बहस सुनने पर बहुत जरूरत पड़ने पर पहले से लिखे फैसले में आवश्यक संशोधन कर देते थे। जब पहली बार नरेन्द्रदेव उस जज की अदालत में गये तब उनके पिता बलदेवदासजी ने जज से कहा कि उनका छोटा लड़का आता है जरा उसकी बात ध्यान से सुन ली जाय। जब नरेन्द्रदेव ने जज साहिब के सामने बहस प्रारम्भ की तो वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने पहले से लिखे फैसले को फाड़कर दूसरा फैसला लिखना ही उचित समझा। नरेन्द्रदेवजी की वकालत काफी अच्छी चलने लगी थी। अतः आमदनी भी काफी अच्छी हो जाती थी। वे अपनी आमदनी का एक बड़ा हिस्सा समाजसेवा में खर्च कर

देते थे। वे बायोकेमिकल दवाएँ खरीदकर ग़रीब रोगियों को मुफ्त बाँटते थे और बहुतसे विद्यार्थियों को सहायता देते रहते थे।

पुरातत्त्व

नरेन्द्रदेवजी ने 'विज्ञान' पत्रिका में अपने कई विद्वत्तापूर्ण लेख प्रकाशित कराये। इन लेखों में शक संवत्, गुप्त संवत् तथा गुप्त वंश के इतिहास आदि विषयों की विवेचना की गयी थी। इन लेखों के पढ़ने से पता चलता है कि पुरातत्त्व के सम्बन्ध में उनका अध्ययन बहुत गम्भीर, गूढ और विस्तृत था।

विक्रम संवत् के सम्बन्ध में विभिन्न विचारकों के मतों पर विचार करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने लिखा है कि 'इसका सूत्रपात ५८ वर्ष ईसा के पूर्व कार्तिक शुक्ल १ को हुआ'। गो 'इसके प्रभव के सम्बन्ध में हिन्दुओं का मत है कि महाराजा विक्रमादित्य इसके प्रवर्तक हुए', पर वास्तव में 'विक्रमकाल का प्रवर्तक कौन था यह विषय अन्धकार से आच्छादित है'। शक संवत् के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा कि 'इसका प्रभव चैत्र शुक्ल १ सन् ७८ ईसवी को हुआ, प्राचीन काल में इसका प्रयोग शिलालेख तथा ताम्र शासनों में होता था, छठी शताब्दी में गणना के लिये भी इसका प्रयोग होने लगा। भारत के दक्षिण भाग में तथा महानदी के दक्षिण में, इस संवत् का प्रयोग होता था। उत्तरी भारत के कुछ भागों में भी इस संवत् का प्रयोग होता था। ग्यारहवीं शताब्दी में हिन्दुओं का विश्वास था कि इस संवत् का सूत्रपात भी महाराजा विक्रमादित्य ने किया। उस समय जन-समुदाय का यह विश्वास था कि विक्रम ने शकजाति पर जो विजय पायी थी उसी के उपलक्ष्य में उन्होंने इस नवीन संवत् का सूत्रपात किया। परन्तु आधुनिक विश्वास के अनुसार प्रतिष्ठान (पैठन, गोदावरी के तट पर एक स्थान) के राजा शालिवाहन इस काल के प्रवर्तक थे।' नरेन्द्र-देवजी ने यह भी लिखा था कि भारतवर्ष के बाहर भी शक संवत् का प्रयोग हुआ। 'सन् ६२४ ईसवी में कम्बोज (Combodia) में इसका प्रचार हुआ और सन् ७३२ ईसवी में इस काल का अस्तित्व जावा (यव द्वीप) में पाया जाता है, तदनन्तर लंका द्वीप तथा नैपाल में भी इसका प्रचार हुआ।'

संस्कृति का अध्ययन

नरेन्द्रदेवजी के पिता का विचार था कि भारतीय संस्कृति रामायण और महाभारत में केन्द्रित है। हिन्दूकला, काव्य, गाथा, नाटक, मन्दिर आदि सभी इन दो ग्रन्थों पर काफी हद तक आश्रित हैं। वे इन दोनों ग्रन्थों का सम्यक् अध्ययन प्रत्येक भारतीय का पुनीत कर्तव्य समझते थे। उनकी प्रेरणा से आचार्यजी ने वाल्मीकीय रामायण और समग्र महाभारत का संस्कृत में अध्ययन किया और वे उनसे काफी प्रभावित भी हुए। नरेन्द्रदेवजी के विचार में जहाँ वाल्मीकीय रामायण एक 'उत्तम काव्य का प्रतिमान' और काल की दृष्टि से एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है, वहाँ महाभारत 'हमारी प्राचीन संस्कृति का भण्डार है। इसमें प्राचीन आचार-विचार, रीति-नीति, आदर्श, संस्थाओं का इतिहास उपनिबद्ध है। वह दर्पण के समान है जिसमें प्राचीन भारत का जीवन प्रतिबिम्बित होता है।'

इसी काल में लोकमान्य तिलक का 'गीता रहस्य' और अरविन्द घोष के गीता पर निबन्ध प्रकाशित हुए। नरेन्द्रदेवजी ने इन दोनों ग्रन्थों का गूढ अध्ययन किया। वे दोनों को ही उत्कृष्ट ग्रन्थ मानते थे, पर उनके विचार में अरविन्द के निबन्ध अति उत्कृष्ट समझे जा सकते हैं।

नरेन्द्रदेवजी ने अरविन्द जी के 'आर्य' में प्रकाशित दिव्य जीवन सम्बन्धी लेख भी पढ़े, पर उन्हें अरविन्दजी के ये विचार आकृष्ट नहीं कर सके। अरविन्दजी के प्रतिमानस (Super mind) का विचार उन्हें स्वीकार नहीं था, गो उनके मित्र कविराज गोपीनाथ और ठाकुर जयदेवसिंहजी इन विचारों से काफी प्रभावित हुए थे।

नरेन्द्रदेवजी के पिता बलदेवप्रसादजी स्वामी रामतीर्थ के बहुत भक्त थे। सम्भवतः उनकी प्रेरणा से नरेन्द्रदेवजी ने रामतीर्थजी की करीब करीब सभी पुस्तकों, लेखों को पढ़ा और उनके बहुत से विचारों से तथा उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए। वह करीब करीब प्रति सप्ताह रामतीर्थ लीग द्वारा आयोजित सत्संग में जाते थे, जहाँ स्वामीजी के विचारों का पारायण, उनके सिद्धान्तों का विश्लेषण तथा उनकी रचनाओं का गान होता था। नरेन्द्रदेवजी रामतीर्थजी के भजनों की मस्ती

से इतने आकृष्ट थे कि फैजाबाद से चले आने के बाद भी 'रामवर्षा' में संगृहीत भजनों को अवसर मिलने पर सुनते रहते थे। जो भजन उन्हें सबसे अधिक पसन्द था और जिसे वे अपने मित्र ठाकुर जयदेव सिंहजी से उनसे भेंट होने पर अकसर सुनते थे, वह है—

जो दिल को तुम पर मिटा चुके हैं,
मज़ाके-उल्फत उठा चुके हैं।
वह अपनी हस्ती मिटा चुके हैं,
खुदा को खुद ही में पा चुके हैं॥ १॥

न सूये-काबा झुकाते हैं सर,
न जाते हैं बुतकदा के दरपर।
उन्हें हैं दैरो-हरम बराबर,
जो तुमको किबला बना चुके हैं॥ २॥

न हमसे प्यारे! छुड़ाओ दामन,
न देखो बागे-बहारो-रिज़वां।
कब उनको प्यारे हैं हूरोगिल्माँ,
जो तुमको प्यारा बना चुके हैं॥ ३॥

सुना रही है यह दिल की मस्ती,
मिटाके अपना वजूदे-हस्ती।
मरेंगे यारो! तलब में हक की,
जो नामे तालिब लिखा चुके हैं॥ ४॥

न बोल सकते थे कुछ ज़ुबाँ से,
न याद उनको है जिस्मो-जाँ से।
गुजर गये हैं वह हर मकाँ से,
जो उसके कूचे में आ चुके हैं॥ ५॥

गर और अपना भला जो चाहो,
यह राम अपने से कह सुनाओ।
भला रखो या बुरा बनाओ,
तुम्हारे अब हम कहा चुके हैं ६

अकबर इलाहाबादी

नरेन्द्रदेवजी अकबर इलाहाबादी की गजलों में भी काफी दिलचस्पी लेते थे। उनके पास अकबर का पूरा दीवान मौजूद था और वे जब प्रयाग जाते थे तो अकबर साहिब से मिलते थे। एक बार वे अपने मित्र ठाकुर जयदेवसिंहजी को भी अकबर से मिलाने ले गये थे। वे अकबर की गजलों और शेरों को काफी जोश के साथ झूम-झूम कर पढ़ते थे।

अकबर इलाहाबादी पुरानी वजा के खुदापरस्त बुजुर्ग थे। वे आध्यात्मिक उन्नति को ही स्थायी समझते थे, ईश्वर की आराधना को मनुष्य का परम कर्तव्य मानते थे और सांसारिक भोगविलास को दूध में घुला विष समझते थे। वे धर्म पर पूरा विश्वास रखते हुए, ईमान को ही सब से महत्त्वपूर्ण मानते हुए, संकीर्ण साम्प्रदायिक दृष्टिकोण के प्रबल विरोधी थे, साम्प्रदायिक वैमनस्य को देश की उन्नति के लिये घातक समझते थे। वे अफसरों की खुशामद से चिढ़ते थे, और अंग्रेजों की थोथी नकल के कट्टर विरोधी थे। उन्हें अंग्रेजी पढ़े लिखे नौजवानों की शौकीनी, विलायती रंगढंग बिलकुल ही नापसन्द थे और वे इस रंगढंग को एक नयी तहजीब मानने को तैयार नहीं थे। उनकी निश्चित धारणा थी कि जब तक देश पर अंग्रेजों की हकूमत है तब तक हमारे लिये उनके वास्तविक गुण हासिल करना असम्भव है। खुदापरस्ती, हकपरस्ती और खुददारी ही अकबर के कलाम के जौहर थे। आलोचना और व्यंग उसके विशिष्ट गुण थे।

नरेन्द्रदेव और अकबर के दृष्टिकोणों में काफी अन्तर था। नरेन्द्रदेवजी देश के राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन देश की उन्नति के लिये आवश्यक समझते थे। पर वे अकबर की हकपरस्ती और खुददारी से आकृष्ट थे। उनकी शायरी का नैतिक आधार नरेन्द्रदेवजी को बहुत पसन्द था। उनके व्यंग पर भी नरेन्द्रदेवजी लट्टू थे। अकबर की तरह नरेन्द्रदेवजी को भी नेताओं की दुरंगी चालें और अर्ध-शिक्षित नौजवानों की चाल-ढाल बिल्कुल ही नापसन्द थीं।

अकबर के सन्ताप तथा उनकी शायरी के प्रति नरेन्द्रदेवजी के

अनुराग का कुछ कुछ पता नीचे लिखे शेरों से लग सकता है :—

तहजीब के खिलाफ है जो लाये राह पर।
अब शायरी वह है जो उभारे गुनाह पर॥

नई नई लगरही हैं आंचे यह कौम बेकस पिघल रही है
न मशरिकी है न मगरिबी है अजीब सांचे में ढल रही

मिटाते हैं जो वह हमको तो वह अपना काम करते हैं
मुझे हैरत तो उनपर है जो इस मिटने पे मरते हैं॥

नई तालीम के मुरदे तो जिन्दा हैं तमाशों में।
पुरानी वजा के जिन्दे मगर मुरदों से बदतर हैं॥

मुझ पे है तकलीद वाजिब हिन्द के दरबार की।
राय मेरी है वही जो राय है सरकार की॥

जब ऐसी कौम है तो पेशवा भी इसके ऐसे हैं।
मसल सच है कि जैसी रूह है वैसे फरिश्ते हैं॥

दिल में कूवत है कुछ न जान में है।
जिन्दगी अब फकत जबान में है॥

मुअय्यन ही नहीं जिनके उसूल व मारवज ऐ अकबर।
कयामत तक वह सरदारी के काबिल हो नहीं सकते॥

जो देखी हिस्ट्री इस बात पर कामिल यकीं आया।
उसे जीना नहीं आया जिसे मरना नहीं आया॥

शेख की मजलिस में भी मुफिलस की कुछ पुरसिश नहीं
दीन की खातिर से दुनियां को तलब करना पड़ा॥

जबानें मुख्तलिफ भी हों अगर दो हकपरस्तों की।
वहम निभ जाती है नीयत की खूबी काम करती है॥

मिम्बरी पर जंग हो इसमें गऊ का क्या कुसूर।
मुल्क में बदनाम नाहक यह बेचारी हो गयी॥

खुदा ही कि इबादत जिनको हो मकसूद ऐ अकबर।
वह क्यों बाहम लड़ें गो फर्क हो तरजे-इबादत में॥

बढ़ता ही रहा ताअत और मस्जिद में यूं ही बैर।
कुछ खाक में मिलेंगे तो कुछ होंगे जुज्ब गैर।।

हुनर से भी फवायद हमको हासिल हो नहीं सकते।
सबब यह है कि हम आपस में एक दिल हो नहीं सकते।।

मस्जिदें छोड़ के जा बैठे हैं मैखानों में।
वाह क्या जोशे तरक्की है मुसल्मानों में।।

नई तहजीब में दिक्कत ज्यादा तो नहीं होती।
मजाहिब रहते हैं कायम फकत ईमान जाता है।।

थेयटर रात को और दिन में यारों की यह स्पीचे।
दुहाई लाट साहब की मेरा ईमान जाता है।।

नरमदलीय नेताओं का उपहास करते हुए नरेन्द्रदेवजी अकब॰ यह शेर अक्सर सुनाया करते थे :—

'कौम के गम में डिनर खाते हैं अहबाब के साथ।
रंज लीडर को है बहुत पर आराम के साथ'।।

एक शेर जो नरेन्द्रदेवजी अपने मित्र बाबू शिवप्रसादजी 'जिन्होंने काफी दाढी बढ़ा रखी थी, मुस्कराते हुए और हाथों को हि॰ हुए सुनाते थे वह इस प्रकार है—

बढ़ाई है शेख ने दाढ़ी सन की।
पर वह शान कहाँ मौलवी मदन की।।

दूसरा शेर जो वह अक्सर राजनीतिक पुरुषों को सुनाते इस प्रकार है :—

बुद्धू मियां भी हजरते गाँधी के साथ हैं।
गो मुश्तखाक हैं मगर आँधी के साथ हैं।।

क्रान्तिकारी चिन्तन

वकालत के जमाने में भी नरेन्द्रदेवजी अपना क्रान्तिकारी चि॰ और ज्ञान पुष्ट करते रहे। दो बंगाली नवयुवक उनके पास अ॰ आते रहते थे। वे उनको अकेले में ले जाकर उनसे बातें करते थे। ॰ उनके जरिये वे भारत के क्रान्तिकारियों की गतिविधि का परिचय

करते रहते और उन्हें यथासाध्य सहायता देते रहते थे। वे क्रान्तिकारी पत्रों और साहित्य का भी अध्ययन करते रहते थे। उन्होंने सन् १९१९ में रूसी क्रान्ति और मार्क्सवाद का अध्ययन प्रारम्भ किया और दो वर्ष के अन्दर करीब करीब सभी उपलब्ध पुस्तकें पढ़ डालीं। मार्क्सवादी चिन्तनधारा और रूसी क्रान्ति की गति ने उन्हें ऐसा प्रभावित किया कि वे कालान्तर में मार्क्सवादी बन गये और अपने जीवन के बीस बाइस वर्ष समाजवाद की सेवा में, स्वतन्त्र समाजवादी समाज को प्रतिष्ठित करने में उन्होंने लगा दिये।

बाबू बलदेवप्रसादजी ने अपने घर पर एक निजी पुस्तकालय बनाया था। नरेन्द्रदेवजी छुट्टियों में उसकी देखभाल करते रहते थे। फैजाबाद आने के बाद उन्होंने इस पुस्तकालय को प्रगतिशील और क्रान्तिकारी साहित्य और पत्रिकाओं से सुसम्पन्न किया। यह पुस्तकालय, जो 'गायत्री भवन' के नाम से प्रसिद्ध था, प्रगतिशील नवयुवकों का एक अच्छा अध्ययन केन्द्र बन गया था।

नगरपालिका

जब वे फैजाबाद में वकालत करते थे तब जनता के बहुत अनुरोध पर उनके पिता ने फैजाबाद की नगरपालिका की अध्यक्षता स्वीकार की। उस समय अपने पिता के साथ उनके आग्रह पर नरेन्द्रदेवजी सर्वसम्मति से नगरपालिका के सदस्य चुने गये और उन्होंने अपने पिता को नगरपालिका-सम्बन्धी प्रबन्ध में यथोचित सहायता दी।

जिला परिषद्

फैजाबाद छोड़ कर बनारस चले आने के बाद भी नरेन्द्रदेवजी फैजाबाद के सार्वजनिक जीवन में थोड़ी बहुत दिलचस्पी लेते रहते थे। एक बार वे जिला परिषद् के सदस्य चुने गये। उस समय जिला परिषद् के अध्यक्ष श्री कालिकाप्रसाद मिश्र थे जिनसे नरेन्द्रदेवजी के मधुर सम्बन्ध थे। परिषद् के सदस्य की हैसियत से उसकी कई कमेटियों में भी उन्होंने काम किया। पर किसी कमेटी का अध्यक्ष पद उन्होंने कभी स्वीकार नहीं किया। जिन महानुभावों ने उनके साथ परिषद् में

काम किया उनका कहना है कि नरेन्द्रदेवजी सचाई को पसन्द करते थे। अगर कोई कर्मचारी गलती करने पर सच कह देता था तो उसका कसूर माफ करने की सिफारिश करते थे। पर अगर कोई कर्मचारी गलती करने पर झूठ बोलता तो वे उसको उचित दण्ड दिये जाने पर जोर देते थे। वे परिषद् में बड़ी निर्भीकता से गलतियों का विरोध करते और जनता के हितों की रक्षा और अभिवृद्धि का प्रयत्न करते थे।

४. राजनीतिक जीवन

सन् १९०७ में कांग्रेस में फूट पड़ जाने के बाद लगभग नौ साल तक गरम दल के लोग कांग्रेस से अलग रहे और वह नरमदल के नेतृत्व में बहुत मन्द गति से काम करती रही। इस काल में नरेन्द्रदेवजी ने भी कांग्रेस के काम में कोई दिलचस्पी नहीं ली। यहां तक कि जब कांग्रेस का अधिवेशन प्रयाग में हुआ तब भी वे उसमें नहीं गये। गरम दल के नेता अपने विचारों के कार्यकर्ताओं की एक राष्ट्रीय कान्फ्रेंस करना चाहते थे। पर सरकार ने आपस की फूट से लाभ उठाकर वह कान्फ्रेंस नहीं होने दी। कई नेताओं को जेल में भेज दिया और इस प्रकार दल को छिन्न-भिन्न कर दिया। देश की राजनीतिक शक्ति को छिन्न भिन्न करने के लिये लार्ड मिण्टो ने मुस्लिम साम्प्रदायिकता को भी बढ़ावा दिया और वह सन् १९०६ में मुस्लिम लीग के रूप में राजनीतिक मञ्च पर आ विराजी। राजनीतिक वातावरण को शान्त करने के लिये सरकार ने फूट डलवाने के साथ-साथ राजनीतिक सुधार और दमन की दुधारी नीति को अपनाया। तीन वर्ष की बहस के बाद ब्रिटेन की उदारदलीय सरकार ने कौंसिलों की व्यवस्था में सुधार किया। प्रान्तीय और केन्द्रीय कौंसिलों में गैर-सरकारी अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गयी और कौंसिलों के अधिकार भी विस्तृत कर दिये गये। बंगाल को छोड़कर दूसरे प्रान्तों में निर्वाचित हिन्दुस्तानी सदस्यों को कौंसिलों में बहुसंख्यक स्थान दिये गये और केन्द्रीय कौंसिल में गैर-सरकारी अतिरिक्त सदस्यों को बहुसख्यक बना दिया गया। कौंसिलों को कानून पास करने और प्रश्न पूछने के साथ-साथ बजट पर बहस करने और प्रस्ताव पास करने के भी अधिकार दे दिये गये। पर नयी व्यवस्था में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को स्थान देकर भारतीय राजनीति में आपसी फूट और अलगाव को दृढ कर दिया गया। इन सुधारों के बाद भी वंग-भंग की गलती ठीक नहीं की गयी और दमन पहले की तरह ही चलता रहा। इससे कतिपय कांग्रेसी नेताओं को नयी कौंसिलों में अपने विचार प्रकट करने की काफी छूट मिली, किंतु नरम दल से प्रभावित कांग्रेस संगठन का अपना तेज काफी

फीका पड़ गया। बंगाल में अशांति की ज्वाला धधकती रही। आखिर सन् १९११ में सरकार ने अपनी गलती स्वीकार की। बंगाल के पूर्वी और पश्चिमी हिस्सों को मिलाकर बंगाल प्रान्त बनाने की घोषणा की गयी। इससे बंगाल में कुछ शान्ति जरूर हुई, पर इसके बाद भी आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन चलता ही रहा और कांग्रेस की हालत पहले जैसी ही बनी रही।

होमरूल लीग

सन् १९१४ में यूरोप में प्रथम विश्वयुद्ध हुआ। इसने देश की राजनीति में नयी गति पैदा कर दी। गरमदलीय और क्रान्तिकारी शक्तियों ने जोर पकड़ा। निम्न मध्यम श्रेणी के नगरनिवासी और ग्रामीण भी जागे। उनमें भी एक नयी स्फूर्ति पैदा हुई। तुर्की के प्रति विशेष सहानुभूति के कारण मुसलमानों के दिलों में भी ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध आग धधकने लगी। मुस्लिम लीग ने भी मुसलमानों के हितों की रक्षा करते हुए स्वशासन की प्राप्ति अपना लक्ष्य घोषित कर दिया। युद्ध शुरू होने के कुछ महीने पहले लोकमान्य तिलक छः वर्ष तक मांडले जेल में रहने के बाद देश लौटे, उधर श्रीमती एनी बेसेन्ट ने देश की राजनीति में दिलचस्पी लेना शुरू की। दोनों ने सन् १९१५ में होमरूल लीग के नाम से दो अलग अलग संगठन बनाये और उनके द्वारा आत्मनिर्णय और स्वराज्य के लिये देशव्यापी आन्दोलन शुरू किया।

सन् १९१५ में ही संयुक्त प्रान्त में श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा स्थापित लीग की शाखा बनी। पण्डित जवाहरलाल नेहरू उसके मन्त्री नियुक्त हुए। नरेन्द्रदेवजी ने इस सम्बन्ध में लोकमान्य तिलक से बात की और उनकी लीग की एक शाखा फैजाबाद में खोलना चाही। किन्तु उन्होंने यह कहकर मना किया कि दोनों के उद्देश्य एक हैं, दो होने का कारण केवल इतना है कि कुछ लोग मेरी बनाई हुई किसी संस्था में शरीक नहीं होना चाहते और कुछ श्रीमती बेसेंट द्वारा संस्थापित किसी संस्था में नहीं रहना चाहते। इसके बाद नरेन्द्रदेवजी ने श्रीमती बेसेंट की लीग की एक शाखा फैजाबाद में खोली और स्वयं मन्त्री का काम करने लगे। इस तरह सन् १९१६ में उन्होंने देश के राजनीतिक जीवन में प्रवेश

किया और इसके बाद चालीस वर्ष तक वे राजनीतिक कार्यों में संलग्न रहे।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

होमरूल लीग के काम के सिलसिले से ही नरेन्द्रदेवजी पण्डित जवाहरलाल नेहरू के सम्पर्क में आये और इस सम्पर्क ने आगे चल कर गाढी मैत्री का रूप धारण कर लिया। इस तरह हिन्दुस्तान के इन दो होनहार नवयुवकों ने, जिन्होंने एक ही प्रान्त में एक ही वर्ष में दो सप्ताह के अन्तर से जन्म लिया था, करीब करीब साथ साथ राजनीति में प्रवेश किया। दोनों ने लगभग तीस वर्ष एक मंच से देश की सेवा की, चार पांच वर्ष विभिन्न स्थानों में एक साथ जेल में गुजारे, अनगिनत अनुभव प्राप्त किये और आजादी हासिल होने के कुछ दिन बाद दो भिन्न दलों का नेतृत्व करते हुए भी पुराना स्नेह बनाये रखा। दोनों एक दूसरे के व्यक्तित्व, योग्यता, देशसेवा और प्रगतिशीलता के प्रशंसक थे। पर बहुत-सी बातों में दोनों में मौलिक भेद भी रहा। नरेन्द्रदेवजी की शिक्षा देश में हुई, उनका ज्ञान और चरित्र भारतीय संस्कृति की पार्श्वभूमि में परिपक्व हुआ, उनकी विचारधारा एक तरह से प्राचीन और अर्वाचीन ज्ञान का मनोहर संगम था। उनकी वाणी में सरस्वती का विलास था, वह राजनीतिज्ञ के साथ साथ उच्च कोटि के विद्वान् थे, वह गतिशील के साथ दृढप्रतिज्ञ, संकोची, निस्पृह और रोगी थे। पण्डित जवाहरलाल की शिक्षा विदेश में हुई, उनका चिन्तन पाश्चात्त्य जगत् के अनुभवों की पार्श्वभूमि में बीसवीं शताब्दी की हलचल और विचारधारा के आधार पर हुआ। वे अंग्रेजी के प्रतिभाशाली लेखक थे। वे गतिशील, दक्ष, महत्त्वाकांक्षी, कर्मठ राजनीतिज्ञ थे।

एका

सन् १९१६ में नरम दल और गरम दल में समझौता होने के बाद लोकमान्य तिलक कांग्रेस में शामिल हो गये और फैजाबाद में होमरूल लीग और कांग्रेस के द्वारा राष्ट्रसेवा करने लगे। उन्होंने सबसे पहला सार्वजनिक भाषण अलीबन्धुओं की नजरबन्दी के विरोध में दिया। वे सबसे पहले सन् १९१८ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य चुने गये। इसके बाद वे जब तक कांग्रेस में रहे चुने जाते रहे।

दुधारी नीति

विश्वयुद्ध के जमाने में सरकार ने दमन और सुधार की दुधारी नीति का पालन करते रहना ही उचित समझा। एक ओर उसने राजनीतिक सुधारों की तैयारी शुरू की और अगस्त सन १९१७ में घोषित किया कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत उत्तरदायी शासन की व्यवस्था उसकी भारतीय नीति का अन्तिम लक्ष्य है और वह आनेवाले सुधारों द्वारा प्रान्तीय स्तर पर उत्तरदायी व्यवस्था को किसी अंश में चालू करना चाहती है। दूसरी ओर उसने अनेक दमनकारी कानून बनाये और उनके जरिये क्रान्तिकारी आन्दोलन के साथ साथ होमरूल आन्दोलन का भी दमन करने की कोशिश की। युद्ध के खत्म होने पर उसने एक तरफ राजनीतिक सुधारों का कानून बनाया और दूसरी ओर एक दमनकारी काला कानून बनाया। सुधारों के जरिये विधानसभाओं में गैरसरकारी निर्वाचित सदस्यों को बहुसंख्यक सीटें दी गयीं, प्रत्यक्ष चुनाव की प्रथा चालू की गयी, विधानसभाओं को बजट स्वीकार करने के अधिकार दिये गये और प्रान्तीय सरकार को इस तरह दो भागों में बाँटा कि कुछ विषयों का प्रबन्ध उत्तरदायी मन्त्रियों को सौंप दिया गया, पर गवर्नर और गवर्नर जनरल को ऐसे विशेष अधिकार भी दिये गये कि जिनके जरिये वे जब उचित समझें विधानसभा तथा मन्त्रियों की राय की उपेक्षा करते हुए नये कानून बना सकें, बजट पास कर सकें, नये कर लगा सकें और हस्तान्तरित विषयों को सुरक्षित विषयों में बदल सकें।

विरोध

देश ने इन सुधारों को अपर्याप्त समझा और काले कानूनों का घोर विरोध किया। गांधीजी ने देश का नेतृत्व अपने हाथ में लिया। उनके नेतृत्व में इन कानूनों के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, जिसको दबाने के लिये पंजाब के गवर्नर ने बहुत कठोरता से काम लिया। जलियानवाला बाग में सार्वजनिक सभा पर अन्धाधुन्ध गोली चलाकर सैकड़ों निहत्थे लोगों को मार डाला गया और मार्शल लॉ लागू कर दिया गया। झगड़े हो जाने के कारण आन्दोलन तो बन्द कर दिया गया, पर जनता का रोष कम होने के बजाय बढ़ गया। अतः इस काले कानून को काम

गो नरम दल के नेताओं को छोड़कर अन्य सभी राजनीतिक सुधारों को अपर्याप्त समझते थे, पर सुधारों का बहिष्कार किया जाय अथवा नहीं इस सम्बन्ध में गहरा मतभेद था। गान्धीजी का अन्तिम निर्णय था कि व्यवस्थापिकासभा के चुनावों का बहिष्कार किया जाय। लोकमान्य तिलक चुनावों के बहिष्कार के विरुद्ध थे। जब जून सन् १९२० में नरेन्द्रदेवजी उनसे मिले, तब उन्होंने कहा कि यदि आधे स्थान भी खाली रहें तो बहिष्कार ठीक समझा जा सकता है, पर अगर करीब-करीब सब स्थान भर जाएं तब अपने को प्रतिनिधि कह कर सरकारपरस्त लोग देश का अनहित करेंगे। उनका यह सिद्धान्त भी था कि कांग्रेस में अपनी बात रक्खो और अन्त में जो उसका निर्णय हो उसे स्वीकार करो।

असहयोग

अपर्याप्त राजनीतिक सुधार और सरकार की दमननीति के साथ-साथ खिलाफत के प्रश्न पर भी ब्रिटिश सरकार की नीति से देश में बहुत बेचैनी और रोष था। हिन्दुस्तान के मुसल्मान खिलाफत को सुदृढ़ बनाये रखना चाहते थे, जब कि सरकार की नीतियों के कारण तुर्की की सत्ता और खिलाफत के अस्तित्व खतरे में थे। मुसल्मानों में बहुत क्षोभ और रोष था। वे इस प्रश्न पर सरकार का विरोध करना अपना धार्मिक कर्तव्य समझते थे। गान्धीजी का विचार था कि इस प्रश्न पर हिन्दुओं को भी मुसल्मानों का साथ देकर अपने सौभ्रातृत्व का सही परिचय देना चाहिए। वह केवल इसी प्रश्न पर सरकार से अहिंसात्मक संघर्ष छेड़ना चाहते थे। पर पण्डित मोतीलाल नेहरू के आग्रह पर स्वराज्य की मांग को भी असहयोग आन्दोलन का एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण घोषित किया गया।

काफी गरम बहस के बाद सितम्बर सन् १९२० में कांग्रेस ने अपने एक विशेष अधिवेशन में गान्धीजी के असहयोग प्रस्ताव को बहुमत से स्वीकार कर लिया और आगे चल कर दिसम्बर सन् १९२० में नागपुर में अपने वार्षिक अधिवेशन में उसने उस पर मुहर लगा दी। सरकार से जनता का अहिंसात्मक असहयोग ही इस आन्दोलन का मूलमन्त्र था। सरकारी नौकरियों, अदालतों, और शिक्षासंस्थाओं

का परित्याग, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय शिक्षा का प्रसार एवं हरिजनोद्धार, नशाबन्दी तथा खद्दर और जरूरत पड़ने पर लगानबन्दी इस आन्दोलन के मुख्य अंग थे।

जब नरेन्द्रदेवजी कांग्रेस में शामिल हुए उस समय वे लोकमान्य तिलक के अनुयायी थे। लोकमान्य के निधन के बाद उन्होंने गान्धीजी का नेतृत्व स्वीकार किया और उनके नेतृत्व में देश की सेवा की। ऐसा करना उनके लिये इसलिये भी आसान था कि कौंसिलों में प्रवेश किया जाय या नहीं इस प्रश्न को छोड़ कर अन्य बहुत सी बातों में गान्धीजी का असहयोग का कार्यक्रम लोकमान्य तिलक के सन् १६०७ के कार्यक्रम से काफी मिलता जुलता था, उधर लोकमान्य तिलक के उत्तराधिकारी होने के दावेदार महाराष्ट्र के नेताओं में नरेन्द्रदेवजी को लोकमान्य की संघर्ष-भावना की कमी दिखायी देती थी। लोकमान्य तिलक के नेतृत्व के प्रभाव से नरेन्द्रदेवजी सन् १६०७ से ही स्वदेशी के व्रती और स्वराज्य, बायकाट तथा राष्ट्रीय शिक्षा के समर्थक थे। उनका दृढ विश्वास था कि विदेशी सरकार से सहयोग राष्ट्र के लिये घातक है और जन-जागृति द्वारा जनशक्ति के बल-बूते पर ही स्वराज्य सम्भव है। वे सत्य की तो बचपन से ही 'आराधना' करते चले आ रहे थे। उन्हें इस बात में सन्देह जरूर था कि बिना कुछ हिंसा के राज्य की शक्ति अंग्रेजों से छीनी जा सकेगी, पर सशस्त्र क्रांति की सम्भावना के अभाव में अहिंसात्मक जनसंघर्ष का समर्थन करने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं थी। वह बायकाट के कार्यक्रम में कौंसिलों के बहिष्कार करने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने सन् १९२० में कांग्रेस के अधिवेशन में बहिष्कार के विरुद्ध वोट दिया था, किंतु लोकमान्य तिलक के सिद्धान्त के अनुसार उन्होंने संस्था के निर्णय को स्वीकार किया और वे जनवरी सन् १९२१ में अपनी वकालत छोड़ असहयोग आन्दोलन में शरीक हो गये।

अरविन्द घोष के विचारों का प्रसार

असहयोग आन्दोलन में शामिल हो जाने के बाद भी वे गरम दलीय नेतृत्व से प्रभावित रहे। उनके विचारों को जनता तक पहुँचाना वे जरूरी समझते रहे। उन्होंने दिसम्बर सन् १९२० में श्री अरविन्द घोष के सन् १९१० में लिखे राष्ट्रीयता सम्बन्धी कतिपय लेखों को हिन्दी में

स्वयं अनुवाद करके 'जातीयता' के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित किया। इस पुस्तक के प्रकाशित होने के कुछ दिन बाद 'प्रबुद्ध भारत ग्रन्थावली संख्या २' के रूप में अपने मित्र ठाकुर जयदेव सिंह जी से श्री अरविन्द घोष के राष्ट्रीय शिक्षा सम्बन्धी लेखों का हिन्दी में अनुवाद कराके 'राष्ट्रशिक्षा' नाम की पुस्तक प्रकाशित करायी। सन् १९२१-२२ में 'वन्दे मातरम्' पत्र में प्रकाशित अरविन्द जी के सन् १९०८ में लिखे कतिपय लेखों को स्वयं संगृहीत कराकर उन्हें अंग्रेजी में ही प्रकाशित कराया।

इन लेखों में अरविन्द बाबू ने प्रचलित भारतीय शिक्षा पद्धति और अंग्रेजी शासन के कुप्रभावों का दिग्दर्शन कराते हुए राष्ट्रीय शिक्षा के मूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था। उन्होंने स्वतन्त्रता, जनतन्त्र, स्वदेश-प्रेम, देशभक्ति और जातीयता (राष्ट्रीयता) के महत्त्व की बड़ी मार्मिक विवेचना की थी और जनता को अपने आदर्शों पर अड़िग रहते हुए देश की स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर आत्मबलिदान के लिये प्रोत्साहित किया था। उन्होंने जीवन की गरिमा की व्याख्या करते हुए जीवन को तर्क से ऊपर बता कर, हृदय को शक्ति का तथा भावनाओं को कार्य का स्रोत बताया और भारतीय जनता को सच्ची सामाजिक भावनाओं से अपने सारे जीवन को अनुप्राणित करने का उपदेश दिया। देशप्रेम और देशभक्ति का पाठ पढ़ाते हुए देश की सेवा में मर मिटने का मशविरा दिया। अरविन्दजी ने नये राष्ट्रीय आन्दोलन को एक महत्त्वपूर्ण नैतिक और आध्यात्मिक आन्दोलन बताते हुए उसके आदर्शों पर हर हालत में डटे रहने की सलाह दी। उन्होंने कहा कि देश के राष्ट्रीय आदर्शों के सम्बन्ध में कोई समझौता नहीं किया जा सकता। जनतन्त्र के सिद्धान्तों को शुद्ध रूप में जनता के सामने रखकर उसके सारे जीवन को, विचारों और भावनाओं को अनुप्राणित कर उसे राष्ट्रव्यापी संघर्ष और क्रान्ति के लिये आत्मत्याग, आत्म-समर्पण, आत्मबलिदान करने को तैयार करना होगा। संघर्ष ही संघर्ष की तैयारी है। साहस, उत्साह, त्याग और बलिदान की भावना तथा राष्ट्रीय आदर्शों के प्रति अडिग श्रद्धा के द्वारा ही संघर्ष में सफलता प्राप्त की जा सकती है।

अरविन्द बाबू ने अपने जातीयता (राष्ट्रीयता) सम्बन्धी लेखों में जातीयता और स्वदेशप्रेम के महत्त्व की विवेचना करते हुए

बताया था कि जहाँ जातीयता राजसिक भाव है वहाँ स्वदेशप्रेम सात्त्विक है। जो पुरुष अपने अहं को देश के अहं में विलीन कर सकता है, वह एक आदर्श स्वदेश-प्रेमी है और जो व्यक्ति अपने अहं को कायम रखते हुए उसके द्वारा देश के 'अहं' को बढ़ाता है वह जातीय भावापन्न है। राजनीतिक स्वतन्त्रता स्वराज्य का एक अंग है। स्वराज्य के दो रूप हैं—बाह्य स्वाधीनता और आन्तरिक स्वाधीनता। विदेशी शासन से सम्पूर्ण मुक्ति बाह्य स्वाधीनता है और जनतन्त्र आन्तरिक स्वाधीनता का चरम विकास है। अरविन्द बाबू जातीयता और मनुष्यजाति की एकता—दोनों को सत्य मानते थे। उनका कहना था कि 'इन दोनों सत्यों के सामञ्जस्य में ही मानवजाति का कल्याण है'। वे चाहते थे कि विभिन्न प्रान्तों और सम्प्रदायों के लोग भारत के 'अखण्ड' स्वरूप का दर्शन करें। उन्होंने सन् १९१० में लिखे इन लेखों में यह साफ तौर पर कहा कि यदि हिन्दू माता और हिन्दू जातीयता की प्रतिष्ठा के नाम से हम मातृदर्शन की आकांक्षा करेंगे तो हम उसी पुराने भ्रम में पड़कर जातीयता के पूर्ण विकास से वञ्चित रहेंगे।

अरविन्द बाबू चाहते थे कि सब लोग अपनी अपनी मातृभाषा की रक्षा करते हुए हिन्दी भाषा को साधारण भाषा स्वीकृत कर भाषा की बाधा को दूर करें। उनके विचार में जनतन्त्र के तीन मूलभूत सिद्धान्तों का, यानी स्वाधीनता, साम्य और भ्रातृत्व का विकास एक दूसरे पर निर्भर है। साम्य स्वाधीनता की प्रतिष्ठा है, साम्य के न होने से स्वाधीनता की प्रतिष्ठा नहीं होती। भ्रातृत्व साम्य की प्रतिष्ठा है, भ्रातृत्व के न होने पर साम्य प्रतिष्ठित नहीं हो पाता। उनके विचार में साम्यहीन भ्रातृत्व का होना संभव है, किन्तु भ्रातृत्वहीन साम्य कभी टिक नहीं सकता। अरविन्द घोष के ये सब विचार नरेन्द्रदेवजी के तत्कालीन राजनीतिक जीवन के मूलाधार थे। इन्हीं को लेकर वे अपनी वकालत को छोड़ असहयोग आन्दोलन में शामिल हुए थे।

किसान आन्दोलन

वकालत छोड़ने के बाद नरेन्द्रदेवजी किसान आन्दोलन में कूद पड़े। उस समय फैजाबाद जिले के टांडा और अकबरपुर तहसीलों में इसका बड़ा जोर था। वास्तव में यह आन्दोलन अवध के चार प्रमुख

जिलों अर्थात् रायबरेली, प्रतापगढ़, फैजाबाद और सुलतानपुर में काफी व्यापकरूप में फैल चुका था। इसका प्रारम्भ तो सन् १९१८ में हो चुका था जब कि प्रयाग में एक किसानसभा कायम की गयी थी। इस सभा ने किसानों का संगठन शुरू किया और सन् १९२० में अवध में इसे काफी सफलता प्राप्त हुई। इसका बहुत कुछ श्रेय श्रीधर बलवन्त जोधपुरकरजी को है। यह जौनपुर जिले में रहते थे और बाबा रामचन्द्र के नाम से प्रसिद्ध थे। वे जौनपुर से ही प्रतापगढ़ जिले के किसानों में काम करते थे। किसानों की माँग थी कि (१) बेदखली रोकी जाय, (२) दस्तूर से अधिक अबवाव न हो, (३) बेगार पर रोक लगाई जाय, (४) जुर्माना लगाना बन्द किया जाय, (५) गैरकानूनी टैक्सों की वसूली बन्द की जाय। किसानों को प्रतिज्ञा लेना पड़ती थी कि वे सदा शान्त रहेंगे; गैर कानूनी टैक्स नहीं देंगे; बेगार विना मजदूरी लिये नहीं करेंगे; पलई, भूसा, रसद बाजार भाव पर बेचेंगे; नजराना नहीं देंगे चाहे बेदखल हो जायँ; बेदखल खेत को दूसरा कोई किसान नहीं लेगा; लगान ठीक समय पर देंगे; जब तक बेदखली का कानून मंसूख न होगा दम न लेंगे। इस तरह प्रत्येक किसान को चौदह प्रतिज्ञाएँ लेना पड़ती थीं।

प्रतापगढ़ से यह आन्दोलन रायबरेली जिले की दक्षिण तहसीलों में फैला और यहाँ इसने काफी जोर पकड़ लिया। किसानों की सभा में हजारों की भीड़ होती थी। हिन्दू और मुसलमान, पुरुष तथा स्त्री सभी इसमें सम्मिलित होते थे। आन्दोलन जमींदारों के अत्याचारों तथा लूटखसोट के विरुद्ध था, पर सरकार ने किसानों की जागृति से भयभीत होकर इसे दबाने की कोशिश की। ७ जनवरी सन् १९२१ को मुंशीगंज में गोली चली। जिसके कारण रायबरेली जिले में आन्दोलन कुछ शिथिल पड़ गया। पर दूसरे जिलों में जोरों से चलता रहा और इसने ब्रिटेन की साम्राज्यशाही के विरुद्ध विद्रोह का रूप धारण कर लिया। बहुत से किसान समझने लगे कि अब अंग्रेजी राज्य का अन्त हो रहा है और उनके पुराने पिट्ठुओं को, जिन्होंने उनको दबाया, सताया, लूटा खसोटा है, लूटा जा सकता है। इसने इस कारण 'बीहड़ की लूट' का रूप भी धारण कर लिया।

नरेन्द्रदेवजी ने किसानों का साथ देते हुए उनकी मांगों का समर्थन

किया, कार्यकर्ताओं को अपने काम पर डटे रहने के लिये प्रोत्साहित किया, सरकार के समर्थकों के द्वारा बनायी 'अमन सभाओं' के भ्रामक प्रचार का भंडा फोड़ा तथा स्वराज्य की पुष्टि एवं किसानों की मांगों के समर्थन में कई प्रभावशाली भाषण दिये। इन व्याख्यानों की चर्चा सारे अवध में फैल गयी और 'बाबू' नरेन्द्रदेव एक प्रख्यात वक्ता समझे जाने लगे। महाशय केदारनाथ और लल्लनजी भी नरेन्द्रदेवजी के साथ थे। इन दोनों ने भी बहुत साहस और तत्परता से डट कर काम किया और किसानों का विश्वास और मान प्राप्त किया। महाशय केदारनाथ जी की कीर्ति तो फैजाबाद जिले के बाहर के गांवों में भी फैल गयी थी। एक दूसरे व्यक्ति जिन्होंने सुलतानपुर जिले में किसान आन्दोलन में काम करते हुए ख्याति प्राप्त की तथा फैजाबाद जिले के आन्दोलन को भी पुष्ट किया वे श्रीगनपत सहाय जी थे।

सरकार किसानों के इस आन्दोलन को दबा देना चाहती थी। उसने पहले तो किसानों एवं कार्यकर्ताओं को पकड़ना और उनपर सख्ती करना शुरू किया, पर जब उसने देखा कि आन्दोलन आसानी से दबने वाला नहीं है, तब इस भय से कि ये किसान कांग्रेस द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन में शरीक न हो जायं, उसने किसानों की बेदखलीवाली मांग मान ली। नोटिस के द्वारा बेदखली रोक दी गयी और नया कानून बनाकर किसानों को हीनहयाती का हक दे दिया गया। किसानों की यही मुख्य मांग थी।

इस आन्दोलन के सम्बन्ध में ही एक बार पण्डित जवाहर लाल नेहरू फैजाबाद आये और उन्होंने नरेन्द्रदेव जी से कहा कि बाबू शिवप्रसाद जी गुप्त ने काशी विद्यापीठ के नाम से एक राष्ट्रीय शिक्षा की संस्था खोलने का निश्चय किया है और वे तुम्हें वहां चाहते हैं। कुछ सोचने के बाद नरेन्द्रदेवजी काशी विद्यापीठ में काम करने को राजी हो गये।

राजनीतिक काम

काशी में रहते हुए भी नरेन्द्रदेवजी ने फैजाबाद के राजनीतिक जीवन से अपना पुराना सम्बन्ध बनाये रखा। सन् १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बन जाने के बाद समाजवादी आन्दोलन के सिलसिले से यह सम्बन्ध और भी दृढ़ हो गया। सन् १९३७ में उन्होंने

फैजाबाद नगर से ही प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के लिये चुनाव लड़ा। इस अवसर पर महाशय केदारनाथ, लल्लनजी, सर्वश्री दयाकृष्ण गंजूर, शम्भूनाथ कौल, गिरजा प्रसाद मिश्र, मुहम्मद नसीर, सुन्दरलाल राजे, विष्णुनारायण अग्रवाल, कृष्णनारायण ने उनकी खास तौर पर सहायता की। मुहम्मद नसीर साहब से नरेन्द्रदेवजी का इतना स्नेह था कि वे नसीर साहब को 'तुम' से ही सम्बोधित करते थे। सर्वश्री दयाशंकर गंजूर, शम्भूनाथ कौल और गिरजा प्रसाद मिश्र से भी घनिष्ठ सम्बन्ध हो गये थे। समाजवादी आन्दोलन के सिलसिले से जिन सज्जनों से आगे चलकर उनकी घनिष्ठता बढ़ी उनमें श्री सर्वजीतलाल वकील और बाबा बनवारीदास प्रमुख थे। बाबा बनवारीदास अयोध्या की हनुमानगढ़ी के एक महन्त हैं। आचार्यजी के प्रति इनका अगाध स्नेह और श्रद्धा थी और उनकी सेवा करने में इन्हें विशेष आनन्द आता था। बाबा बनवारीदास ही नरेन्द्रदेवजी के एक ऐसे स्नेही थे जिनकी शारीरिक सेवा भी उन्हें निःसंकोच स्वीकार थी। श्री सर्वजीतलालजी ने सन् १९४१ में आगरे जेल में समाजवाद के सिद्धान्तों का अध्ययन किया और तदनन्तर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो गये। वे स्वतन्त्रता-संघर्ष के वीर सेनानी होने के साथ ही साथ एक विचारशील व्यक्ति हैं। उन्होंने समाजवाद का अच्छा अध्ययन किया है। फैजाबाद में समाजवादी आन्दोलन का नेतृत्व उनके ही हाथ में था।

५. काशी विद्यापीठ

शुभारम्भ

काशी विद्यापीठ के संस्थापक श्री शिवप्रसाजी गुप्त ने सन् १९१३-१४ में विश्व का भ्रमण किया। वे इंगलिस्तान होते हुए संयुक्तराष्ट्र अमरीका गये और जापान होते हुए हिन्दुस्तान लौटे। जापान में उन्होंने एक ऐसी संस्था देखी जिसका सरकार से कोई सम्बन्ध नहीं था और जो बिना किसी सरकारी नियन्त्रण या आर्थिक सहायता के सुचारु रूप से चल रही थी। शिवप्रसादजी उस संस्था से काफी प्रभावित हुए और उन्होंने अपने देश में भी इस प्रकार की एक संस्था चलाने का निश्चय किया। देश लौटने पर वे बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी के काम में लग गये। पर जब पण्डित मदनमोहन मालवीयजी ने विश्वविद्यालय की प्रगति के लिये सरकार की सहायता और नियन्त्रण को आवश्यक समझ उसे स्वीकार कर लिया, तब उन्होंने विश्वविद्यालय के काम में दिलचस्पी लेना छोड़ दी और वे सरकारी नियन्त्रण से स्वतंत्र राष्ट्रीय संस्था के निर्माण की बात पर मित्रों से विचार विमर्श करने लगे। पर उन्हें कोई सहयोग मिलता दिखायी नहीं दिया। जब सन् १९२० में गान्धीजी ने राष्ट्रीय शिक्षा को असहयोग आन्दोलन का विशिष्ट अंग बना लिया, तब शिवप्रसादजी को आशा हुई कि विद्वानों और मित्रों के सहयोग से काशी में एक उच्चस्तरीय राष्ट्रीय शिक्षा संस्था बनायी और चलायी जा सकती है। कांग्रेस के नागपुर-अधिवेशन के बाद वे गान्धीजी से मिले और अपनी योजना को उनके सामने रखते हुए प्रार्थना की कि वे स्वयं अपने करकमलों से काशी की इस संस्था का उद्घाटन करें और काशी के प्रसिद्ध विद्वान् बाबू भगवान्दासजी को इस सम्बन्ध में पत्र लिखें। गान्धीजी ने भगवान्दास जी को लिखा कि काशी में विद्यापीठ खुलना चाहिए। बाबू शिवप्रसादजी गुप्त ने अपनी सम्पत्ति का एक हिस्सा अर्थात् दस लाख रुपये अपने छोटे भाई स्वर्गीय हरप्रसादजी की पुण्य स्मृति में इस प्रयास में लगाने का निश्चय किया। 'हरप्रसादशिक्षानिधि' के नाम से इस सम्पत्ति का एक ट्रस्ट कायम कर दिया गया।

१० फरवरी सन् १९२१ को गान्धीजी ने काशी विद्यापीठ का उद्‌घाटन किया। समारोह में नगर के कांग्रेसी कार्यकर्ताओं और कुछ दूसरे अग्रगण्य सज्जनों के अतिरिक्त पण्डित मोतीलाल नेहरू, मौलाना अबुलकलाम आजाद, सेठ जमनालाल बजाज, पण्डित जवाहरलाल नेहरू आदि भारत के प्रमुख नेता भी उपस्थित थे।

उद्देश्य

अध्यात्म विद्या की नींव पर प्रतिष्ठित भारतीय शिष्टता के संस्कार और विकास में सहायता देना काशी विद्यापीठ का पहला उद्देश्य है। उसका दूसरा उद्देश्य भारत में बसी हुई सब जातियों के भारतीय समाज में यथास्थान सन्निवेश में और भारत में प्रचलित आचार-विचारों के समुचित समन्वय में सहायता देना है। स्वाधीनता और स्वदेशप्रेम के भाव के साथ-साथ लोकसेवा तथा मानवमात्र की बन्धुता के भाव के संस्कार में सहायता देना उसका तीसरा उद्देश्य है। चौथा उद्देश्य संसार के प्राचीन शास्त्र, शिल्पकला, ज्ञानविज्ञान आदि की वृद्धि और प्रचार करने में सहायता देना है। शिक्षा के सम्बन्ध में नये प्रकारों की परख करना तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी के माध्यम से एवं देवनागरी लिपि द्वारा उच्च शिक्षा प्रदान करना और ग्रन्थ, निबन्ध आदि के प्रकाशन का प्रबन्ध करना उसके अन्य विशिष्ट कार्य हैं।

काशी विद्यापीठ के साथ साथ गुजरात विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, जामिया मिलिया देहली तथा तिलक स्कूल आफ पालिटिक्स, लाहौर भी स्थापित हुए। इन सब विद्यापीठों में कम से कम प्रारम्भ में वे ही विद्यार्थी दाखिल हुए जिन्होंने गान्धीजी के आह्वान पर सरकार द्वारा या उसकी सहायता से संचालित विद्यालयों का बहिष्कार किया था। वे सब राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित थे और राष्ट्रीय शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। इन विद्यापीठों के आदर्श बहुत कुछ अरविन्द घोष आदि गरमदलीय नेताओं द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीय शिक्षा के आदर्शों से मिलते जुलते थे। इन संस्थाओं के संस्थापक चाहते थे कि इन के द्वारा ऐसी शिक्षा दी जाय जो यूरोपीय शिक्षा के समान विस्तृत हो, पर साथ ही साथ राष्ट्रीय भावना और भारतीय संस्कृति के आदर्शों से परिपूर्ण हो। ये विद्यापीठें ——— सनातन धर्मसभा आदि धार्मिक

संस्थाओं द्वारा स्थापित गुरुकुल, ऋषिकुल आदि उच्चस्तर की शिक्षा संस्थाओं से किन्हीं बातों में समान और किन्हीं बातों में भिन्न थे। गुरुकुलों और ऋषिकुलों की तरह इन विद्यापीठों की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी की बजाय मातृभाषा ही था, इनमें भारतीय संस्कृति और शील की शिक्षा को काफी महत्त्व दिया जाता था और ये भी सरकार के नियन्त्रण से मुक्त थे। पर जहाँ गुरुकुलों और ऋषिकुलों का नियन्त्रण तथा प्रशिक्षण साम्प्रदायिक भावनाओं से अनुप्राणित सज्जनों के हाथ में था, उनका वातावरण धार्मिक और साम्प्रदायिक था, प्राचीन संस्कृति और परम्पराओं पर ही विशेष जोर दिया जाता था, उनकी मान्यताओं को प्रतिष्ठित करना उनका एक प्रमुख उद्देश्य था; वहां विद्यापीठों का प्रबन्ध और प्रशिक्षण राष्ट्रनिष्ठों के हाथ में था, उनका वातावरण मूलतः राष्ट्रीय था और राष्ट्रसेवा के निमित्त राष्ट्रीय भावनाओं से अनुप्राणित युवकों का प्रशिक्षण ही उनका मुख्य काम था।

बाबू भगवान्दास

बाबू भगवान्दास जी जिन्होंने काशी विद्यापीठ का आचार्य बनना स्वीकार किया, काशी के एक धनीमानी परिवार के विद्याचरणसम्पन्न वयोवृद्ध रत्न थे। वे उच्च कोटि के विद्याव्यसनी विद्वान् एवं धर्म, दर्शन, मनोविज्ञान तथा भारतीय संस्कृति के प्रकांड पण्डित थे। इन सभी विषयों का उन्होंने गूढ़ अध्ययन किया था, उनकी विशिष्ट समस्याओं पर उनका गहरा मनन था। उनका अध्ययन और मनन तुलनात्मक एवं दृष्टिकोण व्यापक था। शिक्षा में उनकी विशेष अभिरुचि थी। श्रीमती एनी बेसेंट द्वारा स्थापित सेंट्रल हिन्दू कालिज के संचालन में उनका विशेष योग था। उसकी अध्यापक मंडली के वे प्रतिभाशाली रत्न थे। वे सर्व-धर्मसमन्वय के सिद्धान्त को मानते थे और सब धर्मों की बुनियादी एकता पर उन्होंने एक बहुत ही उत्तम ग्रन्थ लिखा था। आगे चलकर मनोविज्ञान के कई विषयों पर भी उन्होंने कई ग्रन्थ लिखे थे। दर्शन में भी उनके कई मौलिक विचार थे। बाबू भगवान्दासजी की अध्यक्षता ने काशी विद्यापीठ के गौरव और प्रतिष्ठा को काफी ऊँचा उठा दिया था।

विद्वन्मण्डली

बाबू शिवप्रसादजी गुप्त कुछ दूसरे राष्ट्रवादी विद्वानों को भी काशी

विद्यापीठ में खींचकर लाना चाहते थे। उनका विचार था कि काशी विद्यापीठ द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा का काम तभी सुचारु रूप से हो सकता है कि जब राष्ट्रीय विचारों के शीलसम्पन्न विद्वान् अध्यापन का काम करने को तैयार हों। इन्हीं विचारों से प्रेरित हो उन्होंने सर्वश्री नरेन्द्रदेव, श्रीप्रकाश, जीवतराम भगवानदास कृपालानी, प्रेमचन्द, सम्पूर्णानन्द, बीरबलसिंह प्रभृति राष्ट्रनिष्ठों को इस विद्यापीठ में विद्यार्थियों के प्रशिक्षण के लिये निमन्त्रित किया।

जीवनोत्कर्ष

नरेन्द्रदेव जी के जीवन में दो प्रवृत्तियाँ थीं—एक पढ़ने लिखने की और दूसरी राजनीति की। जब दोनों सुविधाएँ एक साथ मिल जाती थीं, तब उन्हें बड़ा परितोष होता था। इसी कारण जब पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उनसे कहा कि काशी विद्यापीठ खुलने वाला है और उन्हें लोग वहां चाहते हैं, तब वे विद्यापीठ में काम करने के लिये तैयार हो गये। विद्यापीठ के काम में उनका मन लग गया और लगभग दस वर्ष तक वहीं रह कर वे राजनीति का कार्य और पठन-पाठन करते रहे तथा मुख्यतः विद्यापीठ के जरिये ही राष्ट्र की सेवा करते रहे। विद्यापीठ में आते ही वह उपाध्यक्ष बना दिये गये और सन् १९२६ में डाक्टर भगवान्दास जी के त्यागपत्र देने पर उनकी जगह अध्यक्ष बने। जब तक उनके पिता जीवित रहे तब तक वे अवैतनिक काम करते रहे। पिता के निधन के बाद निर्वाह के लिये वे डेढ़ सौ रुपये मासिक लेने लगे। उनकी आवश्यकताओं को देखते हुए कुछ अधिक लेने के लिये उनसे अनुरोध किया गया, पर उन्होंने इसे मंजूर नहीं किया। जो दूसरे अध्यापकों को मिलता था वही लेना उचित समझा।

पिताजी की मृत्यु के बाद वे कुछ दिनों के लिये फैजाबाद चले गये थे, पर फिर लौट आये। सन् १९३० तक वे विद्यापीठ में नियमपूर्वक काम करते रहे। फिर वे सविनय अवज्ञा आन्दोलन में लग गये। द्वितीय सविनय अवज्ञा के बाद कुछ तो बीमारी के कारण और कुछ दूसरे सार्वजनिक कामों में फँसे रहने के कारण उनके लिये बराबर अध्यापन का काम करना असम्भव हो गया। उन्हें बार बार छुट्टी लेनी पड़ती थी, फिर भी   की बात कोई सोच ही नहीं सकता था

किसी न किसी रूप में अन्त तक सम्बन्ध बना ही रहा। उन्होंने विद्यापीठ के कुलपति के पद को भी मरते दम तक सुशोभित किया।

विद्यापीठ में ही नरेन्द्रदेवजी आचार्य बने और उन्होंने अपने ज्ञान को परिपक्व किया तथा उच्च कोटि के विचारक और राजनीतिज्ञ की क्षमता प्राप्त की। वहाँ ही उन्होंने अपनी विद्वत्ता, मानवता और कर्तव्य-परायणता से सैकड़ों नवयुवक कार्यकर्ताओं को देशसेवा के योग्य बनाया। विद्यापीठ में जो काम उन्होंने किया उसे वह अपने जीवन का 'स्थायी' काम समझते थे। वे कहा करते थे कि 'यही मेरी पूँजी है और इसी के आधार पर मेरा राजनीतिक कारोबार चलता है'।

अध्ययन

विद्यापीठ में वे इतिहास के अध्यापक थे। वे इतिहास के गहन विद्यार्थी और अध्येता थे। प्राचीन भारतीय इतिहास के साथ साथ आधुनिक भारत के उत्थान के इतिहास का उन्हें सूक्ष्म ज्ञान था। एशिया के दूसरे देशों के उत्थान के इतिहास का भी वे बराबर अध्ययन करते रहते थे। राजनीति उनकी दिलचस्पी का विशेष विषय था। राजनीतिक विचारों और परिस्थितियों का वह सदा गूढ़ अध्ययन करते रहते थे। भारतीय पुरातत्त्व में बुद्ध का भव्य व्यक्तित्व, उनकी चिन्तन-धारा और दर्शन के अध्ययन में उनकी विशेष अभिरुचि थी। विद्यापीठ में रहकर पालि, प्राकृत और संस्कृत के मूल ग्रन्थों से उन्होंने बौद्ध धर्म और दर्शन का व्यापक अध्ययन किया और उसके सम्बन्ध में बड़ी सामग्री जुटायी और नोट तैयार किये। इस काम के लिये ही उन्होंने मूल ग्रन्थों के साथ साथ अंग्रेजी और फ्रान्सीसी भाषाओं में लिखे ग्रन्थों का भी अध्ययन किया। विद्यापीठ में जो सामग्री उन्होंने इकट्ठी की थी उसके आधार पर उन्होंने आगे चलकर हिन्दी में "बौद्ध धर्म दर्शन" नाम से एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। विद्यापीठ में रहते हुए उन्होंने प्राकृत का एक व्याकरण भी तैयार किया था, पर उसकी प्रतिलिपि गुम हो जाने के कारण उनके इस परिश्रम से विद्वद्वर्ग लाभ नहीं उठा सका।

बौद्ध दर्शन के अध्ययन में उन्होंने कई दूसरे व्यक्तियों को भी प्रोत्साहित किया जिनमें राहुल सांकृत्यायन जी प्रमुख थे। सन् १९२७

या १९२८ में हिन्दी के अध्यापक राजवल्लभ सहायजी के माध्यम से नरेन्द्रदेवजी राहुलजी के सम्पर्क में आये। वे उस समय बाबा राम उदार दास के नाम से पुकारे जाते थे। उन्होंने नरेन्द्रदेवजी के घर पर ही रहकर आचार्यजी के सहयोग से तिब्बती भाषा से अभिधर्मकोष का संस्कृत में और त्रिपिटक का हिन्दी में अनुवाद किया और आचार्यजी के अनुरोध पर ही अभिधर्मकोष काशी विद्यापीठ द्वारा तथा त्रिपिटक बाबू शिवप्रसादजी गुप्त द्वारा प्रकाशित हुआ। राहुलजी की तिब्बत यात्रा के लिये साधन जुटाने में भी आचार्यजी का काफी योगदान रहता था। राहुलजी के माध्यम से ही श्रीगंगाशरणसिंह जी नरेन्द्रदेवजी के सम्पर्क में आये। यह परिचय आगे चल कर विचारसाम्य और कार्यक्षेत्र की समता के कारण गाढ़ स्नेह में परिपक्व हुआ।

बौद्ध दर्शन के प्रति विशेष अभिरुचि रखते हुए भी वे प्राचीन भारतीय संस्कृति के दूसरे अंगों और अर्वाचीन भारतीय विद्वानों के विचारों का भी अध्ययन करते रहे। उन्होंने जहां डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीताञ्जलि आदि कई रचनाओं को बंगला भाषा में ही पढ़ा, वहाँ उपनिषदों की व्याख्याओं का भी गूढ़ अध्ययन किया। इस सम्बन्ध में श्रीहरेन्द्रनाथदत्त की बंगला में लिखी पुस्तक का अध्ययन करने के बाद वे दत्त महोदय की व्याख्या को ही सर्वोत्तम मानने लगे। आचार्य नरेन्द्रदेव के विचार में 'उपनिषदों की विचारधारा और साधना संसार के अलभ्य रत्नों में है। भारत में जिन विशिष्ट विचार-धाराओं ने जन्म लिया है उन सब का मूलस्थान उपनिषदों में है। उपनिषदों के वाक्यों में गाम्भीर्य, मौलिकता, और उत्कर्ष पाया जाता है और वह प्रशस्त, पुनीत और उदात्त भाव से व्याप्त हैं।...उपनिषद् वे स्तम्भ हैं जिन पर प्रतिष्ठित संस्कृत विद्या और भारतीय संस्कृति का दीपक सदा प्रकाश देता रहता है। यही हमारी अचल निधि है, यही हमारा जयस्तम्भ है'।

आदर्श शिक्षक

आचार्य जी आदर्श शिक्षक थे। उन्हें अनेक देशों के इतिहास और अनेक युगों के दर्शन का उच्चतम ज्ञान था। वह जिस विषय को पढ़ाते थे उसे वह इतना स्पष्ट, रोचक और सुगम बना कर प्रस्तुत करते

कि विद्यार्थी उसका अर्थ सरलता से ग्रहण कर सकें। इतिहास को पढ़ाते समय वह अतीत की धुंधली परिस्थितियों और ऐतिहासिक पात्रों को जीवित वास्तविकताओं के रूप में प्रस्तुत कर देते थे। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास का सजीव चित्र वे एशिया के संघर्षों और आर्थिक परिस्थितियों की पार्श्वभूमि में खींचते और एशिया के विभिन्न स्वतंत्रता-संघर्षों पर व्याख्यान देते समय वे राष्ट्रीय भावना से ऐसे अनुप्राणित हो जाते और उनकी वाणी में ऐसा चमत्कार पैदा हो जाता कि जिससे उनके श्रोताओं को ज्ञान के साथ-साथ राष्ट्रसेवा की सद्प्रेरणा भी प्राप्त होती। जब वे भारतीय आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन की चर्चा करते, देश की बलिवेदी पर पतंगों की भाँति बलिदान हो जाने वाले साहसी और आत्मत्यागी क्रान्तिकारी नवयुवकों के त्याग और बलिदान को बताते, तब उनके विद्यार्थी ऐसा अनुभव करते कि मानो एक सक्रिय क्रान्तिकारी ही उनके सामने बोल रहा है। बौद्ध धर्म और दर्शन पर व्याख्यान देते हुए वे विद्यार्थियों के सामने बुद्ध के भव्य व्यक्तित्व का चित्र खींचते, बौद्धधर्म की विभिन्न शाखाओं, प्रशाखाओं का धार्मिक विश्लेषण करते और आर्य शान्तिदेव के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बोधिचर्यावतार' के पदों को बहुत अनुप्राणित और आकर्षक ढंग से प्रस्तुत करके विद्यार्थियों को समस्त आर्त-प्राणियों की सेवा का महत्त्व बताते और उसकी उन्हें सीख देते।

'बोधिचर्यावतार' के जो पद उन्हें बहुत ही प्रिय थे और जिनको वे विद्यार्थियों को सुनाते थे उनका सारांश है कि जब समस्त लोक दुःख से आर्त और दीन है तो मैं ही इस रसहीन मोक्ष को प्राप्त कर क्या करूंगा, प्राणियों के सैकड़ों दुःखों को स्वयं भोग कर के उनके दुःखों को हरण करने की कामना करनेवालों को और उसे ही अपना सुख सौभाग्य समझने वालों को बोधिचित्त का परित्याग कभी नहीं करना चाहिए। बोधिचित्त चित्त का संकल्प है जिससे संसार के समस्त प्राणियों का उद्धार होगा।

प्रबन्ध और नेतृत्व

नरेन्द्रदेवजी एक आदर्श शिक्षक के साथ-साथ कुशल प्रबन्धक थे। उनका प्रबन्ध शील और कर्तव्यपरायणता पर आधृत था। उसमें नम्रता

और दृढ़ता का समन्वय था। वह अधिकार के दम्भ और अहंकार से शून्य था। प्रशासन की अकड़ के बजाय कर्तव्यशील व्यवहार ही उसका मूलाधार था। संस्था के अध्यक्ष की हैसियत से नरेन्द्रदेवजी विद्यार्थियों के प्रशिक्षण तथा कार्यालय के काम का विशेषत: हिसाब का समुचित निरीक्षण करते रहते थे। वे दूसरे अध्यापकों को जितना प्रशिक्षण का कार्य सौंपते उससे कहीं अधिक स्वयं करते और आशा करते कि वे सब अपना काम ठीक तौर पर करेंगे। उन्हें प्रबन्ध में ढीलढाल बुरी लगती थी। अत: वे व्यवहार में कोमल होते हुए भी अनुशासन में दृढ़ थे।

काशी विद्यापीठ की अभिवृद्धि और यश में नरेन्द्रदेवजी का विशिष्ट योग दान था। आचार्य बीरबलसिंहजी ने अपने एक लेख में ठीक ही लिखा है कि 'काशी विद्यापीठ के अध्यापकों और विद्यार्थियों ने सन् १९२१ से लेकर सन् १९४२ तक के स्वातंत्र्य संग्रामों में जो गौरवपूर्ण कार्य किया और ख्याति प्राप्त की उसका अधिकतर श्रेय नरेन्द्रदेवजी को है। वे विद्यापीठ के प्राण थे। उन्हीं से सब को नेतृत्व मिलता था, प्रेरणा मिलती थी, स्फूर्ति मिलती थी, साहस और प्रोत्साहन मिलता था जिसके बल पर विद्यापीठ का एक साधारण विद्यार्थी नेताओं के जेल चले जाने पर प्रान्त में स्वतन्त्रता-संग्राम का सफल संचालन करता था।'

प्रकाशन कार्य

अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ पुस्तकों के प्रकाशन और पत्रकारिता में भी नरेन्द्रदेवजी की विशेष अभिरुचि थी। विद्यापीठ में अध्यापन का काम करते हुए उन्होंने विद्यापीठ की त्रैमासिक पत्रिका का तथा आगे चलकर त्रैमासिक समाज का सम्पादन किया। आचार्य जी इन पत्रों में अपने लेख भी प्रकाशित कराते रहते थे। इनमें से कुछ लेख बौद्ध दर्शन से सम्बन्धित होते थे और कुछ का सम्बन्ध देश या विदेश की राजनीति से होता था। उन्होंने 'विद्यापीठ' पत्रिका में ही सन् १९२९ में सोवियत रूस की एशिया-सम्बन्धी नीति पर एक सुन्दर लेख लिखा था। उन्होंने इसी काल में स्वर्गीय श्रीकन्हैयालाल से कांग्रेस के प्रस्तावों का हिन्दी में अनुवाद कराया तथा भूमिका के रूप में राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति का इतिहास लिखा, तथा लाला हरदयाल

के लेखों और 'वन्देमातरम्' में प्रकाशित कतिपय निबन्धों को और शौकत उसमानी की पुस्तक 'पेशावर टु मास्को' को अंग्रेजी में प्रकाशित कराया और इस तरह जनता में प्रगतिशील विचारों का प्रसार किया।

विद्यार्थियों से स्नेह

आचार्यजी के लिये विद्यापीठ 'एक कुटुम्ब' सा था। अध्यापक, विद्यार्थी, कार्यकर्ता सबसे उनका 'बड़ा मीठा सम्बन्ध' था। वे विद्यार्थियों के मानव-व्यक्तित्व का आदर करते और उनसे बहुत प्रेम करते थे। वे उनके शिक्षक ही नहीं मित्र और मार्गदर्शक भी थे। दो वर्ष तक तो आचार्यजी तथा अन्य शिक्षक विद्यार्थियों के साथ छात्रावास में ही रहे। पर अलग मकान में चले जाने पर भी नरेन्द्रदेवजी के घर का द्वार विद्यार्थियों के लिये सदा खुला रहता था। वे उन्हें पढ़ाते भी थे, सदुपदेश भी देते थे, उनसे हंसते-खेलते भी थे और आवश्यकतानुसार उनकी आर्थिक सहायता भी करते थे तथा उनके साथ राजनीतिक काम भी करते थे। जहां उनका आडम्बरहीन निर्मल जीवन, निरभिमान सहज स्वभाव विद्यार्थियों के चित्त में श्रद्धा उत्पन्न करता था, वहाँ उनके आदर्श और उत्साह विद्यार्थियों को अपनी ओर आकृष्ट करते थे।

आचार्य नरेन्द्रदेव विद्यार्थियों को अपने सदुपदेशों से तथा बोधिचर्यावतार के पदों एवं क्रान्तिकारियों के गानों से अनुप्राणित ही नहीं करते वरन् उनके आमोद प्रमोद में भी भाग लेते। एक वर्ष काशी विद्यापीठ के छात्रों ने वार्षिकोत्सव के अवसर पर नाटक करना निश्चित किया। बाबू शिवप्रसाद गुप्त को यह बात पसन्द नहीं थी। पर नरेन्द्रदेवजी और श्रीप्रकाशजी ने इस बात का केवल समर्थन ही नहीं किया बल्कि स्वयं इस अवसर पर मुशायरे और कविसम्मेलन के प्रहसन में शामिल होने का निश्चय किया। जब बाबू शिवप्रसादजी ने यह देखा तब वे भी जापानियों के कपड़े पहनकर तथा चीनियों जैसी लम्बी मूँछें लगाकर रंगमंच पर आ विराजे और सब ने उन्हें मिस्टर मोटर के नाम से सम्बोधित करते हुए कविसम्मेलन का अध्यक्ष चुना। आचार्य नरेन्द्रदेवजी स्वयं मिर्जा टमटम के नाम से पुकारे गये। उस समय नरेन्द्रदेवजी ने हँसते हुए कहा कि—

'टमटम को कौन पूंछे है मोटर के सामने।
मिर्जा को कौन पूछे है मिस्टर के सामने' ॥

स्वास्थ्य

श्री गोपीनाथ कविराज के संस्मरण से पता चलता है कि सन् १९१३ की गर्मियों में नरेन्द्रदेवजी को दमे की शिकायत हो गयी थी। श्री श्रीप्रकाशजी के संस्मरण से पता चलता है कि सन् १९२८ की गर्मियों में जब नरेन्द्रदेवजी रानीखेत गये थे तब वहाँ उन्हें दमे का दौरा पड़ा था, पर सात आठ दिन में तबीयत इतनी ठीक हो गयी थी कि वे श्री श्रीप्रकाशजी के साथ लगभग एक सौ मील पैदल पिंडारी ग्लेशियर देखने पहाड़ पर चले गये। उनके सभी साथियों का कहना है कि सन् १९३० तक नरेन्द्रदेवजी काफी स्वस्थ रहते थे। बीमारी के कारण उन्हें छुट्टी नहीं लेनी पड़ती थी। कभी कभी थोड़ी खाँसी हो जाती थी, पर दमे का दौरा नहीं पड़ता था। इस जमाने में वे जरूरत पड़ने पर सात आठ मील पैदल चल लेते थे और धूप में भी बिना छाते के घूमते रहते थे। इन साथियों का यह भी कहना है कि उन्हें अपने स्वास्थ्य की समुचित रक्षा का विशेष ध्यान नहीं था। वे न तो किसी प्रकार का व्यायाम करते और न ही स्वास्थ्य के निमित्त नियमित रूप से टहलते। वे दो चार व्यक्तियों से भी निरर्थक जोर जोर से बातें करते और खाने में एहतियात करना जरूरी नहीं समझते। वे खाने के शौकीन थे। कचौड़ी, मिठाई, रबड़ी के साथ साथ कुल्फी, बरफ, चटपटी चाट भी वे बहुत शौक से खाते। वे बहुत जल्दी जल्दी खाते। इस कारण उनके मित्रों ने उनका नाम 'पंजाब मेल' रख दिया था, जब कि उनके एक दूसरे साथी जो हल्के हल्के खाते थे 'गुड्स ट्रेन' के नाम से पुकारे जाते थे। हाँ, गर्मियों में वे पहाड़ पर या समुद्र के किनारे चले जाते थे।

विद्यापीठ परिवार

विद्यापीठ के करीब करीब सभी अध्यापकों और कार्यकर्ताओं से नरेन्द्रदेवजी का एक कुटुम्ब का सा सम्बन्ध हो गया था। श्री श्रीप्रकाश, डाक्टर सम्पूर्णानन्द, आचार्य बीरबल सिंह, श्री दामोदरस्वरूप सेठ, श्री बलदेव मिश्र, प्रोफेसर रामशरण, श्री रुद्रदत्त शास्त्री, पण्डित यज्ञ-

नारायण उपाध्याय, श्री राजाराम शास्त्री, श्री त्रिभुवन नारायण सिंह, डाक्टर बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर, पण्डित काशीपति त्रिपाठी, डाक्टर चन्द्रदत्त पांडे, श्री विश्वनाथ शर्मा आदि सभी से उनका ऐसा ही स्नेह था।

श्रीप्रकाश

श्री श्रीप्रकाशजी से तो उनका 'विशेष स्नेह' था जो धीरे धीरे 'अत्यन्त प्रगाढ़ मैत्री' में परिपक्व हो गया था, जिस पर जीवन भर किसी प्रकार की मलिनता की छाया नहीं पड़ी। दोनों ही इस पारस्परिक स्नेह को 'जीवन की एक अत्यन्त मूल्यवान् निधि' समझते थे। श्री श्रीप्रकाश मित्र के साथ साथ नरेन्द्रदेवजी के प्रशंसक भी बन गये थे। वे नरेन्द्रदेवजी को 'नररत्न' और 'अद्वितीय शिक्षक' समझते थे तथा उनके पाण्डित्य और शील की सदा प्रशंसा करते रहते थे। श्रीप्रकाशजी चाहते थे कि नरेन्द्रदेवजी समाजशास्त्र पर एक उत्तम ग्रन्थ लिखें और जब आचार्यजी कहते कि उनका ज्ञान सीमित है, तो मुस्कराकर कहते कि ज्ञान तो कम नहीं है केवल प्रतिष्टा का डर है, डरते हैं कि कहीं कोई गलती न हो जाय और उससे उनकी प्रतिष्ठा पर धब्बा लग जाय। श्रीप्रकाशजी नरेन्द्रदेवजी की हर प्रकार की सहायता के लिये सदा तत्पर रहते थे। नरेन्द्रदेवजी महीनों श्रीप्रकाशजी के घर पर रह जाते थे और उनकी बहुत सी महत्त्वपूर्ण गोष्ठियाँ उन्हीं के घर पर ही होती थीं जहाँ उन्हें उनका समुचित आतिथ्य सत्कार प्राप्त होता था। नरेन्द्रदेवजी का कहना था कि 'वह मेरी फिक्र उसी तरह करते जैसे माता अपने बालक की'। श्रीप्रकाशजी अपने राष्ट्रीय सेवाओं के साथ साथ अपने विनोद के लिये भी प्रसिद्ध हैं। वे अपने मित्र नरेन्द्रदेवजी की भी चुटकी लेते रहते थे। उनकी बहुत सी चुटकियों पर तो आचार्य जी मुस्करा देते थे, पर कभी कभी परिहास भी हो जाता था। नरेन्द्रदेवजी भी श्रीप्रकाशजी को बहुत मानते थे, उनका बहुत आदर करते थे और उन्हें इस बात की बड़ी प्रसन्नता थी कि आगे चलकर दो विरोधी राजनीतिक दलों के सदस्य होते हुए भी श्री श्रीप्रकाश जी का उन पर पहला सा स्नेह बना रहा। सन् १९५१ में श्रीप्रकाश जी ने इस बात की भरसक चेष्टा की कि सन् १९५२ में नरेन्द्रदेवजी के

विरुद्ध कांग्रेस अपना उम्मीदवार खड़ा न करे। पण्डित जवाहरलाल नेहरू राजी भी हो गये थे, पर पण्डित गोबिन्दवल्लभ पन्त राजी नहीं हुए। सन् १९५६ में श्रीप्रकाशजी ही नरेन्द्रदेवजी को स्वास्थ्य लाभ के लिये पंदोराई ले गये और उन्हीं से आचार्य जी की अंतिम बातें हुईं। उन्होंने ही अपने मित्र के निधन के बाद उनकी कतिपय कौटुम्बिक समस्याएँ सुलझाने का प्रयास किया।

दामोदरस्वरूप सेठ

श्री दामोदरस्वरूप सेठ से भी नरेन्द्रदेवजी का सम्बन्ध 'सगे भाईयों जैसा' हो गया था। दोनों ने लगभग तीस वर्ष साथ साथ राजनीति में काम किया। गो सेठजी ने क्रान्तिकारी दल में भी काम किया था, जब कि आचार्यजी कभी किसी ऐसे दल के सदस्य नहीं रहे। पर आगे चलकर दोनों की विचारधारा एकसी हो गयी थी। दोनों एक दूसरे की राष्ट्रभक्ति, तपस्या और त्याग का बहुत आदर करते थे। दोनों ही स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता, जनतन्त्र और समाजवाद के पोषक थे। दोनों ने साथ साथ बर्षों समाजवादी आन्दोलन का नेतृत्व किया। दोनों के स्वभाव में काफी अन्तर था जिसके कारण दोनों में कभी कभी मनमुटाव भी हो जाता था, पर फिर पुराना मेल हो जाता था। दोनों को एक दूसरे के बिना चैन नहीं था। आचार्यजी सेठजी से बहुत मजाक करते, सेठजी कभी कभी मजाक में ही चिढ़ जाते, पर आचार्यजी मजाक में ही फिर उन्हें मना लेते। सेठजी का कहना था कि 'मुझे वे जिस दृष्टि से देखते थे उसका स्मरण मात्र ही मुझे विकल बना देता है और कुछ समय के लिये मैं अपनी अन्तर्वेदना से व्याकुल हो उठता हूँ'।

सम्पूर्णानन्द

नरेन्द्रदेवजी और सम्पूर्णानन्दजी का भी ऐसा स्नेह था जो अन्त तक बना रहा। दोनों ने वर्षों काशी विद्यापीठ और कांग्रेस में साथ-साथ राष्ट्र की सेवा की और सन् १९३४ में समाजवादी आन्दोलन क नेतृत्व स्वीकार किया। दोनों ही विद्याव्यसनी और पुरातत्त्व के अध्ययन में विशेष अभिरुचि रखते थे। पर दोनों के स्वभा और चिन्तन में काफी अन्तर था जहा नरेन्द्रदेवजी को भारती

संस्कृति के बौद्धदर्शन और विश्वजनीन तत्त्वों में विशेष अभिरुचि थी, वहां सम्पूर्णानन्दजी को वेदान्त, ज्योतिष, योग और तन्त्र में। जहाँ नरेन्द्रदेवजी के समाजवादी चिन्तन का मूलाधार मार्क्सवाद था, वहाँ अद्वैत वेदान्त के पोषक सम्पूर्णानन्दजी वेदान्त को ही समाजवाद का मूलाधार बनाना चाहते हैं। जहाँ नरेन्द्रदेवजी ने सन् १९३७ में बहुत आग्रह पर भी कांग्रेस द्वारा निर्मित मन्त्रिमंडल में शामिल होने से इनकार कर दिया, वहाँ कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को छोड़कर मन्त्रिमंडल में शामिल होना ही सम्पूर्णानन्दजी ने उचित समझा। पर इसके बाद भी दोनों का पुराना स्नेह बना रहा। जब तक नरेन्द्रदेवजी कांग्रेस में रहे तबतक बहुत सी बातों में दोनों मिलकर कांग्रेस में काम करते रहे। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में न रहने पर भी सम्पूर्णानन्दजी नरेन्द्रदेव जी के साथ रहे। सन् १९४८ के बाद दो विरोधी पार्टियों के प्रमुख सदस्य होते हुए भी दोनों ने अपना पुराना सम्बन्ध बनाए रखा और राजनीतिक व्यवहार में वजहदारी कायम रखी। वे चुनाव में एक दूसरे के विरोध में बोलने नहीं गये। सम्पूर्णानन्दजी के आग्रह पर नरेन्द्रदेव जी ने प्रान्तीय शिक्षामंत्रालय द्वारा नियुक्त कई कमेटियों की अध्यक्षता स्वीकार की।

बीरबलसिंह

जब गान्धीजी के नेतृत्व में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, उस समय वीरबलसिंह जी काशी विश्वविद्यालय में एम०ए० के द्वितीय वर्ष में इतिहास का अध्ययन कर रहे थे। राष्ट्र की पुकार पर अपनी पढ़ाई को छोड़ कर, परीक्षा के मोह को त्याग कर वे आन्दोलन में शामिल होगये। विद्यापीठ के खुलने पर वे अध्यापन का काम करने लगे। तब से वे बराबर विद्यापीठ से सम्बद्ध रहे। यहां वे प्राध्यापक, पीठस्थविर, मन्त्री, आचार्य और उपकुलपति के पदों पर काम करते हुए अगस्त सन् १९६७ को सेवानिवृत हुए। यहां रहते हुए ही अपने विद्यार्थियों का नेतृत्व करते हुए उन्होंने सन् १९२१ से लेकर सन् १९४२ तक सभी स्वातन्त्र्य संग्रामों में भाग लिया और स्वतन्त्रता के निमित्त जेल और नजरबन्दी के कष्ट सहे, और कई वर्ष उत्तर प्रदेश की विधानसभा और दस वर्ष लोकसभा की सदस्यता की। आपके भी आचार्यजी से बहुत

मधुर सम्बन्ध थे। जबतक आचार्य नरेन्द्रदेव कांग्रेस में रहे, तबतक कांग्रेस के करीब करीब सभी कामों में बीरबलसिंहजी नरेन्द्रदेवजी के साथ थे।

डाक्टर मङ्गलदेव शास्त्री

डाक्टर मङ्गलदेव शास्त्री आचार्यजी के एक विशेष सहयोगी थे। वे सन् १९२२ में आक्सफोर्ड से डी०फिल० की उपाधि प्राप्तकर लौटे। सन् १९२३ में उन्होंने विद्यापीठ में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। डाक्टर साहब भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा संस्कृत साहित्य के अध्येता तथा प्रगतिशील विचारक हैं। विद्यापीठ में आते ही नरेन्द्रदेवजी से उनका स्नेह होगया और यह स्नेह अन्त तक बना रहा। सन् १९२४ में जब डाक्टर साहब विद्यापीठ के आध्यापक थे तभी एक समाज सुधारक संघ बनाया गया जिसमें नरेन्द्रदेवजी तथा विद्यापीठ के दूसरे आध्यापकों और प्रबन्धकों तथा डाक्टर साहब के मित्र श्री ठाकुर प्रसाद शर्मा भी शामिल थे। उसकी ओर से एक अन्तर्जातीय भोज किया गया जिसमें पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने भी भाग लिया। कहा जाता है कि इस भोज में कोई स्त्री नहीं थी जिस कमी की ओर नेहरूजी ने भोज के प्रबन्धकों का ध्यान दिलाया। डाक्टर साहब सन् १९२४ में विद्यापीठ को छोड़ कर बनारस के सुप्रसिद्ध संस्कृत कालिज में पुस्तकालयाध्यक्ष की हैसियत से काम करने चले गये। वहां संस्कृत शिक्षा बोर्ड के सेक्रेटरी का काम भी करना शुरू किया तथा सन् १९३२ में प्रान्तीय संस्कृत परीक्षा के रजिस्ट्रार और सन् १९३७ में संस्कृत कालिज के प्रिन्सिपल के पद पर नियुक्त हुए। उस पद पर वे सन् १९४८ तक काम करते रहे। संस्कृत कालिज में चले जाने के बाद भी आचार्यजी से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध बना रहा। नरेन्द्रदेवजी अक्सर उनके घर चले जाते और उनसे घंटों बातें करते रहते। सन् १९३७ में जब उनके प्रिन्सिपल बनाये जाने का प्रश्न उपस्थित हुआ तब रूढ़िवादी ब्राह्मणों ने एक अब्राह्मण को इस पद पर नियुक्त किये जाने का विरोध किया। उस समय नरेन्द्रदेवजी ने उनका नैतिक समर्थन किया। डाक्टर साहब ने संस्कृत शिक्षा के पाठ्यक्रम में कई परिवर्तन किये। उन्होंने ... में बौद्ध तथा जैन दर्शन के अध्ययन को शामिल किया

उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि वेदों को अर्थसहित पढ़ाया जाय तथा पुराणों की पढ़ाई प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के भण्डार के रूप में हो। इन सब कामों में भी डाक्टर साहब को नरेन्द्रदेवजी का समर्थन और सहयोग प्राप्त था। पाठ्यक्रम की तैयारी में नरेन्द्रदेवजी का काफी हाथ था। संस्कृत कालिज को वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय का रूप दिलाने में भी डाक्टर मङ्गलदेव शास्त्री का योगदान और आचार्य नरेन्द्रदेव का समर्थन था। डाक्टर साहब ने ही इसकी चर्चा प्रारम्भ की और उन्होंने ही सन् १९४८ में प्रिन्सिपल के पद से अवकाश प्राप्त करने के बाद एक वर्ष तक विशेष अधिकारी की हैसियत से विश्वविद्यालय की योजना तैयार की और आगे चलकर सन् १९६१ में छ. मास तक संस्कृत विश्वविद्यालय के स्थानापन्न कुलपति की हैसियत से काम किया। शिक्षा मन्त्री सम्पूर्णानन्दजी नरेन्द्रदेवजी को ही इस विश्वविद्यालय का पहला उपकुलपति बनाना चाहते थे। उनके मना कर देने पर प्रोफेसर को. अ. सुब्रह्मण्य अय्यर उपकुलपति नियुक्त हुए। आचार्यजी द्वारा प्रेरित प्रगतिशील सांस्कृतिक कार्यों में उन्हें भी डाक्टर मङ्गलदेवजी का सहयोग मिलता ही रहता था। आचार्य नरेन्द्रदेवजी की जेल तथा नजरबन्दी के जमाने में उनके अध्ययन के लिये डाक्टर साहब आवश्यक सामग्री भेजते रहते थे। सरकारी नौकर होते हुए भी वे यथाशक्ति राष्ट्रनिष्ठों की सेवा करते रहते थे।

राजाराम शास्त्री

नयी पीढ़ी के जिन नवयुवकों ने विद्यापीठ में शिक्षा प्राप्त की और बाद में आचार्यजी के साथ अध्यापन या कार्य संचालन का काम किया तथा उनका स्नेह एवं विश्वास प्राप्त किया उनमें प्रोफेसर राजाराम शास्त्री, श्री विश्वनाथ शर्मा, श्री बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर और श्री त्रिभुवन नारायणसिंह प्रमुख हैं।

प्रोफेसर राजाराम शास्त्री के अध्ययन का विशेष विषय दर्शन था। वे डाक्टर भगवान्दासजी के विद्यार्थी थे और उनपर ही उनकी विशेष आस्था थी। पर वे विद्यार्थी-जीवन से ही नरेन्द्रदेवजी का आदर करते थे। राजनीति में वे वर्षों श्री एम० एन० राय के प्रभाव में रहे, पर जब दूसरे विश्वयुद्ध के जमाने में श्री एम० एन० राय ने

स्वतन्त्रता-संघर्ष के छेड़ने का विरोध किया तब उनका साथ छोड़ कर वे आचार्य नरेन्द्रदेव जी के साथ हो गये, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य बन गये। विचारों के साम्य के कारण राजाराम शास्त्री जी के प्रति नरेन्द्रदेवजी का विशेष स्नेह हो गया। नरेन्द्रदेवजी के आग्रह पर शास्त्री जी ने एक बार विद्यापीठ से एक वर्ष की छुट्टी लेकर समाजवादी आन्दोलन की सेवा की तथा सन् १९५५ में कठिन समय पर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की उत्तर प्रदेश की शाखा के अध्यक्ष की हैसियत से कार्य किया। इसी वर्ष पार्टी के गया अधिवेशन में उन्होंने बड़ी योग्यता से नया 'पालिसी स्टेटमेन्ट' प्रस्तुत किया और उसे स्वीकार कराया। वाराणसी के सार्वजनिक जीवन में राजाराम शास्त्री का विशिष्ट स्थान है। बहुत सी प्रगतिशील संस्थाओं के तो आप प्राण ही हैं। अगस्त सन् १९६७ में शास्त्री जी ने विद्यापीठ के उपकुलपति पद को सुशोभित किया और उसी हैसियत से वे विद्यापीठ की सेवा कर रहे हैं।

विश्वनाथ शर्मा

श्री विश्वनाथ शर्मा ने हरिश्चन्द्र हाईस्कूल से असहयोग करने के बाद तथा कुछ अर्से तक असहयोग आन्दोलन में कार्य करने के बाद दो वर्ष तक काशी विद्यापीठ में अध्ययन किया और फिर वे विद्यापीठ के प्रबन्ध-विभाग में काम करने लगे। उन्होंने अपनी क्षमता, कर्तव्य परायणता, देशप्रेम और सरल स्वभाव के बल पर शीघ्र श्री श्रीप्रकाश, आचार्य नरेन्द्रदेव और विद्यापीठ के दूसरे अध्यापकों एवं प्रबन्धकों का विश्वास प्राप्त करलिया। डाक्टर भगवान्दास और बाबू शिवप्रसाद गुप्त भी उनसे स्नेह करते, साधारण से साधारण कर्मचारी से भी उनके मधुर सम्बन्ध रहते। उन्होंने अपनी राष्ट्रसेवा के बल पर कांग्रेस में भी काफी ऊँचा स्थान प्राप्त किया। अपने शील और क्षमता के कारण उन्हें कांग्रेस के प्रतिद्वन्द्वी गुटों के नेताओं का एक समय पर ही स्नेह और विश्वास प्राप्त था। नरेन्द्रदेव जी के विश्वसनीय सहकारी होते हुए भी उन्हें श्री रफी अहमद किदवाई का भी स्नेह प्राप्त था। प्रान्तीय स्तर पर भी उन्होंने कांग्रेस की बड़ी सेवा की। छः वर्ष तक कोषाध्यक्ष का काम किया, और स्थानापन्न मन्त्री की हैसियत

से भी सेवा की। सन् १९३४ में वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हुए और उसकी बनारस जिला शाखा के मन्त्री बनाये गये। जब सन् १९४८ में समाजवादियों ने कांग्रेस छोड़ी तब वे भी उससे अलग हो गये और सोशलिस्ट पार्टी की अभिवृद्धि के लिये प्रयत्न करने लगे। पर जब सन् १९५५ में सोशलिस्ट पार्टी में विघटन हुआ, तब दोनों दलों से अलग रहकर दोनों से अपना स्नेह बनाये रखा।

त्रिभुवननारायण सिंह

सर्वश्री त्रिभुवन नारायण सिंह और बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर नरेन्द्रदेवजी के पट्ट शिष्य थे, जिन्हों ने आगे चल कर उन्हीं के विभाग में कुछ काल तक अध्यापन का काम किया। श्री त्रिभुवन नारायण सिंह तो उसके बाद पत्रकारिता के काम में लग गये। उन्होंने देहली के 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में और लखनऊ के 'पायनियर' और 'नेशनल हेरल्ड' में काम किया और कुछ दिन डाक्टर सम्पूर्णानन्द के सम्पादकत्व में बनारस से निकलने वाले 'टुडे' के उपसम्पादक का काम किया। जब नरेन्द्रदेव जी ने लखनऊ से 'संघर्ष' निकालना शुरू किया तब श्री त्रिभुवन नारायण सिंह ने जो उस समय 'नेशनल हेरल्ड' में काम करते थे आचार्य जी की समुचित सहायता की। अपने गुरु की सेवा में उन्हें विशेष आनन्द आता था। सन् १९३०, १९३२ और १९४२ के संघर्षों में भाग लेकर और जेल की यातनाएँ सहने के बाद आजादी मिल जाने पर वे सन् १९५० में प्राविजनल पार्लियामेंट तथा सन् १९५२ में लोकसभा के सदस्य चुने गये। वे सन् १९५८ में भारत के प्लानिंग कमीशन के सदस्य और सन् १९६४ में केन्द्र के राज्यमन्त्री नियुक्त हुए। आगे चल कर उन्होंने वाणिज्य और उद्योग मन्त्री का भार सँभाला।

बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर

केसकर जी से तो नरेन्द्रदेव जी का और भी गहरा सम्बन्ध था। उनके लिये आचार्य जी 'बहुत स्नेही बुजुर्ग' थे। नरेन्द्रदेवजी भी उनकी जो कुछ सहायता कर सकते थे करते रहते थे। केसकरजी कुछ वर्ष काशी विद्यापीठ में अध्यापन का काम करने के बाद और सन् १९३० में नमक सत्याग्रह में भाग लेने के कारण जेल की

यातनाएँ सहने के बाद फ्रान्स चले गये। वहां चार वर्ष रहकर उन्होंने फ्रान्सीसी भाषा का अच्छा अध्ययन किया एवं पेरिस के विश्वविद्यालय से डाक्टर की उपाधि प्राप्त की। वहां से वापस आने पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू के निमन्त्रण पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के विदेश-विभाग में वे काम करने लगे। कुछ अर्से के बाद वे उसके मन्त्री हो गये। सन् १९४० और सन् १९४२ के संघर्षों में हिस्सा लेते और जेल की यातनायें सहते वे सन् १९५० में प्राविजनल पार्लियामेंट और सन् १९५२ में लोकसभा के सदस्य चुने गये। वे सन् १९५० में केन्द्र के उपराज्य मन्त्री तथा कुछ अर्से बाद केन्द्र के राज्य मन्त्री नियुक्त हुए। सन् १९६२ के चुनाव में नाकामयाब होने के बाद वे नेशनल बुक ट्रस्ट के अध्यक्ष की हैसियत से उच्च श्रेणी की पुस्तकों के प्रकाशन की व्यवस्था करने लगे।

कर्मचारी

विद्यापीठ के सभी कर्मचारियों से नरेन्द्रदेव जी का बहुत मधुर व्यवहार था। सर्वश्री बन्शी, सुक्खू और बैजू से भी वे सब काम बड़े मीठे ढंग से लेते थे, उन्हें भी वे 'आप' शब्द से सम्बोधित करते थे। उनका अपना निजी नौकर सत्यदेव भी उनके प्रेम और स्नेह का पात्र था। उसे भी वे 'आप' कह कर ही सम्बोधित करते थे। शायद श्री हीरालाल जी खन्ना जैसे दो चार पुराने मित्रों के लिये ही 'तुम' शब्द का प्रयोग करना वे उचित समझते थे।

६. संघर्ष

सन् १९२९ तक नरेन्द्रदेव जी काशी विद्यापीठ में राष्ट्रीय शिक्षा का काम ही मुख्यतः करते रहे। वे कांग्रेस के अधिवेशनों में तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठकों में शामिल होते थे। पर वे वहाँ अपने विचारों को किसी भाषण के द्वारा व्यक्त किये बगैर अपना मत वोट के जरिये दे देते थे। अपने संकोची स्वभाव के कारण इन अवसरों पर उन्होंने नेताओं से मिलने का भी कोई प्रयास नहीं किया। गान्धी जी से भी पहली बार उनका निकट सम्पर्क सन् १९२९ में उस समय हुआ जब कि वे काशी विद्यापीठ के दीक्षान्त समारोह की अध्यक्षता करने आये। उस समय गान्धी जी ने श्री श्रीप्रकाशजी से कहा कि नरेन्द्रदेव तो 'नररत्न' हैं, जिन्हें बहुत पहले ही उन्हें जान लेना चाहिए था।

कांग्रेस के तत्कालीन संविधान में काशी विद्यापीठ को प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी में अपना एक प्रतिनिधि भेजने का अधिकार था। इस नियम के अन्तर्गत ही विद्यापीठ के प्रतिनिधि के रूप में वे वर्षों प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य रहे। पर जब कांग्रेस ने निश्चय किया कि प्रत्येक सदस्य को दो हजार गज सूत कातकर सदस्यता के शुल्क के रूप में देना होगा, तब उन्होंने प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया और बीरबलसिंहजी उनकी जगह चुने गये। पर कुछ दिन बाद ही यह शर्त हटा ली गयी और नरेन्द्रदेवजी फिर विद्यापीठ के प्रतिनिधि के रूप में प्रान्तीय कमेटी के सदस्य बन गये और वहाँ काम करने लगे। सन् १९२६ में प्रान्तीय कांग्रेस का दफ्तर प्रयाग से काशी चला गया। तबसे नरेन्द्रदेवजी प्रान्तीय कांग्रेस के काम में अधिक दिलचस्पी लेने लगे। पर सन् १९३० में प्रान्तीय कांग्रेस के स्थानापन्न प्रधान मंत्री बनने के बाद ही कांग्रेस के कामों में उनका विशेष योगदान हुआ।

साम्प्रदायिक वैमनस्य

असहयोग आन्दोलन के जमाने में ही मालाबार में जो मोपला-विद्रोह

हुआ था उसने साम्प्रदायिकता का रूप धारण कर लिया था। आगे चलकर असहयोग आन्दोलन के बन्द हो जाने के बाद तो हिन्दू-मुसलमानों का वैमनस्य बढ़ता ही गया। देश को साम्प्रदायिक दंगों का सामना करना पड़ा। जेल से छूटने के बाद गान्धीजी ने इस वैमनस्य को खत्म कराने की कोशिश की, कई बार उपवास भी किये और एकता सम्मेलन भी बुलाये, पर वे भी वैमनस्य दूर नहीं करा सके। बहुत से कांग्रेसी नेता और कार्यकर्ता जिन्होंने खिलाफत और असहयोग के आन्दोलन में काफी बढ़कर काम किया था, साम्प्रदायिकता के चक्कर में फँस गये। पर नरेन्द्रदेवजी साम्प्रदायिक दलबन्दी और वैमनस्य को देश के लिये अभिशाप समझते थे। वे साम्प्रदायिक झगड़ों से अलग रहते हुए अपने विद्यार्थियों को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीयता की शिक्षा देते रहते थे। वे गर्व से कहते थे कि विद्यापीठ का कोई विद्यार्थी किसी साम्प्रदायिक दल का सदस्य नहीं रहा।

स्वराज्य पार्टी

जब असहयोग आन्दोलन निर्जीव हो गया, तब कांग्रेस के कतिपय नेताओं ने कौंसिलों के बहिष्कार को छोड़ कौंसिलों में घुसकर अडंगानीति के जरिये सरकार का विरोध करना और उससे असहयोग करना उचित समझा। बहुत से कांग्रेस के नेताओं और कार्यकर्ताओं को यह नीति पसन्द नहीं थी। इस प्रश्न ने कांग्रेस में बहुत विवाद खड़ा कर दिया। कांग्रेस परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी गुटों में बट गयी।

श्री राजगोपालाचारी अपरिवर्तनवादी गुट के प्रमुख नेता थे। श्री चितरंजनदास और पण्डित मोतीलाल नेहरू परिवर्तनवादी गुट के प्रमुख नेता थे। सन् १६२२ में कांग्रेस के गया अधिवेशन में दोनों गुटों का डटकर मुकाबला हुआ। श्री श्रीनिवास आयंगार ने एक समझौते का प्रस्ताव पेश किया, पर वह नामंजूर हो गया। परिवर्तनवादियों की करारी हार हुई। इस पर उन्होंने कांग्रेस में रहते हुए कांग्रेस-खिलाफत-स्वराज्यपार्टी के नाम से एक दल संगठित किया। सन् १६२३ में कांग्रेस ने अपने विशेष अधिवेशन में कांग्रेसजनों को चुनाव में हिस्सा लेने की छूट देदी और कौंसिल के विरुद्ध प्रचार रोक दिया। कौंसिलों में जाकर

राष्ट्रीय माँग को पेश करना और जब तक वह स्वीकार न हो तब तक कौंसिलों में सतत विरोध और असहयोग के द्वारा प्रान्तों में द्वैध शासन को नामुमकिन बना देना और केन्द्र में व्यवस्थापिका सभा की सहायता और सहयोग से शासन प्रबन्ध असम्भव बना देना ही स्वराज्यपार्टी ने अपने मुख्य लक्ष्य घोषित किये।

शुरू में स्वराज्य पार्टी को कुछ सफलता जरूर मिली। केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा ने बहुमत से राष्ट्रीय मांग को स्वीकार किया और वित्त विधेयक को अस्वीकार कर दिया। बंगाल और मध्य प्रदेश की सरकारों को कौंसिलों की मदद से हस्तान्तरित विषयों का प्रबन्ध करना असम्भव हो गया। पर दूसरे प्रान्तों में उसे इस प्रकार की कामयाबी हासिल नहीं हो सकी। मध्यप्रदेश में भी कुछ समय के बाद स्वराज्य पार्टी के कुछ सदस्य पदस्वीकार करने के पक्ष में हो गये, पार्टी दो टुकड़ों में बट गयी और कुछ व्यक्तियों ने मंत्री बनना स्वीकार कर लिया। विविध कारणों से स्वराज्य पार्टी को अपनी पुरानी नीति धीरे धीरे कुछ अंशों में छोड़ना पड़ी। उसको अपनी मांग भी कम करनी पड़ी। उसे यह दावा भी छोड़ना पड़ा कि कौंसिल के भीतर रहकर सरकार से असहयोग किया जायगा। गान्धीजी कौंसिलों में प्रवेश करने के पक्ष में नहीं थे। पर कई कारणों से उन्होंने मई सन् १९२४ में स्वराज्यपार्टी को कांग्रेस का अंग स्वीकार कर लिया। सन् १९२५ में कांग्रेस ने अपने वार्षिक अधिवेशन में कौंसिल के कार्यक्रम को अपना लिया। स्वराज्य पार्टी कांग्रेस पार्टी कहलाने लगी। सन् १९२६ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने उसके कार्यक्रम को निश्चय किया।

आचार्य नरेन्द्रदेव तो शुरू से ही कौंसिलों के बहिष्कार के विरुद्ध थे। सन् १९२० में कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में उन्होंने इस बहिष्कार का विरोध किया था। लेकिन परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी गुटों के झंझट में वे पड़ना नहीं चाहते थे। इस झगड़े से अपने को अलग रखना ही उन्होंने उचित समझा। कांग्रेस के गया अधिवेशन में उन्होंने श्री श्रीनिवास आयंगार के समझौते के प्रस्ताव का समर्थन किया जब वह नामंजूर हो गया, तब उन्होंने इस प्रश्न में दिलचस्पी लेना बन्द कर दी। पर जब सन् १९२६ में कांग्रेस ने कौंसिलों के कार्यक्रम को अपना लिया, तब नरेन्द्रदेवजी कौंसिल में जाने के लिये तैयार हो गये

कांग्रेस ने भी उन्हें फैजाबाद से कौंसिल के चुनाव में खड़ा करने का निश्चय कर लिया। लेकिन जब उनके बड़े भाई महेन्द्रदेवजी ने उस चुनाव क्षेत्र से खड़ा होने का इरादा किया तब नरेन्द्रदेवजी ने वहां से चुनाव लड़ना उचित नहीं समझा। एक स्वतन्त्र उम्मेदवार की हैसियत से उनके बड़े भाई प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य चुन लिये गये। जब सन् १९२७ में साइमन कमीशन के वाईकाट का प्रश्न व्यवस्थापिका सभा में पेश हुआ, तब उनके भाई ने यह कह कर कि यह स्थान तो नरेन्द्रदेवजी का ही है, वाईकाट के प्रस्ताव का समर्थन किया। नरेन्द्रदेवजी के कतिपय मित्रों का विचार है कि एक बार कांग्रेस की ओर से चुनाव लड़ने का निश्चय हो जाने के बाद अपने बड़े भाई के आग्रह पर चुनाव से हट जाना उनके लिये मुनासिब नहीं था।

साइमन कमीशन

फरवरी सन् १९२४ में पण्डित मोतीलाल नेहरू का यह प्रस्ताव केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा ने बहुमत से स्वीकार किया कि हिन्दुस्तान में उत्तरदायी शासन प्रणाली कायम करने के लिये सरकार हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियों का एक गोलमेज सम्मेलन बुलाये जो अल्पमत सम्प्रदायों के स्वार्थों और हकों का पूरा ध्यान रखते हुए हिन्दुस्तान के लिये शासन विधान तैयार करे, जिसे नवनिर्वाचित व्यवस्थापिका सभा द्वारा स्वीकृत हो जाने पर ब्रिटिश पार्लियामेन्ट कानून का स्वरूप दे। सरकार ने इस प्रस्ताव को मानने से इनकार किया। उसका कहना था कि पुराने विधान के अनुसार नये सुधारों के प्रश्न पर विचार सन् १९२९ से पहले नहीं हो सकता। पर अक्टूबर सन् १९२७ में ब्रिटिश सरकार ने सन् १९१९ के शासन सुधारों की प्रगति की जाँच के लिये एक कमीशन नियुक्त किये जाने की घोषणा कर दी और सर जान साइमन की अध्यक्षता में एक ऐसा कमीशन नियुक्त कर दिया जिसके सभी सदस्य अंग्रेज थे। सरकार का कहना था कि चूँकि यह पार्लियामेंट का कमीशन है, इसलिये पार्लियामेंट के सदस्य ही इसके सदस्य हो सकते थे। पर इस दलील में कोई तथ्य नहीं था, क्योंकि लार्ड सिन्हा जो योग्यता और अनुभव में कमीशन के अनेक सदस्यों से अच्छे थे उस समय पार्लियामेंट के सदस्य थे। हिन्दुस्तान की तो आत्मनिर्णय की माँग थी। उसके लिये किसी ऐसे कमीशन के साथ सहयोग करना असम्भव था जिसमें एक भी हिन्दुस्तानी न हो।

अत: कांग्रेस के साथ साथ सभी श्रेणी और विचार के प्रगतिशील संस्थाओं और व्यक्तियों ने कमीशन का बहिष्कार कर दिया। परिस्थिति को सँभालने के लिये सरकार ने घोषणा की कि केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाएं ऐसी सलाहकार समितियां गठित करेंगी जो साइमन कमीशन को उसके काम में मदद देंगी। गो इस घोषणा के अनुसार विभिन्न प्रान्तों में व्यवस्थापिका सभाओं के सरकारी सदस्यों तथा जमींदार सदस्यों के समर्थन से सलाहकार समितियां बन गयीं, पर प्रगतिशील शक्तियों का बहिष्कार बना रहा।

पूर्ण स्वाधीनता

दिसम्बर सन् १९२७ में कांग्रेस ने अपने मद्रास-अधिवेशन में पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव स्वीकार किया और साइमन कमीशन के बहिष्कार की घोषणा करते हुए यह भी निश्चय किया कि भारत को संविधान बनाने के लिये एक सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया जाय। इस अवसर पर पण्डित जवाहर लाल नेहरू और श्री सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में भारतीय स्वाधीनता संघ (इंडिपेन्डन्स आफ इंडिया लीग) कायम हुआ। पूर्ण स्वतन्त्रता की प्राप्ति तथा आर्थिक समता के आधार पर भारतीय समाज का निर्माण इस संस्था के लक्ष्य थे। आचार्य नरेन्द्रदेव भी इस संस्था में शामिल हुए। अपने प्रान्त में उसके संगठन को दृढ़ करने के लिये नरेन्द्रदेवजी प्रान्तीय संगठन मंत्री बनाये गये। उन्होंने इस सम्बन्ध में काम भी किया। पर जब १ जनवरी सन् १९३० को कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया तब यह संस्था आगे नहीं चली।

सर्वदलीय सम्मेलन

साइमन कमीशन का जोरदार बहिष्कार हुआ। उधर सर्वदलीय सम्मेलन ने हिन्दुस्तान को ब्रिटिश कामन्वेल्थ का स्वतन्त्र और समान सदस्य बनाये रखते हुए स्वशासन की व्यवस्था तैयार की। कुछ बहस के बाद कांग्रेस ने इस शर्त पर उसे स्वीकार कर लिया कि अगर सन् १९२९ के अन्त तक सरकार ने देश की मांग को स्वीकार नहीं किया तो कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य को अपना लक्ष्य घोषित कर देगी।

वायसराय की घोषणा

लन्दन में ब्रिटिश मन्त्रिमंडल से बातचीत करने के बाद १ अक्तूबर सन् १९२९ को वायसराय ने ब्रिटिश सरकार के मन्तव्य की घोषणा की। इसकी भाषा इतनी अस्पष्ट थी कि उससे यह पता नहीं चल सकता था कि गोलमेज कान्फ्रेंस में, जिसे बुलाने को ब्रिटिश सरकार तैयार थी, मन्त्रिमंडल कांग्रेस द्वारा प्रस्तुत माँग को स्वीकार करने को तैयार होगा अथवा नहीं।

दिसम्बर सन् १९२९ में महात्मा गांधी आदि कतिपय कांग्रेसी नेताओं की वाईसराय से भेंट हुई। पर इस भेंट में कोई समझौता नहीं हो सका। वाईसराय ने लन्दन में गोलमेज सम्मेलन बुलाने का आश्वासन दिया। पर उन्होंने कांग्रेस नेताओं को यह आश्वासन नहीं दिया कि ब्रिटिश मंत्रिमण्डल औपनिवेशिक स्वराज्य की योजना का समर्थन करेगा। लिबरल नेता और मिस्टर जिन्ना गोलमेज सम्मेलन के आश्वासन से सन्तुष्ट हो उसमें शरीक होने को तैयार हो गये। पर कांग्रेस के नेताओं ने उसमें शरीक होने से इनकार कर दिया।

इस अवसर पर आचार्य नरेन्द्रदेव ने काशी विद्यापीठ की पत्रिका में एक लेख 'ब्रिटिश मजदूर सरकार और भारत' के शीर्षक से लिखा। इस लेख में उन्होंने वाईसराय की १ अक्तूबर की घोषणा की भाषा को 'इतनी अनिश्चित, सन्दिग्ध और अस्पष्ट' बताया कि 'उसके सम्बन्ध में कोई राय कायम नहीं की जा सकती।' उन्होंने ब्रिटेन की लेबर पार्टी की नीति रीति और संगठन का विश्लेषण और समीक्षा करते हुए कहा कि 'ब्रिटिश मजदूर दल किसी विशिष्ट दार्शनिक पद्धति का पुजारी नहीं है।' उसे तो पार्लियामेंटरी दल की हैसियत से 'सदा इस बात का विचार रखना पड़ता है कि वर्तमान में क्या साध्य और क्या शक्य है।' आचार्यजी ने लिखा कि 'ब्रिटिश मजदूर दल का उपनिवेशों के सम्बन्ध में कोई स्थिर सिद्धान्त नहीं है। वे साम्राज्य की कठिनाइयों को दूर करना चाहते हैं और आवश्यकतानुसार भिन्न भिन्न नीति का प्रयोग करते हैं। जहाँ तक जाने के लिये वे विवश किये जायेंगे, वहाँ तक वे जायेंगे। राष्ट्रीय शक्ति के अनुरूप ही उनका व्यवहार होगा'।

नमक सत्याग्रह

कांग्रेस ने अपने लाहौर अधिवेशन में यह निश्चय किया कि गोल-मेज सम्मेलन और व्यवस्थापिका सभाओं का बहिष्कार किया जाय। उसने घोषित किया कि कांग्रेस के विधान की धारा १ में वर्णित 'स्वराज्य' शब्द का अर्थ पूर्ण स्वाधीनता होगा। उसने राष्ट्र से रचनात्मक कार्य-क्रम को उत्साह से चलाने का अनुरोध किया और भारतीय कांग्रेस कमेटी को अधिकार दिया कि वह जब चाहे तब सत्याग्रह आन्दोलन शुरू करे। २६ जनवरी सन् १९३० को सारे देश में पूर्णस्वराज्य-दिवस मनाया गया और १२ मार्च को महात्माजी ने बहुत से सत्याग्रही स्वयंसेवकों के साथ नमक सम्बन्धी कानून तोड़ने के लिये डांडी की ओर प्रस्थान किया। ६ अप्रैल को महात्माजी ने डांडी स्थान पर नमक कानून को भंग कर सविनय अवज्ञा संघर्ष प्रारम्भ किया।

इस सविनय अवज्ञा आन्दोलन में, जो नमक सत्याग्रह के नाम से प्रसिद्ध हुआ, नरेन्द्रदेवजी तथा काशी विद्यापीठ के दूसरे अध्यापकों और विद्यार्थियों ने आगे बढ़ कर काम किया। सन् १९३० में श्रीप्रकाश जी की गिरफ्तारी पर नरेन्द्रदेवजी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के स्थानापन्न प्रधान मन्त्री बने। उन्होंने काशी विद्यापीठ से ही, जहाँ बहुत पहले ही प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का कार्यालय चला आया था, प्रान्तव्यापी आन्दोलन का संचालन शुरू किया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू होते ही विद्यापीठ ने निश्चय किया कि कालिज की पढ़ाई स्थगित कर दी जाय, केवल स्कूल की पढ़ाई जारी रखी जाय। विद्यापीठ के कालिज के प्राध्यापकों और विद्यार्थियों ने काशी के दूसरे सत्याग्रहियों के साथ सोनिया में सर्वश्री बैजनाथसिंह और विश्वनाथसिंह की जमीन पर नमक सत्याग्रह शुरू कर दिया। जब सरकार ने उन्हें नहीं पकड़ा तब श्री बीरबलसिंहजी के नेतृत्व में विद्या-पीठ के विद्यार्थियों ने गाँवों में घूमना और कांग्रेस का संदेश सुनाना शुरू किया। १४ अप्रैल को श्री सम्पूर्णानन्दजी गिरफ्तार कर लिये गये।

प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के स्थानापन्न प्रधानमन्त्री नरेन्द्रदेव जी ने श्री बीरबलसिंहजी को सारे प्रान्त में आन्दोलन की प्रगति को देखने तथा उसे अधिक गतिमान् बनाने के लिये विभिन्न जिलों में जाने का

आदेश दिया। बीरबलसिंहजी दो महीनों में लगभग २३ जिलों में गये। आगे चलकर नरेन्द्रदेवजी के पकड़े जाने पर वे उनकी जगह पर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान मन्त्री नियुक्त हुए। नरेन्द्रदेवजी स्वयं बाबू शिवप्रसादजी गुप्त और बाबू पुरुषोत्तमदास जी टंडन के साथ बस्ती में जून सन् १९३० को गिरफ्तार किये गये। नवम्बर सन् १९३० में सर्वश्री बीरबलसिंह और विश्वनाथ शर्मा चितरंजन दास पार्क में स्थित कांग्रेस कमेटी के दफ्तर पर पुलिस द्वारा लगाये तालों को तोड़ने के कारण गिरफ्तार हुए। विद्यापीठ से सम्बन्धित दूसरे बहुत से व्यक्ति, प्राध्यापक, विद्यार्थी और प्रबन्धक भी सरकार द्वारा गिरफ्तार किये गये।

नरेन्द्रदेवजी, बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन तथा श्री शिवप्रसादजी गुप्त को तीन तीन मास की सजा दी गयी। बस्ती जिले का जलवायु बहुत खराब था। जेल में नरेन्द्रदेवजी बीमार पड़ गये। उन्हें दमे के दौरे शुरू हो गये। इस बार दमे की बीमारी ने उन्हें ऐसा धर दबाया कि फिर जिन्दगी भर उससे छुटकारा ही नहीं मिला। अगले २५ वर्षों में दमे के दौरों के भारी कष्ट को सहन करते हुए ही उन्हें समाज की सेवा करनी पड़ी। बीमारी की हालत में ही उन्होंने आजादी के संघर्षों में हिस्सा लिया, समाजवादी आन्दोलन का नेतृत्व किया, दो विश्वविद्यालयों का संचालन किया, विधायक का काम किया तथा देश के सांस्कृतिक विकास के लिये प्रयत्न किये। यद्यपि बीमारी के कारण वे जो कुछ करना चाहते थे नहीं कर पाते थे, फिर भी राष्ट्र की सेवा में वे लगे ही रहते थे। वे जब भी जरा अच्छे होते काम पर जुट जाते थे।

नमक सत्याग्रह ग्यारह महीने चलता रहा। यह ५ मार्च सन् १९३१ को गांधी-इरविन समझौते के जरिये स्थगित हुआ। यह संघर्ष सन् १९२०-२२ के असहयोग आन्दोलन से कई बातों में भिन्न था। असहयोग आन्दोलन संघर्ष की तैयारी थी पर सविनय अवज्ञा स्वयं संघर्ष था। जहाँ असहयोग आन्दोलन पर धार्मिक भावनाओं की गहरी छाप थी, वहां यह संघर्ष शुद्ध राजनीतिक था। जहां असहयोग आन्दोलन में स्वराज्य की चर्चा गांवों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया गया, वहां इस संघर्ष में बहुत से किसानों ने आगे बढ़ कर भाग लिया और उनमें से बहुत सदा के लिये कांग्रेस के अनुयायी बन

गये। इस सत्याग्रह में स्त्रियों ने भी काफी संख्या में भाग लिया। विलायती कपड़े और शराब की दुकानों की पिकेटिंग तो ज्यादातर स्त्रियों ने ही की। कुछ स्थानों पर बच्चों ने भी सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लिया और बच्चों की वानरसेना मशहूर हो गयी। इसको दबाने के लिये सरकार ने कड़ाई से काम लिया। उसने सत्याग्रहियों को गिरफ्तार करने के अलावा उन्हें बेरहमी से मारा पीटा, कई स्थानों पर निहत्थी जनता पर गोलियों की वर्षा की। कांग्रेस कमेटियां गैरकानूनी करार दी गयीं और नये नये आर्डिनेन्स जारी किये गये। गिरफ्तारी, तलाशी, जब्ती और लाठीप्रहार आम बातें हो गयीं। इस तरह कम से कम अस्सी हजार लोग जेल में गये और एक हजार मारे गये। इस सत्याग्रह को व्यापक बनाने के लिये कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने यह भी कहा कि ऐसे प्रान्तों में जहां रैयतवारी प्रथा प्रचलित है लगानबन्दी का आन्दोलन और दूसरे प्रान्तों में चौकीदारी टैक्स देना बन्द करने का आन्दोलन शुरू किया जा सकता है। संयुक्त प्रान्त तथा गुजरात के कुछ जिलों में लगान बन्दी का काम भी शुरू हुआ।

गोलमेज सम्मेलन

संघर्ष के जमाने में ही नवम्बर सन् १९३० को लन्दन में गोलमेज सम्मेलन शुरू हुआ। यह सम्मेलन लगभग सवा दो महीने चलता रहा। इसमें यह तय हुआ कि रियासतों और प्रान्तों दोनों को शामिल करके एक अखिल भारतीय संघ बनाया जाय और कुछ शर्तों और संरक्षणों के साथ केन्द्र में भी उत्तरदायी शासन की व्यवस्था कायम हो। पर संघ की व्यवस्था क्या हो ? संरक्षण के कौन से अधिकार ब्रिटिश सरकार के हाथ में हों ? व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्य किस प्रकार चुने जाएँ ? आदि प्रश्नों का कोई निपटारा नहीं हो सका। सम्मेलन में कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि मौजूद नहीं था। वहाँ ऐसा महसूस किया गया कि कांग्रेस की रजामंदी के बगैर देश के भविष्य का निपटारा सम्भव नहीं है। श्री तेजबहादुर सप्रू के कहने पर जनवरी सन् १९३१ को ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री मेकडानल्ड ने अपने वक्तव्य में कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने के लिये अपनी उत्सुकता प्रकट की।

समझौता

उनके आदेश से वर्किंग कमेटी के सब सदस्य छोड़ दिये गये और श्री श्रीनिवास शास्त्री, सर तेजबहादुर सप्रू और डाक्टर मुकुन्द आर० जयकर के प्रयत्न से इरविन-गान्धी समझौता ५ मार्च सन् १९३१ को हो गया। सरकार ने आर्डिनेन्स मनसूख कर दिये और सब सत्याग्रहियों को छोड़ने का आदेश दे दिया। कांग्रेस ने भी सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया, पर विदेशी वस्त्र और मादक द्रव्यों की दुकानों पर शान्तिमय धरना देने का अधिकार सुरक्षित रखा।

करांची अधिवेशन

कुछ दिन बाद करांची में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उसने इस समझौते को स्वीकार किया, गोलमेज सम्मेलन के लिये गान्धी जी को अपना प्रतिनिधि चुना, उन्हें आदेश दिया कि वे गोलमेज सम्मेलन में सेना, परराष्ट्रनीति, राष्ट्रीय आय-व्यय तथा आर्थिक नीति के सम्बन्ध में नियन्त्रण प्राप्त करने की कोशिश करें। इस अधिवेशन में एक मौलिक अधिकार समिति गठित हुई जिसकी रिपोर्ट पर मौलिक अधिकारों की भी एक महत्त्वपूर्ण योजना स्वीकार हुई।

इस योजना पर अपनी राय व्यक्त करते हुए विद्यापीठपत्रिका में एक सम्पादकीय टिप्पणी में आचार्यजी ने कहा कि समिति की रिपोर्ट की आलोचना हो सकती है। पर कांग्रेस ने आर्थिक योजना के महत्त्व को समझ कर जनता के कुछ आर्थिक अधिकारों को स्वीकार किया और कहा कि इन अधिकारों की पूर्ति का ध्यान रखा जायगा यह सब कुछ कम महत्त्व की बात नहीं है। इस टिप्पणी में उन्होंने यह भी लिखा कि 'भविष्य के सम्बन्ध में सूचना और मन्तव्यों का प्रकट करना अत्यन्त आवश्यक है जिसमें लोगों को मालूम हो जाय कि नवीन पद्धति में उनका क्या स्थान होगा।' उन्हें इस बात का भी सन्तोष था कि सन् १९३१ की यह घोषणा चीन की 'कुओमितांग की योजना से अधिक स्पष्ट और उन्नतिशील है।' आगे चलकर जब कांग्रेस ने अपनी समाजवादी घोषणा को इस करांची प्रस्ताव से सम्बन्धित करने की कोशिश की, तब आचार्य जी ने इसे अनुचित समझा पर उन्होंने करांची प्रस्ताव की आलोचना कभी नहीं की

दूसरा गोलमेज सम्मेलन

गान्धी-इरविन समझौते की बहुतसी शर्तों को सरकार ने ठीक तौर पर पूरा नहीं किया। इससे देश में काफी बेचैनी थी। दूसरी तरफ मुस्लिम लीग से कोई समझौता नहीं हो पाता था। वह मुसलमानों के लिये पृथक् चुनाव की प्रथा से प्रतिनिधित्व चाहती थी, राष्ट्रवादी मुसलमान संयुक्त निर्वाचन पद्धति के पक्ष में थे। गान्धी जी का विचार था कि जब तक देश में ही आपस के झगड़ों का समझौता नहीं होता, तब तक गोलमेज सम्मेलन के लिये लन्दन जाना व्यर्थ है। किन्तु बहुत से लोगों के समझाने पर वे गोलमेज सम्मेलन में शामिल होने लन्दन चले गये। पर वहाँ कुछ नतीजा नहीं निकला। ब्रिटेन की नयी राष्ट्रीय सरकार ने जिसमें कंजरवेटिव पार्टी का प्राधान्य था, हिन्दुस्तानियों के आपसी झगड़े से पूरा लाभ उठाया और गान्धीजी को लन्दन से खाली हाथ लौटना पड़ा। दूसरे गोलमेज सम्मेलन की गति पीछे की ओर थी। उसने समस्याओं को सुलझाने की बजाय उलझा दिया, यह जाहिर कर दिया कि कम से कम ब्रिटेन की राष्ट्रीय सरकार हिन्दुस्तान को वास्तविक राजसत्ता हस्तान्तरित करना नहीं चाहती और राष्ट्र को बहुत से टुकड़ों में बांट देना चाहती है। उसके प्रोत्साहन से हरिजनों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न ने भयंकर रूप धारण कर लिया। ऐसा मालूम होता था कि डाक्टर अम्बेदकर की जिद और ब्रिटिश सरकार का प्रोत्साहन हिन्दू समाज को ही दो टुकड़ों में बांट देगा।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन

ऐसी परिस्थिति में गान्धीजी सत्याग्रह प्रारम्भ करने के बजाय हरिजनों की सेवा के कार्य को तेजी से करना चाहते थे। पर उनके हिन्दुस्तान वापस आने से पहले ही किसानों की मांगों को लेकर संयुक्त प्रान्त और सीमाप्रान्त में संघर्ष प्रारम्भ हो गया था।

जमींदारों की लूट खसोट और विश्वव्यापी मन्दी ने युक्तप्रान्त के किसानों की दशा को बड़ा दयनीय बना दिया था। उनमें काफी हलचल और बेचैनी पैदा हो गयी थी। उनकी दशा की जांच करके उसको सुधारने के लिये सुझाव देना और उनकी बेचैनी का समुचित नेतृत्व करना कांग्रेस के लिये आवश्यक हो गया था। उस समय कांग्रेस

के दूसरे प्रमुख नेताओं और कार्यकर्ताओं के साथ साथ नरेन्द्रदेवजी ने भी इस काम में काफी दिलचस्पी ली। वे किसानों की दशा की जाँच के लिये उन्नाव, रायबरेली तथा गोरखपुर-देवरिया जिलों में गये। आगे चलकर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त की अध्यक्षता में एक जांच कमेटी नियुक्त की। सर्वश्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन, रफी अहमद किदवाई और नरेन्द्रदेव आदि इस कमेटी के सदस्य बनाये गये। इस कमेटी की शिफारिशों पर विचार किये जाने से पहले ही पण्डित जवाहरलाल नेहरू और श्री पुरुषोत्तमदास टंडन किसान आन्दोलन के सम्बन्ध में गिरफ्तार कर लिये गये। उधर सीमाप्रान्त में किसानों की बेचैनी का नेतृत्व करते हुए खान अब्दुल गफ्फार खां गिरफ्तार कर लिये गये।

गान्धीजी किसानों की बढ़ती हुई बेचैनी तथा इस सिलसिले में कांग्रेसी नेताओं की गिरफ्तारी पर वाइसराय से बात करना चाहते थे। पर लार्ड इरविन के उत्तराधिकारी लार्ड विलिंगडन बातचीत के लिये तैयार नहीं थे। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलने की सब तैयारियाँ पहले ही कर ली थीं। ऐसी परिस्थिति में ४ जनवरी सन् १९३२ को महात्मा गांधी की गिरफ्तारी पर दूसरी बार सविनय अवज्ञा संघर्ष प्रारम्भ हो गया। यह संघर्ष भी लगभग डेढ़ वर्ष तक चलता रहा, पर इसमें पहले संघर्ष के समान जोश नहीं था।

आन्दोलन को पुष्ट करने के लिये श्री शिवराव ने मद्रास में 'बाई इन्डिया लीग' कायम की और वाराणसी में मार्च सन् १९३२ में पण्डित मदनमोहन मालवीयजी ने 'अखिल भारतीय स्वदेशी संघ' स्थापित किया। उन्होंने डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय, डाक्टर भगवानदास, पण्डित हृदयनाथ कुंजरू और श्री मुशीर हुसैन किदवाई को उपाध्यक्ष और श्री जे० बी० कृपालानी, प्रोफेसर मुकुट बिहारी लाल तथा श्री शिवराव को मन्त्री मनोनीत किया। बंगाल, संयुक्त प्रान्त और बिहार आदि प्रान्तों में स्वदेशी संघ की शाखाएँ स्थापित हुईं और उनके द्वारा स्वदेशी के पक्ष में प्रचार और प्रदर्शन हुए और जनजागृति को प्रोत्साहन मिला।

दूसरे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के आरम्भ होते ही सरकार ने कांग्रेस कमेटियों को गैरकानूनी घोषित कर दिया और बहुत से नेताओं

को गिरफ्तार कर लिया। ६ जनवरी सन् १९३२ को सर्वश्री शिवप्रसाद जी गुप्त और सम्पूर्णानन्दजी दफा १४४ को तोड़ने के कारण गिरफ्तार कर लिये गये। ७ जनवरी को काशी विद्यापीठ भी गैरकानूनी घोषित कर दिया गया। विद्यापीठ पर पुलिस ने कब्जा कर लिया और विद्यार्थियों और अध्यापकों को विद्यापीठ छोड़ कर बाहर जाना पड़ा। ढाई वर्ष तक विद्यापीठ पुलिस के अधिकार में रहा। बिहार के भयंकर भूकम्प के बाद जनवरी सन् १९३४ में डाक्टर भगवान्दासजी के अनुरोध पर सरकार ने बिहार भूकम्प पीड़ितों को वहां रहने की आज्ञा दी। पर जुलाई सन् १९३४ में ही विद्यापीठ में फिर से पढ़ाई का काम प्रारम्भ हो पाया।

दूसरे सविनय अवज्ञा आन्दोलन में विद्यापीठ के अध्यापकों, प्रबन्धकों, स्नातकों और विद्यार्थियों ने पहले से भी कहीं अधिक तत्परता से काम किया। इस बार विद्यापीठ से सम्बन्धित स्कूल के अध्यापकों ने भी डट कर काम किया। आन्दोलन के संचालन के लिये संयुक्त प्रान्त को पाँच भागों में बांटा गया और प्रोफेसर रामशरण जी को सारे प्रान्त की देखभाल के लिये नियुक्त किया गया। प्रोफेसर राजाराम शास्त्री कुछ दिन बनारस हिन्दू यूनीवर्सिटी के प्राध्यापक प्रोफेसर यू. ए आसरानी के साथ लखनऊमें काम करते रहे, बाद को कानपुर क्षेत्र के संचालक की हैसियत से श्री सुमंगलप्रकाश शास्त्री के साथ कानपुर चले गये। वहीं पर कुछ समय तक काम करने के बाद वे गिरफ्तार किये गये। प्रोफेसर बीरबलसिंहजी ने प्रारम्भ में काशी में काम किया, फिर भाई के बीमार होने के कारण जौनपुर चले गये, जून में जब वापस लौटे तो पूरे प्रान्त का काम देखने लगे और नवम्बर में गिरफ्तार कर लिये गये। इनके साथ साथ सर्वश्री ठाकुरदास वकील, देवव्रत शास्त्री, वासुदेव झा, जीवनराम, त्रिभुवननारायण सिंह, कमलापति त्रिपाठी, लालबहादुर शास्त्री, हरिहरनाथ शास्त्री, रामनन्दन मिश्र, विनायक सावाराम दांडेकर, के० एन० रमन्ना, वेंकट राव, रमाकान्त शास्त्री आदि ने भी डट कर काम किया और गिरफ्तार होकर सजा भुगती। बाबू श्रीप्रकाशजी तो मार्च सन् १९३२ में ही इटावा दिवस के उपलक्ष में पकड़ लिये गये थे और श्रीविश्वनाथ शर्मा १० मई को गदर दिवस मनाते हुए पकड़े गये। काशी विद्यापीठ के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों द्वारा आन्दोलन के संचालन में आचार्य नरेन्द्रदेवजी

का विशेष हाथ था। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान मन्त्री की हैसियत से वही सब काम की देखभाल करते तथा समुचित निर्देश देते थे। वस्तुत. वही कर्ता-धर्ता थे। प्रान्तीय डिक्टेटरों की नियुक्तियां भी उन्हीं के हाथ में थीं। वे उस समय अपने मित्र श्री श्रीप्रकाश के घर पर रहते थे और बहुतसा काम श्री दामोदरदास शाह के घर से होता था। वही कांग्रेस की हलचल का मुख्य केन्द्र बन गया था। वहीं पर काशी तथा प्रान्त के कर्तव्यनिष्ठ कांग्रेस के कार्यकर्ताओं की गोष्ठियां होती थीं और निर्णय होता था कि क्या काम किया जाय, किसे कांग्रेस की ओर से प्रान्त का डिक्टेटर बनाया जाय।

गान्धीजी का अनशन

दूसरे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बीच में अर्थात् अगस्त सन् १९३२ में प्रधानमन्त्री रेमजे मेकडानल्ड ने अपना साम्प्रदायिक निर्णय घोषित किया। इस निर्णय में मुसल्मानों के साथ साथ हरिजनों के लिये भी पृथक् चुनाव के जरिये प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गयी। गान्धीजी इस निर्णय के विरुद्ध थे। उन्होंने गोलमेज सम्मेलन में ही कह दिया था कि हरिजन हिन्दू समाज के अंग हैं, उनको किसी राजनीतिक चाल के जरिये हिन्दू समाज से अलग करना उनके साथ अन्याय होगा और वह इसका विरोध करेंगे। साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा पर गान्धी जी ने जेल से ही प्रधान मन्त्री मेकडानल्ड से पत्रव्यवहार शुरू किया और २० सितम्बर को आमरण अनशन प्रारम्भ किया। इस अनशन ने सारे हिन्दू समाज में हलचल और क्षोभ पैदा कर दिया। पूना में बहुत से हिन्दू नेता एकत्र हुए और काफी बातचीत के बाद संयुक्त चुनाव के आधार पर हरिजनों को सुरक्षित स्थान देने के पक्ष में एक समझौता हुआ। बम्बई में पण्डित मदनमोहन मालवीयजी की अध्यक्षता में एक बड़े समारोह में हरिजनोद्धार का काम जोरों से शुरू करने का निर्णय हुआ। इसके बाद गान्धीजी ने हरिजन सेवा के सम्बन्ध में कई बार अनशन किया और कुछ काल तक हरिजन सेवा को ही अपना प्रमुख काम बना लिया।

वक्तव्य

सितम्बर सन् १९३२ में गान्धीजी के आमरण अनशन के अवसर पर आचार्य नरेन्द्रदेव ने आचार्य जुगलकिशोर और इस पुस्तक के लेखक के साथ हरिजनोद्धार के काम के सम्बन्ध में एक वक्तव्य प्रकाशित

किया। इस वक्तव्य में जनता से दीनहीन हरिजनों की सेवा की अपील की गयी। आचार्य जुगलकिशोर से नरेन्द्रदेवजी का पुराना सम्बन्ध था। दोनों ने असहयोग आन्दोलन में शरीक होने के बाद वर्षों राष्ट्रीय शिक्षा का काम किया था। आचार्य जुगलकिशोर गान्धीवादी हैं, नरेन्द्रदेवजी पर लोकमान्य तिलक के विचारों की छाप थी और वे आगे चलकर समाजवादी बन गये थे। पर देश की बहुतसी सार्वजनिक समस्याओं पर दोनों के विचारों में काफी साम्य था और इस कारण दोनों ने प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी में वर्षों साथ साथ काम किया। आचार्य नरेन्द्रदेव के साथ इस पुस्तक के लेखक का यह पहला सार्वजनिक कार्य था। पर आगे चलकर नरेन्द्रदेवजी ने अपने विशाल हृदय में उसे ऐसा बैठा लिया कि ग्यारह-बारह वर्ष छोटा होने पर भी वह उनका घनिष्ठ और विश्वसनीय मित्र की उपाधि से पहचाना जाने लगा और यह उसकी प्रतिष्ठा का एक प्रमुख आधार और अलङ्कार बन गया। आगे चलकर वह समाजवाद की जो कुछ भी सेवा कर पाया उसका प्रमुख आधार नरेन्द्रदेवजी का स्नेह, विश्वास और प्रोत्साहन ही था।

गिरफ्तारी

गान्धी जी के आमरण अनशन के बाद जब फिर से सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ तब नरेन्द्रदेवजी स्वयं संयुक्तप्रान्त के डिक्टेटर की हैसियत से काम करने लगे और नगर छोड़ने की आज्ञा की अवहेलना करते हुए २८ अक्तूबर सन् १९३२ को वे अपने मित्र श्रीदुर्गाप्रसाद खत्री के साथ एक सभा में गिरफ्तार हुए। सभा में लगभग १५ मिनट तक आन्दोलन के महत्त्व पर उन्होंने भाषण दिया। उन्हें एक वर्ष की कैद और दो सौ रुपये जुर्माने की सजा हुई। उनके बाद डाक्टर सम्पूर्णानन्दजी डिक्टेटर बन कर दूसरी बार जेल गये। उसके बाद डाक्टर मंगलसिंहजी डिक्टेटर की हैसियत से सरकार की आज्ञा की अवहेलना करके एक जलूस का नेतृत्व करते हुए गिरफ्तार हुए। अक्तूबर सन् १९३२ में बाबू शिवप्रसादजी दूसरी बार पकड़े गये। इस बार इन्हें जेल में लकवा हो गया। रोग ने उन्हें ऐसा धर दबाया कि वे फिर स्वस्थ नहीं हो पाये। वर्षों रोगशय्या पर पड़े रहने के बाद २४ अप्रैल सन् १९४४ को उनका निधन हुआ।

इस बार नरेन्द्रदेवजी बनारस जिला जेल में रखे गये। जेल में नरेन्द्रदेवजी का स्वास्थ्य बिगड़ता ही गया। दमे के दौरे उन्हें बराबर सताते रहे। उनकी बीमारी और कमजोरी बढ़ती ही गयी। तिस पर भी नरेन्द्रदेवजी ने जेल में बौद्ध दर्शन के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अभिधर्मकोश' का फ्रान्सीसी भाषा से अंग्रेजी और हिन्दी में अनुवाद करना शुरू किया। मूलग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखा गया था। उसका अनुवाद चीनी भाषा में हुआ। चीनी भाषा से उसका अनुवाद फ्रान्सीसी भाषा में फ्रान्स के प्रसिद्ध विद्वान् पूसे ने किया। मूल ग्रन्थ अप्राप्य था। इसलिये फ्रान्सीसी भाषा से अनुवाद करने की जरूरत पड़ी। इस काम के लिये समुचित सामग्री जुटाने में नरेन्द्रदेवजी के मित्र और सहपाठी श्री गोपीनाथजी कविराज ने उन्हें विशेष सहायता दी। कुछ ऐसी पुस्तकों को, जो हिन्दुस्तान में उपलब्ध नहीं थीं, इंगलिस्तान के पुस्तकालय से अपने नाम पर मंगा कर उन्होंने नरेन्द्रदेवजी के पास जेल में भेजीं। जिला जेल के अधिकारी फ्रान्सीसी भाषा में लिखी पुस्तकों को नरेन्द्रदेवजी को देने से इनकार करते थे। पर श्रीप्रकाशजी के कहने पर जेल के इन्स्पेक्टर जनरल कर्नल पामर ने इन किताबों को जेल में आने की आज्ञा दे दी तथा नरेन्द्रदेवजी अपना काम कर सके। पर बीमारी के कारण थोड़ा ही काम हो पाया। जेल से छूटने के बाद भी उन्हें इस काम को पूरा करने की चिन्ता बनी रही। जब अवसर मिलता वे अनुवाद को पूरा करने की कोशिश करते। आखिर सन् १९४२-४५ में अहमदनगर के किले में नजरबन्दी के समय में उन्होंने इसे पूरा किया।

बनारस जिला जेल में नरेन्द्रदेवजी अपने बहुत से चिरपरिचित साथियों के साथ रहते थे। इनमें सर्वश्री श्रीप्रकाश, सम्पूर्णानन्द, ठाकुरदास वकील, यज्ञनारायण उपाध्याय, आचार्य कृपालानी प्रमुख थे। इनमें श्री श्रीप्रकाश नरेन्द्रदेवजी की आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान रखते थे। सब पुराने साथी काफी सौहार्द्र के साथ रहते थे। पर कभी कभी किसी न किसी कारण से बातचीत में तनाव और कटुता पैदा हो ही जाती थी। किन्तु नरेन्द्रदेवजी के सभी से अच्छे सम्बन्ध सदा बने रहते थे। वे सबसे स्नेह करते और सब उनसे स्नेह करते थे।

इस बार जेल में कुछ नये साथियों से भी उनकी घनिष्ठता बढ़ी। इनमें डाक्टर भगाल सिंह और श्री विश्वेश्वर प्रसाद सिन्हा प्रमुख थे

श्री विश्वेश्वर प्रसाद सिन्हा जो वी० पी० सिन्हा के नाम से प्रसिद्ध हैं शीघ्र ही आचार्यजी के विश्वसनीय साथी बन गये। उन्होंने आगे चलकर बीस वर्ष तक आचार्य नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व में समाजवादी आन्दोलन में काम किया, जनतान्त्रिक समाजवाद के सिद्धान्तों तथा रीति-नीति की व्याख्या की, उन्हीं की देखरेख और सम्पादकत्व में 'संघर्ष' का सम्पादन किया। सिन्हा ने स्वातन्त्र्य-संघर्षों में भी डटकर काम किया और जेल की यातनाएँ सहीं। डाक्टर मंगलसिंहजी, जो उस समय बनारस हिन्दू यूनिवर्सीटी में मेडिकल आफिसर का काम करते थे, सन् १९१८ से ही देश की राजनीतिक हलचल से सम्बन्धित थे। वे भी अन्त तक स्वातन्त्र्य-संग्रामों में भाग लेते और जेल की यातनाएँ सहते रहे। डाक्टर साहब बहुत ही विनोदप्रिय व्यक्ति हैं। द्वेष और अहंकार से निर्मुक्त उनके उपहास में विशेष आकर्षण होता है। जेल में उनका और नरेन्द्रदेवजी का पारस्परिक विनोद आचार्यजी के मनोरंजन का विशिष्ट विषय था।

बिहार भूकम्प

आचार्य जी के जेल से छूटने के कुछ महीनों के बाद पन्द्रह जनवरी सन् १९३४ को बिहार में भयंकर भूचाल आया जिसके कारण कई जिलों के बहुत से शहर, कस्बे और गाँव बर्बाद और कई लाख परिवार बेघर और साधनहीन हो गये। सरकार ने अनुभव किया कि भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिये सारे देश का सहयोग परमावश्यक है। उसने यह भी अनुभव किया कि बिहार के सर्वप्रिय नेता राजेन्द्र-प्रसाद जी के नेतृत्व में ही सहायता का काम ठीक तौर पर चल सकता है। अतः सरकार ने राजेन्द्र बाबू को जेल से छोड़ दिया। डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने केन्द्रीय सहायता कमेटी का संगठन कर सारे देश के सहयोग से भूकम्प पीड़ितों की सहायता का प्रबन्ध किया। काशी विद्यापीठ के प्राध्यापक, प्रबंधक और विद्यार्थी भी सहायता के काम में हाथ बटाने के लिये बिहार दौड़ पड़े। विद्यापीठ के भवन भी पीड़ितों के रहने के लिये खोल दिये गये। पटना और मुंगेर के कार्यालयों में तथा चम्पारन जिले के राजेपुर में सहायता का काम विद्यापीठ के लोगों के सुपुर्द हुआ। राजेपुर में प्रोफेसर बीरबल सिंहजी अपने विद्यार्थियों

के साथ एक मास रहे, नरेन्द्रदेवजी भी एक सप्ताह से अधिक रहे। केन्द्रीय सहायता कमेटी के सदस्य की हैसियत से उन्होंने पटना में भी काफी काम किया। भूकम्प के सम्बन्ध में एक छोटी सी पुस्तक भी लिखी। श्रीसम्पूर्णानन्द ने मुंगेर में तथा श्री श्रीप्रकाश एवं श्री रामशरण ने पटना में भूकम्प पीड़ितों की सेवा की। लौटते समय नरेन्द्रदेवजी और बीरबल सिंह जी अपने पुराने छात्र सर्वश्री भुवनारायण और विभूति मिश्र के घर गये। विभूति मिश्रजी ने, जो इस समय लोकसभा के सदस्य हैं, पुरानी पद्धति के अनुसार अपने गुरुओं को धोती और जनेऊ भेंट की। आचार्य जी ने यह कहते हुए कि वे पुरानी पद्धति के गुरु नहीं हैं अपने शिष्य के अनुरोध पर मुसकराते हुए भेंट स्वीकार कर ली।

विद्यापीठ का योगदान

दोनों सविनय अवज्ञा आन्दोलनों में विद्यापीठ के प्राध्यापकों संचालकों, स्नातकों और विद्यार्थियों के महत्त्वपूर्ण सहयोग ने राष्ट्रीय जीवन में विद्यापीठ के स्थान को काफी ऊँचा उठा दिया। विद्यापीठ एक विशिष्ट राष्ट्रीय संस्था समझी जाने लगी। उसके प्राध्यापक और स्नातक संयुक्तप्रान्त की राजनीति में विशेष रूप से छा गये। १९३४-३५ के चुनाव में जहाँ श्रीप्रकाशजी केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य चुने गये, वहाँ सन् १९३७ में सर्वश्री नरेन्द्रदेवजी, सम्पूर्णानन्दजी, बीरबलसिंहजी, रामशरणजी आदि प्राध्यापक तथा सर्वश्री कमलापति त्रिपाठी, लालबहादुर शास्त्री, हरिहरनाथ शास्त्री आदि अनेकों स्नातक प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। सन् १९३८ में श्री सम्पूर्णानन्दजी शिक्षामन्त्री नियुक्त हुए। विद्यापीठ के बहुत से प्रबन्धक, प्राध्यापक और स्नातक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के सदस्य चुने गये और उनके द्वारा विद्यापीठ के गौरव और प्रभाव की अभिवृद्धि हुई।

पिछले संघर्षों की तरह सन् १९४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह तथा सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' संघर्ष में भी विद्यापीठ के प्राध्यापकों, स्नातकों, प्रबन्धकों और विद्यार्थियों ने डट कर काम किया और देश की स्वतन्त्रता के लिये कुर्बानियां कीं और यातनाएँ सहीं। स्वतन्त्रता मिल जाने पर विद्यापीठ का परिवार कई दलों में बट गया, पर अधिकांशतः कांग्रेस से ही सम्बन्धित रहा कांग्रेस दल के सदस्य की हैसियत से

ही वे लोकसभा और विधानसभा के सदस्य निर्वाचित हुए और उन्होंने बड़े ऊँचे पदों पर काम किया और कर रहे हैं। श्री श्रीप्रकाशजी ने कराँची में हाई कमिश्नर तथा केन्द्र में व्यापार मन्त्री का काम करने के बाद पन्द्रह वर्ष तक आसाम, मद्रास, बम्बई और महाराष्ट्र के राज्यपाल के पदों को सुशोभित किया। श्रीसम्पूर्णानन्दजी ने वर्षों उत्तर प्रदेश के मन्त्री और मुख्य मन्त्री का काम करने के बाद राजस्थान के राज्यपाल के पद को सुशोभित किया। श्री लालबहादुर शास्त्री ने राज्य और केन्द्र के मन्त्री का काम करने के बाद देश के प्रधान मन्त्री का कार्यभार सँभाला। इसी तरह सर्वश्री कमलापति त्रिपाठी और अलगूराय शास्त्री ने उत्तर प्रदेश में तथा श्री भोला पासवान ने बिहार में एवं श्रीरामकृष्ण हेगड़े ने मैसूर में मन्त्री की हैसियत से राष्ट्र की सेवा की। सर्वश्री बी० वी० केसकर, त्रिभुवन नारायण सिंह तथा रामसुभग सिंह ने केन्द्र में राज्य मन्त्रियों की हैसियत से समाज की सेवा की। विद्यापीठ के अनेक दूसरे स्नातकों ने भी उत्तर प्रदेश तथा दूसरे राज्यों की राजनीति में भी भाग लिया और ऊँचे ऊँचे पदों पर समाज की सेवा की। श्री रामनन्दन मिश्र ने किसान आन्दोलन में तथा सर्वश्री हरिहरनाथ शास्त्री और राजाराम शास्त्री ने मजदूर आन्दोलन में बहुत काम किया। इन तीनों ने आचार्य नरेन्द्रदेव द्वारा संचालित समाजवादी आन्दोलन में भी योग दिया।

विद्यापीठ के परिवार में नरेन्द्रदेवजी का विशिष्ट स्थान था। करीब करीब सब पर उनकी योग्यता की छाप थी। उत्तर प्रदेश की राजनीति में विद्यापीठ के अध्यापकों और स्नातकों का प्रभाव सन् १९३४ से १९४८ तक कांग्रेस में नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व का एक बड़ा सामाजिक आधार था।

७. समाजवादी आन्दोलन

सोवियत रूस और कम्युनिस्ट

अठारहवीं शताब्दी की फ्रान्सीसी क्रान्ति के बाद सन् १९१७ की रूसी क्रान्ति को आचार्यजी सबसे बड़ी ऐतिहासिक घटना मानते थे। वे रूसी क्रान्ति से काफी प्रभावित थे। सन् १९१९ में ही उन्होंने समाजवाद और रूसी क्रान्ति पर बड़ी तत्परता से पुस्तकें पढ़नी शुरू की और दो वर्ष में इन वादों के करीब करीब सभी उपलब्ध मुख्य मुख्य ग्रन्थ उन्होंने पढ़ लिये। वे मार्क्स और एंगिल्स के साथ साथ लेनिन से भी बहुत प्रभावित थे। पर स्तालिन की नीति और गति-विधि उन्हें पसन्द नहीं थी। उनका विचार था कि स्तालिन ने मार्क्सवाद के सिद्धान्तों को विकृत कर दिया है। कम्युनिस्ट पार्टी के अनैतिक व्यवहार से भी वे बहुत असन्तुष्ट थे। ऐसी हालत में मार्क्सवाद पर विश्वास रखते हुए भी उनके लिये हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी से, जो स्तालिनवादी थी, अपना सम्बन्ध जोड़ना सम्भव नहीं था।

मार्च सन् १९२९ में 'सोवियत रूस की एशिया सम्बन्धी नीति' पर नरेन्द्रदेवजी ने विद्यापीठपत्रिका में एक लेख प्रकाशित किया। इस लेख में उन्होंने बताया कि पुराने साम्यवादी अफ्रीका और एशिया के देशों को 'उपेक्षा भाव' से देखते थे और 'इन महाद्वीपों के परतन्त्र राष्ट्रों को स्वतन्त्र कराने की उनको कोई फिक्र नहीं थी', पर लेनिन इसके लिये प्रयत्न करना सोवियत रूस और साम्यवादी शक्तियों का कर्तव्य समझते थे। लेनिन के विचार में 'आर्थिक साम्राज्यवाद पूँजीवाद की आखिरी मञ्जिल है' तथा 'साम्राज्यवादी राष्ट्रों की शक्ति का मुख्य स्रोत एशिया और अफ्रीका के वे देश हैं जो आज उनके अधीन हैं। अतः इन देशों के राष्ट्रीय आन्दोलनों की सहायता करना, उन्हें सबल बनाना साम्यवाद के स्थायित्व और प्रगति के लिये तथा साम्राज्यवाद और पूँजीवाद को क्षीण करने के लिये जरूरी है'। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए लेनिन के नेतृत्व में सोवियत रूस ने एशिया में
के विरुद्ध प्रचार प्रारम्भ किया और ऐसा सङ्घ सगठित किया

जो साम्राज्यवाद का विरोध करे। उसने रूस की पुरानी साम्राज्यवादी नीति का परित्याग कर फारस, तुर्की, अफगानिस्तान, चीन आदि देशों से स्वतन्त्रता और आत्मनिर्णय के आधार पर नयी सन्धियाँ कीं जिनमें पूँजीवाद की एशिया सम्बन्धी नीतियों की खुले शब्दों में निन्दा की गयी। नरेन्द्रदेवजी ने इस लेख में यह भी बताया कि लेनिन ने एशिया और अफ्रिका के देशों को तीन भागों में बाँटा था। पहले भाग में वे देश आते थे जहाँ वर्तमान युग की वैज्ञानिक व्यवसाय-पद्धति का उपक्रम नहीं हुआ था, पर जो साम्राज्यवादी राष्ट्रों द्वारा पददलित और त्रसित थे। दूसरे विभाग में उन देशों की गिनती की गयी थी जहाँ इन नवीन व्यवसाय पद्धति का उपक्रम तो हो गया था, पर उसका विशेषरूप से विकास नहीं हुआ था। तीसरी कोटि में वे देश थे जहाँ इस पद्धति का काफी चलन हो गया था। लेनिन पहले कोटि के देशों के राष्ट्रीय आन्दोलनों को सहायता देनी ही काफी समझते थे। दूसरी कोटि के देशों में वह साम्यवाद का प्रचार करना भी जरूरी समझते थे। तीसरी कोटि के देशों में वह एक सबल साम्यवादी दल के द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व जरूरी समझते थे। लेनिन हिन्दुस्तान को इस तीसरी श्रेणी में रखते थे। नरेन्द्रदेवजी ने इस लेख में यह भी कहा कि 'साम्यवादी के लिये साम्यवाद का सिद्धान्त प्रधान है और सब बातें गौण हैं' तथा 'सोवियत रूस राष्ट्रवाद का विरोधी है और यदि वह किसी राष्ट्र को स्वाधीन होने में सहायता देता है तो केवल इसी विचार से कि इससे साम्राज्यवाद पर आघात होगा और यदि परिस्थिति अनुकूल हुई तो साम्यवाद का प्रयोग करने के लिये नया क्षेत्र भी हाथ आयेगा।'

जब नरेन्द्रदेवजी ने यह लेख लिखा था उस समय उन्हें सम्भवतः नवम्बर सन् १९२८ की कम्यूनिस्ट इण्टरनेशनल के निर्णयों का ठीक पता नहीं था, क्योंकि इसमें इसका कोई जिक्र नहीं है। पर जब जनवरी सन् १९३० में श्री जयप्रकाश नारायण से उनकी भेंट हुई उस समय उन्हें उन निर्णयों का पूरा पता था और वे उसकी वैदेशिक तथा उपनिवेश-सम्बन्धी नीति के और स्तालिन के नेतृत्व के कट्टर विरोधी थे। इन निर्णयों ने नरेन्द्रदेवजी को मार्क्सवाद पर विश्वास रखते हुए भी साम्यवाद और कम्युनिस्टों से बहुत दूर कर दिया था।

स्तालिन के नेतृत्व में कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल (थर्ड इन्टर-नेशनल) ने निश्चय किया था कि संसार भर के कम्युनिस्ट सोवियत यूनियन को संसार के सब मजदूरों की पितृभूमि समझें, अपनी गतिविधि को सोवियत यूनियन की वैदेशिक नीति के अनुकूल बनाएँ, सोवियत यूनियन की तानाशाही के नेतृत्व में मजदूरों की ससारव्यापी तानाशाही कायम करने का प्रयत्न करें, तथा मध्यमवर्गीय जनतान्त्रिक और जन-तान्त्रिक समाजवादी संस्थाओं और नेतृत्व से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर तथा उनका भण्डाफोड़ कर श्रमिक जनता को अपने नेतृत्व में लाने का प्रयत्न करें। आचार्यजी को थर्ड इण्टरनेशनल के ये सभी फैसले गलत दिखाई देते थे और इनके आधार पर हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी के काम देशहित और समाजवाद के लिये घातक मालूम होते थे। उनका मत था कि भारत ही हिन्दुस्तान के मजदूरों की पितृभूमि है और सोवियत यूनियन के साथ पूरी सहानुभूति रखते हुए भी उसे सारे संसार के मजदूरों की पितृभूमि नहीं माना जा सकता। उनका विचार था कि समाजवाद को कायम करने के लिये राजनीतिक स्वतन्त्रता आवश्यक है तथा उसे प्राप्त करने के लिये साम्राज्य विरोधी बहुवर्गीय राष्ट्रीय संस्था की जरूरत है। देश की आजादी के प्रश्न को सोवियत यूनियन की वैदेशिक नीति का पुछल्ला नहीं बनाया जा सकता और आजाद हिन्दुस्तान पर सोवियत यूनियन की तानाशाही का आधिपत्य कबूल नहीं किया जा सकता। कांग्रेस ही एक ऐसी राष्ट्रीय संस्था है जो देश की सब साम्राज्य विरोधी शक्तियों को जुटाकर आजादी की लड़ाई लड़ सकती थी। इसलिये कम्युनिस्टों का कांग्रेस से अलग होना, उसे बदनाम करना, उसकी शक्ति को कमजोर करना और गान्धी जी को ब्रिटिश साम्राज्यशाही का एजेंट बताना कम्यूनिस्ट मेनिफेस्टो में प्रतिपादित मार्क्सवाद के बुनियादी सिद्धांत की अवहेलना करना ही था। देशव्यापी सविनय अवज्ञा आन्दोलनों से अपने को अलग रखना और उसका विरोध करना आचार्यजी के विचार में कम्युनिस्टों की एक बड़ी हिमाकत थी। जनान्दोलनों से समाजवादी शक्तियाँ को अलग रखना किसी प्रकार भी समाजवाद की प्रगति के लिये हितकर नहीं हो सकता था।

फरवरी सन् १९३४ में कम्युनिस्ट पार्टी ने साम्राज्यवाद का विरोध करने के लिये सभी शोषित वर्गों का एक ऐसा सयुक्त मोर्चा बनाने

का निश्चय किया जिसके स्तंभ कम्युनिस्ट पार्टी के प्रभाव में तैयार किये हुए कार्यकर्ता हों और जो कांग्रेस से केवल स्वतन्त्र ही नहीं, किन्तु उसके विरोधी भी हों। साम्राज्यवाद के विरोध में कांग्रेसविरोधी संस्था का निर्माण आचार्यजी को किसी प्रकार ठीक नहीं जंचता था। वे तो कांग्रेस को ही साम्राज्य-विरोधी संयुक्त मोर्चा बनाना चाहते थे।

राष्ट्रीय कार्यक्रम में परिवर्तन पर विचार

सन् १९३२-३३ के सविनय अवज्ञा आन्दोलन की विफलता ने यह सिद्ध कर दिया था कि राष्ट्रीय आन्दोलन को सफल करने के लिये उसे व्यापक बनाना होगा और उसके कार्यक्रम में कुछ मौलिक परिवर्तनों की आवश्यकता है। समस्या पर काफी चिन्तन और मनन के बाद कुछ दूसरे कांग्रेसी कार्यकर्ताओं की तरह नरेन्द्रदेवजी भी इस निश्चय पर पहुँच गये थे कि स्वराज्य को हासिल करने के लिये राष्ट्रीय आन्दोलन में निम्नमध्यम श्रेणी के नवयुवकों के साथ-साथ किसानों और मजदूरों को भी संगठित रूप में शामिल करना होगा। उनकी धारणा थी कि किसानों और मजदूरों को आजादी की लड़ाई में आकृष्ट करने के लिये जरूरी है कि स्वतन्त्रता-संघर्ष को किसानों और मजदूरों की आर्थिक मांगों से जोड़ा जाय। जब किसानों और मजदूरों को पता चलेगा कि स्वराज्य के साथ-साथ आर्थिक आजादी भी हासिल होगी, उनका शोषण और दमन खत्म होगा, उन्हें सुख और आजादी की जिन्दगी बसर करने का अवसर मिलेगा, तब वे आजादी की लड़ाई में उत्साह से शामिल होंगे और तभी साम्राज्यविरोधी संघर्ष में शक्ति आयेगी। वे यह भी सोचने लगे थे कि इस देश में हमें राष्ट्रीयता और समाजवाद दो युगों का काम साथ-साथ करना है और इसलिये राष्ट्रीयता की शक्तियों को समाजवाद की तरफ और समाजवादी शक्तियों को राष्ट्रीयता की ओर प्रेरित करना होगा।

सामाजिक परिस्थिति

इस काम के लिये देश में आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक परिस्थिति भी पैदा हो गयी थी। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद कल-कारखानों के मजदूर काफी सजग हो गये थे, मजदूर संगठन भी देशव्यापी हो चला था। किसान भी जागने लगा था। उसके लिये अपनी बिगड़ती

हुई दयनीय आर्थिक दशा सहन करना नामुमकिन हो गया था। उसने अपनी दशा को सुधारने के लिये संघर्ष शुरू कर दिये थे। सजग किसान राष्ट्रीय आन्दोलन में भी शरीक होने लगा था। सन् १९३० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में बहुत से किसानों ने हिस्सा लिया था और उनमें से कुछ किसान नवयुवक कांग्रेस के प्रभावशाली अंग बन चुके थे। कांग्रेस के लिये भी किसानों की आर्थिक माँगों की उपेक्षा नामुमकिन होती जा रही थी। कतिपय कांग्रेसी नेताओं ने किसानों के संघर्ष में दिलचस्पी लेना और जरूरत पड़ने पर नेतृत्व करना शुरू कर दिया था और सन् १९३१ में कांग्रेस ने अपने मौलिक अधिकारों के प्रस्ताव में साफ कर दिया था कि वह जिस संविधान को मंजूर करेगी उसमें भूमि-सुधारों की, विशेषतः लगान की कमी की, व्यवस्था होगी या स्वराज्य-सरकार को इसकी व्यवस्था करने का अधिकार होगा। कांग्रेस से सम्बन्धित नवयुवकों ने मार्क्सवाद का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था। प्रथम सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद कतिपय सत्याग्रहियों ने, जिनमें सर्व श्री गंगाशरण सिंह, रामवृक्ष बेनीपुरी और फूलनप्रसाद वर्मा प्रमुख थे, पटना में एक समाजवादी संगठन भी कायम कर लिया था। दो एक अन्य स्थानों में भी इस प्रकार के संगठन बन गये थे। दूसरे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के जमाने में नासिक जेल में कुछ सत्याग्रही नवयुवकों ने, जिनमें सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन, नाना साहब गोरे, एम. आर. मसानी, के के. मेनन, अशोक मेहता और एम. एल. दान्तवाला प्रमुख थे, समाजवादी आन्दोलन की रूपरेखा तैयार की थी। यूसुफ महर अली जैसे नवयुवक आन्दोलन के कतिपय नेता भी समाजवाद की ओर आकृष्ट होने लगे थे। दूसरे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के विफल होने पर सुधारवादी विधानवादी शक्तियाँ भी जोर मारने लगीं थीं, जिसकी प्रतिक्रिया में बहुत से नवयुवक साम्राज्यशाही के विरुद्ध तीव्र आन्दोलन के पक्ष में थे। गो इसमें कुछ फासिज्म और नाजिज्म से प्रेरित थे और कुछ की विचार-धारा अनिश्चित थी, कुछ का समाजवादी विचारों की ओर ही झुकाव था। पुराने क्रान्तिकारियों ने भी जेल में काफी अध्ययन, चिन्तन और मनन किया था। जहाँ इनमें से कुछ नाजीवाद की अतिराष्ट्रीयता के प्रभाव में आ गये थे, कुछ राष्ट्रीयता के साथ-साथ मार्क्सवाद से भी अनुप्राणित और प्रभावित होने लगे थे

जयप्रकाश नारायण से भेंट

ऐसी परिस्थिति में दूसरे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद नरेन्द्रदेवजी फिर काशी विद्यापीठ में अध्यापन के लिये वापिस आ गये और जयप्रकाश नारायणजी भी जेल से छूटने पर अपने छोटे भाई के पास जो उस समय काशी विश्वविद्यालय के विद्यार्थी थे, काशी में रहने लगे। इन दोनों का सम्पर्क कुछ वर्ष पहले जनवरी सन् १९३० में उस समय हुआ था कि जब जयप्रकाशजी अपने एक अमरीकी गुरु प्रोफेसर हरबर्ट मिलर को काशी विद्यापीठ दिखाने वहां गये थे। उस समय जयप्रकाशजी आचार्य नरेन्द्रदेव के सहज स्वभाव से, उनके आत्मीयता के व्यवहार से बहुत प्रभावित हुए। उन्हें यह जानकर भी खुशी हुई कि उनकी तरह नरेन्द्रदेवजी भी मार्क्सवादी विचारधारा से सहमत हैं, पर स्तालिन की नीति-रीति से असन्तुष्ट हैं। इस सम्पर्क ने दूसरे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के जमाने में, जबकि उन दोनों की काशी में कई बार भेंट हुई थी, स्नेह का रूप ले लिया था। दोनों स्नेही राष्ट्र की आजादी और समाजवादी समाज दोनों के समर्थक थे, दोनों उस समय मार्क्सवादी थे, दोनों ही रूसी क्रान्ति को एक ऐतिहासिक क्रान्ति मानते थे और दोनों स्तालिन की नीति से, कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के सन् १९२८ के निर्णय से और हिन्दुस्तानी कम्युनिस्टों की गतिविधि से असन्तुष्ट थे। काशी में दोनों में देश की दशा पर, राष्ट्रीय आन्दोलन के भविष्य पर और मार्क्सवाद पर काफी विचारविमर्श हुआ। अन्ततोगत्वा समाजवाद में अभिरुचि रखनेवाले कतिपय कांग्रेसी कार्यकर्ताओं को विचार-विमर्श के लिये काशी बुलाया गया। श्री श्रीप्रकाशजी के मकान पर दो दिन तक गोष्ठी होती रही। इसमें सर्वश्री श्रीप्रकाश, नरेन्द्रदेव, जयप्रकाश नारायण, गंगाशरणसिंह, एम० आर० मसानी, सम्पूर्णानन्द, एस० एम० जोशी आदि उपस्थित थे। वहां निश्चय हुआ कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अवसर पर एक समाजवादी सम्मेलन बुलाया जाय और कांग्रेस के तत्त्वावधान में एक समाजवादी दल के संगठन पर विचार किया जाय। इस सम्मेलन के सभापतित्व के लिये कतिपय मित्रों ने आचार्य नरेन्द्रदेव का नाम पेश किया। आचार्यजी ने जो स्वभाव से संकोची थे और जिन्हें नेता बनने की आकांक्षा नहीं थी, सम्मेलन का

सभापति बनने से इनकार किया। पर जयप्रकाशजी के आग्रह पर वे राजी हो गये।

सोशलिस्ट कनवेंशन

मई सन् १९३४ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन के अवसर पर पटना में आचार्य नरेन्द्रदेवजी की अध्यक्षता में समाजवादी सम्मेलन हुआ। अपने अध्यक्षीय भाषण में आचार्यजी ने राष्ट्रीय संघर्ष और समाजवाद के घनिष्ठ सम्बन्ध पर प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि साम्राज्य-शासित राष्ट्र के लिये राजनीतिक स्वतन्त्रता समाजवाद की पहली आवश्यक मंजिल है। मध्यम वर्गीय जनतान्त्रिक क्रान्ति के काल में समाजवादी शक्तियों का राष्ट्रीय आन्दोलन से अलग रहना घातक होगा। राष्ट्रीय आन्दोलन की अपनी कामयाबी के लिये निम्न-मध्यम श्रेणी और जनता की शक्तियों के सम्मिलित प्रयास की जरूरत है। उसके कार्यक्रम में जनता के निमित्त आर्थिक कार्यक्रम का समावेश करने की आवश्यकता है। उनका विचार था कि समाजवादी कांग्रेस में काम करते हुए राष्ट्रीय संघर्ष को मजदूरों, किसानों और मध्यम वर्ग के संघर्ष से सम्बन्धित करें। पूँजीवादी व्यवस्था की विषमताओं और फासिज्म की प्रतिक्रियावादी स्वरूप की समीक्षा करते हुए उन्होंने समाजवाद को ही उनकी विषमताओं का निराकरण बताया। उनकी यह भी धारणा थी कि क्रान्तिकारी परिस्थिति की मौजूदगी में समाजवादी क्रान्ति पहले उस देश में हो सकती है, जहां जनता आर्थिक शोषण से बर्बाद हो गयी है, पर औद्योगिक विकास काफी नहीं हो पाया है। उनके विचार में समाजवादी राज्य में मनुष्य फरिश्ते नहीं बन जायेंगे। पर यह निश्चय है कि मौजूदा समाज के बन्धनों से मुक्त होने पर मानव आचरण बहुत ऊँचा उठ सकेगा।

सोशलिस्ट कन्वेनशन ने अखिल भारतीय सोशलिस्ट पार्टी बनाने का निश्चय किया और नरेन्द्रदेवजी की अध्यक्षता में उस पार्टी के संविधान और कार्यक्रम का प्रारूप तैयार करने के लिये प्रारूप समिति बनायी। श्री जयप्रकाश नारायण को संगठन मन्त्री नियुक्त किया गया इस सम्मेलन में कौंसिल प्रवेश और संसदीय कार्यों की ओर बढ़ती हुई कांग्रेस की प्रवृत्ति का विरोध किया गया कांग्रेस से मांग की

गयी कि वह श्रमिक जनता के राज्य की स्थापना, योजनाबद्ध आर्थिक विकास, बुनियादी और प्रमुख उद्योगों का राष्ट्रीकरण, अर्थव्यवस्था के निजी भाग में उत्पादन, वितरण तथा ऋण सम्बन्धी सहकारी समितियों का गठन और विदेशी व्यापार पर राजकीय अधिकार, देशी नरेशों और जमींदार वर्ग की समाप्ति, भूमि का पुनर्वितरण, राज्य द्वारा सहकारी और सामूहिक खेती का प्रोत्साहन, किसानों और मजदूरों के कर्ज का खात्मा और वयस्क मताधिकार के आधार पर संसद के चुनाव को अपने कार्यक्रम में शामिल करे।

गान्धीजी का दौरा

जुलाई सन् १९३४ को गान्धीजी हरिजन दौरा करते हुए काशी आये। गान्धीजी का काशी में सदा भव्य स्वागत होता रहा था। पर इस बार उनका आगमन चिन्ता से खाली नहीं था। गान्धीजी के हरिजनोद्धार के कार्य से कट्टरपंथी असन्तुष्ट ही नहीं रुष्ट भी थे और पूना तथा देवघर में अपने रोष का अभद्र प्रदर्शन भी कर चुके थे। डर था कि कहीं काशी में भी ऐसा न हो। काशी विद्यापीठ में गान्धीजी के रहने का प्रबन्ध था। बाबू शिवप्रसाद गुप्त की ओर से अतिथि-सत्कार का प्रबन्ध था। जिलाधीश श्री जसबीर सिंह चाहते थे कि गान्धीजी रेलवे स्टेशन से सीधे रास्ते से विद्यापीठ न आयें, बल्कि उन्हें रेलवे स्टेशन की साइडिंग में उतार कर अज्ञात रास्ते से विद्यापीठ लाया जाय। एक सज्जन इस बात से राजी भी हो गये थे। पर आचार्यजी की राय थी कि गान्धीजी को इस तरह से विद्यापीठ नहीं लाना चाहिए। उनका विचार था कि हिन्दू यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों को गान्धीजी की रक्षा के लिये स्टेशन पर बुलाया जाय, स्टेशन पर गान्धीजी का पूरी धूमधाम से स्वागत किया जाय और उन्हें सीधे रास्ते से काशी विद्यापीठ लाया जाय। इस सम्बन्ध में वे अपनी राय पर अडिग थे, किसी की बात सुनने को तैयार नहीं थे। वे रोष में प्रबन्धकों की अकर्मण्यता की समीक्षा भी कर देते थे। आखिर आचार्यजी की बात ही होकर रही। पूज्य मालवीयजी को फोन किया गया। हिन्दू यूनिवर्सिटी से पाँच सौ विद्यार्थी वर्षा में भीगते हुए स्टेशन पर पहुँचे और स्टेशन के बाहर लाइन लगाकर खड़े हो गये। स्टेशन पर गाड़ी

आयी। आचार्यजी ने जोर से 'गान्धीजी की जय' का नारा लगाया, फिर क्या था, स्टेशन पर खड़ी स्वागतमण्डली ने नारा लगाया और बाहर खड़े विद्यार्थियों ने गान्धीजी की जय के नारों से सारे वायुमण्डल को ऐसा गुँजा दिया कि कट्टरपंथियों के होश उड़ गए, उनके नारे फीके पड़ गये। गान्धीजी को स्टेशन के प्लेटफार्म पर उतारा गया और एक मोटर पर बैठा कर उन्हें विद्यापीठ लाया गया। सब अधिकारी और कट्टरपंथी देखते ही रह गये। पर गान्धीजी का ढंग निराला ही था। उन्होंने कट्टरपंथियों को मुँह चढ़ा रखा था। एक क्षेत्रभोजी विद्यार्थी लालनाथ उनके साथ घूमता-फिरता था, जहाँ वे जाते थे, वहाँ वह भी जाता था। काशी में भी उसने ऊधम मचाना शुरू किया। वे कभी काशी के परम्परागत कोतवाल भैरोनाथजी का प्रतिनिधि बन उनके नाम पर गान्धीजी को गिरफ्तारी का वारण्ट देता, कभी विद्यापीठ के पास किसी पेड़ पर चढ़ गान्धीजी को खरी-खोटी सुनाने लगता। उसकी ये हरकतें सहन करना कठिन हो रहा था। आखिर एक दिन जब लालनाथ पेड़ पर चढ़ा इधर-उधर की बातें कह रहा था, आचार्य नरेन्द्रदेव क्रोध में भर गये, उनका चेहरा क्रोध से तमतमाने लगा और क्रोध के आवेश में वे लालनाथ को बुरा-भला कहने लगे। लोगों को डर हुआ कि कहीं आचार्यजी के क्रोध से उत्तेजित हो उनके विद्यार्थी लालनाथ पर टूट न पड़ें और कुछ ऐसी बात न कर बैठें कि जिससे दुःखी हो गान्धीजी प्रायश्चित्त के रूप में उपवास का निर्णय कर डालें। पर क्रुद्ध आचार्य से बात करने की किसी का साहस नहीं होता था। आखिर हिम्मत करके एक व्यक्ति ने जोर से कहा कि 'आचार्यजी गान्धीजी के एक सप्ताह के उपवास की जिम्मेदारी कौन अपने ऊपर लेगा'। आचार्यजी का क्रोध तुरन्त शान्त हो गया और वे वहाँ से हट गये।

जिस जमाने में गान्धीजी काशी आये उस समय उनका श्री जयप्रकाश नारायण से पत्र-व्यवहार चल रहा था। जयप्रकाशजी ने गान्धीजी को लिखा कि वे नरेन्द्रदेवजी से बातें करें। काशी विद्यापीठ में गान्धीजी नरेन्द्रदेवजी और उनके बहुत से साथियों से मिले। दो दिन दो दो घंटे तक बैठक होती रही। गान्धीजी ने कहा कि आप लोग यह गलत समझते हैं कि जब जवाहरलाल नेहरू जेल में हैं, मैं ऐसी बातें करना चाहता हूँ जिन्हें वे नहीं चाहते गान्धीजी ने यह भी कहा कि मैं तो

जीवन भर लड़ता रहा हूँ, पर जो मेरे कहने पर आन्दोलन में शरीक हुए, उनसे लड़ने की मेरी कोई इच्छा नहीं, अगर आप चाहें तो आप कांग्रेस का उत्तरदायित्व सँभालें, मैं वर्किंग कमेटी के सदस्यों से इस्तीफा दिलवा दूंगा। यह सुनते ही सम्पूर्णानन्दजी ने कहा कि ताकत ऐसे नहीं हासिल होती। पर आचार्यजी ने नम्रता और विनय से कहा कि 'महाराज, हम तो कांग्रेस में अल्पसंख्यक हैं, हम कांग्रेस को चलाने का दावा कैसे कर सकते हैं। हम तो यही चाहते हैं कि हमें अल्पसंख्यक की हैसियत से कांग्रेस में स्वतन्त्रता से काम करने का मौका और अधिकार मिले'।

इस बार इस पुस्तक के लेखक को हरिजन सेवक संघ तथा गान्धी स्वागत समिति के मन्त्री की हैसियत से एक सप्ताह तक नरेन्द्रदेवजी के घर पर उनके साथ रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ और वह आचार्यजी की दृढ़ता, शील और विनय को देखकर चकित हो गया।

बम्बई सम्मेलन

प्रारूप समिति के सुझाव पर सोशलिस्ट स्थापना सम्मेलन ने बाबू सम्पूर्णानन्दजी की अध्यक्षता में अक्टूबर सन् १९३४ में निश्चय किया कि इस पार्टी का नाम कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी हो और पार्टी के उद्देश्यों पर विश्वास रखने वाले कांग्रेस सदस्य ही पार्टी के सदस्य बनाये जायें। पूर्ण स्वाधीनता की प्राप्ति और समाजवादी समाज की स्थापना पार्टी के उद्देश्य निश्चित हुए। इस सम्मेलन में निम्नलिखित छः सूत्रीय कार्यक्रम भी निश्चित किया गया—(१) कांग्रेस के अन्दर इस दृष्टि से कार्य करना कि समाजवादी पार्टी के उद्देश्य और कार्यक्रम स्वीकार कराये जा सकें। (२) किसानों और मजदूरों के आर्थिक संघर्षों में तेजी लाना और जनता के वर्गसंघर्ष की दृढ़ता तथा स्वतन्त्रता एवं समाजवाद की प्राप्ति के लिये किसानों और मजदूरों को संगठित करना और जहाँ ऐसा संगठन हो वहाँ उनमें शामिल होना, (३) युवक संघ, महिला संघ, स्वयंसेवक संघ आदि में भाग लेना तथा उन्हें संगठित करना ताकि वे समाजवादी आदर्श और कार्यक्रम के समर्थक बनाए जा सकें। (४) साम्राज्यवादी युद्धों का विरोध करना तथा स्वातन्त्र्य संग्राम को मजबूत बनाने में इस प्रकार

के संकटों की स्थिति का उपयोग करना। (५) ब्रिटिश सरकार से किसी भी स्थिति में वैधानिक समझौता न करना और (६) सत्तारूढ होने पर देश का संविधान बनाने के लिये मजदूरों, किसानों और अन्य शोषित वर्गों की स्थानीय समितियों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों की संविधान समिति बुलाना।

संचालन

अधिवेशन में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के मन्त्री श्री जयप्रकाश नारायण चुने गये। उसका केन्द्रीय कार्यालय काशी में रखा गया। श्री सत्यनारायण मिश्र कार्यालय के काम की देखभाल के लिये नियुक्त हुए और यहाँ से सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, सम्पूर्णानन्द और नरेन्द्रदेव की देखरेख में पार्टी का संचालन होने लगा। श्री सम्पूर्णानन्द जी ने तो सन् १९३७ में पार्टी छोड़ दी। पर सर्वश्री नरेन्द्रदेव और जयप्रकाश नारायण कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी द्वारा राष्ट्र की सेवा और समाजवादी आन्दोलन को पुष्ट करते रहे। दोनों का पारस्परिक स्नेह और सहयोग तथा राष्ट्रीय भावना, समाजवादी मूल्यों के प्रति निष्ठा, एवं निःस्पृही कर्तव्यपरायणता इस आन्दोलन की महान् शक्ति थे। इसके चलाने का अधिकतर भार तो जयप्रकाशजी को ही वहन करना पड़ा। वही उसके मुख्य कर्ताधर्ता थे। उनकी क्षमता, निर्भीकता, क्रान्तिकारी भावना, मनुष्यत्व, पौरुष, सौजन्य तथा आकर्षण शक्ति इस आन्दोलन के विकास का एक मुख्य आधार था। उनके विरोधी भी उनकी दृढता, गतिशीलता और ईमानदारी के कायल थे। विचारों में काफी भेद होते हुए भी गान्धीजी उनसे प्रेम करते और उनकी न्यायनिष्ठा पर पूरा विश्वास रखते थे। क्रान्तिकारी भावनाओं से अनुप्राणित नवयुवक तो उन पर लट्टू थे। सभी साथी उनका आदर करते, जो उनसे सहमत नहीं होता वह भी उनकी नेकनीयती को तसलीम करता।

गुजरात सम्मेलन

जून सन् १९३५ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की गुजरात शाखा का सम्मेलन हुआ। नरेन्द्रदेवजी ने सम्मेलन की अध्यक्षता की। अपने अध्यक्षीय भाषण में अपनी पार्टी के संगठन के सम्बन्ध में विरोधियों के तर्कों का उत्तर देते हुए उन्होंने पार्टी की और उपयोगिता की

पुष्ट किया। उन्होंने बताया कि विरोधियों का यह तर्क निर्मूल है कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी पर स्वतन्त्रता-संघर्ष में समुचित भाग लेने पर भरोसा नहीं किया जा सकता। नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि 'स्वतन्त्रता और समाजवाद में कोई वैर नहीं है। सच तो यह है कि राजनीतिक शक्ति पर विजय पाये बगैर समाजवादी समाज बन ही नहीं सकता। समाजवादी देशभक्ति के विमुख नहीं, वे तो संकीर्ण राष्ट्रीयता को नहीं मानते'। उन्होंने यह भी बताया कि यह कहना कि समाजवादियों ने वर्ग संघर्ष के प्रश्न को उठाकर स्वतन्त्रता संघर्ष को निर्बल बनाया है, निराधार है। अब जब कि साम्राज्यशाही ने अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये देश की प्रतिक्रियावादी तत्त्वों से यानी राजाओं, जमींदारों, और पूंजीपतियों से अपना गठबन्धन जोड़ लिया है हमारे लिये यह बड़ा जरूरी हो गया है कि देश के सब प्रगतिशील तत्त्वों को इकट्ठा करें और किसान मजदूर तथा निम्नमध्यम वर्गियों का ऐसा संयुक्त मोर्चा तैयार करें कि जो साम्राज्यशाही और उसके समर्थकों का मुकाबला कर सके। आर्थिक अपील के जरिये ही किसानों और मजदूरों को राजनीतिक संघर्ष में शामिल किया जा सकता है। उन्होंने हिन्दुस्तान के मजदूर-नेतृत्व की पार्थक्य नीति की तथा तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय संघ की सोवियतपरस्ती की समीक्षा करते हुए कहा कि आजकल तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय संघ की नीतियाँ तो सोवियत रूस की घरेलू नीति की छाया मात्र हैं। कोई वजह दिखायी नहीं देती कि तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय सोवियत रूस के रथ के पहियों से क्यों बन्धी रहे। जो पार्टी राष्ट्रीय आन्दोलन पर प्रभाव डालना चाहती है उसे तो पार्थक्य की नीति छोड़ कर हर साम्राज्यविरोधी संघर्ष में और हर जनहित के संघर्ष में शामिल होना चाहिए। समाजवाद को अपना लक्ष्य स्वीकार करने की कांग्रेस से आशा नहीं की जा सकती। साम्राज्यविरोधी संघर्ष को बढ़ाना ही उसका मुख्य काम है। पर चूँकि आज की परिस्थिति में जनता की आर्थिक मांगों से सम्बन्ध जोड़कर ही संघर्ष को बढ़ाया ज सकता है, इसलिये कांग्रेस में एक ऐसी पार्टी की जरूरत है जो निरन्तर आर्थिक कार्यक्रम के लिये प्रयत्न करती रहे। उनका विचा था कि कांग्रेस कार्यकर्ताओं में समाजवाद का निरन्तर प्रचार भी जरू है, क्योंकि जितनी ही सफलता इस काम में होगी उतनी ही सरलता से

कांग्रेस के लिये साम्राज्यविरोधी संघर्ष का एक प्रभावशाली कार्यक्रम स्वीकार करना सम्भव होगा।

इस अध्यक्षीय भाषण में आचार्यजी ने सन् १९३५ के गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट की भी समीक्षा की। उनकी राय में यह संविधान प्रतिक्रियावादी था। उसमें स्थिर स्वार्थों को ऐसे विशिष्ट संरक्षण दिये गये थे, कि नयी विधान सभाओं के लिये जनता की हित वृद्धि के निमित्त कोई सामाजिक कानून पास करना करीब-करीब असम्भव था। उनकी धारणा थी कि इस संविधान में साम्राज्यशाही और देश की प्रतिक्रियावादी शक्तियों के संयुक्त मोर्चे को बनाने का प्रयत्न किया गया है। इस सबसे सिद्ध है कि 'नया संविधान एक प्रतिगामी कानून है जो कि साम्राज्यवादी हितों को पुष्ट करने के लिये और हिन्दुस्तान पर विदेश के फौलादी पंजे को सख्त करने के लिये बनाया गया है।' कांग्रेस के लिये ऐसे संविधान को ठुकरा देना स्वाभाविक था। लेकिन इसके बाद प्रतिरोध और अड़ंगे की नीति का पालन करना और नये संविधान के काम को असम्भव बना देना जरूरी है। इस तरह ही हम संविधान का खोखलापन दिखा सकेंगे। हमें यह याद रखना चाहिए कि 'नया संविधान हमारे लक्ष्य और हमारी प्रगति में रुकावट डालता है और जितनी जल्दी यह रुकावट हमारे रास्ते से अलग हो उतनी ही तेज हमारी प्रगति होगी।' इन बातों को ध्यान में रखकर नये संविधान के अन्दर हमें मन्त्रिपद कभी स्वीकार नहीं करना चाहिए। पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये काम करने वाली पार्टी साम्राज्यशाही से समझौता नहीं कर सकती और जनता में यह भ्रम नहीं पैदा कर सकती कि संविधान में भी कुछ तथ्य है।

यू. पी. सम्मेलन

२७ अप्रैल सन् १९३८ को नरेन्द्रदेवजी ने यू० पी० की प्रान्तीय कांग्रेस समाजवादी कान्फ्रेन्स की अध्यक्षता की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने सामाजिक स्वतन्त्रता तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता के पारस्परिक सम्बन्ध पर तथा सुदृढ संगठन बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया। लेनिन के विचारों की याद दिलाते हुए उन्होंने सामाजिक स्वतन्त्रता के लिये राजनीतिक स्वतन्त्रता की लड़ाई

लड़ना जरूरी बताया और कहा कि कांग्रेस द्वारा संचालित राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिये समाजवादियों को राजी करना तथा राष्ट्रीय आन्दोलन में समाजवादी क्रान्तिकारी नेतृत्व प्रतिष्ठित करना ही कांग्रेस समाजवादी पार्टी का लक्ष्य है। सही तौर-तरीके से ही इन दोनों लक्ष्यों की पूर्ति हो सकती है। लोकतान्त्रिक क्रान्ति के संघर्ष का सफल नेतृत्व सही उपायों द्वारा ही हो सकता है। अतः कांग्रेस के नेतृत्व से निजी बातों के कारण चिढ़े हुए व्यक्तियों को पार्टी से अलग रखते हुए हमें उसमें ऐसे व्यक्तियों को शामिल करना है जो राष्ट्रीय आन्दोलन का सफल नेतृत्व करने की क्षमता रखते हों। उन्होंने कहा कि जबतक हम अपना संगठन मजबूत नहीं करते, तबतक हमारे लिये राष्ट्रीय आन्दोलन तथा प्रगतिशील शक्तियों का नेतृत्व करना सम्भव नहीं है। कांग्रेस के अन्दर फैली सुधारवादी मनोवृत्ति का तथा शासन-संकटों का मुकाबला क्रान्तिकारी नेतृत्व ही कर सकता है और उसे सबल बनाने के लिये जनता की आर्थिक लड़ाई को राजनीतिक लड़ाई से सम्बन्धित करना बहुत जरूरी है। समाजवादियों का कर्तव्य है कि वे ऐसी तैयारी करें कि स्वराज्य की लड़ाई खत्म होते होते सामाजिक स्वतन्त्रता की लड़ाई शुरू हो जाय, पर उन्हें यह भी याद रखना है कि अगर स्वराज्य की लड़ाई में हम सफल नहीं होते तो सामाजिक स्वतन्त्रता की नौबत ही नहीं आ पायगी।

कार्य

समाजवादी सिद्धान्तों तथा नीति-रीति को स्पष्ट करना, उसकी पृष्ठभूमि में कांग्रेस की गतिविधि की समीक्षा करना, राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं का गूढ़ अध्ययन कर उनका समाजवादी क्रान्तिकारी हल ढूंढना, कांग्रेस के एके को अक्षुण्ण बनाये रखते हुए उसे अधिक गतिशील तथा राजनीतिक और आर्थिक क्रान्ति का उपकरण बनाना नरेन्द्रदेवजी का मुख्य कार्य था। अपनी विद्वत्ता, शील, स्वाधीनता के प्रति निष्ठा, क्रान्तिकारी भावना और राष्ट्रसेवा के बल पर उन्होंने इस कार्य को सुचारु रूप से सम्पन्न किया और अपने प्रान्त की कांग्रेस को तो अपने नेतृत्व से विशेष तौर पर प्रभावित किया।

मार्क्सवाद के मूलसिद्धान्तों का विश्लेषण, उनके आधार पर जन-

तान्त्रिक समाजवाद का प्रतिपादन तथा सोवियत रूस और कम्युनिस्टों की स्तालिनवादी राष्ट्रविरोधी नीति-रीति की आलोचना नरेन्द्रदेवजी का दूसरा मुख्य कार्य था। इस उद्देश्य से उन्होंने अपने साप्ताहिक पत्र 'संघर्ष' में कई लेख प्रकाशित किये जो आगे चलकर 'समाजवाद के लक्ष्य और साधन' के नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित किये गये और वर्षों उनके नवयुवक साथियों द्वारा एक प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में अध्ययन किये जाते रहे। इन लेखों में नरेन्द्रदेवजी ने मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्तों का शास्त्रीय विवेचन किया। मार्क्सवाद के जनतान्त्रिक और मानवीय तत्त्वों का महत्त्वपूर्ण विश्लेषण किया। एक लेख में मानवता को समाजवाद का 'मूलाधार' बताते हुए उन्होंने कहा कि मार्क्स मानवता की भावना से अनुप्राणित था, उसका हृदय इतना विशाल और कोमल था कि मानव समाज के साधारण से साधारण दुःख भी औरों से कहीं अधिक उसे प्रभावित करते थे, वह एक ऐसा समाज प्रतिष्ठित करना चाहता था कि जिसमें सारा उत्पादक समाज सुख, समता और स्वतन्त्रता का सहयोगपूर्ण जीवन व्यतीत कर सके और सच्ची मानवीय प्रेरणाओं से अनुप्राणित हो। नरेन्द्रदेवजी ने बताया कि समाजवाद एक सांस्कृतिक आन्दोलन है जिसका केन्द्र मानव है। समाजवाद में 'मानव सर्वोपरि' है, मानव के उत्कर्ष को घटानेवाला कोई सिद्धान्त भी समाजवाद को मान्य नहीं हो सकता। उन्होंने बताया कि 'समाजवाद प्रचलित समाज का इस प्रकार संगठन करना चाहता है कि वर्तमान परस्पर विरोधी स्वार्थों वाले शोषक और शोषित, पीड़क और पीड़ित वर्गों का अन्त हो जाय, वह सहयोग के आधार पर संगठित व्यक्तियों का ऐसा समूह बन जाय जिसमें एक सदस्य की उन्नति का अर्थ स्वभावतः दूसरे सदस्य की उन्नति हो और सब मिलकर सामूहिक रूप से परस्पर उन्नति करते हुए जीवन व्यतीत कर सकें।' ऐसे 'वर्गहीन समाज' में ही 'मानव मनुष्यत्व को पुनः प्राप्त कर सकता है।' सामाजिक विकास की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने बताया कि 'जगत् का सारा व्यापार शाश्वत परिवर्तन के क्रम में है'; 'मनुष्य और परिस्थितियाँ दोनों परिवर्तनशील और अस्थिर हैं तथा दोनों का सदा अन्योन्य सक्रिय विरोध होता रहता है और इससे वृद्धि-विकास होता है।' उन्होंने यह भी बताया कि

समाज के ढाँचे में आधारभूत परिवर्तन की ऐतिहासिक आवश्यकता क्रान्ति के द्वारा ही पूर्ण होती है' तथा वर्ग-समाज में वर्ग-संघर्ष अनिवार्य है।

नरेन्द्रदेवजी की व्याख्या कम्युनिस्टों को मंजूर नहीं थी। इसलिये मार्क्सवाद के सिद्धान्तों तथा नीति-रीति के सम्बन्ध में दोनों में काफी विवाद रहता था। निरन्तर शास्त्रार्थ से वे कभी कभी ऊब भी जाते थे, पर फिर भी सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण आवश्यक समझ वे विचार-विनिमय करते ही रहते थे।

प्रशिक्षण

विद्यार्थियों और नवयुवक कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण नरेन्द्रदेवजी का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य था। इस काम में उनकी विशेष दिलचस्पी थी, उन्हें विशेष आनन्द आता था। उनकी प्रेरणा से उनके अपने प्रान्त के कई विद्यालयों में समाजवादी अध्ययन केन्द्र कायम हो गये थे। इन केन्द्रों में समाजवाद के मूल सिद्धान्तों का तथा समाजवादी दृष्टिकोण से समाज की समस्याओं का अध्ययन होता था। कभी कभी पांच छ दिन तक लगातार प्रशिक्षण शिविर चलता रहता था। आचार्य नरेन्द्रदेव इन शिविरों और केन्द्रों में बहुधा भाषण देते थे। लखनऊ के एक ऐसे केन्द्र में तो उन्होंने बहुत अर्से तक नियमपूर्वक प्रति सप्ताह समाजवाद के सिद्धान्तों का विश्लेषण किया।

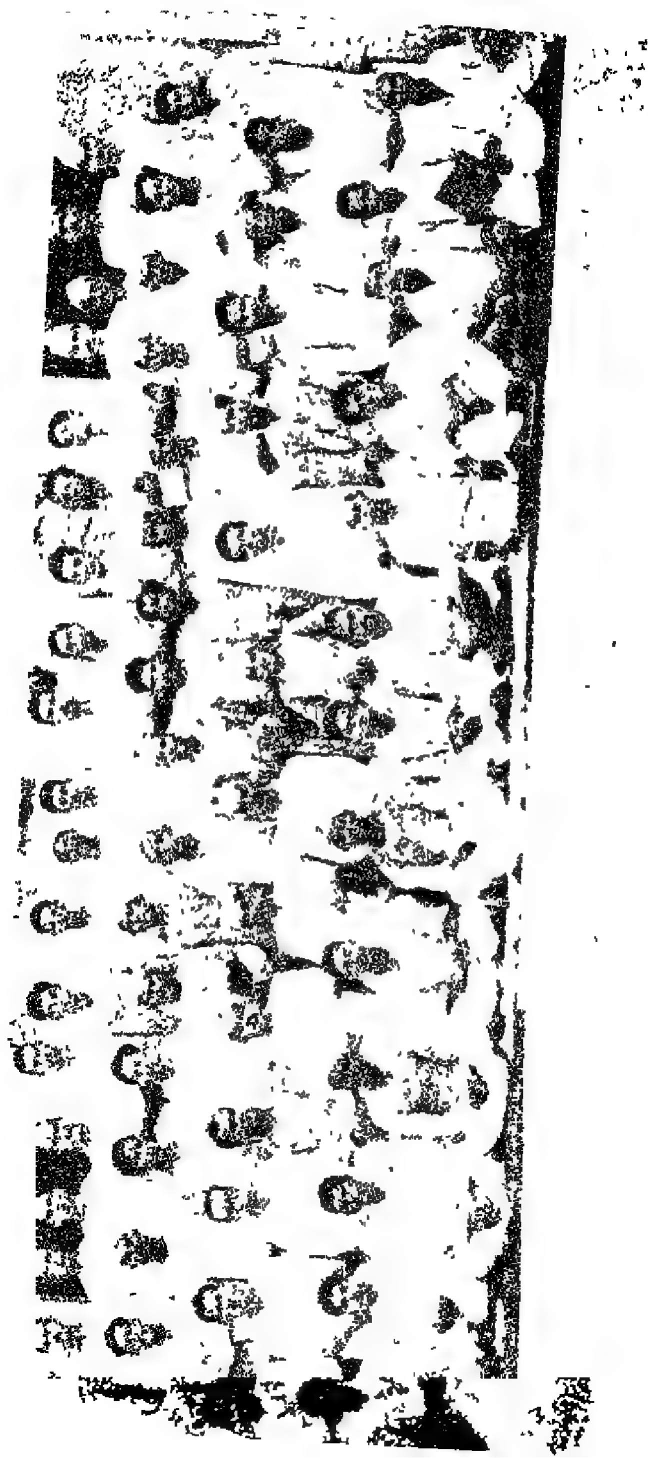
सन् १९३८ में श्री जयप्रकाश नारायण ने सोनपुर (बिहार) में एक बड़े शिक्षण शिविर का आयोजन किया। समाजवाद और राजनीति के बहुत से विद्वानों ने उसमें भाषण दिये। नरेन्द्रदेवजी ने भी समाजवाद के मानवीय और जनतान्त्रिक सिद्धान्तों पर एक सारगर्भित भाषण दिया और बताया कि जनतन्त्र और मानवता समाजवाद के मूलाधार हैं।

मई-जून सन् १९३९ में नरेन्द्रदेवजी ने लखनऊ में कान्यकुब्ज कालिज में एक बृहद् समाजवादी प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया। इस शिविर में लगभग एक सौ कार्यकर्ताओं और विद्यार्थियों ने मार्क्सवाद तथा देश की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन किया।

शिविर में काफी चहल पहल थी, अध्ययनशील नवयुवकों में उत्साह था, ज्ञान के संचय की प्रबल इच्छा थी। प्रतिदिन पांच छः घंटे पढ़ाई होती थी, फिर भी मन नहीं भरता था। देश के बहुत से दूसरे कामों में घिरे रहने के कारण प्रमुख समाजवादी नेता कैम्प में अधिक समय नहीं दे पाये, इस पुस्तक के लेखक को ही अधिक भार वहन करना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अध्ययन के प्रति अरुचि हो जाना स्वाभाविक था। पर इस समाजवादी शिविर के नवयुवक बीस पच्चीस दिन तक एक ही व्यक्ति के प्रतिदिन पांच छः घंटे व्याख्यान सुनते रहे और फिर भी उनकी जिज्ञासा बनी रही।

कम्युनिस्ट नेता श्री अधिकारी ने इस कैम्प में जर्मनी में नाजीवाद की शक्ति के विकास के कारणों पर एक व्याख्यान दिया। उस व्याख्यान में नाजीवाद के गलत सिद्धान्तों का और उन सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का, जिनके कारण नाजीवाद ने जर्मनी में जोर पकड़ा, कोई विशेष विश्लेषण न करके उन्होंने यह सिद्ध करने की कोशिश की कि जर्मनी के सोशल डिमोक्रेट अर्थात् जनतान्त्रिक समाजवादी ही जर्मनी में नाजीवाद की विजय के मूल कारण हैं। नवयुवकों पर उनके इस व्याख्यान का कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। उन्होंने समझा कि अधिकारी साहब सोशल डेमोक्रेटिकों की आड़ लेकर व्यर्थ में कांग्रेस सोशलिस्टों की नीति-रीति की निन्दा कर रहे हैं। इस पुस्तक का लेखक, जो इस व्याख्यान में उपस्थित था, चुप रहा। आखिर अधिकारी साहब ने स्वयं पूछा कि उसकी क्या राय है। उसने कहा कि उसकी राय में कम्युनिस्टों की गलती के कारण ही जर्मनी में सोशल डिमोक्रेटिकों की हार और नाजियों की जीत हुई। अधिकारी साहब ने कहा कि बात ठीक है, पर नवयुवकों को तो सोशल-डिमोक्रेटिकों की बुराइयां बताना ही ठीक था। इस पर उनसे कहा गया कि समाजवादी नवयुवकों को यह भी तो जानना चाहिए कि मार्क्सवाद पर आस्था रखने वाले कम्युनिस्टों की किन गलतियों के कारण कब और क्या हानि हुई, ताकि वे फिर ऐसी गलती न करें। यह सुनकर अधि-कारी साहब चुप रहे और उपस्थित सज्जनों पर उनके व्याख्याम का जो कुछ असर हुआ था, वह भी सब भुल गया।

समाजवादी विचारों और दृष्टिकोण को प्रसारित करने के लिये



नरेन्द्रदेवजी ने अपने सम्पादकत्व में लखनऊ से 'संघर्ष' के नाम से हिन्दी में एक साप्ताहिक पत्र भी निकालना प्रारम्भ किया। इस पत्र के सम्पादन में श्री विश्वेश्वर प्रसाद सिन्हा का विशेष श्रेय था। उन्हीं की देख रेख में इस पत्र का सम्पादन होता और वही सम्पादकीय लेख लिखते थे। श्री दामोदर स्वरूप सेठ भी इस पत्र में लेख लिखते रहते और इसकी आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान रखते। इसको चलाने का बहुत कुछ भार नरेन्द्रदेवजी के शिष्य श्री रमाकान्त शास्त्री वहन करते थे। इसके प्रबन्ध में उनके दूसरे शिष्य श्री त्रिभुवन नारायण सिंह का भी योग था। इस पत्र में समाजवाद आदि विषयों पर आचार्य नरेन्द्रदेवजी सारगर्भित लेख लिखते रहते थे।

किसान

किसानों के हितों की पुष्टि तथा समाजवादी शक्तियों का संगठन नरेन्द्रदेवजी के दूसरे महत्त्वपूर्ण काम थे। यद्यपि वे स्वयं मध्यम-वर्गीय बुद्धिजीवी थे, पर उन्होंने अपनी भावनाओं को किसानों के कष्टों से काफी आत्मसात् कर लिया था। हिन्दुस्तान की तत्कालीन परि-स्थितियों में वे किसानों को एक क्रान्तिकारी शक्ति मानते थे और उनकी क्रान्तिकारी आवश्यकताओं के आधार पर उनकी क्रान्तिकारिता को जागृत और पुष्ट करना और उन्हें समाजवादी भावनाओं से अनुप्राणित करना वे समाज के उत्थान के लिये आवश्यक समझते थे। उन्होंने किसानों की समस्या का गूढ़ अध्ययन किया, उनकी आकांक्षाओं और मांगों को पुष्ट किया, उनके संगठन को सुदृढ बनाने तथा उसे राष्ट्रीय आन्दोलन और समाजवादी शक्तियों से सम्बन्धित करने का प्रयत्न किया। अपने प्रान्त के समाजवादी संगठन के तो वे प्राण ही थे। उनके व्यक्तित्व और प्रान्तव्यापी प्रभाव की उस पर छाप थी।

नेतृत्व

कांग्रेस के अन्दर रहकर समाजवादी आन्दोलन को जिन व्यक्तियों ने पुष्ट किया वे सब ही स्वाधीनता-संग्रामों के वीर सेनानी थे। उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बनने से बहुत पहले से ही राष्ट्रीय संघर्षों में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था तथा अपनी योग्यता, साहस और कुर्बानी के आधार पर देश में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया था। वे सभी अन्त तक स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्नशील रहे। जिन व्यक्तियों

ने प्रारम्भ में समाजवादी आन्दोलन का नेतृत्व किया इनमें सर्वश्री नरेन्द्रदेव, जयप्रकाश नारायण, सम्पूर्णानन्द, मेहरअली, राम मनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन, नभकृष्ण चौधरी, मीनु मसानी, पुरुषोत्तम त्रिकमदास, नाना साहब गोरे, गंगाशरण सिंह, एस. एम. जोशी, अशोक मेहता, फरीदुल हक अन्सारी, दामोदर स्वरूप सेठ, श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय, श्री के.के मेनन, सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी, मुन्शी अहमद दीन तथा श्री शिवनाथ बनर्जी का विशिष्ट स्थान था। इनमें से कुछ अर्थात् सर्वश्री नरेन्द्रदेव, मेहरअली, राम मनोहर लोहिया, फरीदुल हक अन्सारी तथा श्री के. के. मेनन आजीवन समाजवादी आन्दोलन से किसी न किसी रूप में सम्बन्धित रहे और समाजवादी शक्तियों को पुष्ट करने का प्रयास करते रहे और कुछ अर्थात् सर्वश्री एन. जी. गोरे, एस. एम. जोशी सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी, शिवनाथ बनर्जी अब भी किसी न किसी समाजवादी संस्था से सम्बन्ध रखते हुए समाजवाद की सेवा कर रहे हैं। पर कतिपय सज्जनों ने इस आन्दोलन से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। जहाँ सर्व श्री अच्युत पटवर्धन, पुरुषोत्तम त्रिकमदास तथा श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने सक्रिय राजनीति में दिलचस्पी लेना ही छोड़ दिया; वहाँ सन् १९३७ में श्रीसम्पूर्णानन्द, १९४६ में श्रीनभकृष्ण चौधरी तथा १९६४ में श्री अशोक मेहता ने समाजवादी आन्दोलन के नेतृत्व को छोड़कर कांग्रेस पार्टी के तत्त्वावधान में राजसत्ता द्वारा ही सेवा करना उचित समझा। श्री नभकृष्ण चौधरी ने तो आगे चलकर सन् १९५६ में राजसत्ता का मोह छोड़कर सर्वोदय के लिये काम करना देश के लिए श्रेयस्कर समझा। श्री जयप्रकाश नारायण, जिनका समाजवादी आन्दोलन की प्रगति में खास तौर पर महत्त्वपूर्ण स्थान था, सन् १९५२ के चुनाव के बाद सर्वोदय की ओर इतने खिचते गये कि उन्होंने अन्ततोगत्वा समाजवादी आन्दोलन का नेतृत्व छोड़कर आचार्य बिनोवा के साथ सर्वोदय आन्दोलन में काम करना और उसका नेतृत्व करना ही उचित समझा। श्री मीनु मसानी की उलट-फेर तो बहुत ही विलक्षण रही। वे गतिशील, दक्ष राजनीतिज्ञ सिद्ध हुए, पर समाजवाद के प्रति उनकी निष्ठा इतनी कमजोर साबित हुई कि उन्होंने आगे चलकर समाजवाद की बजाय पूँजीवाद को पुष्ट करना और पूँजीवादी शक्तियों को सबल बनाना ही अपने जीवन का लक्ष्य निश्चित किया और इस उद्देश्य से 'स्वतन्त्र पार्टी' का निर्माण, संगठन और नेतृत्व करना शुरू कर दिया।

जब कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बनी उस समय नरेन्द्रदेवजी ४५ वर्ष के थे। पर मुख्यतः नौजवानों की पार्टी में उन्हें अनुभवी नेता की मान्यता प्राप्त थी। अपने प्रान्त के कार्यकर्ताओं को छोड़ कर पार्टी के अन्य सदस्यों से उनका कोई पुराना सम्बन्ध नहीं था। पर वे सब उनका आदर करते थे, उनके शील, सद्भावना, विद्वत्ता और लगन के प्रशंसक थे और उन्हें पार्टी का एक सम्मानित नेता मानते थे। बहुत से नेताओं से उनका काफी स्नेह हो गया था। कुछ तो उनके घनिष्ट मित्र बन गये थे।

जिन प्रमुख नेताओं का ऊपर जिक्र है उनमें से सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, सम्पूर्णानन्द और दामोदर स्वरूप सेठ के अतिरिक्त जिनसे उनके पुराने सम्बन्ध थे, समाजवादी आन्दोलन के सिलसिले से सर्वश्री मेहर अली, अच्युत पटवर्धन, राममनोहर लोहिया, गंगाशरण सिंह, और फरीद उल हक अन्सारी से विशेष रूप से उनका स्नेह हो गया था।

यूसुफ मेहरअली

समाजवादी आन्दोलन के सिलसिले से ही नरेन्द्रदेवजी श्रीमेहरअली के सम्पर्क में आये और दोनों का स्नेह परिपक्व हुआ। मेहर अली जी के 'परिपक्व तथा संतुलित विचार, समाजवादी आदर्शों के प्रति उनकी निष्ठा, उनकी जबर्दस्त संगठन शक्ति और उनके मोहक व्यक्तित्व' पर नरेन्द्रदेवजी मुग्ध थे। नरेन्द्रदेव जी की तरह मेहर अली जी भी मार्क्सवाद पर निष्ठा रखते हुए स्तालिन की नीति-रीति, गति-विधि से असन्तुष्ट थे तथा मानवता और जनतन्त्र को मार्क्सवाद का मूल आधार मानते थे। दोनों ही व्यापक राष्ट्रीयता, जनतन्त्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के आधार पर आजाद हिन्दुस्तान का निर्माण करना चाहते थे।

श्री यूसुफ मेहर अली नवयुवकों के क्रान्तिकारी नेता थे। वे अपने स्नेह, शील, साहस, ज्ञान, देशप्रेम तथा क्रान्तिकारी भावनाओं और विचारों के लिये प्रसिद्ध थे। उनका जन्म सन् १९०३ में बम्बई के एक प्रसिद्ध समृद्ध परिवार में हुआ था। पर उनका जीवन लोकतान्त्रिक भावनाओं और मर्यादाओं का मूर्तिरूप था। वे सब साथियों से बहुत प्रेम से समता के स्तर पर मिलते और उनके सभी साथी उनके शिष्ट

और स्नेहपूर्ण व्यवहार पर मुग्ध थे। उनके विरोधी भी उनके शील और व्यक्तित्व के प्रशंसक थे। नवयुवक तो उनके साहस और स्नेह पर लट्टू थे। उनका सारा जीवन निष्काम भावना से अनुप्राणित था। समाजवादी समाज की स्थापना ही उनके जीवन का लक्ष्य था। नवयुवकों को आकृष्ट करने की उनमें अद्भुत शक्ति थी। वे युवक आन्दोलन के अग्रगण्य नेता थे। सन् १९२७ में उन्होंने बम्बई में प्रान्तीय यूथ लीग कायम की और तरुणों के दल को संगठित कर साइमन कमीशन के विरुद्ध प्रदर्शन किया, तथा दूसरे बहुत से साथियों के साथ पुलिस की लाठियों से बुरी तरह घायल हुए। आगे चलकर उन्होंने अखिल भारतीय छात्र सम्मेलन के अध्यक्ष की हैसियत से छात्रों का नेतृत्व किया। सन् १९२९ में उन्होंने नेशनल मिलिशिया के नाम से स्वयं सेवक सेना का संगठन किया। सन् १९३४ से वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संगठन में संलग्न हो गये। उनका शील, व्यक्तित्व, नेतृत्व तथा निस्पृही राष्ट्रसेवा जनतान्त्रिक समाजवाद की शक्ति और प्रतिष्ठा के प्रमुख आधार थे। मेहर अलीजी प्रसिद्ध लेखक और पत्रकार थे। बम्बई के नागरिकों ने उनकी सेवाओं और व्यक्तित्व से आकृष्ट हो उन्हें बम्बई कारपोरेशन (महापालिका) का अध्यक्ष चुना था और उन्होंने अपने इस उत्तरदायित्व को बड़ी क्षमता और निर्भीकता से पूरा किया था। कई मामलों में सरकार का डटकर मुकाबला करते हुए उन्होंने कारपोरेशन के मान और हितों की रक्षा की। सन् १९३८ में उन्होंने यूरोप और अमेरिका का भ्रमण किया तथा न्यूयार्क में विश्व युवक कांग्रेस एवं मेक्सिको में विश्व सांस्कृतिक सम्मेलन में भाग लिया। मेहर अली जी स्वतन्त्रता-संघर्ष के वीर सेनानी थे। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध कांग्रेस द्वारा संचालित संघर्षों में डटकर हिस्सा लिया और स्वतन्त्रता के निमित्त जेल की यातनाएँ सहीं। सन् १९४२ में जेल में ही उनको हृदय का दौरा पड़ा। उस बीमारी का इलाज कराने वे एक बार यूरोप भी गये। पर बीमारी ने उनका पिंड नहीं छोड़ा और सन् १९५० में उनका निधन हो गया।

अच्युत पटवर्धन

श्री अच्युत पटवर्धन एक सुसंस्कृत, सम्मानित बुद्धिजीवी परिवार के होनहार प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं शील, उदार चिन्तन और आध्यात्मिकता

ही उनके जीवन के मूल आधार हैं; आध्यात्म के क्षेत्र में वे श्री जे० कृष्णमूर्ति के विचारों से विशेष रूप से प्रभावित और अनुप्राणित हैं। प्रोफेसर पी० के० तैलंग की देखरेख में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में एम० ए० तक की शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे थियोसोफिकल स्कूल में शिक्षक का काम करने लगे। पर सन् १९३० में अहमदनगर में नमक सत्याग्रह का नेतृत्व करते हुए बड़े भाई पुरुषोत्तम हरि पटवर्धन के गिरफ्तार होने पर उन्होंने अध्यापन का कार्य छोड़ अहमदनगर में सत्याग्रह आन्दोलन का नेतृत्व किया। उसके बाद तो उन्होंने सभी स्वतंत्रता-संघर्षों में डट कर काम किया और सन् १९४२ के संग्राम में तो कमाल ही कर दिया। पुलिस की आँखों में धूल झोंकते हुए उन्होंने सारे देश का चक्कर लगाया, आन्दोलन का संचालन और नेतृत्व किया तथा अपने साहस और क्षमता के लिये देश में आदर और मान प्राप्त किया। सन् १९३६ में ही पण्डित जवाहर लाल नेहरू के निमन्त्रण पर नरेन्द्रदेव जी के साथ साथ वे भी कांग्रेस की वर्किंग कमेटी के सदस्य बने और यद्यपि सन् १९३८ के बाद उन्होंने उसकी सदस्यता स्वीकार नहीं की, फिर भी सन् १९४७ तक कांग्रेस के सभी कामों में उनका ऊँचा स्थान बना रहा। जब श्री अच्युत पटवर्धन सन् १९३२ में नासिक जेल में थे तभी उन्होंने सर्वश्री जयप्रकाश और एन० जी० गोरे के साथ समाजवादी आन्दोलन की एक रूपरेखा तैयार की और सन् १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल होने के बाद उन्होंने लगभग सोलह वर्ष समाजवादी आन्दोलन का नेतृत्व किया। अच्युत जी मार्क्सवादी नहीं थे, फिर भी नीति-रीति, शील और उदार सांस्कृतिक दृष्टिकोण में साम्य के कारण उनका और नरेन्द्रदेवजी का बड़ा स्नेह था। उनकी क्षमता, मानवता और सेवा भावना पर नरेन्द्रदेवजी को पूरा विश्वास था और उन्हें अच्युतजी के समाजवादी आन्दोलन से अलग होने पर बड़ा क्षोभ था। नरेन्द्रदेवजी की यह उत्कट इच्छा थी कि अच्युतजी फिर समाजवादी आन्दोलन का नेतृत्व स्वीकार करें। पर वे राजी नहीं हुए। उनकी निस्पृहता भी विलक्षण है। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के कुछ समय बाद पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने उन्हें यूनाइटेड नेशन की असेम्बली में भारत का प्रतिनिधित्व करने को आमन्त्रित किया, आगे चलकर राजस्थान की सरकार ने उन्हें

पब्लिक सर्विस कमीशन का अध्यक्ष बनाना चाहा और दो बार केन्द्रीय सरकार ने उनसे काशी विश्वविद्यालय का उपकुलपति बनने की प्रार्थना की। पर आपने इन सब को अस्वीकार कर दिया।

राममनोहर लोहिया

नरेन्द्रदेवजी का डाक्टर राममनोहर लोहिया से घनिष्ठ सम्बन्ध था। नरेन्द्रदेवजी की प्रेरणा से ही डाक्टर साहब ने कलकत्ता छोड़ कर उत्तर प्रदेश को अपना कार्यक्षेत्र बनाया था। पर सन् १९५२ के चुनाव के बाद सिद्धान्तों, तौर-तरीके तथा अनुशासन के सम्बन्ध में मतैक्य न होने के कारण धीरे-धीरे दोनों में खिंचाव बढ़ता गया और सन् १९५५ में उसने एक विस्फोट का रूप धारण कर लिया। नरेन्द्रदेवजी को इस विछोह और विघटन का बड़ा दुःख था।

डाक्टर राममनोहर लोहिया एक प्रतिभाशाली महत्त्वाकांक्षी नवयुवक थे। वे आजीवन नवयुवक बने रहे, युवकों को आकृष्ट और अनुप्राणित करते रहे। जब वे विद्यार्थी थे, तभी वे अपने सहपाठियों से अलग निराली आकांक्षा रखते थे, सोचते थे कि उनके जीवन का उद्देश्य दूसरे साथियों से भिन्न और कहीं ऊँचा है। सन् १९३२ में जर्मनी से अर्थशास्त्र में डाक्टर की उपाधि प्राप्त कर देश में वापस आते ही वे राजनीति में दिलचस्पी लेने लगे। जब सन् १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बनी तब आपने उस पार्टी की ओर से कलकत्ते से 'कांग्रेस सोशलिस्ट' पत्र का सम्पादन शुरू किया। सन् १९३६ में कांग्रेस के अध्यक्ष पण्डित जवाहरलाल नेहरू के अनुरोध पर उसके परराष्ट्र विभाग के मन्त्री की हैसियत से उन्होंने काम शुरू किया, पर अप्रैल सन् १९३८ में इस काम को छोड़ सारा समय कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संचालन में लगाने का निश्चय किया। सन् १९३९ में ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध एक कड़ा भाषण देने के अभियोग पर उन्हें अगस्त सन् १९४० से दिसम्बर सन् १९४१ तक पहली बार जेल की यातनाएँ सहनी पड़ीं. सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में भूमिगत रहते हुए उन्होंने डटकर काम किया। पर २० मई सन् १९४४ में वे बम्बई में गिरफ्तार कर लिये गये और लाहौर के लाल किले में उन्हें बहुत ही सख्त यातनाएँ सहन करनी पड़ीं। अप्रैल सन् १९४६ में जेल से छूटने के कुछ दिन

बाद ही अर्थात् जून सन् १९४६ को उन्होंने गोवा में नागरिक स्वतन्त्रता के निमित्त सविनय अवज्ञा की। सन् १९४७ में उन्होंने गान्धीजी के आदेश पर कलकत्ता और दिल्ली में साम्प्रदायिक शान्ति और एके के लिए बहुत साहस से काम किया। नेपाल के स्वतन्त्रता-संघर्ष में भी दिलचस्पी लेते हुए सन् १९४७ में नेपाल दिवस के सिलसिले में वे देहली में गिरफ्तार हुए। समाजवादी आन्दोलन के नेतृत्व में डाक्टर लोहिया का विशिष्ट स्थान था। स्वतन्त्र भारत में तो समाजवादी नवयुवकों का प्रशिक्षण, किसान आन्दोलन का नेतृत्व, परराष्ट्रनीति का निर्णय तथा देशी रियासतों में समाजवादी शक्तियों का संचालन उनके नेतृत्व के विशिष्ट क्षेत्र थे। सन् १९५५ में प्रजासोशलिस्ट पार्टी से सम्बन्ध विच्छेद के बाद डाक्टर लोहिया ने जिस पार्टी को संगठित किया उसके तो वही कर्ताधर्ता थे। वे एक साहसी योद्धा और विचारक थे। वे पूंजीवाद और मार्क्सवाद दोनों को गलत समझते थे और समाजवाद की उनकी अपनी व्याख्या थी। वे आजीवन विचारों और परिस्थितियों से संघर्ष करते रहे। संघर्ष में उन्हें मजा आता था। वे जीवन को निरन्तर संघर्ष ही समझते थे।

गंगाशरण सिंह

सन् १९३० के नमक सत्याग्रह से बहुत पहले ही श्री राहुल साङ्कृत्यायन जी के माध्यम से नरेन्द्रदेवजी से गंगाशरणजी का परिचय हो गया था। पर समाजवादी आन्दोलन के सिलसिले से ही यह परिचय स्नेह में परिपक्व हुआ। वे नरेन्द्रदेवजी के विश्वसनीय स्नेही बन गये। आचार्य जी उनसे सामाजिक कामों के साथ साथ पारिवारिक समस्याओं पर भी विचार विमर्श करते रहते थे। शील, संस्कृति, राष्ट्रीयता और समाजवाद के सम्बन्ध में दोनों के विचारों में बहुत साम्य था।

श्री गंगाशरण सिंहजी एक सम्मानित सम्पन्न परिवार के उज्ज्वल रत्न हैं। सन् १९२० में गांधीजी के आह्वान पर वे अपनी पढ़ाई छोड़कर असहयोग आन्दोलन में शामिल हुए। आन्दोलन के स्थगित हो जाने पर उन्होंने कुछ अर्से काशी में रहकर संस्कृत और हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया। वे अन्त तक देश की आजादी के लिये कांग्रेस द्वारा संचालित संघर्षों में हिस्सा लेते रहे। दमे की बीमारी के

कारण जेल में उन्हें काफी कष्ट उठाना पड़ा। पर बीमारी और जेल की यातनाएँ उन्हें अपने पथ से विचलित नहीं कर सकीं। अपनी क्षमता, शील और कर्तव्य-परायणता के आधार पर उन्होंने शीघ्र ही कांग्रेसजनों का, विशेषतः डाक्टर राजेन्द्र प्रसादजी का, विश्वास और स्नेह तथा कांग्रेस मण्डली में ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया। कई वर्ष तक प्रान्तीय कांग्रेस की कार्यसमिति के सदस्य और प्रधान मन्त्री की हैसियत से उन्होंने राष्ट्र की सेवा की। सन् १९३० में नमक सत्याग्रह के जमाने में जेल में ही मार्क्सवादी साहित्य का अध्ययन करके वे मार्क्सवादी बन गये। जेल से छूटने पर कतिपय मित्रों के साथ मिलकर उन्होंने बिहार में सोशलिस्ट पार्टी का गठन किया तथा सन् १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के तत्त्वावधान में वे समाजवादी शक्तियों को संगठित और पुष्ट करने लगे। समाजवादी आन्दोलन के संचालन और प्रगति में उनका भरपूर योगदान है। सन् १९५६ से सन् १९५९ तक तो श्री गंगाशरण सिंह प्रजासोशलिस्ट पार्टी के मुख्य कर्ताधर्ता थे। उन्ही की अध्यक्षता और देखरेख में सब काम होता था। अप्रैल सन् १९५६ से वे राज्यसभा के सदस्य हैं और भारतीय संसद में उन्हें एक पुराने अनुभवी तथा विश्वसनीय राजनीतिज्ञ का मान प्राप्त है। करीब करीब सभी पार्टियों के प्रमुख सदस्यों से आपकी घनिष्ठता है। गंगा बाबू की सेवा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। वस्तुत वे स्वयं एक संस्था हैं। राजनीति के अतिरिक्त सांस्कृतिक कार्यों में उनकी विशेष अभिरुचि है। हिन्दी भाषा और साहित्य की सेवा तो उनका एक विशेष कार्यक्षेत्र है। हिन्दी के माध्यम से शिक्षा देने वाली तथा हिन्दी का व्यापक प्रसार करने वाली बहुत सी संस्थाओं का संचालन उनके हाथ में है। श्री गंगाशरण सिंह बहुत ही विनोदप्रिय व्यक्ति हैं। उन्हें सैकड़ों हिन्दी, उर्दू, संस्कृत तथा बंगला के पद्य याद हैं जिनके द्वारा वे अपना एवं अपने मित्रों का मनोरंजन करते रहते हैं।

फरीद उल हक अन्सारी

जनाब फरीद उल हक अन्सारी कांग्रेस के प्रसिद्ध नेता डाक्टर मुख्तार अहमद अन्सारी के भांजे थे। उन्होंने इंगलिस्तान से बैरिस्ट्री की शिक्षा प्राप्त करने के बाद देहली में वकालत करना शुरू की। पर

कुछ अर्से के बाद ही वे नमक सत्याग्रह में शामिल हो गये। फिर उन्होंने वकालत करने की बात नहीं की, अपना सारा समय राष्ट्र की सेवा में लगाया, एक वीर सेनानी की तरह स्वतन्त्रता-संग्राम में हिस्सा लिया और आजादी के लिये जेल की यातनाएँ सहीं। सन् १९३४ में ही वे समाजवादी आन्दोलन में शरीक हो गये और आजीवन उससे सम्बन्धित रहे। सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति के सदस्य, संयुक्त मन्त्री आदि पदों से और राज्य सभा के सदस्य की हैसियत से उन्होंने समाजवाद को पुष्ट किया। फरीद साहब का नरेन्द्रदेवजी से घनिष्ठ सम्बन्ध था। फरीद साहब नरेन्द्रदेवजी को अपना बुजुर्ग मानते और नरेन्द्रदेवजी अपने छोटे भाई की तरह उनसे स्नेह करते। नरेन्द्रदेवजी उन्हें फरीद और तुम कहकर ही पुकारते थे और जब फरीद साहब लखनऊ जाते तब वे नरेन्द्रदेवजी के कमरे में ही ठहरते।

कमलादेवी चट्टोपाध्याय

श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय का भी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के संघर्षों तथा जनतान्त्रिक समाजवादी आन्दोलन के संचालन में भरपूर योगदान रहा है। कांग्रेस समाजवादी आन्दोलन के नेतृत्व में तो उनका काफी ऊँचा स्थान था। सन् १९३६ में उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के द्वितीय अधिवेशन की अध्यक्षता की। सन् १९३८ में पार्टी के लाहौर अधिवेशन में उन्होंने कम्युनिस्टों के कुचक्रों का डटकर मुकाबला किया और सर्वश्री अच्युत पटवर्धन और नरेन्द्रदेव के साथ पार्टी के कार्यकर्ताओं का एक थीसिस द्वारा मार्ग प्रदर्शन किया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशनों में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के विचारों और सुझावों को पुष्ट करना उनका एक मुख्य कार्य था। राष्ट्र के विभिन्न संघर्षों में भाग लेते हुए और स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में कष्ट सहते हुए उन्होंने सन् १९४२ के आन्दोलन के संचालन में काफी महत्त्वपूर्ण कार्य किया और अपनी क्षमता के लिये ख्याति प्राप्त की। सन् १९४७ में डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद के निमन्त्रण पर उन्होंने कांग्रेस की वर्किंग कमेटी के सदस्य का काम किया। सन् १९५२ के चुनाव के बाद उन्होंने बम्बई की बजाय दिल्ली को अपना कार्यक्षेत्र बनाया और वहां राष्ट्र के निर्माण के निमित्त रचनात्मक और सहायता कार्यों में वे संलग्न हो गयीं।

श्री एम. आर. मसानी

श्री मिनु मसानी एक समृद्ध प्रतिष्ठित पारसी परिवार के एक होनहार रत्न हैं। वे दक्ष राजनीतिज्ञ तथा प्रतिभाशाली वक्ता हैं। जब वे लन्दन में स्कूल आफ इकनामिक्स में शिक्षा प्राप्त करते थे, तभी वे फेबियन सोशलिस्टों के सम्पर्क में आये तथा उनके विचारों से प्रभावित हो वैधानिक समाजवाद का समर्थन करने लगे। देश में वापस लौटने पर उन्होंने सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लिया और नासिक जेल में श्री जयप्रकाश नारायण आदि के साथ समाजवादी आन्दोलन की एक कल्पना तैयार की। सन् १९३४ में वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संयुक्त मन्त्री चुने गये और इस हैसियत से उन्होंने पांच वर्ष तक समाजवादी आन्दोलन के संचालन में भरपूर काम किया। सन् १९३८ में उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के लाहौर-अधिवेशन की अध्यक्षता की। श्री मसानी कम्युनिस्टों की गतिविधि से असन्तुष्ट तथा उनके प्रति श्री जयप्रकाश नारायण की सद्भावना से क्षुब्ध थे। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अन्दर कम्युनिस्ट सदस्यों के कुचक्रों से तंग आकर उन्होंने एक बार उसकी राष्ट्रीय कार्यसमिति से भी इस्तीफा दे दिया था। श्री मसानी सोवियत रूस की नीति-रीति के भी विरोधी थे। दूसरे विश्वयुद्ध के जमाने में उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया। आगे चलकर उन्होंने खुले तौर पर पूंजीवाद और मुक्त व्यापार का समर्थन शुरु कर दिया। अन्ततोगत्वा श्री राजगोपालाचार्य के नेतृत्व में उन्होंने स्वतन्त्र पार्टी का गठन किया और उसके मन्त्री की हैसियत से उसका संचालन और नेतृत्व शुरू कर दिया। इस समय उनके विचार व्यक्तिवादी विचारक हर्बर्ट स्पेन्सर से मिलते हैं। हर्बर्ट स्पेन्सर की तरह मसानी साहब भी समाजवाद को एक प्रकार की दासता मानते हैं तथा कल्याणकारी राज्य के सिद्धान्त को भी गलत समझते हैं। उनके विचार में तो राजनीतिक व्यवस्था ही राज्य का एक मात्र उद्देश्य है। जनकल्याण के नाम पर आर्थिक व्यवस्था में राज्य का हस्तक्षेप वे सर्वथा अनुचित समझते हैं। पूंजिवाद की पुष्टि तथा समाजवाद का विरोध लोकसभा में उनका विशिष्ट कार्य है।

पुरुषोत्तम त्रिकमदास

श्री पुरुषोत्तम त्रिकमदास एक समृद्ध परिवार के होनहार रत्न हैं। दूसरे समाजवादी नेताओं की तरह उन्होंने भी गान्धी जी द्वारा संचालित स्वतन्त्रता संघर्षों में डटकर काम किया तथा स्वाधीनता के निमित्त जेल की यातनाएँ सहीं। उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्य समिति के एक सम्मानित सदस्य की हैसियत से समाजवादी आन्दोलन के संचालन में भरपूर काम किया तथा सन् १९४८ में सोशलिस्ट पार्टी के नासिक अधिवेशन में अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। जनतान्त्रिक समाजवाद के मूल सिद्धान्तों पर आस्था रखते हुए वे कम्युनिस्टों की गति विधि तथा कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय की नीति-रीति के कटु आलोचक हैं। वे तो कम्युनिज्म को एक प्रगतिशील सामाजिक आन्दोलन की बजाय एक कट्टरपन्थी धार्मिक सम्प्रदाय समझते हैं। सिद्धान्तों की पवित्रता के नाम पर कम्युनिस्टों के पारस्परिक संघर्ष को वे स्पेन के जेस्युट (Jesuit) समुदाय की मारकाट (इंक्युजिशन) जैसा निन्दनीय समझते हैं। वे कम्युनिस्ट सरकारों की दमनकारी तानाशाही तथा विस्तारवादी विदेश नीति के भी कट्टर विरोधी तथा जनता की स्वाधीनता और जनतान्त्रिक आधारों के पोषक हैं। श्री पुरुषोत्तम त्रिकमदास एक लब्धप्रतिष्ठ वकील हैं। उन्होंने बहुत ही योग्यता से एक अन्तर्राष्ट्रीय जूरिस्ट कमीशन के अध्यक्ष की हैसियत से कम्युनिस्ट चीन द्वारा तिब्बत की जनता पर किये गये अत्याचारों की जाँचकर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट तैयार की तथा उनकी ओर संसार का ध्यान आकृष्ट किया।

मुन्शी अहमददीन

मुन्शी अहमददीन पंजाब में समाजवादी आन्दोलन के बानी तथा अविभाजित हिन्दुस्तान के उत्तर-पश्चिम भूखण्ड में सबसे प्रमुख समाजवादी नेता थे। इस क्षेत्र में उन्होंने बीस वर्ष तक समाजवादी कार्यकर्ताओं का नेतृत्व किया और उन्हें प्रेरणा प्रदान की। वे कांग्रेस समाजवादी आन्दोलन के प्रारम्भिक काल में कई वर्ष तक कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति के सदस्य रहे और इस पार्टी में कम्युनिस्टों की घुसपैठ और तोड़फोड़ के विरुद्ध संघर्षों में उनका भरपू

भाग रहा। वे स्वतन्त्रता संघर्ष के वीर सेनानी थे। स्वतन्त्र भारत में उन्होंने कई वर्ष तक बिहार राज्य के जमशेदपुर में मजदूर आन्दोलन का सफल नेतृत्व किया।

अशोक मेहता

श्री अशोक मेहता स्वतन्त्रता-संघर्ष के वीर सेनानी तथा प्रतिभाशाली राजनीतिज्ञ हैं। छोटी आयु में ही सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग ले उन्होंने भारतीय राजनीति में और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में प्रवेश किया। थोड़े दिनों में ही उन्होंने पार्टी के संचालन में महत्त्वपूर्ण भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। कालान्तर में उन्होंने उसके नेतृत्व में ऊंचा स्थान प्राप्त कर लिया। पार्टी के तत्त्वावधान में संचालित मजदूर आन्दोलन के संगठन और नेतृत्व में भी उनका महत्त्वपूर्ण योग था। जनतांत्रिक संसदीय कार्यों में उनकी विशेष अभिरुचि है। कई वर्ष तक तो उन्होंने ही लोकसभा में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का नेतृत्व किया। पार्टी की नीति-रीति पर उनकी योग्यता की गहरी छाप रहती थी। पर सन् १९५२ के चुनावों के बाद कांग्रेस से सहयोग करने के प्रश्न पर पार्टी के अधिकांश सदस्यों से उनका गहरा मतभेद हो गया। जहाँ देश की मौजूदा परिस्थिति में वे इस सहयोग को राष्ट्र की प्रगति के लिये अनिवार्य समझते थे, वहां पार्टी के दूसरे बहुत से नेता और कार्यकर्ता उनकी धारणा को समाजवादी आन्दोलन और देशहित के लिये हानिकर समझते थे। इस बात पर दस वर्ष तक पार्टी में संघर्ष करने के बाद सन् १९६४ में श्री अशोक मेहता ने पार्टी के निर्णयों की उपेक्षा करते हुए अपनी नीति का अवलम्बन करना ही उचित समझा और पार्टी से उनका सम्बन्ध विच्छेद हो गया है।

आचार्य नरेन्द्रदेव श्री अशोक मेहता की योग्यता, कार्यक्षमता और संगठन शक्ति के प्रशंसक थे। पर वे बहुत सी बातों में मेहताजी की चिन्तनधारा, गति-विधि और नीति-रीति को ठीक नहीं समझते थे। आचार्यजी को जहाँ सन् १९४७ में कांग्रेस में रहते हुए बम्बई कारपोरेशन के चुनाव में कांग्रेस उम्मीदवारों के विरुद्ध सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवारों को खड़ा करना अनुचित दिखाई देता था, वहां सन् १९५२ के चुनाव के बाद श्री अशोक मेहता का कांग्रेस की ओर झुकाव भी गलत

दिखाई देता था। नरेन्द्रदेवजी मजदूरों की संगठित शक्ति को समाजवाद की विजय और समाजवादी समाज के निर्माण के लिये प्रयोग करने के पक्ष में थे और इस उद्देश्य से वे पार्टी से मजदूर-संघों का सामूहिक सम्बन्ध पुष्ट करना और मजदूर-संघों द्वारा मजदूरों में समाजवादी चेतना पैदा करना जरूरी समझते थे। अतः वे श्री अशोक मेहता के पार्टी से अलग स्वतन्त्र ट्रेड यूनियनिज्म के सिद्धान्त को भी ठीक नहीं समझते थे। दोनों की कार्यप्रणाली और तौर-तरीके में भी भेद था। समाजवाद के सम्बन्ध में दोनों के दृष्टिकोण में भी अन्तर बढ़ता ही गया। जहाँ आचार्यजी अपने को मार्क्सवादी कहते थे और मार्क्स-एंगिल्स के साथ लेनिन के सिद्धान्तों से प्रभावित और अनुप्राणित थे, वहां श्री अशोक मेहता उनके इन विचारों को ठीक नहीं समझते।

नाना साहब गोरे

श्री नारायण गणेश गोरे जो नाना साहब के नाम से प्रसिद्ध हैं एक प्रतिभाशाली राष्ट्रसेवी तथा स्वतन्त्रता-संघर्षों के वीर सेनानी हैं। अन्याय का प्रतिरोध उनके जीवन का एक मुख्य लक्ष्य है। स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद श्री नाना साहब गोरे ने पुर्तगाल की साम्राज्यशाही को चेतावनी दी, गोवा सत्याग्रह का नेतृत्व किया तथा गोवा में कई वर्ष जेल की यातनाएँ सहीं। वे एक विख्यात विचारक, लेखक और वक्ता हैं। मराठी के साहितज्ञों में तो उनका विशिष्ट स्थान है। मराठी भाषा में उन्होंने कई प्रामाणिक पुस्तके लिखी हैं। उन्हें प्राचीन भारतीय संस्कृति और समाजवाद दोनों का ही समुचित ज्ञान है और उनके जीवन पर दोनों का प्रभाव है। समाजवादी आन्दोलन के निर्माण, प्रसार और संगठन में उनका महत्त्वपूर्ण योग है। महाराष्ट्र में तो समाजवाद की प्रगति बहुत कुछ उनके कारण है। सन् १९४८ में वे सोशलिस्ट पार्टी के मन्त्री नियुक्त हुए तथा सन् १९५८ में प्रजासोशलिस्ट पार्टी के पूना अधिवेशन में वे प्रधान मन्त्री निर्वाचित हुए और १९६३ तक इस काम को करते रहे। सन् १९५७ में पाँच वर्ष के लिये वे लोक सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। वहाँ उन्होंने राष्ट्र की भरपूर सेवा की। फरवरी सन् १९६४ में वाराणसी के कन्वेन्शन में वे प्रजासोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष चुने गये। राष्ट्र के उत्थान के लिये वे

राजनीतिक और आर्थिक क्रान्ति के साथ साथ सामाजिक क्रान्ति को भी आवश्यक समझते हैं। इसी कारण एक सनातनी ब्राह्मण परिवार में जन्म लेकर भी उन्होंने कुलमर्यादा तथा मातापिता के आदेशों की उपेक्षा करते हुए एक साध्वी विधवा से विवाह कर समाजसुधार का सफल आदर्श प्रस्तुत किया।

एस. एम. जोशी

श्री एस. एम. जोशी महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध विचारक और राष्ट्रसेवी साने गुरु के शील और आदर्शों से काफी प्रभावित हैं। सर्वोदय के सिद्धान्तों की भी उनपर छाप है। समाजवादी आन्दोलन से सम्बन्ध रखते हुए भी वे सर्वोदय के कामों में सहयोग देते रहते हैं। जब सन् १९५४ में नरेन्द्रदेवजी ने उनसे प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का प्रधान मन्त्री बनने का अनुरोध किया तब उन्होंने यह कह कर ही मन्त्री बनने से इनकार किया कि इस वर्ष सर्वोदय का काम करना ही उन्होंने निश्चय किया है। श्री एस. एम. जोशी ने गोवा सत्याग्रह के जमाने में संयुक्त महाराष्ट्र के आन्दोलन के नेतृत्व द्वारा ख्याति प्राप्त की। जोशी साहब मजदूरों और युवकों के संगठन में भी काफी संलग्न रहते हैं। महाराष्ट्र में राष्ट्रसेवा संघ के संगठन और संचालन में तथा समाजवादी आन्दोलन की प्रगति में उनका महत्त्वपूर्ण योग है। यद्यपि सन् १९५५ में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के गया अधिवेशन में नरेन्द्रदेवजी द्वारा प्रस्तुत नीतिवक्तव्य को स्वीकार कराने में श्री एस. एम. जोशी का काफी हाथ था और वे डाक्टर लोहिया के साथियों के अनुशासन की उपेक्षा से तथा गतिविधि से बहुत असन्तुष्ट थे, फिर भी वे समाजवादी एकता के सदा हामी रहे और सन् १९६२ के चुनाव के बाद उन्होंने इस सम्बन्ध में सक्रिय काम करना जरूरी समझा। सन् १९६३ में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के भोपाल अधिवेशन में अध्यक्ष चुने जाने के बाद तो समाजवादी एकता को पुष्ट करना ही उन्होंने अपना मुख्य लक्ष्य बना लिया। उन्हीं के प्रयास से जून सन् १९६४ में समाजवादी एकता हुई और जब फरवरी सन् १९६५ में एकता भङ्ग हुई तब डाक्टर लोहिया के साथियों के व्यवहार से असन्तुष्ट होते हुए भी संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी में बने रहना और उसका नेतृत्व करना ही उन्होंने

उचित समझा। सन् १९६७ में संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार की हैसियत से वे लोकसभा के सदस्य चुने गये।

नवकृष्ण चौधरी

श्री नवकृष्ण चौधरी स्वतन्त्रता संघर्ष के वीर सेनानी तथा उच्चकोटि के राष्ट्रसेवी हैं। राष्ट्र की सेवा ही उनके जीवन का मूलमन्त्र है। वे गान्धी जी के शील और आदर्शों से अनुप्राणित हैं। सहज शील, सादा जीवन, मानवीय उदार भावना, कर्त्तव्यनिष्ठा उनके जीवन की शोभा हैं। उड़ीसा के सार्वजनिक जीवन में उनका बहुत ऊँचा स्थान है। विभिन्न क्षेत्रों में समाज की दूसरी बहुत सी सेवाओं के साथ-साथ लगभग बारह वर्ष तक कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से सम्बन्धित रहते हुए उन्होंने समाजवादी आन्दोलन को पुष्ट किया। उड़ीसा के समाजवादी आन्दोलन पर उनके व्यक्तित्व और नेतृत्व की गहरी छाप है। सन् १९४६ में उड़ीसा के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल में वित्तमन्त्री का पद ग्रहण करने के बाद कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से उनका वैधानिक नाता टूट गया, पर समाजवादी कार्यकर्ताओं के प्रति उनकी पुरानी सद्भावना बनी रही। कई वर्ष तक उन्होंने उड़ीसा के मुख्य मन्त्री का उत्तरदायित्व भी वहन किया। रचनात्मक कार्यों में नव बाबू की विशेष अभिरूचि है। लोकशक्ति की अभिवृद्धि उनके जीवन का एक मुख्य लक्ष्य है। राजशक्ति से सम्बन्ध रखते हुए भी वे लोकशक्ति की अभिवृद्धि के निमित्त सर्वोदय के कार्यों में सहयोग देते रहते थे। सन् १९५६ में तो उन्होंने दलबन्दी की राजनीति से अलग होकर अपना सारा जीवन सर्वोदय के काम में लगा देने का निश्चय किया। सर्वोदय मण्डली में भी नवबाबू का विशिष्ट स्थान है।

सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी

श्री सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी उड़ीसा के प्रतिभाशाली, साहसी, कर्तव्यनिष्ठ नेता हैं। वे स्वतन्त्रता-संघर्ष के वीर सेनानी हैं। उन्होंने कांग्रेस के तत्त्वावधान में संचालित स्वतन्त्रता संघर्षों में हिस्सा लेकर ब्रिटिश साम्राज्यशाही का डटकर मुकाबला किया तथा अपने साहस और त्याग के बल पर कांग्रेस में मान प्राप्त किया। सन् १९४२ के क्रान्तिकारी संघर्ष के बाद सन् १९४६ में वे उड़ीसा की प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान

मन्त्री नियुक्त हुए और उन्होंने बड़ी योग्यता और तत्परता से अपने कर्तव्य का पालन किया। सन् १९३४ में ही श्री नवकृष्ण चौधरी के नेतृत्व में उनके साथ वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हुए। जब सन् १९४६ में नव बाबू ने पार्टी से अपना सम्बन्ध विच्छेद किया तब सुरेन्द्र बाबू ने ही उड़ीसा में समाजवादी आन्दोलन का नेतृत्व वहन किया। उनकी क्षमता, साहस और लगन ही उड़ीसा में प्रजासोशलिस्ट पार्टी का मूल आधार है। वे ही उड़ीसा की प्रगतिशील क्रान्तिकारी शक्तियों के सर्वश्रेष्ठ नेता हैं। समाजवाद के विरोधी भी उनके व्यक्तित्व और नेतृत्व के प्रशंसक हैं। उड़ीसा के सार्वजनिक जीवन पर उनके कार्यकलापों की गहरी छाप है। श्री सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी सन् १९५२ में राज्य सभा के सदस्य चुने गये तथा सन् १९५७ से वे लोकसभा के सदस्य हैं। सन् १९६२ के चुनाव के बाद वे ही लोकसभा में प्रजासोशलिस्ट पार्टी के नेता हैं। संसद में उनका कार्य बहुत ही प्रशंसनीय है। वहाँ उन्हें एक साहसी, राष्ट्रनिष्ठ, अनुभवी राजनीतिज्ञ का मान प्राप्त है। सन १९४७ में वे सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्य समिति के सदस्य चुने गये। सन १९५७ में प्रजासोशलिस्ट पार्टी के उपाध्यक्ष नियुक्त हुए। कई वर्ष तक वे इस पद को सुशोभित करते रहे। प्रजासोशलिस्ट पार्टी के गया-अधिवेशन के बाद तो राष्ट्रीय स्तर पर उनके व्यक्तित्व और नेतृत्व का निरन्तर विकास हो रहा है। उन्हें सम्मानित राष्ट्रीय नेता की मान्यता प्राप्त है।

श्री के. कृष्ण मेनन

श्री के. कृष्ण मेनन एक प्रतिभाशाली निस्पृही राष्ट्रसेवी तथा स्वतन्त्रता संघर्ष के वीर सेनानी थे। पारिवारिक सुखों की सम्भावनाओं की उपेक्षा कर आजीवन अविवाहित रह कर उन्होंने समाज की सेवा की। स्वतन्त्र भारत में समाजवादी समाज का निर्माण ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। सन् १९२७ में श्री मेहरअली द्वारा संचालित नवयुवक आन्दोलन के संगठन में श्री मेनन का महत्त्वपूर्ण योग था। सन् १९३२ के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के जमाने में नासिक जेल में उन्होंने सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन आदि के साथ समाजवादी आन्दोलन की रूपरेखा तैयार की, तथा कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी द्वारा संचालित समाजवादी आन्दोलन में शामिल होने



के बाद वे आजीवन उसकी अभिवृद्धि में संलग्न रहे। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के संयुक्त मन्त्री की हैसियत से उन्होंने समाजवादी आन्दोलन में भरपूर काम किया। जनतान्त्रिक समाजवाद के नैतिक मूल्य ही उनके जीवन के मूल आधार थे। सहजशील, मानवीय दृष्टिकोण, कर्तव्य परायणता, जनतान्त्रिक व्यवहार, निष्काम सेवा, धर्मनिरपेक्षता तथा आडम्बरहीन सादा जीवन उनके सद्गुण थे। वे अपनी क्षमता और प्रबन्ध कौशल के लिये भी प्रसिद्ध थे। युवकों के प्रशिक्षण में उनकी विशेष अभिरुचि थी।

८. कांग्रेस में नेतृत्व

अपनी विद्वत्ता, शील, तथा निष्काम राष्ट्रसेवा एवं सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रान्तव्यापी सञ्चालन और निर्भीक पर सन्तुलित समाजवादी नेतृत्व के कारण नरेन्द्रदेवजी ने सन् १९३४ तक कांग्रेस में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया। क्रान्तिकारी भावनाओं से अनुप्राणित बहुत से नवयुवकों ने उनके नेतृत्व को स्वीकार किया। उनके बहुत से पुराने साथियों ने उनके साथ उनके नेतृत्व में काम करना उचित समझा। गान्धीजी प्रभृति नेता भी विद्याचरणसम्पन्न 'नररत्न' की प्रतिभा से उनकी ओर आकृष्ट हुए। उनके साथियों ने उन्हें अपना पुराना संकोच छोड़ आगे बढ़कर काम करने तथा उनकी भावनाओं और विचारों को व्यक्त करने को बाध्य किया।

राष्ट्रीयकार्यसमिति

दो वर्ष के अन्दर ही अपनी प्रतिभा के बल पर नरेन्द्रदेव जी ने कांग्रेस में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय स्तर पर उच्च पद प्राप्त कर लिये। सन् १९३६ में एक ओर वे प्रान्तीय कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये और दूसरी ओर पण्डित जवाहरलाल नेहरू के निमन्त्रण पर साथी अच्युत पटवर्धन के साथ कांग्रेस की राष्ट्रीय कार्यसमिति के सदस्य बने। हरिपुरा अधिवेशन के अवसर पर श्री सुभाष चन्द्र बोस के बड़े भाई श्री शरद्चन्द्र बोस ने अच्युत पटवर्धन से कांग्रेस का प्रधानमन्त्री बनने के लिये आग्रह किया। पर शरद बाबू की बातों में अच्युतजी को विघटन की गन्ध मिली। इसलिये उन्होंने प्रधानमन्त्री बनने से इनकार कर दिया। और जब अधिवेशन के बाद उनसे और नरेन्द्रदेवजी से राष्ट्रीय कार्यसमिति का सदस्य बनने के लिये कहा गया तब दोनों ने उसी आशंका को ध्यान में रखते हुए सदस्य बनने से इनकार कर दिया। त्रिपुरा कांग्रेस के बाद गहरा मतभेद हो जाने के कारण जब श्री सुभाषचन्द्र बोस ने अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने अपने कलकत्ता अधिवेशन में डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी को अध्यक्ष चुना, तब उन्होंने नरेन्द्रदेव जी से राष्ट्रीय कार्य समिति

की सदस्यता स्वीकार करने का आग्रह किया। पर दक्षिण पक्ष और वामपक्ष के संघर्ष के वातावरण में पण्डित जवाहरलाल नेहरू की तरह उन्होंने भी सदस्य बनना उचित नहीं समझा। इस तरह सन् १९३८ के बाद नरेन्द्रदेवजी राष्ट्रीय कार्यसमिति के सदस्य नहीं रहे, पर सन् १९४८ तक उसकी बैठकों में आमन्त्रित होते रहे। सन् १९३९ में उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष बनाने की चर्चा गान्धी जी ने चलाई। पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि नरेन्द्रदेवजी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संगठन में इतने संलग्न हैं कि उनके लिये कांग्रेस का अध्यक्ष बनना सम्भव नहीं होगा।

प्रान्तीय कांग्रेस

सन् १९३६ के बाद प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी में आचार्य नरेन्द्रदेव का प्रभाव बढ़ता ही गया। प्रान्तीय कांग्रेस के कामों में उन्हें कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं के साथ साथ बहुत से दूसरे प्रगतिशील व्यक्तियों का सहयोग प्राप्त था, जिनमें काशी विद्यापीठ से सम्बन्धित प्राध्यापक, सञ्चालक और बहुत से पुराने छात्र शामिल थे। करीब करीब प्रत्येक जिले में ही कुछ प्रमुख कार्यकर्ता नरेन्द्रदेवजी के साथ थे। वे उनके नेतृत्व में राष्ट्र की सेवा करने में विशेष गौरव अनुभव करते थे।

प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी में नरेन्द्रदेवजी को जिन सज्जनों का सहयोग प्राप्त था उनमें सर्वश्री सम्पूर्णानन्द, श्रीप्रकाश, आचार्य जुगलकिशोर, दामोदरस्वरूप सेठ, डाक्टर मुरारीलाल, चन्द्रभानु गुप्त, ए० जी० खेर, हरिहरनाथ शास्त्री, मजदूर नेता राजाराम शास्त्री, मलखानसिंह, कमलापति त्रिपाठी, प्रोफेसर रामशरण, अलगूराय शास्त्री, मोहनलाल गौतम, ब्रह्मप्रकाश शर्मा प्रमुख थे। इनमें से श्री श्रीप्रकाश, श्री सम्पूर्णानन्द, आचार्य जुगलकिशोर, डाक्टर मुरारीलाल ने सन् १९३० के नमक सत्याग्रह से पहले ही अपनी सेवाओं और योग्यता के आधार पर कांग्रेस में काफी ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया था और इसलिये उनका समर्थन नरेन्द्रदेवजी के लिये विशेष महत्त्व रखता था। पर बहुतों ने सन् १९३० के नमक सत्याग्रह और सन् १९३२ के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सञ्चालन में विशिष्ट योग देकर कांग्रेसजनों का विश्वास प्राप्त कर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी में स्थान प्राप्त किया था।

सर्वश्री दामोदरस्वरूप सेठ और चन्द्रभानु गुप्त का नरेन्द्रदेवजी की गुट में विशेष स्थान था। सेठजी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के भी एक प्रमुख नेता थे और उत्तर प्रदेश में इस पार्टी का काम बहुत हद तक उन्हीं के हाथ में था। कांग्रेस के अन्दर भी उनका विशेष स्थान था और नरेन्द्रदेवजी अपने बहुत से काम सेठजी द्वारा ही करते थे। उन्होंने वर्षों प्रान्तीय कांग्रेस के प्रधानमन्त्री और अध्यक्ष की हैसियत से देश की सेवा की।

श्री चन्द्रभानु गुप्त सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य नहीं थे, पर वे उसके कामों में दिलचस्पी लेते रहते और उसकी थोड़ी बहुत सहायता करते रहते थे। प्रान्तीय कांग्रेस में उनका प्रभाव दिन प्रतिदिन बढ़ता ही चला जाता था, यहाँ तक कि जब सन् १९४८ में नरेन्द्रदेवजी ने कांग्रेस छोड़ी तब चन्द्रभानुजी उनके गुट के प्रमुख नेता बन गये। कांग्रेस छोड़ने के बाद दो एक मामलों में नरेन्द्रदेवजी का चन्द्रभानुजी से काफी गहरा मतभेद हो गया था जिसके कारण कुछ तनाव भी पैदा हो गया था। पर दोनों के अन्त तक अच्छे सम्बन्ध बने ही रहे। पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त के आग्रह पर भी गुप्तजी नरेन्द्रदेवजी के चुनाव-क्षेत्र में उनके विरुद्ध प्रचार करने नहीं गये। नरेन्द्रदेवजी के निधन पर चन्द्रभानुजी ने ही मोतीबाग में उनके अन्तिम संस्कार का प्रबन्ध किया और मोतीलाल नेहरू ट्रस्ट के तत्त्वावधान में नरेन्द्रदेव स्मृति पुस्तकालय की व्यवस्था की।

सर्वश्री कमलापति त्रिपाठी, हरिहरनाथ शास्त्री और राजाराम शास्त्री नरेन्द्रदेवजी के शिष्य थे। ये सब अपने आदरणीय गुरु के प्रति बहुत श्रद्धा रखते थे और नरेन्द्रदेवजी भी इनका आदर करते थे। नरेन्द्रदेवजी की प्रेरणा से ये तीनों कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य बन गये थे। सन् १९४८ तक श्री कमलापति त्रिपाठी और सन् १९४७ तक श्री हरिहर नाथ शास्त्री और सन् १९५६ तक श्री राजाराम शास्त्री ने नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व में राष्ट्र की सेवा की, उन्हें उनके कामों में सहायता दी। श्री कमलापति त्रिपाठी का कार्यक्षेत्र मूलतः राजनीतिक और साहित्यिक है। सर्वश्री हरिहरनाथ शास्त्री और राजाराम शास्त्री का कार्यक्षेत्र राजनीतिक और आर्थिक था। वे मजदूर नेता थे। दोनों

लाला लाजपतराय द्वारा सञ्चालित जनसेवक संस्थान (Servants of People's Society) के सदस्य थे। दोनों का आपस में भाई भाई का सा सम्बन्ध था। श्री हरिहरनाथ शास्त्री की क्षमता, योग्यता और शील पर नरेन्द्रदेवजी को बहुत विश्वास था और वे उनसे विशेष स्नेह करते थे। मजदूर आन्दोलन की प्रगति में हरिहरनाथजी का बहुत योगदान था। इन्डियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस के सञ्चालन में तो उनका काफी हाथ था। अपनी प्रतिभा के बल पर उन्होंने मजदूर क्षेत्र में राष्ट्रीय स्तर के नेता का आदरणीय स्थान प्राप्त कर लिया था। उनकी धर्मपत्नी श्रीमती शकुन्तला श्रीवास्तव भी उनके साथ नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व में समाजवाद के लिये काम करती थीं और जब सन् १९४७ में हरिहरनाथजी ने सोशलिस्ट पार्टी को छोड़कर कांग्रेस में ही बना रहना उचित समझा, शकुन्तलाजी सोशलिस्ट पार्टी की सदस्या बनी रहीं और नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व में काम करती रहीं। शकुन्तलाजी ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि जब वह नरेन्द्रदेवजी के उपचुनाव में उनके समर्थन में काम करने गयीं तब उनके पतिदेव ने जो उस समय लन्दन में थे उन्हें लिखा कि 'इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह तो विचार-स्वातंत्र्य का मामला है। फिर आचार्यजी जो मेरे पितृवत् हैं, तुम उनके चुनाव में गयीं यह मेरे लिये परम हार्दिक सन्तोष की बात है। आज यद्यपि मैं उनसे दूर हूँ (केवल राजनीति में) परन्तु तुम उनका कार्य कर रही हो। मैंने सुना है कि कुछ मित्र फैजाबाद गये हैं। मैं वहाँ होता सम्भवतः कांग्रेस की ओर से आदेश मिलने पर भी उनके विरोध में काम करने न जाता।' सन् १९४७ के बाद श्री हरिहरनाथ शास्त्री और उनकी सहधर्मिणी दोनों विभिन्न राजनीतिक मञ्चों से समाज की सेवा करते रहे, उन्होंने अपनी पत्नी के विचार-स्वातन्त्र्य में कभी कोई हस्तक्षेप नहीं किया।

सर्वश्री अलगूराय शास्त्री और मोहनलाल गौतम ने भी नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व में कांग्रेस और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में वर्षों काम किया। गौतम जी ने तो कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की उत्तरप्रदेश शाखा के मन्त्री की हैसियत से भी वर्षों कार्य किया। पर आगे चलकर इन दोनों सज्जनों ने कुछ ऐसी बातें कीं जिनसे कटुता पैदा हुई, जिसका नरेन्द्रदेवजी को बहुत क्षोभ था।

प्रतिद्वन्द्विता

प्रान्तीय कांग्रेस में रफी अहमद साहब किदवाई नरेन्द्रदेवजी के प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी थे। इस प्रतिद्वन्द्विता ने प्रान्तव्यापी गुटबन्दी का रूप धारण कर लिया था। तेजी, कटुता, पक्षपात गुटबन्दी के विशिष्ट गुण हैं। यह गुटबन्दी भी इनसे अछूती नहीं थी। सर्वश्री कृष्णदत्त पालीवाल, मोहनलाल सक्सेना, गोपीनाथ श्रीवास्तव, शिब्बनलाल सक्सेना, बालकृष्ण शर्मा, गोपाल नारायण सक्सेना, अजित प्रसाद जैन, कुँवर खुशवक्त राय, त्रिलोकी सिंह, जगनप्रसाद रावत, केशवदेव मालवीय, सालिकराम जायसवाल रफी-गुट के प्रमुख सदस्य थे।

नरेन्द्रदेव-गुट का दावा था कि वह रफी-गुट से अधिक प्रगतिशील है। रफी-गुट इस बात को तसलीम करने को तैयार नहीं था। दोनों गुटों के प्रमुख सदस्य देश की स्वतन्त्रता के लिये हर प्रकार की कुर्बानी करने को तैयार थे, ब्रिटिश साम्राज्यशाही के कट्टर विरोधी थे, स्वतन्त्रता संग्राम के वीर सेनानी थे और इस अर्थ में दोनों वामपक्षी और प्रगतिशील होने का दावा कर सकते थे। पर उस समय जो शक्तियाँ वामपक्षीय शक्तियों के नाम से पुकारी जाती थीं उनसे नरेन्द्रदेव-गुट का जितना गहरा सम्बन्ध था, उतना रफीगुट का नहीं था।

नरेन्द्रदेव-गुट के बहुत से सदस्य समाजवादी थे, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य थे। जो समाजवादी नहीं थे उनपर भी नरेन्द्रदेवजी के समाजवादी नेतृत्व की थोड़ी बहुत छाप थी। दूसरी ओर गो रफी अहमद साहब का पण्डित जवाहरलालजी से घनिष्ट सम्बन्ध था, रफी गुट का किसी विशिष्ट वामपक्षीय शक्ति से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं था। रफी साहब ने किसान आन्दोलन में जरूर हिस्सा लिया, उन्हें संघर्ष के लिये प्रोत्साहित किया और संघर्ष में उनकी सहायता की। पर रफी साहिब का नेतृत्व मूलतः राष्ट्रीय था। उसका समाजवाद से कोई सम्बन्ध नहीं था। रफी गुट के कुछ सदस्यों पर तो फासिज्म की छाप भी पड़ गयी थी, गो स्वराज्य मिलने के बाद इस गुट के कुछ प्रमुख व्यक्ति समाजवादी आन्दोलन में शामिल हो गये और कुछ कांग्रेस के अन्दर ही वामपक्षीय समाजवादी शक्तियों को सगठित करने लगे

रफी साहब की प्रकृति, नीति-रीति और तौर-तरीके नरेन्द्रदेवजी से बहुत हद तक भिन्न थे। पर वजहदारी दोनों का विशिष्ट गुण था। साधारण कार्यकर्ता के प्रति सहज सहानुभूति दोनों के शील और सौजन्य की विशेषता थी। कार्यकर्ताओं की समस्याओं को हल करने में उनकी मदद करना दोनों ही अपना कर्तव्य समझते थे। कार्यकर्ताओं को अपनी ओर आकृष्ट करने की भी दोनों में भारी क्षमता थी। सहज सहानुभूति और आकर्षण दोनों के नेतृत्व के काफी बड़े आधार थे।

विचारों में काफी विरोध होते हुये भी नरेन्द्रदेवजी और रफी अहमद साहब किदवाई एक दूसरे की बड़ी इज्जत करते थे। दोनों को एक दूसरे की देशभक्ति और राष्ट्रनिष्ठा पर विश्वास था और दोनों प्रतिद्वन्द्विता के बावजूद बाहमी गलतफहमी से यथाशक्ति बचे रहना चाहते थे।

श्री श्रीप्रकाशजी ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि सन् १९३६ में प्रादेशिक कांग्रेस कमेटी की एक बैठक में नरेन्द्रदेवजी रफीसाहब की किसी बात से काफी रुष्ट हो गये और उन्होंने यहां तक कह दिया कि वह इस प्रकार के सज्जन से बात भी नहीं करना चाहते। रफी साहब यह सुनकर चुप रहे। पर कुछ दिन बाद जब फिर फैजाबाद में नरेन्द्रदेवजी के मकान पर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई, तब सब कार्यवाही समाप्त होने के बाद रफी साहब ने श्रीप्रकाश जी से कहा कि वह नरेन्द्रदेवजी से मिलना चाहते हैं। श्रीप्रकाशजी ने नरेन्द्रदेवजी से उनकी मुलाकात करा दी। बातचीत के बाद रफी साहब ने श्रीप्रकाश जी से कहा कि वह खुश हैं कि मतभेद दूर हो गया और नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि मैंने सब कागजों को देख लिया है, रफी साहब निर्दोष हैं, गलती मेरी ही थी।

इसी तरह जब स्वराज्य मिल जाने के बाद बिहार में साम्प्रदायिक झगड़े हुए और उत्तर प्रदेश के गोरखपुर आदि पूर्वी जिलों को साम्प्रदायिक झगड़ों से सुरक्षित रखने के लिये गृहमन्त्री की हैसियत से रफी साहब ने समुचित प्रबन्ध किया, तब साम्प्रदायिक भावनाओं से अनुप्राणित बहुत से हिन्दुओं ने उनपर साम्प्रदायिक होने का दोषारोपण किया। उस समय नरेन्द्रदेवजी ने रफी साहब का जोरदार समर्थन किया और कांग्रेस की प्रान्तीय कार्यसमिति में जोर के साथ कहा कि

रफी साहब में चाहे दूसरे दोष कुछ भी हों पर वे साम्प्रदायिक नहीं हैं; उनकी व्यापक राष्ट्रीय भावना पर अविश्वास करना उनके साथ अन्याय है, जिसे कोई देशभक्त बर्दाश्त नहीं कर सकता। इस अवसर पर आचार्यजी उतने ही उत्तेजित और रुष्ट थे जितना कोई व्यक्ति अपने सगे भाई पर लगाये झूठे आरोपों को सुनकर हो सकता है।

एक विदेशी लेखक ने लिखा है कि रफी साहब को प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डल से अलग कराके उन्हें केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में शामिल कराने के लिये नरेन्द्रदेवजी जिम्मेदार हैं। पर यह बात बिलकुल झूठ है, क्योंकि इस घटना की सारी जिम्मेदारी रफी साहब के कुछ अपने साथियों की थी। उन्होंने ही प्रधानमन्त्री नेहरू को समझा-बुझाकर इस बात के लिये राजी किया कि रफी साहब को केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल में शामिल होने को आमन्त्रित किया जाय। रफी साहब को यह बात पसन्द नहीं थी, पर वे नेहरू जी की बात टाल नहीं सके।

रफी साहब के पुराने विश्वसनीय साथी श्री त्रिलोकीसिंह का कहना है कि रफी साहब आचार्य नरेन्द्रदेव की विद्वत्ता और सद्गुणों के प्रशंसक थे और उन्होंने कई मामलों में नरेन्द्रदेवजी का समर्थन किया। त्रिलोकी बाबू का कहना है कि सन् १९४७ में रफी साहब ने गान्धी जी के इस विचार का समर्थन किया कि नरेन्द्रदेव को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया जाय और जब सन् १९४८ में नरेन्द्रदेव जी ने सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवार की हैसियत से उपचुनाव लड़ा, तब उनके विरोध में खड़े किये गये कांग्रेसी उम्मीदवार के समर्थन के लिये रफी साहब चुनाव क्षेत्र में नहीं गये। ऐसा लगता है कि इस सम्बन्ध में रफी गुट के कार्यकर्ताओं में गहरा मतभेद था। जहाँ सर्वश्री गोपीनाथ श्रीवास्तव और त्रिलोकी सिंह चाहते थे कि नरेन्द्रदेवजी और दूसरे सोशलिस्ट उम्मीदवारों का इस उपचुनाव में विरोध न किया जाय और उन्हें स्वस्थ विरोधीदल बनाने का मौका दिया जाय, वहाँ सर्वश्री गोपालनारायण सक्सेना बालकृष्ण शर्मा, जगनप्रसाद रावत ने जोरशोर से नरेन्द्रदेवजी का विरोध किया और उन्हें हराने में कोई बात उठा नहीं रखी।

प्रगतिशील नेतृत्व

दूसरे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद उत्तरप्रदेश की कांग्रेस अपनी उग्रता के लिये प्रसिद्ध हो गयी थी इसका मूल कारण तो

किसानों की बेचैनी और हलचल थी। पर इसमें बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन, पण्डित जवाहरलाल नेहरू और आचार्य नरेन्द्रदेव का भी विशेष योग था। टंडनजी का सामाजिक दृष्टिकोण बहुत हद तक सुधारवादी था। वे प्राचीन भारतीय संस्कृति के मानवीय तत्त्वों पर विशेष आस्था रखते थे और उनके आधार पर ही पुरानी परम्पराओं को ध्यान में रखते हुये समाज का सुधार करना चाहते थे। पर उनके राजनीतिक विचार काफी क्रान्तिकारी थे। किसानों के प्रति उनकी विशेष सहानुभूति थी। सरकार का दमन और जमींदारों की लूट खसोट टंडनजी को असह्य थी। उनका प्रतिरोध उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य था। वे किसानों की संगठित शक्ति द्वारा किसानों की दशा सुधारने के पक्ष में थे। उन्होंने प्रान्त के किसान आन्दोलन का नेतृत्व किया, किसानों की मांगों को पुष्ट किया और कांग्रेस द्वारा उन्हें मान्यता प्रदान किये जाने पर बल दिया। सविनय अवज्ञा आन्दोलन से पहले ही पण्डित जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस के प्रगतिशील क्रान्तिकारी तत्त्वों का नेतृत्व करने लगे थे। उनका व्यक्तित्व और नेतृत्व मजदूर, किसान और नवयुवक सबको आकृष्ट करता था और धीरे धीरे उन्होंने कांग्रेस के नेतृत्व में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया था। उनके प्रगतिशील आर्थिक और सामाजिक विचारों की तथा उनके गतिशील नेतृत्व और व्यक्तित्व की कांग्रेस पर गहरी छाप थी। उत्तरप्रदेश में बहुत से नवयुवकों ने समाजवाद का पहला पाठ नेहरूजी के व्याख्यानों और लेखों द्वारा ही पढ़ा था। पर उत्तरप्रदेश कांग्रेस की प्रगतिशील शक्तियों को पुष्ट करने में नरेन्द्रदेवजी का किसी से कम हाथ नहीं था। उन्होंने कांग्रेस के अन्दर सोशलिस्ट पार्टी को बना कर, उसके द्वारा समाजवादी दर्शन के मूल सिद्धान्तों का प्रसार कर कांग्रेस के अन्दर समाजवादी शक्तियों को पुष्ट किया और दूसरे प्रगतिशील तत्त्वों से उनका सम्बन्ध जोड़ कांग्रेस को नयी गति प्रदान की और कांग्रेस के सिद्धान्तों और कार्यप्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन कराने का भरसक प्रयत्न किया। उन्होंने किसान-आन्दोलन में सक्रिय भाग ले उसके नेतृत्व को सबल बनाया और नवयुवकों को क्रान्तिकारी राजनीतिक और सांस्कृतिक नेतृत्व प्रदान किया और उन्हें कांग्रेस के व्यापक नेतृत्व में देश की स्वतन्त्रता के लिये सतत प्रयत्न करने को प्रोत्साहित किया।

प्रान्तीय सम्मेलन

सन् १९३६ में प्रान्तीय कांग्रेस के राजनीतिक सम्मेलन में आचार्य जी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में जनता को आर्थिक कार्यक्रम के आधार पर संगठित करने का, कार्यकर्ताओं के मानसिक क्षितिज को ऊँचा उठने का, कांग्रेस संगठन को सुदृढ़ बनाने का और राष्ट्र कर्मीसंघ (नेशनल सर्विस) की व्यवस्था करने का मशवरा दिया। उनका कहना था कि 'जनता के दैनिक जीवन के आर्थिक संघर्ष को साम्राज्यविरोधी संग्राम से सम्बन्धित करने से ही जनता राष्ट्रीय आन्दोलन में सजीव भाग लेने को तैयार हो सकती है' तथा किसान और मजदूर संघों से कांग्रेस का प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित करके ही कांग्रेस को सुदृढ़ बनाया जा सकता है। उनके विचार में किसानसभा तथा मजदूरसंघ के सदस्यों को कांग्रेस में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त होना चाहिये, केवल इसलिये नहीं कि कांग्रेस के सम्मुख उनका दृष्टिकोण रखा जा सके, किन्तु इसलिये कि वे कांग्रेस के निर्णयों को अधिकाधिक प्रभावित कर सकें। कांग्रेस के सदस्य की हैसियत से नहीं; किन्तु अपनी संस्थाओं के प्रतिनिधि की हैसियत से ही वे यह काम कर सकते हैं।

भारतीय संविधान

सन् १९३५ के भारतीय संविधान की समीक्षा करते हुए आचार्यजी ने कहा कि 'जहाँ सन् १९१९ के विधान का आशय भारतीय शासन में तथा उद्योग व्यवस्था के क्षेत्र में हिन्दुस्तानियों को एक छोटा सा हिस्सेदार बना कर सन्तुष्ट करना था, वहां इस विधान का गूढ़ अभिप्राय देश की सकल प्रतिक्रियावादी शक्तियों को राष्ट्रीयता के विरोध में खड़ा करना है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये शासकों की ओर से अथक प्रयत्न कई साल से हो रहे हैं। उनकी यह कोशिश है कि नये विधान में शासन की बागडोर उन वर्गों के हाथ में रहे जो गवर्नमेन्ट के सहायक हैं। इसी दृष्टि से हरिजनों को और ईसाइयों को सुरक्षित स्थान अथवा पृथक् प्रतिनिधित्व दिया गया है। इसी विचार से अपने प्रान्त के देहाती क्षेत्रों में रंगीन बक्स की व्यवस्था नहीं की गयी है। इसी दृष्टि से सर्वदेशीय व्यवस्थापक सभा (फेडरल लेजिस्लेचर) के

लिये अप्रत्यक्ष चुनाव का प्रकार स्वीकृत हुआ है और देशी राज्यों की प्रजा को अपने चुने हुए प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं दिया गया है'।

नरेन्द्रदेवजी की धारणा थी कि 'कांग्रेस से देश को बहुत बड़ी आशा है और यदि हम पूर्ण अधिकार प्राप्त किये बगैर, मन्त्रिपद ग्रहण करेंगे तो हम अपनी प्रतिज्ञाओं को पूरा न कर सकेंगे और हम देश के विश्वासपात्र नहीं रह जायंगे। जनता इस धोखे में पड़ जायगी कि इस नवीन विधान में कुछ न कुछ तत्त्व की बात अवश्य होगी, तभी तो कांग्रेस के लोग पदग्रहण कर रहे हैं। पदग्रहण करके विधान को रद्द करना तो दूर रहा, हम साम्राज्यवाद के अंग बन जायँगे और देश की मनोवृत्ति धीरे धीरे वैध आन्दोलन के पक्ष में ढलने लगेगी'।

चुनाव घोषणा

नरेन्द्रदेवजी के एक अप्रकाशित संस्मरण से पता चलता है कि आने वाले चुनावों के सम्बन्ध में सन् १९३६ में चुनाव घोषणा का जो प्रारूप सबसे पहले तैयार हुआ था, वह उन्हें फीका और रसहीन मालूम होता था, इसलिये वे पण्डित जवाहरलाल नेहरू के पास गये और उनसे एक दूसरा मसविदा तैयार करने को कहा। नेहरू जी ने रात को दो तीन बजे तक बैठकर मसविदा तैयार किया। उसे कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने स्वीकार कर लिया। इस घोषणापत्र में कांग्रेस ने घोषित किया कि व्यवस्थापक सभाओं द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती और आदेश दिया कि कांग्रेस के सदस्य इन सभाओं का ऐसा उपयोग करें जिससे मौजूदा शासन व्यवस्था का अन्त हो, जनता की शक्ति बढ़े और व्यवस्थापिका सभाओं के बाहर जो राष्ट्रीय कार्य हो रहा है, उसमें सहायता मिले तथा स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये जिस शक्ति की आवश्यकता है उसका विस्तार हो। चुनाव घोषणा में इस बात का भी वायदा किया गया कि कांग्रेस के प्रतिनिधि संविधान को साम्राज्य-शाही के हितों में प्रयोग नहीं होने देंगे। संघ व्यवस्था को चालू किये जाने का विरोध करेंगे, दमनकारी कानूनों को रद्द किये जाने के सब सम्भव प्रयत्न करेंगे तथा नागरिक स्वतन्त्रता को प्रतिष्ठित करने के लिये, राजनीतिक बन्दियों को छुड़ाने के लिये और राष्ट्रीय संघर्ष के जमाने

में किसानों और सार्वजनिक संस्थाओं को जो क्षति हुई उसकी पूर्ति के लिये भी प्रयत्न करेंगे। चुनाव घोषणा में एक आर्थिक कार्यक्रम भी दिया गया था, जिसमें सन् १९३१ के मौलिक अधिकारों के प्रस्ताव के आधार पर घोषित किया गया था, कि कांग्रेस को कोई भी ऐसा संविधान स्वीकार नहीं होगा जिसमें भूमिसुधारों की व्यवस्था करने का समुचित अधिकार प्राप्त न हो। कांग्रेस ने अपने फैजपुर अधिवेशन में भूमि सुधारों की व्याख्या भी की थी। उसमें जमींदारी प्रथा को खत्म करने की बात तो नहीं थी, पर किसानों को लगान की कमी का तथा उनके हितों की रक्षा और वृद्धि का आश्वासन दिया गया था। इस चुनाव-घोषणा को कांग्रेस की राष्ट्रीय कार्यसमिति की ओर से आवश्यक स्वीकृति के लिये अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के समक्ष डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने पेश किया और इसका समर्थन आचार्य नरेन्द्र देव ने किया।

कांग्रेस मन्त्रिमण्डल

सीमा प्रान्त को छोड़कर दूसरे प्रान्तों में मुसलमान वोटरों का समर्थन कांग्रेस हासिल नहीं कर पाई, फिर भी किसानों के समर्थन से वह सीमाप्रान्त के साथ साथ मद्रास, बम्बई, मध्यप्रदेश, उड़ीसा, बिहार और संयुक्त प्रांत की विधान सभाओं में बहुमत हासिल कर सकी। चुनाव के बाद मन्त्रिमण्डल बनाने का प्रश्न कांग्रेस के सामने उपस्थित हुआ। कांग्रेस का विधानवादी दक्षिणपक्ष मन्त्रिमण्डल बनाने के पक्ष में था, किन्तु वामपक्ष इसके विरुद्ध था। इस विषय पर जब कांग्रेस की राष्ट्रीय कार्यसमिति में बहस हुई, तब आचार्य जी ने मन्त्रिमण्डल बनाने का डटकर विरोध किया। बहुमत से निर्णय हुआ कि कुछ शर्तों पर मन्त्रिमण्डल बनाया जा सकता है। जब यह प्रश्न अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में विचारार्थ पेश हुआ, तब समाजवादियों की ओर से साथी जयप्रकाश ने मूल प्रस्ताव में इस आशय का संशोधन पेश किया कि 'चूँकि मौजूदा संविधान के अन्तर्गत जनता के शोषित और दलित वर्गों की दशा में मन्त्रिमण्डल कोई विशेष सुधार नहीं कर सकता, उन्हें कोई राजनीतिक या आर्थिक सुविधा प्राप्त नहीं करा सकता और चूँकि किसी वास्तविक शक्ति के हस्तान्तरित हुये बगैर उत्तरदायित्व के ग्रहण

करने से कांग्रेस के मन्त्रिमण्डल उस दमन और शोषण के उत्तरदायी हो जायेंगे जो कि साम्राज्यशाही शासन में निहित है, और चूँकि इस कारण कांग्रेस जनता की नजरों में गिर जायगी, इसलिये अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी कांग्रेस विधायकों द्वारा मन्त्रिपद स्वीकार करने के विरुद्ध निर्णय करती है'। प्रस्ताव पर बोलते हुये आचार्यजी ने कहा कि उनकी राय में मन्त्रिपदों को स्वीकार न किया जाय, और कांग्रेस वही काम करे जिससे जनता की शक्ति सुदृढ़ हो। उन्होंने कहा कि हमें इस धोखे में नहीं रहना चाहिए कि मौजूदा संविधान के अन्तर्गत विधानसभाएँ जनशक्ति का केन्द्र होंगी या सरकार स्वतन्त्र शासन जैसी होंगी।

कांग्रेस ने निश्चय किया कि यदि गवर्नर इस बात का आश्वासन दें कि वह अपने विशेष उत्तरदायित्व सम्बन्धी अधिकारों का प्रयोग नहीं करेंगे तो प्रान्तों में वह अपने मन्त्रिमण्डल बनायेगी। चूँकि गवर्नर कोई ऐसा आश्वासन देने को तैयार नहीं थे, कांग्रेस ने मन्त्रिमण्डल बनाने से इनकार कर दिया। उस पर इन प्रान्तों में अन्तरिम मन्त्रिमण्डल बनाये गये। किन्तु आगे चलकर कुछ आश्वासन मिल जाने पर कांग्रेस मन्त्रिमण्डल बनाने के लिये तैयार हो गयी। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी इसके विरुद्ध थी।

आचार्य नरेन्द्रदेव पर, जो संयुक्त प्रान्तीय विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हुये थे, मन्त्रिपद स्वीकार करने के लिये बहुत जोर डाला गया, परन्तु उन्होंने इनकार कर दिया।

दो वर्ष तक कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने काम किया। इस काल में देश की प्रगति और जनता की अभिवृद्धि के लिये बहुत से कामों का आयोजन किया गया। पर इनमें भूमि-व्यवस्था का सुधार प्रमुख कार्य था। इस काल में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों को कई कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिनमें दो प्रमुख थीं। कांग्रेस मन्त्रिमण्डल राजनीतिक कैदियों को छोड़ने के लिये वचनबद्ध थे। पर गवर्नर अपने विशेष उत्तरदायित्व सम्बन्धी अधिकारों का प्रयोग कर इस काम में रुकावटें डालते रहते थे। दूसरी ओर जनता, विशेषतः कांग्रेसजन, कैदियों के न छोड़े जाने पर मन्त्रिमण्डलों की भर्त्सना करते थे। अन्ततोगत्वा उत्तर प्रदेश और बिहार के मन्त्रिमण्डलों ने कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन से पहले

इस्तीफे दे दिये। इस पर काफी दुन्द मचा। कुछ कांग्रेसजन इसके पक्ष में थे और कुछ इस कार्य से क्षुब्ध थे। आचार्य नरेन्द्रदेव और दूसरे समाजवादी नेताओं ने मन्त्रिमण्डलों के इस काम का समर्थन किया। अधिवेशन के बाद गवर्नरों और कांग्रेस पार्टियों में समझौता हो गया। कांग्रेस मन्त्रिमण्डल फिर उत्तरप्रदेश और बिहार में बनाये गये और बहुत से राजनीतिक बन्दी छोड़ दिये गये।

संकट टल जाने के बाद आचार्यजी ने जो वक्तव्य दिये उसमें उन्होंने कहा कि 'संकट के बीज तो नये विधान के भीतर, नये विधान के प्रति हमारी नीति के भीतर, तथा ब्रिटेन और हिन्दुस्तान के प्रचलित सम्बन्ध की तह में मौजूद हैं' और बहुत सम्भव है कि हमें फिर इससे भी अधिक 'गम्भीर और व्यापक संकट का मुकाबला करना पड़े'। उन्होंने कहा कि 'इस संकट के टलने में कांग्रेस के वाम पक्ष द्वारा पैदा की हुई जागृति का गहरा हाथ रहा है और भविष्य में भी जनशक्ति के जरिये ही कांग्रेस आने वाले संकट का कार्यसाधक ढंग से मुकाबला कर सकेगी'। उनका विचार था कि 'वैधानिक संकट से पूरा लाभ तभी उठाया जा सकता है जब कि कांग्रेस ने धारासभा (विधानसभा) के भीतर तथा उसके बाहर के अपने कार्यक्रम द्वारा जनता में पर्याप्त राजनीतिक चेतना उत्पन्न कर दी हो।' दूसरे शब्दों में आर्थिक मांगों के आधार पर शोषित जनता का इस दर्जे का संगठन हो गया हो, उनकी क्रान्तिकारी मनोवृत्ति इस हद तक विकसित हो गयी हो कि वह साम्राज्यशाही के खिलाफ आखिरी संघर्ष करने को तैयार हो।

साम्प्रदायिक समस्या

साम्प्रदायिक समस्या ने कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों को गम्भीर परेशानी और उलझन में डाल दिया था। मुस्लिम लीग ने कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों पर मुसलमानों के हितों की उपेक्षा का दोष लगाया और इसके प्रचार का मुस्लिम जनता पर बुरा प्रभाव पड़ा। मुसलमानों की धारणा बन गयी कि कांग्रेस शासन तो हिन्दुओं का शासन है, वह तो मुसलमानों पर अन्याय करने पर तुला है। ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस के नेताओं ने गवर्नरों से कहा कि यदि उनके विचार में मन्त्रिमण्डलों के किसी काम से मुसलमानों के मुनासिब हितों की क्षति पहुँचती है, तब

वे अल्पसंख्यकों के हितों के रक्षासम्बन्धी अपने विशेष उत्तरदायित्व का पालन करें और अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग कर अन्याय न होने दें। गवर्नरों ने अपने विशेष उत्तरदायित्व के अधिकारों के प्रयोग की कोई जरूरत नहीं समझी। पर सब प्रकार का प्रयत्न करने पर भी कांग्रेस मन्त्रिमण्डल मुस्लिम लीग के प्रचार के दुष्प्रभाव को दूर नहीं कर सके। आचार्यजी का कहना था कि 'मन्त्रिपद ग्रहण कर हमने अपने लिये एक मुसीबत बुला ली। वैधानिक मनोवृत्ति को तो उत्तेजना मिली ही जिसकी वजह से अवसरवादियों को कांग्रेस में घुसने का मौका मिला, साथ साथ मुस्लिम लीग का भी विरोध बढ़ गया और हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न ने भयंकर रूप धारण कर लिया'। जब अक्तुबर सन् १९३९ में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफा दिया, तब मुस्लिम लीग ने मुक्ति दिवस मनाया और सन् १९४० में उसने पाकिस्तान की मांग के समर्थन में प्रस्ताव पास किया। मुस्लिम राष्ट्र और पाकिस्तान ही उसका राजनीतिक लक्ष्य बन गया।

विधानसभा में काम

सन् १९३७ में उत्तरप्रदेश विधानसभा में विरोधी पक्ष के अधिकांश सदस्य जमींदार वर्ग के थे। जमींदारों के हितों की रक्षा ही उनका काम था। वे जमींदारों के दृष्टिकोण से ही कांग्रेस सरकार की आर्थिक नीति की समीक्षा करते थे। उनकी इस मनोवृत्ति की आलोचना ही आचार्यजीका विधानसभा में प्रमुख काम था। विधानसभा में उनके अधिकांश भाषण पुरमजाक सलीस उर्दू जबान में ही होते थे ताकि विरोधी दल उन्हें ठीक तौर पर समझ सकें और उन्हें विरोध की हकीकत का पता लग सके। कांग्रेस सरकार द्वारा प्रस्तुत भूमिसुधारों की आलोचना का जवाब देते हुए आचार्यजी कहते थे कि जमींदारों को पुरानी मान्यताओं की रक्षा के नाम पर काश्तकारों के हितों को कुर्बान नहीं किया जा सकता, उनके हितों की रक्षा और भूमि-व्यवस्था की असमानताओं को दूर करना तो प्रगतिशील सरकार का कर्तव्य है। अवध के ताल्लुकेदारों के अधिकारों की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा कि 'सन् १८५७ के विप्लव के बाद जो भूमि-सम्बन्धी सनदें ताल्लुकेदारों को प्राप्त हुईं वे तो गुलामी के पट्टे थे, क्योंकि उनके

द्वारा तो वे ब्रिटिश सरकार की सेवा और वफादारी की प्रतिज्ञा के बन्धन से बँधे हैं'। आचार्यजी का तो कहना था कि 'इंसाफ का सिर्फ यह असूल है, सिर्फ यह फिलासफी है कि जमीन कुदरत की दौलत है और वह उसकी मिलकीयत है जो उसको तरक्की देता है और कामयाबी के साथ जोतता बोता है'।

मुस्लिम लीग के एक सदस्य की इस बात का जवाब देते हुये कि वे जनतन्त्र के समर्थक हैं, पर समाजवाद के विरोधी हैं, आचार्यजी ने कहा कि 'समाजवाद ही पूर्ण जनतन्त्र का पोषक है।' उन्होंने कहा कि 'आर्थिक समता के बिना राजनीतिक जनतन्त्र निकम्मा है, जो जनतन्त्र जनता के आर्थिक उद्धार के लिये प्रयत्नशील न हो वह जनतन्त्र निकम्मा है, पूँजीवादी जनतन्त्र तो खोखला जनतन्त्र है।' आचार्यजी ने बताया कि 'हमें आर्थिक जीवन की असमानताओं को दूर करना है, ज्ञान के संचित भंडार को सर्वसाधारण के लिये उपलब्ध कराना है', सारी जनता के लिये 'उन्नति और संस्कृति के नये युग' का और नये जनतान्त्रिक समाज का निर्माण करना है और यह सब कुछ समाजवाद में ही सम्भव है।

पूर्ण स्वराज्य की मांग का समर्थन करते हुए आचार्यजी ने विधान सभा में बताया कि उनका ब्रिटेन की जनता से कोई द्वेष नहीं है, वह तो अंग्रेजों से प्रेम करते हैं और चाहते हैं कि हिन्दुस्तानी उनके सद्गुणों का अनुसरण करें। पर वह ब्रिटेन की साम्राज्यशाही राजनीतिक व्यवस्था के विरोधी हैं और ब्रिटेन से संवैधानिक सम्बन्ध विच्छेद करने के पक्ष में हैं।' संविधानसभा की मांग का समर्थन करते हुए आचार्य जी ने कहा कि 'अर्धक्रान्तिकारी अवस्थाओं में ही उसका निर्माण सम्भव है। और जनक्रांति द्वारा निर्मित संविधान सभा में ही जनता की आवाज का पूरा असर मुमकिन है। उनका कहना था कि देश की आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था के निर्माण में ब्रिटिश पार्लियामेंट का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं हो सकता और संविधान सभा का विचार ब्रिटिश सरकार से मांग नहीं, बल्कि उसे चुनौती है कि भविष्य में संविधान सभा ही जनता का नारा और लक्ष्य होगा।

साम्प्रदायिकता

अल्पसंख्यकों के हितों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करते हुये आचार्यजी ने कहा कि 'अल्पसंख्यकों के विश्वास को प्राप्त करना समाज

का कर्तव्य है। बहुसंख्यकों के लिये यह समझना ही पर्याप्त नहीं है कि अल्पसंख्यकों के प्रति उनका व्यवहार न्यायपूर्ण है, उनका तो कर्तव्य है कि वे अल्पसंख्यकों के प्रति उदार हों, और अपने व्यवहार से उनमें विश्वास पैदा करें कि उनके साथ न्याय किया जा रहा है।'

आचार्य नरेन्द्रदेव साम्प्रदायिक दृष्टिकोण और साम्प्रदायिक संस्थाओं के कट्टर विरोधी थे। इन संस्थाओं का राजनीति में हस्तक्षेप उनकी दृष्टि में प्रगति के विरुद्ध था। वे इन्हें 'आस्तीन के सांप' के नाम से सम्बोधित करते थे। उनका कहना था कि 'इन संस्थाओं के प्रतिगामी नेतृत्व और दृष्टिकोण पर यूरोप की फासिस्ट विचारधारा की छाप है।' उनके विचार में, 'कहने को हिन्दूसभा और मुस्लिमलीग आदि साम्प्रदायिक संस्थाओं का उद्देश्य अपने सम्प्रदाय के सर्वसाधारण की भलाई के लिये प्रयत्न करना ही रहा है' पर व्यवहार रूप में ये मुट्ठी भर सामन्तों, राजाओं, ताल्लुकेदारों, जमींदारों और शहर के कुछ अनुदार मध्यम श्रेणी के लोगों की संस्थाएँ रही हैं। ये धर्म के नाम पर अपने वर्ग का स्वार्थसाधन करने, सरकारी नौकरियों और ऐसम्बलियों में सीटें आदि प्राप्त करने के काम में ही लायी जाती रही हैं। आचार्य जी का विचार था कि समझाने के जरिये साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने का पुराना तरीका बेकार हो गया है। जनतन्त्रविरोधी फासिस्ट मनोवृत्ति से प्रभावित और स्थिर स्वार्थों की पोषक साम्प्रदायिक संस्थाओं से प्रगतिशील शक्तियों का कोई समझौता नहीं हो सकता। कांग्रेस का कर्तव्य है कि वह आर्थिक कार्यक्रम के आधार पर जनता का विश्वास प्राप्त करके और जनतान्त्रिक मनोवृत्ति को पुष्ट करके साम्प्रदायिक संस्थाओं की प्रतिगामिता का मुकाबला करे और उनकी शक्ति को क्षीण करे।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन

अक्टूबर सन् १९३९ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन काशी में नागरी प्रचारणी सभा के प्रांगण में पण्डित अम्बिकाप्रसाद जी वाजपेयी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। समाजशास्त्र परिषद की अध्यक्षता का भार आचार्य नरेन्द्रदेव जी को सौंपा गया

पर आचार्य जी बीमार पड़ गये। सारी रात दमा के प्रकोप से जागते रहे। प्रातःकाल परिषद् के मण्डप में बिमारी के समाचार से निराशा छा गयी। पर कुछ देर बाद आचार्यजी आ विराजे और कुर्सी पर बैठ कर अपना अध्यक्षीय भाषण देने लगे। उस समय श्रोता उनकी प्रतिभा पर मुग्ध थे। उनकी वाणी पर सरस्वती विराजमान थी। वाणी में वही पुरानी तेजी और चुस्ती थी। भाषा में वही पुराना ओज और प्रवाह था जिसके लिये आचार्य जी प्रसिद्ध थे। उन्होंने एक घंटे तक धाराप्रवाह से समाजविज्ञान के चार प्रमुख सिद्धान्तों के मूलतत्त्वों का सुन्दर विश्लेषण किया और उनकी समीक्षा करते हुए अपने कतिपय समाजवादी विचारों को पुष्ट किया। जहाँ सब श्रोता प्रसन्न थे, आचार्य जी के प्रिय मित्र श्रीप्रकाशजी चिन्तित थे। उन्हें अधिक परिश्रम से रोग के बढ़ जाने का डर था। उन्होंने दो तीन बार आचार्यजी की अचकन के छोर को पकड़ कर उनको रोकने की कोशिश की, पर वे कहाँ रुकने वाले थे। विषय की समुचित व्याख्या करने के बाद ही उन्होंने दम लिया। जब अन्त में श्री श्रीप्रकाश जी ने अपने संकेत की चर्चा आचार्यजी से की, तो उन्होंने कहा कि वह तो समझे थे कि कोई मक्खी या मच्छर विघ्न डाल रहा है। श्री श्रीप्रकाश जी भी कहाँ चूकने वाले थे। उन्होंने कहा कि जी, आपकी विलक्षण बुद्धि छोटे मोटे संकेतों को कहाँ समझ सकती है।

९—समाजवादी और वामपक्षीय एकता

समाजवादी एकता

आचार्य नरेन्द्रदेव और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बहुत से नेता और कार्यकर्ता समाजवादी शक्तियों के मेल और साम्राज्यवाद के विरुद्ध संयुक्त मोर्चे के सिद्धान्त को मानते थे। आचार्यजी ने अपने सन् १९३४ के अध्यक्षीय भाषण में ही मतभेदों की संकीर्णता की निन्दा करते हुए वामपक्षीय और समाजवादी शक्तियों के मेल की बात पर जोर दिया था। वे कम्युनिस्ट पार्टी से असन्तुष्ट होते हुए भी उसे मार्क्सवादी पार्टी मानते थे और उसके साथ उचित सहयोग के लिये तैयार थे। श्री जयप्रकाश नारायण, जो अमरीका में अपने विद्यार्थी जीवन के जमाने में कम्युनिस्ट रह चुके थे, हिन्दुस्तान के कम्युनिस्टों से अपना मेल बढ़ाकर और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के साथ उनके सहयोग को दृढ़ कर उन्हें ठीक रास्ते पर लाना अपना कर्तव्य समझते थे। इन दोनों नेताओं की राय से जनवरी सन् १९३६ में अपने मेरठ अधिवेशन में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने अपने को मार्क्सवादी घोषित किया और कम्युनिस्टों को सहयोग के लिये आमंत्रित किया।

कम्युनिस्टों का विरोध

कम्युनिस्ट पार्टी शुरू से ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से वैरभाव रखती थी। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को कम्युनिस्ट मार्क्सवादी या समाजवादी पार्टी मानने को तैयार नहीं थे। वे तो उसे बुर्जुआ सुधारवाद का वामपक्ष और गांधीवाद की एक टुकड़ी मानते थे और उसके अस्तित्व को समाजवाद के लिये और जनशक्ति की प्रगति के लिये हानिकर समझते थे। कम्युनिस्ट पार्टी ने ऐसी हालत में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से मेल बढ़ाने की बजाय उसकी निन्दा करना ही उचित समझा। पर सन् १९३५ में फासिस्टवाद और नात्सीवाद का मुकाबला करने के लिये बुर्जुआ जनतांत्रिक और सुधारवादी समाजवादी शक्तियों से कम्युनिस्ट पार्टियों का संयुक्त मोर्चा कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल ने जरूरी समझा उस सम्मेलन में यह भी कहा गया कि हिन्दुस्तान की कम्युनिस्ट पार्टी ने राष्ट्रीय

आन्दोलन से अलग रहकर बहुत भूल की। इस निश्चय के बाद हिन्दुस्तान के कम्युनिस्टों को भी संयुक्त मोर्चे की बात सोचनी पड़ी।

संयुक्त मोर्चा

मार्च सन् १९३७ में कम्युनिस्ट पार्टी के पोलिट ब्यूरो ने 'मुट्ठी भर प्रतिगामियों और राजभक्तों को छोड़ कर समस्त भारतीय जनता का संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चा बनाने के पक्ष में एक वक्तव्य प्रकाशित किया। इसके बाद देश भर के कम्युनिस्टों ने संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे का प्रचार जोरों से शुरू कर दिया। सर्वश्री नम्बूदरीपाद, के० गोपालन, पी० सुन्दरैया, पी० राममूर्ति, जेड० अहमद, मुहम्मद अशरफ, सज्जाद जहीर, बाटलीवाला आदि बहुत से कम्युनिस्ट कांग्रेस के साथ-साथ कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हुए और कम्युनिस्ट पार्टी ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और दूसरी वामपक्षीय शक्तियों से संयुक्त मोर्चे की बातें शुरू कीं। श्री एम० ई० एस० नम्बूदरीपाद ने कई वर्ष तक कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के संयुक्त मन्त्री की हैसियत से भी काम किया।

कम्युनिस्टों का दिल साफ नहीं था। उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का सदस्य बनकर पार्टी में अन्दर से छेद करने की नीति अपनायी। पार्टी के कम्युनिस्ट सदस्य पार्टी की नीति-रीति का प्रचार करने की बजाय उसके मंच से कम्युनिस्ट पार्टी की नीति-रीति का प्रचार करते थे। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेतृत्व को वे संयुक्त राष्ट्रीय मोर्चे में बाधक बताते थे तथा उनमें भेद पैदा करने की कोशिश करते थे। उनके व्यवहार से पार्टी में गहरा असन्तोष पैदा हो गया। सर्वश्री मीनु मसानी और अशोक मेहता ने कम्युनिस्टों की गतिविधि का विरोध किया। श्री अच्युत पटवर्धन और डाक्टर राममनोहर लोहिया ने उनके विरोध को पुष्ट किया। एक बार तो चारों ने मिलकर पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति की सदस्यता से इस्तीफा भी दे दिया।

सन् १९३८ में पार्टी के लाहौर अधिवेशन के अवसर पर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति पर पूरी तौर पर कब्जा करके सारी पार्टी पर छा जाने की, तथा उस पर अपना प्रभुत्व कायम करने की कम्युनिस्टों ने कोशिश भी की। इस अधिवेशन में उन्होंने अपना थीसिस पेश किया, जिसमें उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को वाम

पक्षीय एकता के मंच में तब्दील करने का प्रयास किया। कम्युनिस्ट सदस्यों के इस थीसिस के जवाब में आचार्य नरेन्द्रदेव, श्री अच्युत पटवर्धन, श्री अशोक मेहता और श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने दूसरा थीसिस पेश किया, जिसे साथी अच्युत पटवर्धन ने तैयार किया था और जिसमें इस बात पर जोर दिया गया था कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को अपनी सुनिश्चित नीति और कार्यक्रम के आधार पर एक पार्टी की हैसियत से काम करना चाहिए। सम्मेलन ने कम्युनिस्टों के थीसिस को नामंजूर करके अच्युत जी के थीसिस को मंजूर किया। इस सम्मेलन में कम्युनिस्टों ने नयी कार्यसमिति की एक सूची भी पेश की। पर इसे भी सम्मेलन ने नामंजूर कर दिया। पुराने नेतृत्व के हाथ में ही पार्टी का सञ्चालन उचित समझ कर उन्हें ही कार्य समिति का सदस्य चुना गया। जयप्रकाशजी कम्युनिस्टों के व्यवहार से असन्तुष्ट थे। फिर भी समाजवादी एकता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने पार्टी के संविधान में तत्काल संशोधन कराके अपने प्रभाव से कम्युनिस्टों को राष्ट्रीय कार्य-समिति में एक तिहाई स्थान दिला दिये। इसके बाद भी पार्टी के कम्युनिस्ट सदस्य पार्टी की नीति-रीति तथा नेतृत्व के विरुद्ध, कम्युनिस्ट पार्टी की विचार-धारा के पक्ष में प्रचार करते रहे। श्री बाटलीवाला ने तो सब मर्यादाओं और नियमों का उल्लंघन करते हुए पार्टी के तत्त्वावधान में आयोजित सभाओं और शिविरों में लोकतान्त्रिक समाजवाद के सिद्धान्तों तथा नीति-रीति की नुकताचीनी करते हुए सोवियत रूस द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को पुष्ट करना ही अपना कर्त्तव्य समझा। कम्युनिस्ट सदस्यों के इस प्रकार के व्यवहार से क्षुब्ध हो कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति ने निश्चय किया कि आगे कम्युनिस्टों को पार्टी में शामिल नहीं किया जाय और पार्टी की यूनिटों पर पार्टी के सच्चे वफादार सदस्यों का अधिकार कायम रखा जाय। साथी बाटलीवाला के विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही भी की गयी। साथी जयप्रकाश नारायण ने भी तसलीम किया कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में कम्युनिस्टों को शामिल करना गलत हुआ, इससे लाभ के बजाय हानि ही हुई।

कम्युनिस्ट पार्टी ने इस फैसले का विरोध किया कि भविष्य में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में कम्युनिस्टों को शामिल न किया जाय। इस विरोध के उत्तर में आचार्यजी ने कहा कि 'एक व्यक्ति एक समय में

दो पार्टियों का सदस्य नहीं हो सकता, फिर चाहे वे पार्टियाँ क्रान्तिकारी समाजवाद की दो शाखायें ही क्यों न हों, क्योंकि कोई व्यक्ति एक समय में दो राजनीतिक पार्टियों के प्रति वफादार नहीं हो सकता'। आचार्यजी ने तसलीम किया कि सैद्धान्तिक भेद विकास में कभी कभी सहायक होते हैं, पर सैद्धान्तिक भेदों के प्रति सहिष्णुता का यह मतलब नहीं कि कांग्रेस 'सोशलिस्ट पार्टी उन व्यक्तियों को अपने में शामिल करे जो प्रत्यक्ष या परोक्ष ढंग से किसी दूसरी पार्टी से प्रेरणा लेते हों।' उन्होंने बताया कि 'कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी संयुक्त मोर्चा या राष्ट्रीय संसद नहीं है, बल्कि एक राजनीतिक पार्टी है जिसका अपना सिद्धान्त, कार्यक्रम, दृष्टिकोण और अनुशासन है और वह अपने को वामपक्षीय प्लेटफार्म या समाजवादी एकता की पार्टी में तब्दील करने को तैयार नहीं है।' कम्युनिस्ट पार्टी के विचारों की आन्तरिक विषमता पर ध्यान दिलाते हुए उन्होंने लिखा कि 'कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी एक ऐसी पार्टी हो सकती है जो समाजवादी एकता की कोशिश करे, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी दोनों एकता की पार्टियां हो सकती हैं। पर यह कहना बिलकुल गलत होगा कि एक पार्टी समाजवादी एकता की पार्टी है और दूसरी नहीं है। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी दोनों को भंग कर आन्तरिक जनतन्त्र और आलोचना के आधार पर एक मार्क्सवादी पार्टी बनायी जा सकती है। पर जब कम्युनिस्ट इसके लिये तैयार नहीं तब दोनों पार्टियों के स्वतन्त्र अस्तित्व को कायम रखते हुए एक समन्वय समिति के जरिये दोनों पार्टियों में संघर्षात्मक कार्यों के लिये सहयोग कायम किया जा सकता है। पर कम्युनिस्ट तो इस प्रकार के सहयोग के लिये भी तैयार नहीं मालूम होते। वे तो कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को वामपक्षीय एकता का मंच बनाना चाहते हैं, जिसके लिये पार्टी तैयार नहीं हो सकती।

संयुक्त मोर्चे के सम्बन्ध में भी कम्युनिस्ट पार्टी की दुरंगी नीति थी। वे कभी नीचे से और कभी ऊपर से संयुक्त मोर्चा बनाना चाहते थे। वे कभी तो इस सम्बन्ध में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं से बात करते और कभी इन नेताओं को बदनाम करके इनमें फूट डलवा कर साधारण कार्यकर्ताओं के जरिये सोशलिस्टों से प्रभावित जनता से

संयुक्त मोर्चा बनाने का प्रयत्न करते। आचार्यजी ने कम्युनिस्टों की इस दुरंगी नीति की और बेईमानी की चालों की भर्त्सना की। वे उन्हें कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को तोड़ने की तरकीबें समझते थे। नरेन्द्रदेवजी का मत था कि 'नेताओं के साथ समझौता करके ही किसी संस्था का हार्दिक सहयोग प्राप्त हो सकता है और वही प्रभावशाली भी होता है। उनके विचार में 'यह कहना कोरा पाण्डित्य ही है कि हम साधारण सदस्यों के साथ तो संयुक्त मोर्चा बनाने को तैयार हैं, किन्तु उनके नेताओं के साथ नहीं।'

एम० एन० राय और अनुशीलनदल

समाजवादी एकता को पुष्ट करने के लिये कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के कतिपय नेता श्री एम० एन० राय और अनुशीलन दल के नेताओं के सम्पर्क में भी आये। जहाँ श्री जयप्रकाश नारायण श्री एम० एन० राय के व्यक्तित्व से काफी प्रभावित थे, वहाँ अनुशीलन दल के नेताओं से आचार्य नरेन्द्रदेव के पुराने सम्बन्ध थे। सर्वश्री जयप्रकाश नारायण और नरेन्द्रदेवजी के प्रयास से इन दोनों दलों के कुछ सदस्य कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हुए, पर यह सहयोग भी टिकाऊ सिद्ध नहीं हुआ।

क्रान्तिकारी अनुशीलन दल के नेता और श्री एम० एन० राय भी मार्क्सवाद पर विश्वास रखते हुए भी स्तालिन की नीति-रीति तथा कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय के सन् १९२८ के कार्यक्रम के विरोधी थे। इन दोनों की भी धारणा थी कि स्तालिन ने अपने नीति-रीति से मार्क्सवाद को विकृत कर दिया है तथा हिन्दुस्तान की क्रान्तिकारी समाजवादी शक्तियों को सोवियत रूस की गति विधि का पुछल्ला नहीं बनाया जा सकता। दोनों ही देश की स्वतन्त्रता के प्रश्न को प्राथमिकता देना आवश्यक समझते थे। फिर भी इन दोनों के अनुभव और प्रेरणाएँ बहुत कुछ भिन्न थीं। जहाँ श्री एम० एन० राय को रूस की क्रान्ति, चीन की राजनीतिक हलचल और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का गहरा ज्ञान था, वहाँ अनुशीलन दल के नेताओं को भारत के भूमिगत क्रान्तिकारी क्रिया-कलापों के संचालन का अनुभव था। अनुशीलन दल के नेता किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में ब्रिटिश साम्राज्यशाही से कोई

समझौता करने को तैयार नहीं थे और उन्होंने सन् १९३९ में विश्वयुद्ध शुरू होते ही ब्रिटेन के विरुद्ध क्रान्तिकारी संघर्ष करना आवश्यक समझ स्वयं भूमिगत कार्य प्रारम्भ कर दिए थे। श्री एम० एन० राय हर परिस्थिति में समझौते के मार्ग का त्याग उचित नहीं समझते थे। उन्होंने सन् १९३७ में कांग्रेस को मन्त्रिपद स्वीकार करने की सलाह दी तथा दूसरे विश्वयुद्ध के जमाने में कुछ शर्तों के साथ ब्रिटिश सरकार से समझौता करने का सुझाव दिया। भारत की क्रान्ति के सम्बन्ध में भी दोनों की राय में काफी अन्तर पैदा हो गया था। श्री एम० एन० राय धीरे धीरे मार्क्सवाद की बजाय जैकोबिन के सिद्धान्तों को पुष्ट करने लगे थे, समाजवादी क्रान्ति के बजाय जनतान्त्रिक क्रान्ति और जनतान्त्रिक अधिनायकत्व के सिद्धान्तों पर जोर देने लगे थे तथा इन सिद्धान्तों के प्रसार के लिये रेडिकल डिमोक्रेटिक पार्टी का संगठन करने का प्रयत्न कर रहे थे। पर अनुशीलन दल के नेताओं और कार्यकर्ताओं ने रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी का संगठन कर मार्क्सवाद के सिद्धान्तों के आधार पर वर्ग-संघर्ष द्वारा सर्वहारा की तानाशाही के सिद्धान्तों को पुष्ट करना ही जरूरी समझा।

यद्यपि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी स्तालिन की नीति-रीति तथा कम्यु-निस्ट अन्तर्राष्ट्रीय के सन् १९२८ के कार्य-क्रम के सम्बन्ध में श्री एम० एन० राय और अनुशीलन दल के नेताओं के विचारों से सहमत थी, पर धीरे धीरे इन दोनों की नीति-रीति और गति-विधि से उसका मत-भेद इतना बढ़ गया कि उनके साथियों का कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में रहकर उसके साथ काम करना असम्भव हो गया। अनुशीलन दल के नेताओं से तो कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गहरा मतभेद सन् १९३९ में कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन में उस समय हुआ जब कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने श्री गोविन्दवल्लभ पन्त के प्रस्ताव पर तटस्थ रहना उचित समझा और अनुशीलन दल के नेताओं ने उस प्रस्ताव का विरोध करते हुए श्री सुभाषचन्द्र बोस का पूरी तौर से समर्थन करना ही ठीक समझा। दूसरा विश्वयुद्ध शुरु होने के बाद साम्राज्य-विरोधी संघर्ष के प्रश्न पर दोनों के विचारों और गति-विधि में और भी अन्तर बढ़ गया। जहाँ गान्धी जी के नेतृत्व में कांग्रेस द्वारा साम्राज्य-विरोधी संघर्ष शीघ्र से शीघ्र शुरू किया जाय इसका ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने प्रयत्न

किया, वहाँ अनुशीलन दल के नेता कांग्रेस की गति-विधि की उपेक्षा करते हुए शीघ्र से शीघ्र संघर्ष प्रारम्भ करना जरूरी समझते थे।

श्री एम० एन० राय ने तो सन् १९३५ में ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की नीति का विरोध शुरू कर दिया। जहाँ कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी कांग्रेस में साम्राज्य-विरोधी शक्तियों को गतिशील और पुष्ट करने के साथ साथ समाजवादी विचारों और कार्य-क्रम का प्रसार करना आवश्यक समझती थी, वहाँ श्री एम० एन० राय का विचार था कि कांग्रेस को समाजवादी संस्था नहीं बनाया जा सकता और इसलिये कांग्रेस में साम्राज्य-विरोधी शक्तियों को पुष्ट करना ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का एक मात्र लक्ष्य होना चाहिए। श्री एम० एन० राय का यह भी विचार था कि समाजवाद तात्कालिक प्रश्न नहीं है, अतः समाजवाद के नाम से बनी पार्टी के लिये कांग्रेस को उग्रता की ओर ले जाना कठिन होगा। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेता यह तो तसलीम करने को तैयार थे कि कांग्रेस के अन्दर उनकी पार्टी का लक्ष्य कांग्रेस को समाजवादी संस्था बनाने की बजाय उसे अधिक साम्राज्य-विरोधी संस्था बनाना ही है, पर वे समाजवाद के प्रसार का परित्याग करने को तैयार नहीं थे और अपनी पार्टी के नाम से समाजवाद के शब्द को निकालना भी उचित नहीं समझते थे। उनका ऐसा भी विचार था कि समाजवाद का खुला प्रचार और कार्य करते हुए क्रान्तिकारी बने रहना भी उनकी पार्टी के लिये सम्भव है। सन् १९३७ में जब श्री एम० एन० राय ने कांग्रेस द्वारा मन्त्रिपद स्वीकार करने का समर्थन किया उस समय उनका कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी से, जो कांग्रेस द्वारा मन्त्रिमण्डल बनाये जाने के विरुद्ध थी, मतभेद और भी बढ़ गया। कांग्रेस में किसान एवं मजदूर संघों के सामूहिक प्रतिनिधित्व के तथा किसान संगठन आदि प्रश्नों पर भी दोनों के विचारों में गहरा मतभेद हो गया था। जहाँ दूसरी वामपक्षीय शक्तियों की तरह कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी उनके पक्ष में थी, वहाँ श्री एम० एन० राय कांग्रेस के वृद्ध नेताओं के विचारों का समर्थन करते हुए उनके विरुद्ध थे और उस समय जमींदारी उन्मूलन की चर्चा भी बेकार ही समझते थे। सन् १९३९ में विश्वयुद्ध शुरू होने के बाद तो उस समय मतभेद अपनी चरमसीमा पर पहुँच गया जब श्री एम० एन० राय ने ब्रिटिश साम्राज्यशाही से समझौता करने का समर्थन शुरू

किया और मार्क्सवाद एवं समाजवाद को छोड़कर जैकोबिन के सिद्धान्तों के आधार पर रेडिकल डेमोक्रेटिक पार्टी बनानी शुरू की तथा फासिस्टवाद के विरोध की आवश्यकता की दुहाई देते हुए जनता को युद्ध में ब्रिटिश सरकार का समर्थन करने का मशवरा देना प्रारम्भ किया। श्री एम० एन० राय के साथियों की इस गति-विधि, नीति-रीति को नरेन्द्रदेवजी गलत समझते थे। वे फासिस्टवाद के साथ साथ साम्राज्यवाद का विरोध भी जरूरी समझते थे और मानते थे कि ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध संघर्ष करना भारतियों का परम कर्तव्य है।

वामपक्षीय एकता

नरेन्द्रदेवजी वामपक्षीय एकता के भी समर्थक थे। वे दक्षिणपक्षीय शक्तियों के विरुद्ध किसी निश्चित प्रोग्राम के आधार पर वामपक्षीय मोर्चा बनाने को तैयार थे, उसकी जरूरत भी महसूस करते थे। पर वामपक्षीय एकता के नाम पर साम्राज्यविरोधी मोर्चे की एकता को भंग कर देना वे गलत समझते थे। कांग्रेस की लड़ाकू मनोवृत्ति का दम न घुट जाय, पर साथ ही उग्र विचार के कारण अधीरतावश साम्राज्यविरोधी लड़ाई में फूट न पड़ जाय—यही नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व के दो प्रमुख सिद्धान्त थे। इस बारे में वे श्री सुभाषचन्द्र बोस से बुराई लेने से नहीं हिचके और सरदार वल्लभभाई पटेल की नाराजगी से नहीं घबराये। दक्षिणपक्षीय शक्तियों के मुकाबले में संघर्ष की मनोवृत्ति बनाये रखने के लिये उन्होंने सभी वामपक्षीय दलों के साथ काम किया और निश्चित कार्यक्रम के आधार पर संयुक्त मोर्चे के जरिये दक्षिणपक्ष की मनोवृत्ति पर काबू पाने का समर्थन किया। पर वे यह सब काम कांग्रेस में साम्राज्यविरोधी शक्तियों को अधिक गतिशील, क्रान्तिकारी और शक्तिशाली बनाने के लिये ही करना चाहते थे। इसलिये उन्होंने सदा अधीरता का तथा उन हथकंडों का विरोध किया जिससे साम्राज्यविरोधी शक्तियों के विघटन का डर हो। कांग्रेस को अधिक गतिशील बनाने के लिये वे वामपक्ष के लोगों में संयम जरूरी समझते थे। उनकी धारणा थी कि आजादी पाने के लिये देश को एक ऐसी राष्ट्रीय संस्था की जरूरत है जो विविध वर्गों और विचारधाराओं का संयुक्त मोर्चा बन सके। उनके विचार में यह काम उस समय कांग्रेस ही कर

सकती थी। इसलिये किसानों और मजदूरों के वर्ग-संगठनों का कांग्रेस से सामूहिक सम्बन्ध स्थापित करा के वे कांग्रेस में श्रमिक जनता के प्रभाव को बढ़ाने के साथ साथ कांग्रेस की शक्ति को सबल बनाना चाहते थे। कांग्रेस को दो या तीन दलों में बांट देने के लिये वे तैयार नहीं थे। उनकी धारणा थी कि क्रान्ति केवल तत्त्वदर्शन से नहीं होती, उसके लिये तो सुदृढ़ संगठन और अच्छी तैयारी के साथ साथ ऐसे नेतृत्व की जरूरत होती है जो क्रान्ति के क्षण को पहचान सके, उस क्षण पर सर्वस्व का दांव लगा सके, और जिसकी हुंकार पर जनता संघर्ष के लिये तैयार हो सके। आचार्यजी के विचार में यह शक्तियां गान्धीजी में ही थीं। इसलिये गान्धीजी के दृष्टिकोण से मतभेद होते हुए भी, गान्धीजी के विरुद्ध अपने समाजवादी सिद्धान्तों, नीतिरीति का प्रचार करते हुए भी वे गान्धीजी को राष्ट्रीय संघर्ष का नेता तसलीम करते रहे। उन्होंने गान्धीजी पर संघर्ष करने का दबाव डाला, पर गान्धीजी की उपेक्षा करते हुए राष्ट्रीय संघर्ष प्रारम्भ करने की बात नहीं सोची। श्री अच्युत पटवर्धन के शब्दों में कहा जा सकता है कि 'आचार्य नरेन्द्रदेव की दूर-दृष्टि के कारण ही स्वराज्य पाने तक समाजवादी दल अपनी खुशी से कांग्रेस के अनुशासन में रहा और सन् १९३६ से १९४६ तक कांग्रेस में समाजवादी दल को जो महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ, उसमें आचार्यजी का मार्गदर्शन महत्त्व की बात है'।

कांग्रेस में फूट

सन् १९३९ में कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन का अध्यक्ष कौन हो इस प्रश्न पर काफी विवाद उठ खड़ा हुआ। श्री सुभाषचन्द्र बोस जो पिछले वर्ष कांग्रेस के अध्यक्ष थे इस बार भी अध्यक्ष बनना चाहते थे। गान्धीजी इसे ठीक नहीं समझते थे। पर जब गान्धीजी के मना करने पर भी सुभाष बाबू ने अपना नाम वापस नहीं लिया और मौलाना अबुलकलाम आजाद ने चुनाव लड़ने से इनकार कर दिया, तो गान्धीजी ने श्री पट्टाभि सीतारमय्या का समर्थन किया। कतिपय दूसरे कांग्रेसी नेताओं ने भी गान्धीजी की तरह सुभाष बाबू का विरोध और श्री पट्टाभि सीतारमय्या का समर्थन किया। चुनाव में काफी तनाव और कटुता पैदा हो गयी। दोनों पक्षों की ओर से एक दूसरे की नीति-रीति की आलोचना भी हुई। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेता चुनाव-संघर्ष

के पक्ष में नहीं थे, पर वे सुभाष बाबू को अधिक प्रगतिशील समझते थे और उन्होंने उनके पक्ष में वोट दिये। श्री सुभाषचन्द्र बोस की लगभग दो सौ वोट से विजय हुई। इस पर कांग्रेस में भयंकर गतिरोध पैदा हो गया। गान्धीजी ने श्री पट्टाभि सीतारमय्या की पराजय को अपनी पराजय घोषित किया और कहा कि 'यदि मैं निश्चित सिद्धान्तों और नीति का प्रतिनिधित्व नहीं करता, तो मैं कुछ भी नहीं हूँ। इसलिये यह स्पष्ट है कि डेलीगेट मेरी नीति और सिद्धान्तों से सहमत नहीं हैं।' पुरानी राष्ट्रीय कार्यसमिति के उन सदस्यों ने भी, जिनकी नीति-रीति की सुभाष बाबू के समर्थकों ने आलोचना की थी, कार्यसमिति से इस्तीफा दे दिया। ऐसी परिस्थिति में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं ने दोनों पक्षों में समझौता कराने की कोशिश की। पर जब त्रिपुरी कांग्रेस के अवसर पर सुभाप बाबू के समर्थकों ने कोई ऐसा समझौता मानने से इनकार किया कि जिससे विवाद शान्त हो और पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त ने ऐसा प्रस्ताव पेश किया जो सुभाष बाबू को कभी मंजूर नहीं हो सकता था, तब कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं ने तटस्थ रहने का निश्चय किया और साथी जयप्रकाश नारायण ने खुले अधिवेशन में इस बात की घोषणा की कि दोनों पक्षों के व्यवहार से असन्तुष्ट होने के कारण उनकी पार्टी ने तटस्थ रहने का निश्चय किया है। इस अवसर पर सुभाष बाबू के कतिपय समर्थकों की उद्दण्डता से क्षुब्ध हो आत्मसंयम पर जोर देते हुए आचार्य नरेन्द्रदेव ने कहा कि 'अगर हम छोटी बातों को ही हल नहीं कर सकते तो कैसे उम्मीद की जा सकती है कि हम दृढ़ता के साथ अपने मकसद तक पहुँच सकेंगे।' उन्होंने कहा कि 'आप चाहे जितने बड़े प्रस्ताव क्यों न पास करें, मगर यदि आप में काम करने की शक्ति नहीं है तब इन प्रस्तावों का पास करना बेकार है।'

इस अवसर पर डाक्टर राममनोहर लोहिया की नीति और व्यवहार कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के दूसरे नेताओं से भिन्न थे। जहां दूसरों ने अध्यक्ष के चुनाव में श्री सुभाषचन्द्र बोस के पक्ष में वोट दिये, वहां डाक्टर लोहिया तटस्थ रहे; और जब कि दूसरों ने पण्डित पन्त के प्रस्ताव पर तटस्थ रहना उचित समझा, डाक्टर लोहिया ने विषय-निर्धारिणी समिति में इस प्रस्ताव का समर्थन किया। पन्तजी का

प्रस्ताव था कि 'कमेटी कांग्रेस की उन आधारभूत नीतियों के प्रति अपना विश्वास प्रकट करती है, जिनपर महात्मा गान्धी के नेतृत्व में, पिछले वर्षों में कांग्रेस का कार्य-क्रम आधारित रहा है। कमेटी का यह निश्चित मत है कि इन नीतियों में कोई अन्तर नहीं पड़ना चाहिए और भविष्य में भी कांग्रेस का कार्यक्रम इन्हीं पर आधारित रहना चाहिए। कमेटी उस कार्यसमिति के कार्यों पर अपना विश्वास प्रकट करती है जिसने पिछले वर्ष कार्य किया था और इस बात पर खेद प्रकट करती है कि उसके सदस्यों पर आक्षेप किये गये हैं। चूं कि आगामी वर्ष में विकट परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है और चूंकि ऐसे संकट के समय केवल महात्मा गान्धी ही कांग्रेस तथा देश को विजय के पथ पर ले जा सकते हैं, इसलिये यह आवश्यक है कि कार्यसमिति में उनका पूर्ण विश्वास हो। अतः कमेटी अध्यक्ष से अनुरोध करती है कि वे आगामी वर्ष की कार्य-समिति का चुनाव गान्धीजी की इच्छा के अनुसार करें।' इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए डाक्टर राममनोहर लोहिया ने कहा कि 'कांग्रेस संकट काल से गुजर रही है और इस साल ही ब्रिटिश साम्राज्यशाही से लड़ाई करनी होगी। इस दृष्टि से एकता होनी चाहिए। गान्धीजी ने कहा था कि श्री बोस का चुनाव मेरी शिकस्त है, यह प्रस्ताव गान्धीजी से सम्मानपूर्वक आह्वान करता है कि उनकी शिकस्त नहीं हुई है।'

त्रिपुरी अधिवेशन के बाद नरेन्द्रदेवजी ने अपने एक लेख में यह कहा कि 'हमें इस बात को क्षण भर के लिये भी नहीं भूल जाना चाहिए कि हमारा उद्देश्य भरसक सब कांग्रेसजनों को, सभी साम्राज्यविरोधियों को साथ लेकर आगे बढ़ना है। ऐसी हालत में अगर हम अपने सयुक्त मोर्चे—कांग्रेस को—आज वाम और दक्षिण पक्ष में स्पष्ट और ठोस रूप में बाँट देते हैं तो हम अपने उद्देश्य को गहरा धक्का पहुँचायेंगे। हमें दायें और बायें बाजू के झगड़े में चिड़ियों की उड़ान को नहीं भूल जाना चाहिए। और इस समय हमें उन सभी को वामपक्षी मान लेना चाहिए जो सच्चे साम्राज्यविरोधी हों, युद्ध से हट-कर भागने वाले न हों।'

त्रिपुरी कांग्रेस में तटस्थता की नीति अपनाने पर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में एक बवंडर खड़ा हो गया। अनुशीलन दल के वे नेत और सदस्य जो कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो गये थे उससे

अलग हो गये। पार्टी के कुछ पुराने कार्यकर्ता भी काफी क्षुब्ध थे। ऐसे अवसर पर जुलाई सन् १९३९ में दिल्ली समाजवादी सम्मेलन में सभापति के पद से भाषण करते हुए आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने तटस्थता के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए कहा कि 'आनेवाले साम्राज्यविरोधी संघर्ष के लिये कांग्रेस की एकता बनाये रखने के लिये ही तटस्थता की नीति अपनायी गयी थी। मौजूदा हालत में कोई भी ताकत अकेले ही लड़ाई छेड़ने और उसका नेतृत्व करने की क्षमता नहीं रखती। ऐसी हालत में तात्कालिक लड़ाई के साथ ही साथ एकता पर भी जोर देना जरूरी है। यदि यह मान भी लिया जाय कि कांग्रेस का मौजूदा नेतृत्व निकट भविष्य में लड़ाई की जरूरत नहीं तसलीम करता, तो क्या हमें जोरदार कोशिश कर देश में एक ऐसा वातावरण पैदा नहीं करना चाहिए कि जो नेताओं को राष्ट्रीय मांगवाले प्रस्तावों को कार्यान्वित करने के लिये मजबूर कर दे।' उन्होंने कहा कि 'एक सच्चे समाजवादी को अवश्य ही ऊँचा उठना चाहिए।' कांग्रेस समाजवादी पार्टी को और अधिक जिम्मेदार बनना चाहिए और नेतृत्व करने की अपनी क्षमता को दिखाना चाहिए।' आचार्यजी की राय में 'इसके लिये केवल जोश तथा त्याग ही काफी नहीं है, लोगों को इस बात का भी पूरा यकीन करा देना है कि हम जिम्मेदारी के साथ काम करते हैं और हमने उन जटिल समस्याओं का हल भी सोचा है जो देशको परेशान कर रही हैं और हमारी उन्नति में बाधा पहुँचाती हैं।' उन्होंने इस बात पर भी अपना दुःख प्रकट किया कि हमने दूसरे समूहों को पार्टी में घुसने दिया। ये समुदाय अपना अलग झुंड बना कर ही पार्टी के अन्दर कार्य करते हैं। यह बात पार्टी के संगठन के सब सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। इस तरह पार्टी ने अपना स्वरूप खो दिया है। वह एक मंच बन गयी है'।

फारवर्ड ब्लाक

श्री सुभाष चन्द्र बोस और दूसरे कांग्रेसी नेताओं का मतभेद दूर नहीं हो सका। अतः सुभाष बाबू ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देकर फारवर्ड ब्लाक (अग्रगामी दल) का संगठन शुरू किया। कांग्रेस के वर्तमान संविधान, लक्ष्य, नीति और कार्य-क्रम को मानते हुए तथा

कांग्रेस का अंग बने रह कर साम्राज्यवाद के विरोधी उग्रविचार के लोगों को एकत्र करना इस दल का एक मुख्य उद्देश्य था। राजनीति और राजनीतिक विषयों पर धर्म और रहस्यवाद के प्रभुत्व का विरोध, प्रान्तीयता और साम्प्रदायिकता के विरुद्ध संघर्ष, कांग्रेसजनों में भ्रष्टाचार का निराकरण, कांग्रेस में तानाशाही प्रवृत्तियों के स्थान पर जनतन्त्र की स्थापना, किसानों और मजदूरों का उनके आर्थिक संघर्षों में सक्रिय समर्थन, किसान सभा, मजदूर संघ, यूथ लीग, स्टुडेन्ट फेडरेशन आदि साम्राज्यविरोधी संस्थाओं से कांग्रेस का सहयोग, सन् १९३५ के संविधान की संघीय व्यवस्था का सतत विरोध, ब्रिटिश सामान तथा विदेशी कपड़े का तीव्र बहिष्कार, राजनीतिक कार्यकर्ताओं का समुचित प्रशिक्षण, अखिल भारतीय आधार पर स्वयं सेवक संघ का सगठन, पूर्ण स्वतन्त्रता के लिये शीघ्र ही राष्ट्रीय संघर्ष की तैयारी, साम्राज्यवादी युद्ध में हिन्दुस्तान की शरकत के विरुद्ध तथा ब्रिटिश साम्राज्यशाही के हितों में हिन्दुस्तान की मानव शक्ति और आर्थिक साधनों के उपयोग के विरुद्ध प्रतिरोध, कांग्रेस और देशी रियासतों की जनता के संगठनों के बीच में ऐसे सहयोग का विकास कि जिसके द्वारा कांग्रेस रियासतों की जनता के आन्दोलन को अपने संघर्ष का अग बनाकर देशव्यापी स्तर पर उनका मार्गदर्शन कर सके, कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों द्वारा कांग्रेस चुनाव घोषणा के कार्यक्रम को लागू करना फारवर्ड ब्लाक के दूसरे मुख्य लक्ष्य थे। अखिल भारतीय योजना के आधार पर राज्य द्वारा राष्ट्र के आर्थिक निर्माण, औद्योगिक विकास तथा प्रगतिशील कृषि व्यवस्था का समर्थन भी फारवर्ड ब्लाक के घोषित लक्ष्य थे।

अनुशासन

वामपक्षीय एकता के प्रयास बहुत दिन नहीं टिक सके। उसे शीघ्र ही अनुशासन की कार्यवाही का सामना करना पड़ा। जुलाई सन् १९३९ के प्रथम सप्ताह में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने निश्चय किया कि सम्बद्ध प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की पूर्ण अनुमति के बिना, कांग्रेसजन, किसी प्रान्त में न तो सत्याग्रह करें और न उसके लिये संगठन बनायें। कमेटी ने प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों और कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों के पारस्परिक सहयोग पर भी जोर दिया और निश्चय किया कि प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियाँ शासन-सम्बन्धी मामलों में मन्त्रियों की स्वतन्त्रता की

रक्षा करें और नीति सम्बन्धी मतभेदों की भी सार्वजनिक चर्चा न करके उसे पार्लियामेन्टरी बोर्ड के पास विचारार्थ भेजें। इन निर्णयों के विरुद्ध सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में ९ जुलाई सन् १९३९ को विरोध दिवस मनाया गया। सुभाष बाबू के इस कार्य से रुष्ट होकर कांग्रेस की कार्य-समिति ने उन्हें बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी की अध्यक्षता से हटाते हुए आगामी तीन वर्षों तक किसी भी निर्वाचित कांग्रेस कमेटी में चुने जाने के अधिकार से वंचित कर दिया।

सुभाषचन्द्र बोस पर कांग्रेस कार्यसमिति ने जो अनुशासन भंग करने के कारण कड़ी कार्यवाही की थी उससे नरेन्द्रदेवजी क्षुब्ध थे। उन्होंने कांग्रेस के दक्षिण और वाम दोनों पक्षों के नेताओं और विशेषत गान्धीजी से अनुरोध किया कि 'वे ऐसी सूरत निकालें जिससे विचारधारा सम्बन्धी मतभेद होते हुए भी कांग्रेस के भीतर सभी साम्राज्यविरोधी दल मिलकर काम कर सकें।'

सुभाष बाबू के विरुद्ध की गयी अनुशासन की कार्यवाही ने कांग्रेस के वामपक्ष में काफी खलबली मचा दी। कुछ व्यक्ति कांग्रेस को छोड़ कर कांग्रेस के विरुद्ध एक साम्राज्य-विरोधी वामपक्षीय संस्था बनाने के पक्ष में हो गये। उनका कहना था कि कांग्रेस के नेतृत्व में संघर्ष की भावना नहीं है और वह सरकार से समझौता करना चाहता है। उसकी उपेक्षा और विरोध वे साम्राज्यशाही शक्ति के विरुद्ध संघर्ष के लिये बड़ा जरूरी समझते थे।

दूसरे बहुत से वामपक्षीय नेता, जिनमें आचार्य नरेन्द्रदेव भी शामिल थे, श्रीसुभाषचन्द्र बोस के समर्थकों की इस बात से सहमत नहीं थे। आचार्यजी के विचार में 'कांग्रेस में ऐसे व्यक्ति जरूर हैं जो संघर्ष बचाना चाहते हैं और समझौता करना चाहते हैं। उनका विरोध जरूरी है, पर उसका यह तरीका नहीं कि 'हम वर्किंग कमेटी को किसी साजिश का दोषी ठहरावें और उसके खिलाफ जिहाद बोल दें'। उनकी धारणा थी कि 'संस्था का नष्ट करना सहल हो सकता है, संस्था का बनाना उतना सुगम नहीं'। उन्हें कांग्रेस के महत्त्व को कम करने के प्रयत्न से जनता में साम्राज्यविरोधी चेतना बढ़ने की बजाय निराशा की भावना बढ़ने का डर था। ऐसी हालत में वे कांग्रेस को ही संघर्ष के लिये आगे करना जरूरी समझते थे।

आचार्य नरेन्द्रदेव की धारणा थी कि उस समय जबकि साम्प्रदायिक और फासिस्ट मनोवृत्तियां देश में जोर पकड़ती जा रही हों और प्रतिक्रियावादी शक्तियाँ ब्रिटिश साम्राज्यशाही से मिलकर प्रगति और स्वतन्त्रता की शक्तियों को कुचल देना चाहती हों, कांग्रेस में एका बनाये रखना नितान्त आवश्यक है। कांग्रेस के नेतृत्व के विरुद्ध जिहाद बोलकर, कांग्रेस की शक्ति को विघटित करके साम्राज्यविरोधी संघर्ष की तैयारी करने का प्रयास घातक ही सिद्ध होगा। संघर्ष को शुरू करना और भी कठिन हो जायगा। कांग्रेस में उन शक्तियों को बल प्राप्त होगा जो साम्राज्यशाही से समझौता करने के पक्ष में है। इस तरह विघटन की प्रक्रिया देश को अधिक क्रान्तिकारी बनाने की बजाय क्रान्ति-विरोधी शक्तियों को ही बल प्रदान करेगी। यह समझना भी भारी भूल होगी कि जो प्रतिक्रियावादी शक्तियां कांग्रेस के मौजूदा नेतृत्व को बदनाम करने में संलग्न हैं वे आगे चलकर कांग्रेस के नये क्रान्तिकारी नेतृत्व का समर्थन करेंगी।

जयप्रकाश नारायण

साथी जयप्रकाश नारायण तथा दूसरे सोशलिस्ट नेता भी नरेन्द्रदेवजी के इन विचारों से सहमत थे। उन सबकी भी यही धारणा थी कि साम्राज्यशाही के विरुद्ध देशव्यापी संघर्ष के लिये सभी साम्राज्यविरोधी शक्तियों के सहयोग की जरूरत है और कांग्रेस ही गान्धीजी के नेतृत्व में इसका सञ्चालन कर सकती है। साथी जयप्रकाश नारायण का कहना था कि इस संघर्ष में किसान सभा, ट्रेड यूनियन कांग्रेस और स्टूडेण्टस् फैडरेशन का महत्त्वपूर्ण योग हो सकता है। पर पर्याप्त सगठन न होने के कारण वे स्वयं संघर्ष का सञ्चालन नहीं कर सकते। ऐसी परिस्थिति में सुभाषबाबू की तरह कांग्रेस के नेतृत्व के विरुद्ध बगावत या कम्युनिस्टों की तरह उस नेतृत्व पर आक्रमण हानिकर ही है। जब कोई दूसरा दल अपनी योजना के आधार पर संघर्ष का सञ्चालन ही नहीं कर सकता, उस समय मौजूदा नेतृत्व के विरुद्ध जिहाद एक बड़ी भारी गलती है। साथी जयप्रकाश नारायण का खयाल था कि यदि सुभाषबाबू कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देने की बजाय कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की सलाह को मानकर श्री जवाहरलाल नेहरू को कांग्रेस का प्रधान मन्त्री तथा श्री शरदचन्द्र बोस और दो अन्य वाम-

पक्षीय नेताओं को कांग्रेस की वर्किंग कमेटी का सदस्य बनाकर दूसरे पुराने नेताओं के साथ काम करने को तैयार हो गये होते तो कांग्रेस में विघटन की परिस्थिति पैदा नहीं होती और उसकी गति-विधि पर वामपक्षीय शक्तियों का प्रभाव भी बना रहता। श्री जयप्रकाश नारायण की राय में कांग्रेस से अलग होकर सुभाष बाबू ने वामपक्षीय शक्तियों को सबल बनाने की बजाय कांग्रेस में उन्हें कमजोर ही कर दिया। उनका कहना था कि हमें सदा अकेले अपनी दुन्दुभी बजाने की बजाय सारे आन्दोलन के हित में काम करना है, कांग्रेस कमेटियों में सक्रिय तत्त्व की हैसियत से काम करते हुए उनके संगठन को सबल बनाना है, उनके आन्दोलनों को गति प्रदान करनी है, जनता में काम करते हुए संघर्ष के सामाजिक आधार को विस्तृत करना है। यह बात याद रखना जरूरी है कि साम्राज्यशाही के विरुद्ध स्वतन्त्रता-संग्राम राष्ट्रीय संघर्ष है और इसके लिये सभी राष्ट्रीय शक्तियों का सहयोग तथा कांग्रेस के नेतृत्व में एका परम आवश्यक है।

१०. स्वाधीनता संग्राम

विश्वयुद्ध

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद पेरिस सम्मेलन द्वारा जो सन्धि जर्मनी पर लादी गयी थी, वह जर्मन जनता की दृष्टि में न्यायपूर्ण नहीं थी। ऐसी सन्धि शान्ति का आधार नहीं बन सकती थी। जर्मनी की दयनीय अवस्था ने उस देश में फासिस्ट मनोवृत्ति को प्रोत्साहित किया, नाजीवाद को जन्म दिया, हिटलर को अपनी तानाशाही कायम करने का अवसर दिया। हिटलर के शक्ति सम्पन्न हो जाने के बाद दूसरे विश्वयुद्ध की सम्भावना बढ़ती जाती थी। इस सम्भावी युद्ध के सम्बन्ध में विचारकों में काफी मतभेद था। जहां हिटलर इसे जर्मनी के लिये धर्मयुद्ध समझता था, हिटलर के बहुत से विरोधी इसे नात्सीवाद के विरुद्ध जनतन्त्र का युद्ध समझते थे। पर बहुतसी प्रगतिशील शक्तियों की दृष्टि में यह युद्ध साम्राज्यवादी युद्ध ही था, क्योंकि उनकी राय में इस युद्ध में दो विरोधी साम्राज्यशाही शक्तियों का संघर्ष निहित था। कांग्रेस का नेतृत्व भी इसी बात को मानता था। सन् १९२७ से कांग्रेस ने युद्ध विरोधी प्रस्ताव पास करना शुरू कर दिये थे। उसने घोषित किया कि 'संसार में तभी शान्ति स्थापित हो सकती है जब कि युद्ध के मुख्य कारण नष्ट हो जायें और एक देश का दूसरे देश पर राज्यशासन और दमन समाप्त हो जाय'। उसने यह भी घोषित किया कि 'भारत साम्राज्यवादी युद्धों में कभी भी भाग न लेगा'। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की हितवृद्धि के लिये भावी विश्वयुद्ध में ब्रिटेन द्वारा भारत को बरबस खेंचे जाने के खतरे की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करते हुए उसने जनता से अपील की कि भावी युद्ध में किसी रूप में भी सरकार को सहायता न दी जाय। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने तो यह भी घोषित किया कि इस साम्राज्यशाही युद्ध के समय हिन्दुस्तान को अपने स्वातन्त्र्य संग्राम को तीव्र कर युद्ध की परिस्थिति से समुचित लाभ उठाना चाहिए।

कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों द्वारा पदत्याग

जैसे ही सितम्बर, सन् १९३९ में विश्वयुद्ध शुरू हुआ नरेन्द्रदेवजी

ने माँग की कि इंगलिस्तान हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता घोषित करे वरना हिन्दुस्तान युद्ध की परिस्थिति से लाभ उठायेगा। कांग्रेस ने भी माँग की कि ब्रिटेन युद्ध के लक्ष्य को घोषित करे और हिन्दुस्तान की आजादी को स्वीकार करे। उसका निश्चित मत था कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान ही इस आश्वासन पर कि फासिस्टवाद और नाजीवाद के साथ साथ साम्राज्यशाही का भी अंत होगा, इस विश्वयुद्ध में ब्रिटेन का साथ दे सकता है।

पर जब सरकार ने कांग्रेस की बात नहीं मानी तब कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने इस्तीफे दे दिये। मन्त्रिमण्डलों से अलग होने से पहले, उन प्रान्तों की विधान सभाओं ने जहां कांग्रेस दल का बहुमत था इस बात पर खेद प्रगट किया कि 'ब्रिटेन और जर्मनी के बीच में होनेवाली लड़ाई में ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान को उसकी जनता की इच्छा को जाने बिना ही शामिल कर दिया है और उसने ऐसी कार्यवाही की है व ऐसे कानून जारी किये हैं जिनके कारण प्रान्तीय सरकारों के अधिकारों में कमी होती है'। उन्होंने सरकार से अनुरोध किया कि 'वह भारत सरकार और उसके जरिये ब्रिटिश सरकार को सूचित करे कि वर्तमान युद्ध के कथित उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए भारतीय जनता का सहयोग प्राप्त करने को मुसलमानों तथा अल्पसंख्यक वर्गों के लिये प्रभावपूर्ण संरक्षणों के साथ जनतन्त्र के सिद्धान्तों को देश में लागू किया जाय, हिन्दुस्तान की नीति उसकी जनता द्वारा ही निश्चित की जाय जिसे अपना संविधान स्वयं बनाने का अधिकार हो' और 'जहां तक तात्कालिक भविष्य में सम्भव हो, इस सिद्धान्त को हिन्दुस्तान के वर्तमान शासन में भी लागू किया जाय'।

असहयोग की घोषणा

२३ नवम्बर सन् १९३९ को कांग्रेस की वर्किंग कमेटी ने घोषित किया कि 'कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों का पदत्याग असहयोग की नीति का पहला कदम है' और यह नीति 'उस समय तक बनी रहेगी जब तक सरकार अपनी नीति को बदल कर कांग्रेस की मांग को स्वीकार नहीं करती' कार्यसमिति ने सविनय अवज्ञा की तैयारी पर भी जोर दिया और उसके लिये को करना जरूरी बताया

२२ दिसम्बर सन् १९३९ को कांग्रेस की कार्यसमिति ने देश की जनता को आह्वान किया कि वह आगामी स्वतन्त्रता दिवस अर्थात् २६ जनवरी १९४० को शपथ लें कि 'जबतक पूर्ण स्वराज्य प्राप्त नहीं होगा, तबतक हम अहिंसात्मक तरीके पर अपनी आजादी की लड़ाई को जारी रखेंगे' 'कांग्रेस के सिद्धान्तों और नीतियों का कड़ाई के साथ पालन करेंगे और भारत की स्वतन्त्रता के लिये जब कभी कांग्रेस हमें आह्वान करेगी हम उसकी आज्ञा का पालन करेंगे'।

२८ फरवरी सन् १९४० को कांग्रेस की कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव द्वारा घोषित किया कि पूर्ण स्वतन्त्रता से कम कोई भी बात हिन्दुस्तान को मंजूर नहीं होगी, वयस्क मताधिकार पर निर्वाचित सभा ही देश का संविधान तैयार करेगी और संसार के दूसरे राष्ट्रों से भारत का सम्बन्ध निश्चित करेगी, तथा कांग्रेस उस समय सविनय अवज्ञा आरम्भ कर देगी जब उसका संगठन इस उद्देश्य की पूर्ति के उपयुक्त होगा और परिस्थिति उसके अनुकूल होगी।

मार्च सन् १९४० को रामगढ़ में कांग्रेस का वार्षिक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन ने इस घोषणा को पारित करते हुए गान्धीजी को संघर्ष प्रारम्भ करने का अधिकार दिया। विषय समिति में नरेन्द्रदेवजी ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कहा कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी 'विरोध करने वाली पार्लियामेंटरी पार्टी नहीं है, बल्कि लड़नेवाली पार्टी है। जब कांग्रेस संग्राम की ओर बढ़ रही है तब एक स्वर से हम उसका समर्थन करते हैं'। उन्होंने यह भी कहा कि हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि 'जब तक कांग्रेस लड़ाई का आदेश नहीं देती तब तक देशव्यापी आन्दोलन नहीं होता और जब तक गान्धीजी तैयार नहीं होते, कांग्रेस का नेतृत्व आगे नहीं बढ़ता'।

सुभाषचन्द्र बोस की प्रतिक्रिया

श्री सुभाषचन्द्र बोस कांग्रेस की इन घोषणाओं से सन्तुष्ट नहीं थे। उन्हें वाइसराय से कांग्रेसी नेताओं की बातचीत बुरी लगती थी, उन्हें भय था कि ये लोग सरकार से समझौता करने की फिक्र में हैं और संघर्ष छेड़ना नहीं चाहते। सुभाष बाबू के विचार में सविनय अवज्ञा की तैयारी के संदर्भ में खादी के कार्यक्रम पर जोर देना भी व्यर्थ की

विडम्बना है। इसलिये उन्होंने कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर रामगढ़ के पास किशननगर में समझौता-विरोधी सम्मेलन किया। इस सम्मेलन ने स्वतन्त्ररूप से ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मुकाबला करने के लिये सीधी कार्यवाही (direct action) शुरू करने का निश्चय किया। इस काम के लिये एक 'युद्ध समिति' संगठित की गयी और अप्रैल सन् १९४० को संघर्ष शुरू करने की बात पक्की हुई।

नरेन्द्रदेवजी को श्री सुभाष चन्द्र बोस की बात ठीक नहीं जंचती थी। वे समझौता-विरोधी सम्मेलन में शामिल नहीं हुए। इस अवसर पर उन्होंने 'भारतीय संघर्ष' पर एक लेख लिखा जिसमें श्री एम० एन० राय, श्री सुभाष चन्द्र बोस और कम्युनिस्टों की नीति रीति की समीक्षा करते हुए उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की नीति-रीति का समर्थन किया। उन्होंने लिखा कि साम्राज्य विरोधी संघर्ष के लिये कांग्रेस की एकता को सुदृढ़ बनाना जरूरी है। हमें कांग्रेस को अपने लक्ष्य के साधन का उचित अस्त्र बनाना है, समूची कांग्रेस को आगे बढ़ाना है। इस उद्देश्य से हमें कांग्रेस के जनतान्त्रिक निर्णयों को मानना होगा, उसके अनुशासन का पालन करना होगा, विघटनकारी शक्तियों का विरोध करना होगा। उन्होंने लिखा कि 'सच्चे नेतृत्व और अवसरवादिता का साथ साथ चलना सम्भव नहीं'। मौजूदा कांग्रेस को दक्षिणपन्थी कांग्रेस घोषित कर उसे छोड़कर दूसरी वामपक्षीय कांग्रेस को संगठित करने का प्रयास 'खतरनाक' है। आचार्यजी ने कहा कि कांग्रेस के नेतृत्व को बदनाम करके, उसके व्यापक प्रभाव को क्षीण करके देशव्यापी संघर्ष चलाना असम्भव है। जनता को जिन नेताओं पर विश्वास है उनके सहयोग के बिना जनता का सहयोग प्राप्त होना सम्भव नहीं है।

समझौता-विरोधी सम्मेलन द्वारा संगठित 'युद्ध-समिति' कोई विशेष कार्य नहीं कर सकी। २ जुलाई सन् १९४० को श्री सुभाषचन्द्र बोस सरकार द्वारा नजरबन्द कर दिये गये। पर २६ जनवरी सन् १९४१ को वे पुलिस की आँख बचाकर गायब हो गये और जर्मनी में जाकर उन्होंने 'आजाद हिन्द सरकार' का संगठन किया और एक ऐसी भारतीय सेना तैयार की जो ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध में काम कर सके, पर यह सेना भी कोई विशेष काम नहीं कर पायी।

श्री एम० एन० राय के विचार

जिस समय श्री सुभाषचन्द्र बोस शीघ्र से शीघ्र साम्राज्य-विरोधी स्वतन्त्रता-संग्राम प्रारम्भ करने का प्रयत्न कर रहे थे, श्री एम० एन० राय इसका विरोध करते हुए कांग्रेस को समझौता करने का मशवरा देते थे। उन्होंने कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों के इस्तीफे का विरोध किया तथा कुछ शर्तों के साथ कांग्रेस को साम्राज्यशाही से समझौता करने की सलाह दी। उनका विचार था कि यदि ब्रिटिश सरकार भारतीय संविधान में तब्दीली करके प्रान्तीय सरकारों को अधिक अधिकार देने को, बालिग मताधिकार लागू करने को और रियासतों को जनता के नागरिक अधिकारों को स्वीकार करने को तैयार हो जाय, तब कांग्रेस नाजी जर्मनी के विरुद्ध ब्रिटेन को मदद देने को राजी हो जाय। उन्होंने यह भी कहा कि समझौता ही कांग्रेस के गान्धीवाद नेतृत्व का मूल मन्त्र है और कांग्रेस के संगठन और नेतृत्व में मौलिक परिवर्तन के बाद ही कांग्रेस मे स्वतन्त्रता-संघर्ष की क्षमता आ सकती है।

नरेन्द्रदेवजी श्री एम. एन. राय के इन विचारों से सहमत नहीं थे। आचार्यजी का कहना था कि कांग्रेस के मौजूदा नेतृत्व की कमियों और कमजोरियों की दुहाई देकर संघर्ष के वातावरण में समझौते का मशवरा देना गलत है। युद्ध का विरोध करने की बार बार घोषणा करने के बाद संघर्ष के माँग की उपेक्षा असम्भव है। संघर्ष को टालकर कांग्रेस की गति और नेतृत्व को अधिक क्रान्तिकारी नहीं बनाया जा सकता। नये नेतृत्व का विकास तो संघर्ष में ही हो सकता है। संघर्ष की प्रक्रिया से ही कांग्रेस अधिक गतिशील और क्रान्तिकारी बन सकती है। आचार्यजी का यह भी कहना था कि श्री एम० एन० राय की समझौते की शर्तें ब्रिटिश सरकार को मान्य होने वाली नहीं हैं। इस तरह राय साहब को समझ लेना है कि संघर्ष तो उनकी अपनी शर्तों में ही निहित है। फिर समझौते की बात करके संघर्ष के वातावरण को दूषित करने से क्या लाभ ?

मुस्लिम लीग

मुस्लिम लीग की गति-विधि ने अन्ततोगत्वा देश के विभाजन की माँग तथा स्वतन्त्रता संघर्ष के विरोध का रूप धारण कर लिया।

सन् १९३७ में श्री मुहम्मद अली जिन्ना ने 'भारत की राष्ट्रीय जनतान्त्रिक सरकार' की स्थापना ही मुस्लिम लीग का ध्येय घोषित किया। पर अक्तूबर सन् १९३८ में सिन्ध प्रान्तीय मुस्लिम लीग कान्फ्रेन्स ने हिन्दू और मुस्लिम राष्ट्रों के आत्मनिर्णय के सिद्धान्त की घोषणा करते हुए हिन्दू राज्यों और मुस्लिम राज्यों के दो पृथक संघ स्थापित करने की मांग की तथा दिसम्बर सन् १९३८ में जिन्ना साहब ने हिन्दुस्तान के ९ करोड़ मुसलमानों को पृथक राष्ट्र घोषित करते हुए अखिल भारतीय संघ की सम्भावना पर सन्देह प्रगट किया। अक्तूबर सन् १९३९ में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों के इस्तिफा देने के तुरत बाद मुस्लिम लीग ने सारे देश में मुक्तिदिवस मनाया तथा सरकार की इस घोषणा का समर्थन किया कि जिस नीति और योजना पर भारतीय शासन सम्बन्धी सन् १९३५ का अधिनियम आधारित है, उस पर भारत के विभिन्न दलों, हितों और जन-समूहों के परामर्श से पुनर्विचार किया जायगा। मार्च सन् १९४० में मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर अधिवेशन में घोषित किया कि उसकी राय में 'कोई ऐसी संवैधानिक योजना इस देश में कार्यान्वित नहीं हो सकती और न मुसलमानों को ग्राह्य हो सकती है जिसका निर्माण निम्नलिखित आधारभूत सिद्धान्त के अनुसार न किया गया हो—भौगोलिक दृष्टि से एक दूसरे के समीपस्थ इकाइयों के ऐसे क्षेत्र निश्चित किये जाँय जिनमें आवश्यक प्रादेशिक रद्दोबदल के बाद, जहां मुसलमान बहुसंख्यक हैं (जैसे हिन्दुस्तान का पश्चिमोत्तर और पूर्वोत्तर प्रदेश) वहां उनको मिलाकर स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना की जाय और उनमें सम्मिलित इकाइयाँ भी स्वशासनभोगी तथा प्रभुता-सम्पन्न रहें'। मुस्लिम लीग की यह माँग कांग्रेस को स्वीकार नहीं थी। वह मुसलमानों के अधिकारों और हितों की समुचित रक्षा आवश्यक समझती थी, पर धर्म के आधार पर भारतीय जनता और देश का बटवारा उसे मंजूर नहीं था। दूसरी तरफ मुस्लिम लीग ने कांग्रेस की गति-विधि को मुसलमान-विरोधी घोषित करते हुए मुसलमानों को स्वतन्त्रता-संघर्ष से अलग रहने की सलाह देना ही उचित समझा। मुस्लिम लीग के विरोध से ब्रिटिश साम्राज्यशाही को काफी बल मिला। उसने तो मुस्लिम लीग की मनोवृत्ति को स्वाधीनता की माँग को टालने का बहाना बना लिया। अपने

वक्तव्यों द्वारा उसने विघटन की भावना को परोक्षरूप से प्रोत्साहित किया। मुस्लिम लीग के विरोध से गान्धी जी बहुत चिन्तित थे। स्वतन्त्रता-संघर्ष के दौरान में साम्प्रदायिक झगड़े शुरू होने के डर से वे काफी परेशान थे।

कांग्रेस की गति-विधि

ऐसी हालत में रामगढ़ अधिवेशन के बाद भी लगभग छः महीने तक कांग्रेस संघर्ष को टालती रही। इस बीच में कांग्रेस की वर्किंग कमेटी का गान्धीजी से अहिंसा के सम्बन्ध में गहरा मतभेद हो गया और जून सन् १९४० को उसने उन्हें नेतृत्व के उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया। गान्धीजी चाहते थे कि कांग्रेस ऐसी घोषणा करे कि स्वतन्त्र भारत में हिंसा का कोई स्थान नहीं रहेगा और वाह्य आक्रमण से देश की रक्षा के लिये भी सेना का उपयोग नहीं किया जायगा। कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों में से अधिकांश का यह मत था कि यद्यपि देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई में अहिंसा का वही स्थान बना रहेगा जो विगत बीस साल से बना रहा है, पर आन्तरिक विप्लव और विदेशी आक्रमण की स्थिति में हिंसा का पूरी तौर पर परित्याग कर देने का वायदा करना सम्भव नहीं। जुलाई सन् १९४० में कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने एक बार फिर ब्रिटिश सरकार से समझौता करने का प्रयत्न किया। उसने माँग की कि भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग को स्वीकार किया जाय और तत्काल केन्द्र में एक ऐसी स्थायी राष्ट्रीय सरकार कायम की जाय जिसे केन्द्रीय विधान सभा के सभी निर्वाचित वर्गों का विश्वास प्राप्त हो और जिसके साथ प्रान्तों की उत्तरदायी सरकारें सहयोग कर सकें। ८ अगस्त सन् १९४० को वाइसराय ने घोषित किया कि (१) गवर्नर जनरल की कार्यपालिका बढ़ायी जायगी और उसमें कुछ प्रतिनिधि-भारतीय सम्मिलित किये जायँगे। (२) एक युद्ध परामर्शदात्री-कौंसिल स्थापित की जायगी। इसमें भारतीय रियासतों और देश के अन्य अंगों के भी प्रतिनिधि होंगे और निश्चित समय पर इसके अधिवेशन हुआ करेंगे। (३) युद्ध के काल में ब्रिटिश सरकार भारतीय शान्ति और व्यवस्था का उत्तरदायित्व किसी ऐसी सरकार के हाथ में देने में असमर्थ है जिसकी सत्ता भारतीय जनता के महत्त्वपूर्ण अंश मानने को तैयार न हों, और वह यह भी नहीं चाहती थी कि इन अंशों से

जबरदस्ती ऐसी सत्ता स्वीकार करायी जाय। (४) युद्ध के पश्चात्, सम्राट की सरकार, कम से कम समय में, भारतीय राष्ट्रीय जीवन के प्रधान अंगों के प्रतिनिधियों की एक ऐसी सभा बुलाने की अनुमति देगी जिसका काम भारत के लिये नया संविधान बनाना होगा और यथाशक्ति उसके शीघ्रातिशीघ्र निर्णय करने में सहायता पहुँचायगी। कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने वाइस राय की घोषणा को निराशाजनक बताते हुए १५ सितम्बर सन् १९४० को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन बुलाने का निश्चय किया।

इस कमेटी ने दो दिन तक राजनीतिक परिस्थिति पर विचार करने के बाद गान्धी जी से संघर्ष का नेतृत्व करने की प्रार्थना की। अक्टूबर सन् १९४० में गान्धीजी ने भाषण की स्वतन्त्रता के निमित्त व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ करने की घोषणा की और १७ अक्टूबर को सत्याग्रह शुरू हो गया।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

गान्धीजी के इस निर्णय से वामपक्षीय शक्तियां पूरी तौर पर सहमत नहीं थीं। नरेन्द्रदेवजी भी असन्तुष्ट थे। उनके विचार में भाषण की स्वतन्त्रता की बजाय राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष शुरु करना चाहिए था। वे व्यक्तिगत सत्याग्रह की बजाय जन-सत्याग्रह के पक्ष में थे। पर अपना असन्तोष व्यक्त करते हुए उन्होंने घोषित किया कि जिस रूप में भी कांग्रेस और गान्धीजी आन्दोलन चलायेंगे उसमें वह और उनकी पार्टी के दूसरे सदस्य शामिल होंगे। गान्धीजी के आदेश पर नरेन्द्रदेवजी ने संयुक्त प्रान्त में आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण किया और उसका सञ्चालन करते हुए गिरफ्तार हुए तथा कई महीने लखनऊ, गोरखपुर और आगरा जेल में यातनाएँ सहीं। यहां उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। वे इतने कमजोर और अशक्त हो गये कि उन्हें कुर्सी पर बैठ कर एक जगह से दूसरी जगह पर जाना पड़ता था। आगरा जेल में उनके शिष्य डाक्टर बी० वी० केसकर भी उनके साथ थे। वे उनकी यथा सम्भव सेवा करते रहते थे। उनके आदेश पर ही केसकर जी ने कई सत्याग्रहियों को फ्रान्सीसी भाषा सिखायी। उन्हीं के अनुरोध पर समाजवाद के सिद्धान्तों और कांग्रेस सोशलिस्ट

पार्टी की नीति-रीति का अध्ययन-अध्यापन भी शुरू हुआ और श्री सर्वजीतलाल आदि कई सत्याग्रहियों ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल होने का निश्चय किया। आगरा जेल में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में राष्ट्र कवि मैथली शरण गुप्त की वर्षगांठ मनायी गयी। इस अवसर पर मैथली शरणजी की प्रतिभा का विश्लेषण करते हुए उन्होंने राष्ट्रकवि के गुणों की व्याख्या करके कहा कि जिसतरह भूकम्प मापक यंत्र भूमि के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्पन्दन को अंकित करता है, उसी तरह राष्ट्र कवि अपने काव्य में मानव की मधुर से मधुर भावनाओं तथा समाज के साधरण से साधरण आन्दोलन को चित्रित करता है।

इस व्यक्तिगत सत्याग्रह का संचालन गान्धीजी के हाथ में था। काफी छान बीन के बाद गान्धीजी स्वयं सत्याग्रहियों का चुनाव करते थे। उन्होंने ही श्री विनोबा भावे को सर्व प्रथम सत्याग्रही चुना था। प्रत्येक सत्याग्रही को अपने सत्याग्रह की सूचना स्वयं राज्य के अधिकारियों को देना होती थी। उसे सत्याग्रह करते समय जनता में घोषित करना होता था कि युद्ध में सहायता न करना उसका दृढ़ विश्वास है। इस तरह बहुत ही शान्तिमय ढंग से गान्धीजी की देखरेख में उनके आदेश अनुसार यह सत्याग्रह लगभग एक वर्ष तक चलता रहा। इस आन्दोलन में लगभग १,२०,००० सत्याग्रही जेल में गये। गान्धीजी इससे काफी सन्तुष्ट थे। पर बहुत से कांग्रेसी नेता इस प्रकार के आन्दोलन को बेकार समझते थे। अतः जब अक्टूबर सन् १९४१ में सरकार ने सत्याग्रहियों को छोड़ना शुरू किया, तब गान्धीजी ने इस बात पर जोर दिया कि कारागार से मुक्त सत्याग्रहियों को एक सप्ताह के अन्दर पुनः सत्याग्रह करना चाहिए। पर ३ दिसम्बर को भारत सरकार ने एक विज्ञप्ति द्वारा घोषित किया कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन में भाग लेने के कारण जो व्यक्ति बन्दी किये गये हैं उनको छोड़ दिया जायगा। ४ दिसम्बर को बहुत से प्रमुख कांग्रेसी नेता रिहा कर दिये गये और कुछ दिन में सभी सत्याग्रही जेल से छोड़ दिये गये। इस अवसर पर डाक्टर राम मनोहर लोहिया भी जिन्हें सन् १९४० को दो वर्ष की सजा एक भाषण के आधार पर दी गयी थी छोड़ दिये गये, पर श्री जयप्रकाश नारायण

आदि बहुत से दूसरे समाजवादी नेता और कार्यकर्ता नहीं छोड़े गये। २३ दिसम्बर को कांग्रेस की कार्यसमिति ने राजनीतिक बन्दियों की रिहाई को महत्त्वहीन बताते हुए अपनी पुरानी नीति को पुष्ट किया। पर जापानी आक्रमण के कारण युद्ध ने जो नया रूप धारण कर लिया था उस पर गम्भीरता से विचार करना उसने जरूरी समझा। इस तरह यह आन्दोलन समाप्त हुआ।

एम० एन० राय और कम्युनिस्ट

जिस समय देश कांग्रेस के नेतृत्व में संघर्ष की तैयारी कर रहा था और कांग्रेस व्यक्तिगत सत्याग्रह में संलग्न थी, कम्युनिस्ट कांग्रेस के नेताओं को बदनाम कर उनके प्रभाव को क्षीण करने में लगे हुए थे तथा श्री एम० एन० राय देश को फासिस्टवाद के विरुद्ध ब्रिटेन का साथ देने का मशवरा दे रहे थे। राय साहब ने सत्याग्रह शुरू होने से पहले ही सितम्बर सन् १९४० में फासिस्टवाद के विरुद्ध प्रदर्शन करते हुए युद्ध में बिना किसी शर्त के शामिल होने की माँग की थी। इस पर वे कांग्रेस से निष्कासित कर दिये गये थे। अक्टूबर सन् १९४० में उन्होंने 'रेडिकल डिमोक्रेटिक पीपुल्स' पार्टी के संगठित करने का निश्चय किया। दिसम्बर सन् १९४० में इस पार्टी ने अपने बम्बई अधिवेशन में अपने को देश की 'एकमात्र संगठित फासिस्ट विरोधी शक्ति' घोषित करते हुए भारतीय जनता को फासिस्टवादी शक्तियों के विरोध में सरकार से सहयोग करने को आह्वान किया। इस पार्टी ने कांग्रेस और उसके नेतृत्व की प्रतिष्ठा पर कुठाराघात करते हुए 'नेशनल डिमोक्रेटिक यूनियन' के नाम से एक बृहद् राजनीतिक संस्था बनाने का भी प्रयत्न किया।

दक्षिणपूर्व एशिया में युद्ध

सुदूरपूर्व एशिया में जापान से युद्ध छिड़ जाने की सम्भावना से बाध्य होकर ही ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेसी नेताओं को जेल से रिहा करने की घोषणा की थी। इस घोषणा के चार दिन बाद ही अर्थात् ७ दिसम्बर को जापान ने पर्ल हार्बर पर अमरीकी बेड़े पर हमला करके युद्ध प्रारम्भ कर दिया। इससे कुछ अर्से पहले ही जून सन् १९४१ को जर्मनी ने सोवियत रूस पर चढ़ाई कर दी थी। इस तरह युद्ध अधिक

व्यापक हो गया। दक्षिण-पूर्व एशिया तथा रूस युद्ध के प्रमुख क्षेत्र बन गये। एक तरफ जर्मनी रूस में बढ़ता चला जाता था और दूसरी ओर जापान दक्षिण-पूर्व एशिया में फ्रान्स, हालैन्ड और ब्रिटेन की साम्राज्यशाही को विध्वंस करते हुए हिन्दुस्तान की तरफ बढ़ रहा था। ऐसी परिस्थिति में ब्रिटेन के मित्र संयुक्तराष्ट्र अमरीका और चीन चाहते थे कि भारतीय जनता का समुचित सहयोग प्राप्त करने के लिये ब्रिटिश सरकार कांग्रेस से समझौता करे। ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री चर्चिल ब्रिटिश साम्राज्यशाही को अक्षुण्ण बनाये रखना चाहते थे। वे कांग्रेस से समझौता करने की इच्छा रखते हुए भी उनकी माँग मानने में आनाकानी करते थे।

भारतीय राजनीतिज्ञों की प्रतिक्रिया

इन सब बातों की भारतीय जनता और राजनीतिज्ञों पर भी विभिन्न प्रतिक्रियाएँ थीं। भारतीय जनता सरकार के व्यवहार से रुष्ट थी और उसका रोष बढ़ता ही चला जाता था। उसकी साम्राज्यविरोधी भावनाएँ ब्रिटेन की पराजय की कामना करती थीं। राष्ट्रनिष्ठों को क्षोभ था कि सरकार स्वराज्य की माँग को स्वीकार करने की बजाय मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को प्रोत्साहित करके राष्ट्र की माँग को साम्प्रदायिकता की दलदल में फाँस देना चाहती है। कम्युनिस्ट, जो अबतक विश्वयुद्ध को साम्राज्यशाही युद्ध कहते थे और चाहते थे कि शीघ्र से शीघ्र ब्रिटेन के विरुद्ध हिन्दुस्तान में स्वतन्त्रता-संघर्ष छेड़ दिया जाय, युद्ध में सोवियत रूस के शामिल हो जाने पर उसे जन-युद्ध कहने लगे थे और चाहते थे कि कांग्रेस स्वतन्त्रता-संघर्ष के विचार को छोड़ कर युद्ध में ब्रिटिश सरकार की सहायता करे और मुसलमानों की पाकिस्तान की माँग को भी स्वीकार कर ले। श्री राजगोपालाचार्य प्रभृति नेता जापान की विजय से दुःखी थे, उन्हें डर था कि जब जापान हिन्दुस्तान पर आक्रमण करेगा तब ब्रिटिश सरकार की सहायता के बिना जापान की फौजी ताकत का मुकाबला नहीं किया जा सकता। इसलिये वे लोग देश की रक्षा के निमित्त हर कीमत पर ब्रिटिश सरकार और मुस्लिम साम्प्रदायिकता से समझौता करने के पक्ष में थे। पण्डित जवाहरलाल नेहरू प्रभृति नेता परेशान थे। वे एक तरफ हर कीमत

पर समझौता करने को तैयार नहीं थे और दूसरी तरफ स्वतन्त्रता-संघर्ष को छोड़कर संयुक्त राष्ट्रों की परेशानी को बढ़ाना नहीं चाहते थे। उन्हें डर था कि जापान की बढ़ती हुई शक्ति चीन की स्वतन्त्रता के लिये घातक सिद्ध होगी। दूसरी तरफ बहुत से नवयुवक नेताओं को आशा थी कि जापान की संरक्षता में संगठित 'आजाद हिन्द फौज' जापान की मदद से देश को ब्रिटिश साम्राज्यशाही से आजाद करायेगी। गान्धी जी इन विचारों से सहमत नहीं थे। उन्हें जापान से कोई विशेष आशा नहीं थी। जापान के बलबूते पर आजादी हासिल करने की कामना उन्हें ग़लत दिखायी देती थी। पर जनतन्त्र के नाम पर ब्रिटिश साम्राज्यशाही से समझौता करना भी उन्हें ग़लत मालूम होता था। उनकी धारणा थी कि इस विषम परिस्थिति में आजाद हिन्दुस्तान ही देश की स्वतन्त्रता और हितों की रक्षा कर सकता है, विश्व की सेवा कर सकता है। वे संघर्ष को अनिवार्य समझने लगे थे और समझौते की वार्ता में ही सारा समय नष्ट करना नहीं चाहते थे। सन् १९४२ में 'करो या मरो' ही उनका नारा था। उनका विचार था कि स्वतन्त्रता-संघर्ष ही जनता की साम्राज्य-विरोधी भावनाओं तथा रोष का सही उपयोग है। उन्हें डर था कि यदि जापान के आक्रमण से पहले देश स्वतन्त्र नहीं हुआ तो ब्रिटेन के प्रति जनता का रोष और घृणा जनता को आक्रमणकारियों की मदद करने को, आक्रमण का स्वागत करने को, प्रेरित करेगा। इस तमाम बातों को ध्यान में रख कर वे स्वतन्त्रता के निमित्त अहिंसा के आधार पर एक बृहद् जन-संघर्ष शुरू करना चाहते थे। इस संघर्ष में वे देश की सारी शक्ति की बाजी लगा देना चाहते थे। उनकी उत्कट इच्छा थी कि हिंसा से पूर्णतया आच्छादित वातावरण में अहिंसा पर विश्वास रखनेवाले सत्याग्रही अपनी निष्ठा और साहस की परीक्षा दें, सिर पर कफन बाँध कर दृढ़ता, धैर्य और साहस से अहिंसात्मक उपायों द्वारा ब्रिटेन की पाशविक शक्ति का मुकाबला करें, पूर्ण स्वराज्य के लिये मर मिटें। राष्ट्र के इस महान् लक्ष्य के निमित्त वे स्वयं आमरण अनशन भी करना चाहते थे।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सभी नेता और कार्यकर्ता पूर्ण स्वराज्य के लिये ब्रिटिश साम्राज्यशाही के विरुद्ध देश-व्यापी जन-युद्ध के पक्ष में थे। उनकी धारणा थी कि जापान के सहारे या सोवियत रूस की

हिमायत से स्वराज्य-प्राप्ति की कामना निरर्थक है, उसके लिये तो देश में ही जन-युद्ध करना होगा, ब्रिटिश साम्राज्यशाही का मुकाबला करना होगा। ब्रिटिश साम्राज्यशाही द्वारा संगठित पचमेल सरकार के लिये जापान के आक्रमण के विरुद्ध जनता का समुचित सहयोग प्राप्त करना असम्भव है। क्रान्तिकारी स्वराज्य-सरकार ही स्वाधीनता की रक्षा के लिये बाह्य आक्रमण या हस्तक्षेप के विरुद्ध जन-शक्ति को संगठित कर सकती है। समझौते के आधार पर बनी सरकार के लिये तो जनता का विश्वास प्राप्त करना भी नामुमकिन होगा। कांग्रेस सोशलिस्ट गान्धीजी के नेतृत्व में ही जन-युद्ध शुरू करना चाहते थे। पर वे गान्धीजी के आमरण अनशन के विचार के विरुद्ध थे और जन-युद्ध के संदर्भ में गान्धीजी की अहिंसा-सम्बन्धी कड़ी शर्तों को अव्यवहारिक समझते थे।

गान्धी-नरेन्द्रदेव वार्ता

जिस समय गान्धीजी देशव्यापी जन-संघर्ष के शुरू करने की बात सोच रहे थे, उस समय श्री जयप्रकाश नारायण हजारीबाग जेल में बन्द थे और आचार्य नरेन्द्रदेव गान्धीजी की देखरेख में सेवाग्राम आश्रम में इलाज करा रहे थे। इस चिकित्सा के चार महीनों मे नरेन्द्रदेवजी गान्धीजी के अधिक निकट आये। गान्धीजी ने नरेन्द्रदेवजी से समाजवाद के लक्ष्यों तथा गति-विधि के सम्बन्ध में समय समय पर बात की और स्वराज्य के समाजवादी तत्त्वों के सम्बन्ध में नरेन्द्रदेवजी की व्याख्या को किसी हद तक ठीक समझा। उन्होंने नरेन्द्रदेवजी से सत्य और अहिंसा के सम्बन्ध में भी बात चीत की। नरेन्द्रदेवजी ने बताया कि वे बचपन से ही सत्य की 'आराधना' करते रहे हैं, पर वे यह नहीं समझते कि एक मात्र अहिंसा से स्वराज्य की प्राप्ति हो सकती है, अन्याय के विरोध में हिंसा का प्रयोग जरूरी हो सकता है। देशव्यापी जन-संघर्ष की योजना पर भी गान्धीजी ने नरेन्द्रदेवजी से बात चीत की। नरेन्द्रदेवजी ने गान्धीजी को विश्वास दिलाया कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सब कार्यकर्ता जन-संघर्ष में उनके साथ रहेंगे। यह भी कहा कि संघर्ष शुरू होने पर पण्डित जवाहरलाल नेहरू भी संघर्ष में जरूर कूद पड़ेंगे।

विश्वयुद्ध का स्वरूप

इस अवसर पर नरेन्द्रदेवजी ने एक लेख में विश्व-युद्ध के स्वरूप की समीक्षा करते हुए लिखा कि कम्युनिस्टों की यह धारणा गलत है कि रूस और जर्मनी में लड़ाई छिड़ जाने तथा रूस और ब्रिटेन की मैत्री हो जाने के बाद विश्वयुद्ध का स्वरूप ही बदल गया है, विश्व-युद्ध साम्राज्यशाही युद्ध की बजाय जन-युद्ध बन गया है। नरेन्द्रदेवजी ने तसलीम किया कि 'साम्राज्यवादी युद्ध घटना चक्र से राष्ट्रीय युद्ध हो सकता है और राष्ट्रीययुद्ध साम्राज्यवादी हो सकता हैं'। पर उनका कहना था कि इस युद्ध का स्वरूप अभी नहीं बदला है। युद्ध में कुछ राष्ट्रीय तत्त्व आ गये हैं, किन्तु वे गौण हैं। प्रधान तत्त्व साम्राज्यवादी ही हैं। अब भी विश्वयुद्ध प्रधानतः साम्राज्यवादी ही है। चीन और सोवियत रूस से हमारी सहानुभूति है। इस कारण नीति में थोड़ा परिवर्तन किया जा सकता है। पर स्वतन्त्रता के निमित्त जन-संघर्ष तो करना ही होगा। नरेन्द्रदेवजी देश की रक्षा के नाम पर भी ब्रिटिश साम्राज्यसाही से सहयोग करने को तैयार नहीं थे। इस प्रकार की नीति को वे 'मिथ्या देश-रक्षा की नीति' समझते थे। उनकी धारणा थी कि 'सरकार के साथ सहयोग कर के हम उसके साम्राज्यवादी हितों की ही रक्षा करेंगे। हिन्दुस्तान के लिये यह युद्ध जनता का युद्ध तभी बन सकता है कि जब जनता को अनुभव हो कि देश स्वतन्त्र हो गया है और उसे देश की रक्षा करनी है और जब ऐसे सामाजिक कानून बनें जिससे यहां के किसानों, मजदूरों और निम्न श्रेणी के लोगों की बेकारी और गरीबी दूर हो'। नरेन्द्रदेवजी की यह भी मान्यता थी कि 'कोई भी राष्ट्र दूसरों को आजाद कराने के लिये आत्मबलिदान नहीं करता है'। उन्हें जापान की घोषणा और सह-समृद्धि की योजना पर कोई विश्वास नहीं था। इसलिये वे जापान का स्वागत करने को तथा उसकी मदद से आजादी हासिल करने की बात सोचने को तैयार नहीं थे। वे तो यही चाहते थे कि 'जनता में आक्रमणकारी के विरोध की भावना जागृत हो'।

लुईफिशर से गान्धीजी की वार्ता

जब नरेन्द्रदेव जी सेवाग्राम में थे, तभी वहाँ अमरीका के प्रसिद्ध

पत्रकार लुई फिशर गान्धीजी से मिलने आये और उन्होंने गान्धीजी से बहुत से विषयों पर बातें कीं। इनमें जमींदारी उन्मूलन का प्रश्न प्रमुख था। जब सन् १९३४ में समाजवादियों ने इस पर जोर दिया था, तब गान्धीजी ने कहा था कि यदि जमींदार अपने को अपनी जमींदारी का मालिक समझने की बजाय किसानों का ट्रस्टी समझने लगे तो वे जमींदारों की तरफ से समाजवादियों का विरोध करने को तैयार हैं। पर जमींदार उनकी बात कब मानने वाले थे। आखिर सन् १९४२ में गान्धीजी ने लुई फिशर से कहा कि बिना किसी मोआवजे के जमींदारी प्रथा खत्म कर देनी चाहिए। जब फिशर साहब ने हिंसा की सम्भावना की ओर संकेत किया, तब गान्धीजी ने कहा कि किसानों में मुआवजा देने का सामर्थ्य नहीं है और गांवों में रहने वाले मुट्ठी भर जमींदार हिंसा से बचने के लिये नगरों में चले आयेंगे।

क्रिप्स मिशन

इसी जमाने में मार्च सन् १९४२ को ब्रिटिश सरकार की ओर से सर स्टैफर्ड क्रिप्स दिल्ली आये और उन्होंने दूसरे भारतीय नेताओं के साथ गान्धीजी को भी बातचीत के लिये निमन्त्रित किया। गान्धीजी दिल्ली जाना नहीं चाहते थे, पर बहुत आग्रह पर जाने को राजी हो गये। जाते समय उन्होंने नरेन्द्रदेवजी से कहा कि क्रिप्स साहब किसी न किसी रूप में देश के बटवारे का सवाल प्रस्तुत करेंगे। गान्धीजी का यह अनुमान ठीक ही निकला। सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने ब्रिटिश सरकार की तरफ से घोषित किया कि युद्ध के बाद ब्रिटिश कामनवैल्थ के अन्तर्गत हिन्दुस्तान में एक ऐसे संघ का निर्माण किया जायगा कि जिसे अन्य डोमिनियनों के समान पूर्ण स्वतन्त्रता और सत्ता प्राप्त होगी और जिसका संविधान निर्वाचित सभा द्वारा निश्चित होगा। इस संघ में प्रान्तों के साथ साथ रियासतें भी शामिल हो सकती हैं। पर क्रिप्स साहब ने यह भी घोषित किया कि यदि कोई प्रान्त या रियासत स्वतन्त्र भारतीय संघ का सदस्य न बनना चाहे तो वह अपनी स्वतन्त्र राजनीतिक सत्ता स्थापित कर स्वतन्त्ररूप से ब्रिटिश कामनवेल्थ का अंग बन सकती है। गान्धीजी को क्रिप्स का यह सुझाव मंजूर नहीं था। वे नरेन्द्रदेवजी, कस्तूरबा आदि रोगियों की चिकित्सा

के निमित्त शीघ्र ही वर्धा लौट आये। कांग्रेस के दूसरे नेताओं को भी क्रिप्स द्वारा घोषित ब्रिटिश सरकार की यह योजना पसन्द नहीं थी। पर जापान के आक्रमण के भय से वे अन्तरिम सरकार के सम्बन्ध में समझौता करना चाहते थे। पर इस सम्बन्ध में भी कोई समझौता नहीं हो सका। कांग्रेस चाहती थी कि अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार के साथ वायसराय का सम्बन्ध वैसा ही हो जैसा सम्राट के साथ ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल का होता है। वह यह भी चाहती थी कि अन्तरिम राष्ट्रीय सरकार को रक्षा-विभाग भी हस्तान्तरित हो ताकि वह जरूरत पड़ने पर जापानी आक्रमण से देश की रक्षा कर सके। पर ब्रिटिश सरकार इन दोनों बातों को मानने के लिये तैयार नहीं थी। पहली बात तो क्रिप्स ने शुरू में कबूल भी कर ली थी, पर अन्त में वे उससे मुकर गये। दूसरी बात के सम्बन्ध में तो उन्होंने शुरू में ही कह दिया कि यद्यपि भारतीय जनता के सहयोग से युद्ध को सञ्चालन करने के लिये देश के सैनिक, नैतिक और भौतिक साधनों को संगठित करने का उत्तरदायित्व भारतीय सरकार का होगा, पर युद्ध के जमाने में हिन्दुस्तान की रक्षा का उत्तरदायित्व तथा उसका सञ्चालन और नियन्त्रण ब्रिटिश सरकार पर ही रहेगा। बहुत बातचीत के बाद ब्रिटिश सरकार रक्षा-विभाग के कुछ प्रवन्धों का साधारण उत्तरदायित्व भारतीय सरकार के हाथ में सौंपने को तैयार हो गयी थी, पर वे किसी हालत में भी हिन्दुस्तान की रक्षा का उत्तरदायित्व भारतीय सरकार को हस्तांतरित करने को तैयार नहीं थी। अतः क्रिप्स मिशन द्वारा भेजी गयी ब्रिटिश सरकार की दीर्घकालीन और अल्पकालीन योजनाओं को कांग्रेस ने स्वीकार करने से इनकार कर दिया। मुस्लिम लीग आदि देश की दूसरी राजनीतिक संस्थाओं ने भी किसी न किसी कारण इन योजनाओं को अस्वीकार कर दिया।

गतिरोध

क्रिप्स मिशन की विफलता ने देश की राजनीति में एक गतिरोध पैदा कर दिया। इसे दूर करने के लिये श्री सी० राजगोपालाचारी का सुझाव था कि मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग को स्वीकार कर लिया जाय और प्रान्तों में पुनः कांग्रेस मन्त्रिमण्डल गठित किये जायें। मद्रास

के कांग्रेस विधायक दल ने श्री राजगोपालाचारी के सुझावों को स्वीकार किया, पर कांग्रेस की वर्किंग कमेटी इन सुझावों को मानने को तैयार नहीं थी। गान्धीजी तो संघर्ष के लिये व्यग्र थे। उनकी व्यग्रता दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जाती थी। उनका विश्वास था कि इस देश में ब्रिटेन के बने रहने से जापानियों को हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने का प्रोत्साहन मिलता है और 'यदि अंग्रेज वस्तुतः तत्काल और व्यवस्थित रूप से इस देश को छोड़ दें तो उससे मित्र राष्ट्रों का लक्ष्य एकदम पूर्ण नैतिक आधार पर प्रतिष्ठित हो जायगा'। गान्धीजी की धारणा थी कि अंग्रेजों के हट जाने पर कांग्रेस, लीग और देश के सभी दल यह अनुभव करने लगेंगे कि सब का भला आपस में मिलकर एक होने में ही है।

भारत छोड़ो प्रस्ताव

सर स्टेफर्ड क्रिप्स के खाली हाथ लौट जाने के कुछ दिन बाद २७ अप्रैल सन् १९४२ को प्रयाग में कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की बैठक हुई। इस बैठक में गान्धीजी की अनुपस्थिति में उनके 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पर विचार हुआ। इस प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया था कि ब्रिटेन के साम्राज्यवाद के कारण ही हिन्दुस्तान युद्ध में घसीटा गया है, भारत में विदेशी सैनिकों का अस्तित्व उसकी स्वतन्त्रता के लिये भयंकर खतरे के समान है, हिन्दुस्तान की किसी राज्य से दुश्मनी नहीं है और उसे अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये विदेशी सहायता की आवश्यकता नहीं है, यदि जापान हिन्दुस्तान पर आक्रमण करेगा तो उसे अहिंसात्मक असहयोग का सामना करना पड़ेगा।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने इस प्रस्ताव का डटकर विरोध किया। उन्होंने कहा कि युद्ध की मौजूदा परिस्थिति में अंग्रेजी फौजों तथा अंग्रेजी शासन व्यवस्था को हटाने की माँग सर्वथा अनुचित है। इस बात से मित्र राष्ट्र समझेंगे कि हिन्दुस्तान उनका शत्रु है और ब्रिटेन उनके साथ दुश्मन का सा व्यवहार करेगा, उसे खाक में मिला देगा। उन्होंने यह भी कहा कि गान्धीजी की बात मान लेने के बाद देश में एक ऐसी प्रशासकीय रिक्तता हो जायगी जिसे फौरन भरा नहीं जा सकता। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में हम फासिस्ट शक्तियों के मूक समर्थक बन जायेंगे।

पण्डित नेहरू के इन विचारों का श्री अच्युत पटवर्धन और आचार्य नरेन्द्रदेव ने, जो विशिष्ट आमन्त्रित की हैसियत से वर्किंग कमेटी में उपस्थित थे, जोरदार शब्दों में विरोध किया। श्री अच्युत पटवर्धन ने कहा कि ब्रिटिश सरकार ने खुदकुशी का रास्ता अपना लिया है। वह हिन्दुस्तान से जिस प्रकार का सहयोग चाहती है वह देश के लिये हित कर नहीं हो सकता, ब्रिटेन के साथ सहयोग तो जापान को निमन्त्रण देना होगा।

आचार्य नरेन्द्रदेव ने कहा कि ब्रिटेन और संयुक्तराष्ट्र अमरीका के लक्ष्य चीन और सोवियत रूस के लक्ष्यों से भिन्न हैं। ब्रिटेन की नीति के कारण हिन्दुस्तान इस युद्ध को जनयुद्ध नहीं समझ सकता। हमें ब्रिटेन को यह बात साफ तौर पर बता देना है कि हम जापान से भय-भीत नहीं हैं और हम चाहते हैं कि ब्रिटेन हिन्दुस्तान छोड़कर चला जाय।

सर्वश्री गोविन्दवल्लभ पन्त, भूलाभाई देसाई और आसफ अली ने पण्डित नेहरू का समर्थन किया, वर्किंग कमेटी के दूसरे सदस्यों ने राजेन्द्रबाबू द्वारा संशोधित गान्धीजी के प्रस्ताव के पक्ष में अपनी राय दी। पर कांग्रेस के अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद के अनुरोध पर वर्किंग कमेटी ने पण्डित नेहरू द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। पहली मई को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने भी नेहरू जी के प्रस्ताव को मंजूर कर लिया।

गान्धीजी नेहरूजी के प्रस्ताव और दृष्टिकोण से असन्तुष्ट थे। वे चीन की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में तथा दो एक और बातों में नेहरूजी की राय मानने को तैयार थे, पर वे अपनी माँग पर जल्द से जल्द स्वतन्त्रता संघर्ष शुरू कर देना जरूरी समझते थे। नेहरूजी ने भी आखिर में गान्धीजी द्वारा सञ्चालित जन-संघर्ष में शामिल होना ही उचित समझा। पर जुलाई के पहले सप्ताह में श्री भूलाभाई देसाई ने बीमारी के कारण कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया। श्री राजगोपालाचारी का विरोध तो बढ़ता ही चला गया और आखिर उन्होंने श्री वल्लभभाई पटेल और गान्धीजी की सलाह से कांग्रेस की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया।

६ जुलाई सन् १९४२ को कांग्रेस की वर्किंग कमेटी का अधिवेशन

वर्धा में शुरू हुआ। यह बैठक २४ जुलाई तक चलती रही। इसने अखिल भारतीत कांग्रेस कमेटी के विचार के लिये 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव स्वीकार किया। इस प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया कि संसार की सुरक्षा तथा हर प्रकार के आक्रमण, साम्राज्यवाद और अधिनायकत्व के विलीनीकरण के लिये भी हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता आवश्यक है। आजाद हिन्दुस्तान ही विदेशी शक्ति के आक्रमण के विरुद्ध प्रतिरोध की शक्ति को संगठित कर सकता है, ब्रिटेन के प्रति जो विद्वेष भावना विद्यमान है उसे सद्‌भावना में परिवर्तित कर सकता है। इस प्रस्ताव में कांग्रेस ने विश्वास दिलाया कि स्वतन्त्रता द्वारा हिन्दुस्तान यह नहीं चाहता कि ब्रिटेन व मित्रराष्ट्रों के युद्धकार्य में किसी भी प्रकार से बाधा पहुँचे या जापान को हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहन मिले। इसलिये कांग्रेस इस बात के लिये तैयार है कि स्वतन्त्र भारत में ब्रिटेन और मित्रराष्ट्रों की सेनाएँ कायम रह सके तथा जापान व उनके साथियों का सामना यहाँ रहते हुए कर सके। प्रस्ताव में विश्वास प्रगट किया गया कि यदि सद्‌भावना से ब्रिटिश सत्ता हटा ली गयी तो एक सुदृढ़ अस्थाई सरकार कायम हो जायगी जो आक्रमण के विरुद्ध और चीन की सहायता में संयुक्त राष्ट्रों से सहयोग करेगी। पर प्रस्ताव में यह भी साफ कर दिया गया कि यदि ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की माँग स्वीकार नहीं की, तो गान्धीजी के नेतृत्व में समस्त अहिंसात्मक शक्ति से सरकार का प्रतिरोध किया जायगा।

७-८ अगस्त सन् १९४२ को बम्बई में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ जिसमें वर्किंग कमेटी के 'भारत छोड़ो' संकल्प को पुष्ट किया गया और गांधीजी को अहिंसात्मक जन-संघर्ष के सञ्चालन का अधिकार सौंपा गया। कमेटी ने ब्रिटिश शासन के दुष्परिणामों की कड़ी आलोचना करते हुए पूर्ण आग्रह के साथ हिन्दुस्तान से ब्रिटिश सत्ता को हटा लेने की माँग को दोहराया और घोषित किया कि 'भारत की स्वतन्त्रता की घोषणा हो जाने पर एक अस्थायी सरकार स्थापित कर दी जायगी' जिसका पहला कर्तव्य 'अपनी समस्त सशस्त्र तथा अहिंसात्मक शक्तियों द्वारा मित्र राष्ट्रों के सहयोग से भारत की रक्षा करना, आक्रमण का विरोध करना और श्रमजीवियों की उन्नति और

कल्याण करना होगा'। इस प्रस्ताव में यह आशा भी प्रगट की गयी कि भारत की स्वतन्त्रता एशिया के अन्य पराधीन देशों के लिये एक प्रतीक का काम करेगी। कमेटी ने विश्वास दिलाया कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तान मित्रराष्ट्रों का मित्र बन जायगा और स्वातन्त्र्य संग्राम के प्रयत्न की परीक्षाओं और सुखदुःख में हाथ बटायेगा'। पर उसने यह भी स्पष्ट कर दिया कि इस समय जो देश जापान के नियन्त्रण में हैं उन्हें बाद को किसी औपनिवेशिक सत्ता के आधीन नहीं रखा जा सकेगा। कमेटी ने 'संसार की भावी शक्ति, सुरक्षा और व्यवस्थित उन्नति के लिये स्वतन्त्र राष्ट्रों के एक विश्वसंघ की आवश्यकता' बतायी और वायदा किया कि 'स्वतन्त्र भारत ऐसे विश्वसंघ में प्रसन्नतापूर्वक सम्मिलित होगा और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के सुलझाने में अन्य देशों के समान आधार पर सहयोग करेगा'। कमेटी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जब सत्ता मिलेगी तब उसपर समस्त भारतियों का समान अधिकार होगा'। अन्त में कमेटी ने 'ब्रिटेन और मित्रराष्ट्रों से अपील' करते हुए 'हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के अविच्छिन्न अधिकार का समर्थन करने के उद्देश्य से अहिंसात्मक प्रणाली से और अधिक से अधिक विस्तृत परिमाण पर एक विशाल संग्राम चालू करने का निर्णय किया तथा गान्धीजी से नेतृत्व करने और प्रस्तावित कार्रवाइयों में राष्ट्र का पथ प्रदर्शन करने का निवेदन' किया। कमेटी ने जनता से यह याद रखने की भी अपील की कि 'अहिंसा इस आन्दोलन का आधार हो' और उन्हें 'सामान्य निर्देशों की सीमा में रहते हुए' ही इस संघर्ष में भाग लेना चाहिए' तथा स्वयं अपना पथ प्रदर्शक बन कर इस कठिन मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए, जहां विश्राम का कोई स्थान नहीं है और जो अन्त में देश की स्वतन्त्रता और मुक्ति पर समाप्त होगा।

अहमदनगर में जेल यातना

इस प्रस्ताव के पारित हो जाने के बाद गान्धीजी वायसराय से एक बार फिर बातचीत करना चाहते थे। पर सरकार ने ९ अगस्त को प्रातः काल ही गान्धीजी तथा कांग्रेस के दूसरे बहुत से नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों के साथ साथ

नरेन्द्रदेवजी भी बम्बई में ९ अगस्त को प्रातःकाल गिरफ्तार करलिये गये और सबके साथ अहमदनगर के किले में नजरबन्द कर दिये गये जहां उन्हे मई सन् १९४५ तक जेल की यातनाएँ सहन करनी पड़ीं।

कहा जाता है कि ब्रिटिश सरकार इन सब नेताओं को पूर्वी अफ्रीका के किसी उपनिवेश में भेज देना चाहती थी, पर वायसराय की एक्जीक्यूटिवकौंसिल के हिन्दुस्तानी सदस्य इसके लिये राजी नहीं थे। इसलिये नेताओं को बाहर नहीं भेजा गया। पर इस समय ब्रिटिश सरकार इतनी सशंक और सतर्क थी कि ये नेता कहां रखे गये इसकी सूचना भी बहुत अर्से तक वायसराय की एक्जीक्यूटिव कौंसिल के बहुत से सदस्यों तक को नहीं दी गयी। अहमदनगर के किले की उन खिड़कियों को, जो सड़क पर खुलती थीं, ईंटों से बन्द करवा दिया गया। लगभग पन्द्रह दिन तक कोई समाचारपत्र उन्हें पढ़ने को नहीं दिया गया। जिस मारवाड़ी को खाना पकाने के लिये नियुक्त किया गया उसे बहुत दिनों तक बाहर नहीं जाने दिया गया। जब वह बहुत रोयाधोया तब बड़ी मुश्किल से नेताओं के कहने पर उस बिचारे को छुट्टी मिली।

इस बार भी नरेन्द्रदेव जी को बीमारी के कारण जेल में बहुत कष्ट सहन करना पड़ा। पहले एक वर्ष तक तो हर तीसरे सप्ताह उन्हें दमे का दौरा हो जाता था जिसके कारण कमजोरी बहुत बढ़ गयी थी और दशा काफी चिन्तनीय हो गयी थी। बाद को श्री जवाहरलाल नेहरू के मशवरे से उन्हों ने 'हेली बोराल' लेना शुरू किया। इससे दौरे पड़ना कुछ बन्द हुए और कमजोरी कुछ दूर हुई। जब नरेन्द्रदेव जी जरा ठीक हुए तब उन्हों ने 'अभिधर्म कोश' का अनुवाद करना शुरू कर दिया। जेल में नेहरू जी के पास बहुत सी किताबें आती थीं। आचार्य नरेन्द्रदेव ने भी इनमें से बहुत सी किताबों को पढ़ा। नेहरू जी जेल में 'डिस्कवरी आफ इंडिया' (हिन्दुस्तान की खोज) पुस्तक लिख रहे थे। इस पुस्तक के जिन अध्यायों का सम्बन्ध प्राचीन भारतीय दर्शन और संस्कृति से था उनके लिखने में नरेन्द्रदेवजी का काफी योग था।

नरेन्द्रदेवजी ने अपने एक अप्रकाशित लेख में लिखा है कि जेल में एक काफी क्लब था। इसमें बहुधा किसी न किसी विषय पर बहस होती थी, कभी कभी क़िस्से भी सुनाये जाते थे। डाक्टर सैयद महमूद

दिलचस्प किस्से सुनाते थे। बहस में कभी कभी झड़प भी हो जाती थी। जेल में खास खास दिन और त्यौहार भी मनाये जाते थे। उस दिन खाने का कमरा सजाया जाता था, जिनमें नेहरू जी खास दिलचस्पी लेते थे। वे फूल पत्तियों को लगा कर जेल के आँगन को काफी सुन्दर बना देते थे।

डाक्टर सैयद महमूद ने बताया कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू नरेन्द्रदेवजी का बहुत ध्यान रखते थे। जब नरेन्द्रदेवजी बीमारी के कारण खाना खाने को रसोई घर में नहीं जा पाते थे, तब नेहरू जी स्वयं उनके लिये उनके कमरे में खाना ले जाते थे। नेहरू जी अकसर नरेन्द्रदेवजी के पास जाकर उनसे बातें करते थे। डाक्टर सैयद महमूद भी नरेन्द्रदेवजी के कमरे में उनके साथ घंटों बिताते थे। डाक्टर साहब दिलचस्प किस्से सुनाते और नरेन्द्रदेव जी बादशाह बहादुर शाह जफर की गजलें सुनाते जो उन्होंने सन् १८५७ के विप्लव के बाद मांडले जेल में लिखी थी और जिनमें जलावतनी की दर्दनाक हालत का बहुत सन्ताप के साथ नक्शा खींचा गया था।

बादशाह बहादुरशाह 'जफर' की जिन कविताओं को आचार्य नरेन्द्रदेव सुनाते थे, उनमें निम्नलिखित नज्म खास थी —

लगता नहीं है जी मेरा उजड़े दयार में।
किसकी बनी है आलमे नापायेदार में॥
कह दो इन हसरतों से कहीं और जा बसें।
इतनी जगह कहां है दिले दागदार में॥
एक शाखे गुल पे बैठ के बुलबुल है शादमां।
कांटे बिछा दिये हैं दिले लालाजार में॥
उम्रे दराज माँग कर लाया था चार दिन।
दो आरजू में कट गये दो इन्तिजार में॥
है कितना बदनसीब 'ज़फर' दफ्न के लिये।
दो गज जमीन भी मिल न सकी कूचे यार में॥

एक बार अहमदनगर के किले में ही श्री शंकरराव देव ने नरेन्द्रदेव जी से कहा कि बुद्ध-दर्शन के सम्बन्ध की सामग्री बहुत सी पुस्तकों में बिखरी हुई है। कोई ऐसी पुस्तक नहीं कि जिसके पढ़ने से बौद्ध दर्शन की विभिन्न शाखाओं प्रशाखाओं का ज्ञान एक साथ हो जाय

आचार्य नरेन्द्रदेव ने अभिधर्म कोश का अनुवाद समाप्त करने के बाद बौद्धदर्शन पर एक ऐसी पुस्तक लिखने का वायदा किया।

संघर्ष की प्रगति

सन् १९४२ का 'भारत छोड़ो' संघर्ष आजादी के दूसरे संघर्षों से अधिक व्यापक और भीषण था। सरकार तो कांग्रेस के सभी नेताओं और प्रमुख कार्यकर्ताओं को जल्दी से गिरफ्तार करके आन्दोलन को तीन चार दिन के अन्दर ही समाप्त कर देना चाहती थी। पर नेताओं की गिरफ्तारी ने जनता के रोष को शान्त करने की बजाय प्रज्वलित कर दिया। जनता के विद्रोह ने भयंकर भूमिगत संघर्ष का रूप धारण कर लिया। जान और माल के मौलिक भेद को ध्यान में रख कर मानव जीवन के प्रति अहिंसा व्रत का पालन करते हुए तोड़फोड़ के जरिये ब्रिटिश साम्राज्यशाही के राजतन्त्र को ठप करना तथा उसके युद्ध-सम्बन्धी प्रयत्नों में बाधा पहुँचाना ही इस भूमिगत आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य था। यह आन्दोलन देशव्यापी था। पर मद्रास, बिहार, संयुक्तप्रान्त, बंगाल में इसका सबसे अधिक जोर था। सरकार के एक वक्तव्य के अनुसार इस आन्दोलन में जनता ने लगभग २० स्टेशनों को क्षति पहुँचायी, ५० डाकखाने बिल्कुल जला डाले, लगभग २०० डाकखानों को भारी नुकसान पहुँचाया, ३५०० स्थानों पर तार और टेलीफोन की लाइनें काट दीं, तथा ७० पुलिस थाने और ८५ अन्य सरकारी इमारतें जला दीं, अनेक स्थानों पर रेल की लाइनें उखाड़ दीं। अवध-तिरहुत रेलवे को तो जिसके जरिये युद्ध की सामग्री आसाम की सीमा पर पहुँचायी जाती थी विशेष तौर पर जनता के रोष से बहुत क्षति उठानी पड़ी। बलिया और सितारा जिलों में तो जनता ने कुछ समय सरकार के शासन को खत्म कर अपना स्वतन्त्र शासन भी स्थापित कर लिया। इस विद्रोह में सभी वर्गों के लोग शामिल थे। टाटा के लोहे के कारखानों में जहाँ युद्ध के लिये सामान तैयार किया जाने लगा था १५ दिन तक हड़ताल रही। अहमदाबाद के कारखानों के मजदूरों ने भी कुछ दिन तक हड़ताल की। मजदूरों से कहीं अधिक किसानों ने काम किया। जहाँ पिछले सविनय अवज्ञा आन्दोलन में कार्यकर्ताओं की प्रेरणा पर ही किसानों ने हिस्सा लिया था, वहाँ इस

संघर्ष में किसानों ने बहुत से स्थानों पर स्वयं ही बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया। विद्यार्थियों ने तो सबसे आगे बढ़ कर काम किया। उनके विद्रोह से परेशान होकर बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी आदि कई शिक्षा संस्थाओं पर तो सरकार ने फौज के जरिये कब्जा कर लिया। इस देशव्यापी विद्रोह को दबाने के लिये सरकार ने अपनी पाशविक शक्ति का निर्दयता से प्रयोग किया। ६० बार फौज बुलायी, ५३८ बार गोली चलायी तथा पटना, भागलपुर, नदिया, मुँगेर, तालचोरा और तमलुक में ६ बार हवाई जहाजों से बम बरसाये और अधिकांश जिलों में पुलिस द्वारा जनता को आतंकित किया। कांग्रेस के बहुत से दफ्तरों में आग लगा दी गयी। जगह-जगह पर नवयुवकों को बेतों से बेरहमी के साथ पीटा गया, स्त्रियों को अपमानित किया गया और बहुत से स्थानों पर सामूहिक जुर्माना वसूल किया गया। सरकार ने अपनी एक रिपोर्ट में स्वीकार किया कि उनकी गोली से ९४० आदमी मरे और १६३० घायल हुए तथा उसने इस आन्दोलन के सिलसिले में ६०२२९ व्यक्तियों को गिरफ्तार किया।

आचार्य नरेन्द्रदेव इस आन्दोलन को भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का सबसे बड़ा जन-संग्राम तथा 'स्वतः-प्रसूत जनक्रान्ति' मानते थे। उनके विचार में स्वतन्त्रता के लिये 'जितने भी मानवोचित और प्रभावशाली उपाय हैं उन सबका अवलम्बन किया जा सकता है। उपायों के औचित्य का विचार करते समय उनकी नैतिकता का भी विचार करना होता है, किन्तु नैतिकता का मापदण्ड ऐसा नहीं होना चाहिए जिसके अनुसार काम करना साधारण जनों के लिए असम्भव हो'। आचार्य जी कि धारणा थी कि 'यदि यह आन्दोलन न होता तो भारत का राजनीतिक जीवन बिल्कुल शिथिल पड़ जाता और हम राजनीतिक दौड़ में पीछे पड़ जाते। इस आन्दोलन द्वारा भारतवर्ष एशिया की स्वतन्त्रता का प्रतीक बन गया और भारत का प्रश्न संसार के मानचित्र पर आ गया'।

सोशलिस्टों का योगदान

९ अगस्त को नेताओं की गिरफ्तारी के बाद बम्बई में जो 'केन्द्रीय सञ्चालन मण्डल' गठित हुआ उसके लगभग आधे सदस्य

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के प्रमुख नेता और कार्यकर्ता थे। उनमें श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय और सर्वश्री अच्युत पटवर्धन, राममनोहर लोहिया, पुरुषोत्तम त्रिकमदास तथा रामनन्दन मिश्र विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इस मण्डल के अधिकांश सदस्य आगे चलकर सरकार के कर्मचारियों द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये, पर श्री अच्युत पटवर्धन, श्रीमती अरुणा आसिफ अली अन्त तक गिरफ्तार नहीं हो पाये। इस सञ्चालन मण्डल के सोशलिस्ट सदस्यों के अतिरिक्त कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के दूसरे कार्यकर्ताओं ने भी इस संघर्ष में डटकर काम किया और स्वतन्त्रता के निमित्त नाना प्रकार की यातनाएँ सहीं तथा अपने शौर्य के लिये देश में प्रतिष्ठा प्राप्त की।

इस आन्दोलन के जमाने में ही सोशलिस्ट नेता श्री जयप्रकाश नारायण सर्वश्री रामनन्दन मिश्र, सूरज नारायण सिंह, योगेन्द्र शुक्ल, गुलाली लाल और सालिकराम सिंह के साथ सन् १९४२ को दिवाली की रात को हजारी बाग जेल की दीवारों को लांघ कर बाहर निकले। श्री जयप्रकाश नारायण और श्री सूरज नारायण सिंह आदि ने सशस्त्र क्रान्ति के लिये आजाद दस्ते का संगठन शुरू किया। श्री जयप्रकाश नारायण ने ग्वालियर, महाराष्ट्र आदि स्थानों में इसी उद्देश्य से संगठित दूसरे दस्तों से सम्पर्क कायम किया। इस प्रयास में जयप्रकाशजी काठमन्डु में पकड़ लिये गये। डाक्टर राममनोहर लोहिया और श्री ब्रजकिशोर शास्त्री भी, जो उनसे मिलने वहां गये थे, गिरफ्तार कर लिये गये। इस मौके पर श्री सूरजनारायण सिंह जी के नेतृत्व में आजाद दस्ते के लोगों ने बहुत साहस से काठमण्डु जेल पर धावा बोलकर उन सबको जेल से छुड़ाया।

श्री सूरजनारायण सिंह पुराने क्रान्तिकारी हैं। गान्धीजी के संघर्षों में शामिल होने से पहले उन्हें सशस्त्र क्रान्ति पर विश्वास था। जन-आन्दोलनों के सञ्चालन में वे काफी दक्ष हैं। उनकी क्रान्तिकारी भावना ही उन्हें सोशलिस्ट पार्टी में खींच कर लायी और इस भावना ने ही उन्हें सन् १९४२ के आन्दोलन में जेल की चहारदीवारियों को फांद कर सशस्त्र क्रान्ति करने को प्रेरित किया। वे बहुत ही साहसी और वीर हैं। कुछ दिन बाद जब वे पकड़ लिये गये तो उन्हें काफी यातनाएँ दी गयीं। जब जयप्रकाशजी को जो उस समय भी छुपे छुपे काम कर

रहे थे इसका समाचार मिला, तब उन्होंने पूरे विश्वास के साथ कहा कि सूरज बाबू के शरीर के टुकड़े टुकड़े भी कर दिये जायँ तब भी उनसे सरकार को कोई सूचना नहीं मिल सकती। जेल की चहारदीवारी को फाँदने वाले दूसरे सज्जन भी सूरजनारायणजी की तरह ही वीर, साहसी, राष्ट्रनिष्ठ और क्रान्तिकारी भावनाओं से अनुप्राणित थे। श्री योगेन्द्र शुक्लजी का तो कहना ही क्या था। वे तो क्रान्तिकारिता में सबसे आगे थे। वे उस समय काफी हृष्ट पुष्ट भी थे। उनके कन्धों पर चढ़ कर ही श्री जयप्रकाश नारायण आदि चहारदीवारी पर चढ़े थे।

कुछ दिन बाद सशस्त्र क्रान्ति की तैयारी में संलग्न जयप्रकाशजी भी पकड़े गये। इस समय उन्हें लाहौर के लालकिले में काफी यातनाएँ देकर उनसे उनकी फरारी के जमाने के हालचाल मालूम करने के प्रयत्न किये गये। पर उस साहसी वीर से सरकार को कोई समाचार नहीं मिल पाया।

इस संघर्ष के जमाने में जयप्रकाशजी के व्यक्तित्व और प्रतिष्ठा का बहुत उत्कर्ष हुआ। वे सही अर्थों में एक राष्ट्रीय नेता बन गये। नवयुवक तथा बूढ़े सभी उनकी क्षमता के प्रशंसक थे। जहां गान्धीजी ने सन् १९४७ में उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष बनाने की बात सोची, वहाँ नवयुवक उन पर लट्टू थे। सन् १९४६ में उस समय जब जयप्रकाश जी जेल में थे भागलपुर में बिहार के नवयुवकों का सम्मेलन हुआ। इस पुस्तक का लेखक संस्कृति पर भाषण देने के लिये निमन्त्रित किया गया। वह नवयुवकों के उत्साह के साथ साथ जयप्रकाशजी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा को देखकर चकित हो गया। जयप्रकाशजी वास्तव में नवयुवकों के हृदय सम्राट बन गये थे। उसके लगभग एक डेढ़ वर्ष पहले एक बार पूजनीय पण्डित मदनमोहन मालवीयजी ने राष्ट्रीय संघर्ष के कमजोर पड़ जाने पर दुःख की सांस लेते हुए इस पुस्तक के लेखक से पूछा 'मुकुटबिहारी अब क्या होगा'। उसने कहा 'आपका और गान्धीजी का त्याग और तप निरर्थक होने वाला नहीं है। देश को स्वराज्य मिलेगा ही। गान्धीजी के नेतृत्व में, उनके ढंग पर स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयत्न हो रहा है। अगर इस तरह काम नहीं हुआ, तो फिर किसी दूसरे नेतृत्व द्वारा स्वाराज्य की प्राप्ति के लिये प्रयत्न

किया जायगा'। यह सुनकर मालवीयजी ने कहा 'जयप्रकाश'। इस पुस्तक का लेखक जानता था कि मालवीयजी महाराज को जयप्रकाश की योग्यता और कर्तव्यपरायणता पर विश्वास था, पर उसे इस समय ही पता चला कि जयप्रकाशजी ने वयोवृद्ध नेता मालवीयजी को अपनी प्रतिभा से इतना आकृष्ट कर लिया है कि वे उन्हें एक नया नेतृत्व प्रदान करने के योग्य समझने लगे हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव तो जयप्रकाशजी को पण्डित जवाहरलाल नेहरू का समाजवादी विकल्प समझते थे। नेहरूजी से नरेन्द्रदेवजी के मधुर सम्बन्ध अन्त तक बने रहे। पर नेहरू सरकार और प्रधान मन्त्री नेहरू से वे बहुत निराश और असन्तुष्ट थे और उनकी यही कामना थी कि जयप्रकाशजी के नेतृत्व में देश में समाजवादी समाज का निर्माण हो।

आजाद हिंद फौज

जिस समय कांग्रेस के तत्त्वावधान में 'भारत छोड़ो' संघर्ष की योजना बनायी जा रही थी, उस समय जापान और दक्षिण-पूर्वीय एशिया में जापान की सहायता से आजाद हिन्द फौज को संगठित करने का प्रयत्न किया जा रहा था। दिसम्बर सन् १९४१ में ही हिन्दुस्तान के पुरानी क्रान्तिकारी नेता श्री रास बिहारी बोस के अनुरोध पर जापान की सरकार इस बात के लिये राजी हो गयी थी कि जापान निवासी भारतियों को शत्रु न मानकर मित्र समझा जाय और उन्हें भारत की स्वतन्त्रता के लिये संघर्ष करने का मौका दिया जाय। आगे चलकर उन्हीं की प्रेरणा से मलाया में कैद किये गये भारतीय सैनिकों में से कैप्टन सरदार मोहन सिंह आजाद हिन्द फौज का संगठन करने को तैयार हो गये। इस सम्बन्ध में मार्च सन् १९४२ में बैंकाक में भारत निवासियों का सम्मेलन हुआ। बैंकाक सम्मेलन में मोहन सिंह को आजाद हिन्द फौज का प्रधान सेनापति नियुक्त किया गया तथा श्री सुभाष चन्द्र बोस को जर्मनी से निमन्त्रित किया गया। अगस्त सन् १९४२ में इस फौज का एक दल हिन्दुस्तान के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिये बर्मा पहुँचा। इस समय दल का एक विश्वस्त व्यक्ति ब्रिटिश सरकार से जा मिला जिसके कारण जापानियों को सरदार मोहन सिंह के प्रति भी सन्देह होने लगा और उन्होंने आजाद हिन्द

फौज से इस्तीफा दे दिया। तदुपरान्त सन् १९४३ में श्रीसुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द फौज का फिर से संगठन शुरू किया गया। श्री सुभाष चन्द्र बोस की प्रेरणा से कैप्टन शाह नवाज़ खाँ, जनरल अनिल चटर्जी, जनरल कयानी आदि अफसर और बहुत से सिपाही आजाद हिन्द फौज में शामिल हो गये। २१ अक्तूबर सन् १९४३ को आजाद हिन्द का एक बड़ा सम्मेलन सिंगापुर में किया गया। इस सम्मेलन में आजाद हिन्द सरकार संगठित की गयी और इसकी ओर से २४ अक्तूबर को ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की गयी। जापान ने वायदा किया कि आजाद हिन्द फौज अपने सेनापतियों के अनुशासन में ही काम करेगी और यह फौज हिन्दुस्तान के जिस प्रदेश को ब्रिटिश साम्राज्यशाही से आजाद करायगी उस पर हिन्दुस्तान का राष्ट्रीय तिरंगा झंडा फहरायगा और उसका शासन मेजर जनरल अनिल चटर्जी के अधीन होगा। जापान की सहायता से आजाद हिन्द फौज मार्च सन् १९४४ को हिन्दुस्तान की सीमा तक पहुँच गयी, उसकी एक पल्टन ने आसाम की सीमा पर स्थित विशनपुर को जीत कर इम्फल पर चढ़ाई कर दी और दूसरी पल्टन ने कोहिमा पर कब्जा कर लिया तथा तीसरी पल्टन ने पूर्व की ओर से मणिपुर रियासत पर हमला कर दिया। इम्फल पर चार मास तक घेरा पड़ा रहा। पर कोई विशेष सफलता नहीं हुई और आजाद हिन्द फौज को वापस लौटना पड़ा। अन्ततोगत्वा जापान के पराजित हो जाने पर आजाद हिन्द फौज विघटित हो गयी, उसके बहुत से अफसर और सिपाही गिरफ्तार कर लिये गये।

विरोध

जिस समय इस तरह स्वतन्त्रता-संघर्ष चल रहा था उस समय श्री एम० एन० राय और उनके साथी तथा कम्युनिस्ट फासिस्टवाद के विरोध की दुहाई देते हुए तथा सोवियत रूस जैसी प्रगतिशील शक्ति के समर्थन की आवश्यकता बताते हुए भारत में जनसंघर्ष के विरोध में संलग्न थे। श्री एम० एन० राय ने नवम्बर सन् १९४२ में फासिस्ट विरोधी मजदूर कान्फ्रेन्स को बुलाकर उसके अधिवेशन में इण्डियन फेडरेशन ऑफ लेबर का संगठन किया तथा इस संस्था के जरीए

सरकार की सहायता से मजदूरों में फासिस्ट विरोधी प्रचार करते हुए मजदूरों को जनसंघर्ष से विमुख करने का प्रयत्न किया। कम्युनिस्टों ने भी श्री एम० एन० राय की तरह मजदूरों को जन संघर्ष से अलग रहने का मशवरा दिया। उन्होंने एक तरफ सन् १९४२ के आन्दोलन का डटकर विरोध किया और इसके विरोध में नाना प्रकार से सरकार की सहायता की और दूसरी तरफ श्री सुभाष चन्द्र बोस को फासिस्ट-वादी कह कर बदनाम किया। उन्होंने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग को मुस्लिम राष्ट्रों की स्वतन्त्रता की माँग घोषित करते हुए उसका समर्थन किया और इस प्रकार विघटन की प्रक्रिया का समर्थन किया। पाकिस्तान की माँग के सम्बन्ध में एक बार हिन्दू महासभा के प्रधान मन्त्री श्री महेश्वर दयाल सेठ ने अपने कतिपय मुसलमान मित्रों के माध्यम से मुस्लिम लीग के अध्यक्ष और प्रमुख नेता श्री मुहम्मद अली जिन्ना से बात चीत की, पर गतिरोध दूर नहीं हो सका। जो सुझाव श्री महेश्वर दयाल सेठ को अपने मुसलमान मित्रों से प्राप्त हुए, उनको आधार बनाकर आगे चलकर श्री राज्य गोपालाचारी ने जिन्ना साहब से बात की, पर कोई नतीजा नहीं निकला।

११. विभाजन और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति

महात्मा गान्धी

'भारत-छोड़ो' आन्दोलन के जमाने में, जबकि गांधी जी पूना में आगारवां महल में नजरबन्द थे, उन्हें अपने सेक्रेटरी श्री महादेव देसाई और अपनी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूर बा गान्धी के दुःखद निधन सहन करना पड़े। इस जमाने में गान्धीजी ने वायसराय को दो तीन पत्र भी लिखे। २३ सितम्बर सन् १९४२ के पत्र में गान्धीजी ने लिखा कि कांग्रेस की नीति अहिंसात्मक थी और उसे तोड़ फोड़ के लिये उत्तरदायी ठहराना अनुचित है। इस पत्र में उन्हों ने यह भी लिखा कि सरकार के लिये मुनासिब है कि वह कांग्रेसी नेताओं को छोड़ दे, दमन के कानून वापस लेले और शान्ति का मार्ग खोज निकाले। पर सरकार ने शान्ति का मार्ग अपनाने के बजाय दमन को जारी रखना ही उचित समझा। शान्ति का उपाय ढूंढने के लिये देश के कई नेताओं ने गान्धी जी से भेंट करने की कोशिश की। पर सरकार ने किसी को भी मुलाकात करने की इजाजत नहीं दी।

२० फरवरी सन् १९४३ को गान्धीजी ने आगारवां महल में ही २१ दिन का उपवास शुरू किया। उपवास के जमाने में जनता ने गान्धी जी की रिहाई की माँग की, पर सरकार ने इसकी उपेक्षा की। इस पर गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के तीन भारतीय सदस्यों ने, अर्थात् सर्व श्री एच० पी० मोदी, नील रंजन सरकार और माधव हरि अणे ने, अपने पद से त्याग पत्र दे दिये।

गान्धीजी का वायसराय से पत्रव्यवहार

आगारवां महल में गान्धी का स्वास्थ्य काफी बिगड़ गया। अप्रैल सन् १९४४ में उनकी बीमारी बहुत बढ़ गयी। बीमारी के कारण ७ मई को उन्हें रिहा कर दिया गया। कुछ स्वस्थ होने पर उन्हों ने १७ जून १९४४ को वायसराय को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने वायसराय से तथा कांग्रेस की कार्यसमिति के सदस्यों से मिलने की इच्छा प्रगट की। पर वायसराय ने उनसे मिलने से इनकार किया और कार्य समिति के

सदस्यों से भी उन्हें मिलने की आज्ञा नहीं दी। २९ जुलाई सन् १९४४ को गान्धीजी ने वायसराय को लिखा कि वह कांग्रेस को ऐसी युद्ध-कालीन राष्ट्रीय सरकार में भाग लेने का परामर्श देने को तैयार हैं जिसके आधीन समस्त असैनिक विभाग हों, बशर्ते कि ब्रिटिश सरकार भारतीय स्वतन्त्रता की घोषणा करे और केन्द्रीय राष्ट्रीय सरकार केन्द्रीय असेम्बली के प्रति उत्तरदायी हो। उन्हों ने लिखा कि युद्ध के जमाने में मौजूदा सैनिक प्रशासन जारी रह सकता है, किन्तु उसके परिणाम स्वरूप भारत पर नया वित्तीय भार नहीं पड़ना चाहिए। उन्हों ने इस पत्र में यह भी साफ कर दिया कि स्थिति के बदल जाने के कारण अगस्त सन् १९४२ का प्रस्तावित आन्दोलन शुरू नहीं किया जा सकता। इस पत्र के उत्तर में १४ अगस्त सन् १९४४ को वायसराय लार्ड वेवल ने गान्धी जी को लिखा कि उनके सुझाव के आधार पर कोई बातचीत नहीं हो सकती; हाँ, यदि हिन्दुओं, मुसलमानों और महत्त्वपूर्ण अल्पसंख्यकों के नेता मौजूदा संविधान के अन्तर्गत संक्रमणकालीन केन्द्रीय सरकार की स्थापना के सम्बन्ध में समझौता कर लें, तो''''बहुत कुछ प्रगति हो सकती है।'

इस उत्तर के बाद गान्धी जी ने वायसराय से पत्र व्यवहार समाप्त कर दिया, जनता को रचनात्मक कार्यों में जुट जाने का मशवरा दिया, श्री भूलभाई देसाई आदि कांग्रेसी सदस्यों को केन्द्रीय असेम्बली में काम शुरू करने की अनुमति दे दी और स्वयं साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने की कोशिश की।

जिन्ना साहब से समझौते की बातचीत

जुलाई सन् १९४४ को गान्धी जी की अनुमति से श्री सी० राज-गोपालाचारी ने मिस्टर मुहम्मद अली जिन्ना को एक पत्र लिखा जिसमें उन्होंने अप्रैल सन् १९४४ के पत्र का हवाला देते हुए जिन्ना साहब से अनुरोध किया कि उनकी योजना को मुस्लिमलीग की वर्किंग कमेटी के सामने विचारार्थ रख दिया जाय। उन्होंने यह भी इशारा किया कि गान्धी जी को यह योजना ठीक जँचती है। पर जिन्ना साहब इस बात पर दृढ़ रहे कि गान्धी जी के स्वयं लिखने पर ही योजना पर विचार हो सकता है। इस स्थिति में गान्धी जी ने जिन्ना साहब से मिलने का निश्चय किया। वे सितम्बर सन् १९४४ को जिन्ना साहब से कई बार

मिले। बातचीत तीन सप्ताह तक चलती रही। पर कोई समझौता नहीं हो सका। गान्धी जी भारतीय हिन्दुओं और मुसलमानों को दो भिन्न राष्ट्र मानने को तैयार नहीं थे। हाँ, वे जनमत के आधार पर हिन्दुस्तान को दो राज्यों में इस शर्त पर विभाजित करने को तैयार थे कि एक संयुक्त बोर्ड द्वारा सारे देश के संरक्षण तथा वैदेशिक नीति एवं यातायात का प्रबन्ध हो। जिन्ना साहब यह शर्त मानने को तैयार नहीं थे। वे दो राष्ट्रों के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान किये जाने की अपनी जिद पर अडिग थे। उनका अपना यह विचार था कि इस योजना के अन्तर्गत जो पाकिस्तान बन सकता है वह इतना 'विकृत और कीडा-खाया' होगा कि उससे मुस्लिम राष्ट्र का काम नहीं चल सकता।

निर्दलीय प्रयास

गान्धी-जिन्ना वार्ता के असफल हो जाने के बाद इस विवाद के सुलझाने के निमित्त अखिल भारतीय निर्दलीय कान्फ्रेन्स के तत्त्वावधान में सर तेजबहादुर सप्रू की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित हुई। गान्धी जी ने कमेटी का स्वागत किया, पर जिन्ना साहब तथा मुस्लिमलीग ने सहयोग देने से इनकार कर दिया। इस कमेटी के सामने जिन सज्जनों और संस्थाओं ने अपने वक्तव्य दिये उनमें दो चार को छोड़कर सब ने देश के विभाजन का विरोध किया। हिन्दुओं के साथ साथ ईसाइयों, पार्सियों और सिक्खों तथा दो एक मुसलमानों ने भी देश के बटवारे की बात को गलत बताया। सप्रू कमेटी की सिफारिश पर निर्दलीय कान्फ्रेन्स ने अप्रैल सन् १९४५ को देश के विभाजन का विरोध किया। उसने निर्णय किया कि संघीय व्यवस्था में केन्द्र के अधिकार सीमित हों, संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों तथा सांस्कृतिक स्वतन्त्रता की समुचित व्यवस्था हो और एक अल्पसंख्यक कमीशन द्वारा अल्पसंख्यकों के हितों की देखभाल का समुचित प्रबन्ध हो, केन्द्र की सरकार मिलीजुली सरकार हो, उसमें सब प्रमुख सामाजिक तत्त्वों का प्रतिनिधित्व हो, पर हिन्दुस्तान को दो पूर्ण प्रभुसत्ता-सम्पन्न राज्यों में विभाजित न किया जाय।

शिमला कान्फ्रेन्स

सप्रू कमेटी के कार्य के दौरान में ही मुस्लिम लीग के नेता श्री लियाकत अली खां तथा कांग्रेस के नेता श्री भूलाभाई देसाई ने राजनीतिक गतिरोध

को दूर करने के सम्बन्ध में बातचीत की। १ जनवरी सन् १९४५ को उन दोनों में अन्तःकालीन सरकार के सम्बन्ध में एक समझौता हुआ। इस समझौते में अन्तःकालीन केन्द्रीय सरकार में कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों के प्रतिनिधियों की संख्या बराबर रखी गयी, अल्पसंख्यकों विशेषतः सिक्खों और अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था भी की गयी एवं इस प्रकार की सरकार बन जाने पर कांग्रेस की वर्किंग कमेटी के सदस्यों को छोड़ने पर तुरन्त ध्यान देने का वायदा किया गया। इस समझौते द्वारा यह भी निश्चय हुआ कि इस सरकार की नियुक्ति और कार्य सञ्चालन मौजूदा भारतीय शासन-सम्बन्धी अधिनियमों के अन्तर्गत होगा; पर यदि मन्त्रिमण्डल किसी प्रस्ताव को केन्द्रीय लेजिसलेटिव असेम्बली द्वारा पारित कराने में असमर्थ रहेगा, तो वह गवर्नर जनरल के विशेष अधिकारों के प्रयोग द्वारा जबर्दस्ती कार्यान्वित नहीं किया जायगा। प्रधान सेनापति भी इस केन्द्रीय कार्यपालिका सदस्य होगा।

गान्धीजी ने इस समझौते का स्वागत किया, पर ब्रिटिश सरकार ने कई महीने तक इस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। पर जब मई सन् १९४५ में जर्मनी ने हार मान कर हथियार डाल दिये और ब्रिटिश सरकार के सामने जापान के विरुद्ध अपनी सामरिक शक्ति केन्द्रित करने का प्रश्न उपस्थित हुआ तब जापान के विरुद्ध भारतियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त करना जरूरी समझ ब्रिटिश सरकार की अनुमति से १४ जून सन् १९४५ को वायसराय लार्ड वेवल ने घोषित किया कि अन्त कालीन सरकार के निर्माण के सम्बन्ध में २५ जून को शिमला में सर्वदलीय कान्फ्रेन्स बुलायी जायगी। इस घोषणा में उन्होंने साफ कर दिया कि इस अन्तःकालीन सरकार के निर्माण का अन्तिम संविधान के निर्माण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा तथा संगठित कार्यपालिका वायसराय तथा प्रधान सेनापति के अतिरिक्त पूर्णरूपेण भारतीय होगी, एवं 'उसके सदस्यों का चुनाव राजनीतिक नेताओं के परामर्श से होगा, पर उनकी नियुक्ति सम्राट की अनुमति से होगी'। घोषणा में यह भी साफ कर दिया गया कि केन्द्रीय कार्यपालिका में मुसलमान और सवर्ण हिन्दू बराबर की संख्या में होंगे, वायसराय के विशेष अधिकार सुरक्षित रहेंगे तथा जापान के विरुद्ध युद्ध का सञ्चालन उसका एक प्रमुख काम होगा। २८ जून सन् १९४५ को कांग्रेस की राष्ट्रीय कार्यसमिति के

सब सदस्य तथा आचार्य नरेन्द्रदेव आदि कुछ दूसरे प्रमुख नेता रिहा कर दिये गये।

यह सब काम जिस तरह हुआ वह सरदार वल्लभ भाई पटेल और कुछ दूसरे कांग्रेसी नेताओं को पसन्द नहीं था। पर परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सरकार द्वारा आयोजित शिमला कान्फ्रेन्स में शरीक होना उचित ही समझा। कान्फ्रेन्स में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच में अन्तःकालीन सरकार के सम्बन्ध में कोई समझौता नहीं हो सका और १४ जुलाई को वायसराय ने सम्मेलन की विफलता घोषित कर दी। शिमला सम्मेलन के दौरान में ही ४ जुलाई सन् १९४५ को ब्रिटेन में पार्लियामेंट के चुनाव हुए। इस चुनाव में कंजरवेटिव पार्टी की हार हुई और ८ जुलाई को लेबर पार्टी की सरकार बन गयी। शिमला सम्मेलन के बाद वायसराय ने घोषणा की कि सन् १९४६ के जाड़ों में प्रान्तीय और केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभाओं के चुनाव होंगे। इसके बाद १९ सितम्बर सन् १९४५ को वायसराय ने ब्रिटिश सरकार की ओर से घोषित किया कि 'सरकार का इरादा है कि यथा शीघ्र एक संविधान-निर्मात्री सभा का आयोजन किया जाय' तथा चुनाव समाप्त होने के बाद प्रान्तीय विधान-सभाओं के सदस्यों से इस सम्बन्ध में बातचीत की जाय कि सन् १९४२ की क्रिप्स योजना उन्हें मान्य है अथवा वे किसी दूसरी योजना को उचित समझते हैं। संविधान-निर्मात्री सभा में भाग लेने के सम्बन्ध में भारतीय रियासतों के प्रतिनिधियों से भी बात की जायगी। उन्होंने यह भी घोषित किया कि 'सम्राट की सरकार उस सन्धि के विषय पर भी विचार कर रही है जिसका ब्रिटेन और भारत के बीच में होना आवश्यक होगा'।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को यह घोषणा पसन्द नहीं थी। उसके विचार में यह 'अनिश्चित, अपर्याप्त और असन्तोषप्रद थी'। पर कांग्रेस कमेटी ने चुनाव में हिस्सा लेने का निश्चय किया। उसने अपनी चुनाव-घोषणा में पूर्ण स्वराज्य की माँग की तथा बहुत से दूसरे आर्थिक सुधारों के साथ साथ जमींदारी उन्मूलन पर जोर दिया।

प्रान्तीय विधानसभा और मन्त्रिमण्डल

चुनावों में कांग्रेस को काफी सफलता प्राप्त हुई। बंगाल, पंजा

और सिन्ध को छोड़कर दूसरे सभी प्रान्तों में कांग्रेस पार्टी बहुमत से विजयी हुई। पर उत्तर-पश्चिम सीमा प्रान्त को छोड़कर दूसरे सब प्रान्तों में मुस्लिम लीग को, जिसने पाकिस्तान की माँग पर चुनाव लड़ा था, मुसलमानों का समर्थन प्राप्त हुआ। कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों ने प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों को बनाने का निश्चय किया। इस तरह तीन प्रान्तों में मुस्लिम लीग का और दूसरे प्रान्तों में कांग्रेस की सरकारें बन गयीं।

इस चुनाव में आचार्य नरेन्द्रदेव ने भी भाग लिया। वे अपने प्रान्त की पार्लियामेन्टरी कमेटी के सदस्य थे और इस प्रान्त के कांग्रेसी उम्मीदवारों के चुनाव में उनका काफी प्रभावशाली योग था। कांग्रेस की ओर से जो उम्मीदवार उनके प्रान्त की विधान सभा में चुने गये उनमें से अधिकांश उनकी गुट के ही थे। वे स्वयं भी फैजाबाद-सीतापुर-बहराइच नगर क्षेत्र से भारी बहुमत से चुने गये। उनसे मन्त्रिपद स्वीकार करने के लिये अनुरोध किया गया। पर वैधानिकता की ओर कांग्रेस का झुकाव उन्हें ठीक नहीं लगता था। उन्हों ने मन्त्रिपद स्वीकार करने से इनकार कर दिया। उनकी धारणा थी कि देश की आजादी के लिये अभी एक क्रान्तिकारी संघर्ष लड़ना बाकी है। अत: वे चाहते थे कि कार्यकर्ता क्रान्ति के स्वरूप का अध्ययन करें, क्रान्तिकारी रचनात्मक संगठन कार्य में जुट जायँ, क्रान्ति को सञ्चालन करने की कला की जानकारी हासिल करें, तथा इस पर विचार करें कि सत्ता हाथ में आने पर उसे कैसे बनाये रखा जा सकता है। उनकी राय में जब तक देश में विदेशी शासन कायम है तब तक राजनीतिक दृष्टि से उसी रचनात्मक कार्य को महत्त्व दिया जा सकता है कि जो प्रत्यक्ष रूप से विदेशी सत्ता को हटाने और अपनी सत्ता को कायम करने में सहायक होता हो।

वक्तव्य

इस चुनाव के दौरान में ही फरवरी सन् १९४८ को नरेन्द्रदेव जी ने पार्टी के मुख्य साप्ताहिक 'जनता' में अपना लेख प्रकाशित कराया उसमें उन्होंने लिखा कि सन् १९४२-४३ के आन्दोलन के फलस्वरूप देश में राजनीतिक चेतना तथा कांग्रेस के प्रभाव की काफी अभिवृद्धि हुई है। विद्यार्थी आन्दोलन जोरों पर है, बहुत से अप्रभावित सामाजिक तत्त्वों में कांग्रेस के प्रभाव की वृद्धि हुई है तथा फौज भी धीरे धीरे स्वतन्त्रता के प्रति अपने उत्तरदायित्व का अनुभव कर रही है। यु-

के कारण ब्रिटिश साम्राज्यशाही की शक्ति भी काफी घट गयी है और उसे बहुत सी कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। पर किसी देश ने कभी दूसरे देश को अपनी खुशी से स्वतन्त्र नहीं किया है, फिर ब्रिटेन से इसकी आशा कैसे की जा सकती है। स्वतन्त्रता के लिये तो क्रान्तिकारी संघर्ष करना ही होगा। अतः 'कांग्रेस को क्रान्ति के सुदृढ़ अनुशासित अस्त्र में बदलना होगा', विधान सभाओं का क्रान्तिकारी प्रयोग करना होगा और गांवों में नव जीवन-आन्दोलन शुरू करना होगा, ग्रामीण जनता का सांस्कृतिक पिछड़ापन दूर करके उन्हें नये उद्‌देश्यों और आशाओं से अनुप्राणित करना होगा, उनमें सहकारी और जनतान्त्रिक आदतें विकसित करनी होंगी। आचार्य नरेन्द्रदेव का कहना था कि यह ठीक है कि क्रान्ति जब चाहो नहीं हो सकती, पर यह भी सच है कि आन्दोलन के नेतृत्व तथा सञ्चालन की क्षमता रखने वाले प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं के बिना क्रान्ति अपने ध्येय में सफल भी नहीं हो सकती। अतः कांग्रेस को कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण की ओर ध्यान देने की जरूरत है। उन्होंने यह भी लिखा कि 'जो संस्था शक्ति के लिये संघर्ष करती है वह अपने रूप को राज्य की व्यवस्था पर भी लादती है', अतः देश में राजनीतिक जनतन्त्र को प्रतिष्ठित करने के लिये कांग्रेस का जनतान्त्रिक स्वरूप बनाये रखना जरूरी है और इसके लिये आवश्यक है कि कांग्रेस में अधिक से अधिक संख्या में किसनों और मजदूरों को शामिल किया जाय, उनकी माँगों को कांग्रेस की घोषणाओं तथा नीति और कार्यक्रम में शामिल किया जाय और कांग्रेस के अन्दर उन समूहों को बनाये रखा जाय जिनसे उसका भावात्मक साम्य है और जो उनके निर्णयों को मानने को तैयार हैं? आचार्य नरेन्द्रदेव की धारणा थी कि मध्यमवर्ग से इस बात की आशा करना कोरा भ्रम ही है कि वह स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद स्वतः राजनीतिक शक्ति को श्रमिक जनता के हाथ में दे देगा। ऐसा न कभी इतिहास में हुआ है और न कभी हिन्दुस्तान में हो सकेगा। जनता को स्वयं अपने प्रयत्न से शक्ति हासिल करनी होगी। अतः जनशक्ति को संगठित और सबल बनाना परम आवश्यक है। इस उद्‌देश्य से किसानों और मजदूरों के संगठनों को सुदृढ़ बनाना होगा। कांग्रेस का कर्तव्य है कि वह इन वर्गों संगठनों का राजनीतिक प्रशिक्षण करे

और स्वयं उनके आर्थिक कार्यक्रमों को अपने कार्यक्रम में शामिल करें। इस लेख में सिद्धान्त और व्यवहार के पारस्परिक सम्बन्ध पर रोशनी डालते हुए नरेन्द्रदेव जी ने कार्यकर्ताओं को अनुभव से शिक्षा प्राप्त करने की सलाह दी और कहा कि जहाँ सिद्धान्त विहीन व्यवहार अन्धा और अस्तव्यस्त होता है, वहां व्यवहार विहीन सिद्धान्त विचार की महामारी पैदा करता है। विचारों की सफाई व्यवहार से ही होती है और सजीव वास्तविकता से अप्रभावित विचार तो गतिहीन हो जाते हैं।

मजदूर सरकार की नीति

प्रान्तीय चुनाव होने से पहले ही देश और विदेश की घटनाओं ने इस देश को आजाद करने की ओर ब्रिटिश सरकार को प्रेरित किया। मजदूर सरकार ने पुरानी साम्राज्यशाही नीति में मौलिक परिवर्तन सब दृष्टियों से उचित समझा। युद्ध में ब्रिटेन की जनशक्ति और आर्थिक शक्ति इतनी क्षीण हो गयी थी कि उसके लिये अपने आर्थिक जीवन के पुनः निर्माण के साथ साथ विशाल साम्राज्य पर अपनी सत्ता कायम रखना और पराधीन देशों के विद्रोहों का डट कर मुकाबला करना और वहां के आंतरिक संघर्षों और समस्याओं का समाधान करना बहुत कठिन था। युद्ध ने साम्राज्यशाही की प्रतिष्ठा को चकनाचूर कर दिया था, उसकी जड़े खोखली कर दी थीं, पराधीन देशों में राजनीतिक चेतना और स्वाधीनता की भावना को व्यापक और प्रबल बना दिया था। ऐसी हालत में स्वतंत्रता की भावना और संघर्षों को कुचलने की कोशिश में जनता को बिल्कुल विमुख कर देने की बजाय उनकी आन्तरिक स्वतंत्रता को मान्यता देते हुए उनसे आर्थिक और राजनीतिक सम्बन्धों को बनाये रखने का प्रयत्न ही साम्राज्यशाही शक्तियों के लिये श्रेयस्कर था। बर्मा में देशव्यापी विद्रोह ने और हिन्दुस्तान में बिहार की पुलिस की हड़ताल ने, नेवल रेटिंग की बगावत ने और इंडियन नेशनल आर्मी के मुकदमें में हिन्दुस्तानी फौज की दिलचस्पी ने इस नीति के औचित्य और अनिवार्यता को पूरी तौर पर सिद्ध कर दिया था। अतः अपने समाजवादी अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए ब्रिटेन की मजदूर पार्टी की सरकार ने बर्मा, लंका और हिन्दुस्तान में इस नीति का पालन करना निश्चय किया। राजनीतिक सत्ता हाथ में लेने के

कुछ दिन बाद ही जनवरी सन् १९४६ को उसने ब्रिटिश पार्लियामेंट के कतिपय सदस्यों का एक शिष्ट मण्डल हिन्दुस्तान भेजा और उसके कुछ दिन बाद मार्च सन् १९४६ को भारत मंत्री लार्ड पैथिक लारेंस की अध्यक्षता में भारत की राजनीतिक समस्या हल करने के लिये एक केबिनेट मिशन भेजा।

दक्षिण एशिया के कतिपय देशों के सम्बन्ध में ब्रिटिश सरकार की नई नीति का सही मूल्यांकन करना कठिन था। इसलिये पुरानी दुरंगी नीति की सम्भावना के प्रति संकेत करते हुए आचार्य नरेन्द्रदेव ने केबिनेट मिशन से सद्भावना के साथ बातचीत करने की जरूरत को तसलीम किया, पर उन्होंने इस बात चीत में देश का एका और जनता के अधिकार जैसे बुनयादी सवालों पर दृढ़ रहने की जरूरत पर जोर दिया। उन्हें इस बात का आश्चर्य था कि ब्रिटिश मजदूर दल के प्रधान मन्त्री एटली ने नरेशों की सत्ता और सन्धि के अधिकारों को तो तसलीम किया, पर रजवाड़ों की जनता के अधिकारों की ओर कोई भी ध्यान नहीं दिया। आचार्यजी का विचार था कि जनतन्त्र को प्रतिष्ठित करने के लिये नरेशों की श्रेणी और जनतन्त्र-विरोधी शक्तियों को खत्म करना ही होगा, उन्होंने इस बात की मांग की कि रजवाड़ों में फौरन जनतान्त्रिक व्यवस्था स्थापित की जाय और इन रजवाड़ों के सम्बन्ध में पुराने आधिपत्य-अधिकार भारतीय जनतान्त्रिक राज्य को हस्तान्तरित किये जायं। उन्हें संदेह था कि प्रधान मन्त्री एटली स्वाधीनता के अधिकारों को तसलीम करते हुए भी मित्र-सन्धि के द्वारा ब्रिटेन के हाथ में वास्तविक नियंत्रण बनाये रखना चाहते हैं। आचार्य जी का कहना था कि जैसे 'बिच्छू का डंक उसकी दुम में होता है और अधिनियम का डंक उसके नियमों में होता है, उसी तरह ब्रिटेन के स्वाधीनता उपहार का डंक उससे नत्थी मित्र-सन्धि में होता है, जिसके जरिये ब्रिटेन वास्तविक नियंत्रण शक्ति अपने हाथ में सुरक्षित रखने का प्रयत्न करता है'। आचार्य जी की माँग थी कि ब्रिटिश फौजें भारत भूमि से उठा ली जायं और ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सदस्य बनने को भारत राजी न हो। उनकी धारणा थी कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल की सदस्यता देश के हित में नहीं हो सकती, क्योंकि इस मण्डल के दूसरे सदस्य संस्कृति और नस्ल में हिन्दुस्तान से भिन्न हैं, दक्षिण

अफ्रीका जो इस मण्डल का सदस्य है अपने देश में हिन्दुस्तानियों के साथ अर्ध-दासों का सा व्यवहार करता है। उनकी धारणा थी कि ब्रिटेन की आर्थिक व्यवस्था और वैदेशिक नीति से भी हिन्दुस्तान को सम्बन्धित करना उचित नहीं है।

केबिनेट मिशन

केबिनेट मिशन विभिन्न दलों और हितों की राय से ही भावी राजनीतिक व्यवस्था निश्चित करने की योजना तैयार करना चाहता था। पर कांग्रेस, मुस्लिम लीग आदि दलों में कोई समझौता न होने के कारण केबिनेट मिशन ने स्वयं ब्रिटिश सरकार की तरफ से दीर्घकालीन और अल्पकालीन योजना घोषित की। जहां दीर्घकालीन योजना में संविधान के कतिपय सिद्धान्त और संविधान सभा की रूप रेखा निश्चित की गयी थी, वहां अल्प कालीन योजना में मध्य कालीन सरकार की व्यवस्था थी। केबिनेट मिशन की योजनाएँ कांग्रेस को पसन्द नहीं थी, पर बहुत सोचने विचारने के बाद उसने इन दोनों योजनाओं को स्वीकार कर संविधान सभा और अन्तरिम सरकार में शरीक होना मंजूर कर लिया।

अल्पकालीन योजना में अन्तरिम सरकार की व्यवस्था की गयी थी और इसको दीर्घ कालीन योजना से इस तरह सम्बन्धित कर दिया गया था कि उसे स्वीकार करने पर ही कोई दल अल्प कालीन योजना के अन्दर संयुक्त अन्तरिम सरकार में शामिल हो सकता था। दीर्घ-कालीन योजना में हिन्दुस्तान के नये संविधान को तैयार करने की व्यवस्था की गयी थी। राष्ट्र के आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए विभिन्न प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं से चुने प्रतिनिधियों द्वारा निर्मित संविधान सभा को हिन्दुस्तान का नया संविधान बनाने का अधिकार दिया गया था। देशी नरेश अपनी रजामन्दी से अपनी रियासतों को बृहद् भारतीय संघ में शामिल कर सकते थे और इस उद्देश्य से अन्तरिम सरकार की राय से अपने प्रतिनिधि विधान सभा में भेज सकते थे। यद्यपि स्वतन्त्रता और आत्मनिर्णय के सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया गया था, फिर भी संविधान सभा को संविधान की रूपरेखा तैयार करने की पूरी स्वतन्त्रता नहीं दी गयी थी। दीर्घकालीन योजना द्वारा निर्णित कुछ सिद्धान्तों के आधार पर नया संविधान

तैयार किया जा सकता था। इस योजना में देश को इस तरह तीन खण्डों में विभाजित किया गया था कि जहां बंगाल-आसाम के खण्ड में और पंजाब-सिंध-बिलोचिस्तान-सीमाप्रान्त के खण्ड में मुसलमान अधिक संख्या में थे, वहां तीसरे खण्ड में जिसमें बाकी सब प्रान्त थे हिन्दू बहु संख्या में थे। इस योजना में निश्चय किया गया था कि प्रत्येक खण्ड के लिये प्रान्तीय सरकारों के साथ साथ क्षेत्रीय सरकार की व्यवस्था की जाय और केन्द्रीय सरकार के अधिकार राष्ट्र के संरक्षण, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध तथा यातायात से सम्बन्धित विषयों तक सीमित रहें, बाकी सब अधिकार प्रान्तों और क्षेत्रीय संस्थाओं में विभाजित किये जायँ। हिन्दुस्तान और ब्रिटेन के भावी सम्बन्ध दोनों देशों की रजामन्दी से सन्धि-पत्र द्वारा निश्चित हों। इस तरह इस योजना में हिन्दुस्तान की राजनीतिक एकता को बनाये रखने की आवश्यकता को तथा आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए भी संविधान सभा के गठन की और उसके अधिकारों की ऐसी व्यवस्था की गयी थी कि केन्द्र की शक्ति बहुत ही सीमित रहे और संविधान सभा का जनता से परोक्ष सम्बन्ध ही बन पाये।

आचार्य नरेन्द्रदेव जी का विचार था कि बालिग मताधिकार के अनुसार जनता के वोट से ही संविधान सभा का संगठन होना चाहिए था, क्योंकि उस अवस्था में संविधान सभा से जनता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित होता, जनता सजग होती और संविधान सभा के कार्यों में दिलचस्पी लेती। वह यह भी कहते थे कि संविधान सभा को बिना किसी शर्त के पूर्ण स्वराज्य का संविधान बनाने का पूरा अधिकार होना चाहिए था, और अगर शर्त लगाना जरूरी समझा गया था तो संधिपत्र की शर्तों का स्पष्टीकरण भी होना चाहिए था, ताकि जनता समझ सकती कि ब्रिटिश सरकार सन्धि-पत्र के द्वारा हिन्दुस्तान पर अपना अधिकार बनाये रखना नहीं चाहती। रास्ते के अनेक खतरों की ओर संकेत करते हुए वे कहते थे कि जब तक आधिपत्य के प्रत्येक रूप का अन्त न हो, तब तक साम्राज्य विरोधी शक्तियों की तैयारी जारी रहना चाहिए।

नरेन्द्रदेव जी की धारणा थी कि कोई भी संविधान इस देश में सफल नहीं हो सकता जबतक कि वह सामान्य जन को ऊँचा उठाने का साधन न बने। जो आर्थिक व्यवस्था समसमाज कायम करना नहीं

चाहती वह जनतान्त्रिक व्यवस्था को तोड़ने का कारण बनेगी। इस प्रकार का योजनाबद्ध अर्थतन्त्र जनता के हित में नहीं हो सकता। प्रश्न है कि योजना कौन बनाता है और किसके हित में बनाई जाती है। इस तरह नरेन्द्रदेव जी चाहते थे कि समसमाज को प्रतिष्ठित करने वाला संविधान और आर्थिक योजना बनायी जाय। वे ही जनतन्त्र को पुष्ट कर सकते हैं। जनता के जीवन को ऊँचा उठा सकते हैं और देश की प्रगति में सहायक हो सकते हैं।

केबिनेट मिशन की योजना के अन्तर्गत ब्रिटिश सरकार से समझौते के जरिये सन् १९४६ में जो मध्यकालीन सरकार केन्द्र में बनी उसे नरेन्द्रदेव जी अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार मानने को तैयार नहीं थे। वे समझते थे कि उसके द्वारा कोई क्रान्तिकारी कार्य किया जाना सम्भव नहीं होगा। पर उसके बन जाने पर जनतन्त्र को सुदृढ़ करने के लिये वे उसे इस्तेमाल करना चाहते थे। उनके विचार में यह काम निरंकुश शासन तथा सामन्तशाही का अन्त करने से, जनता के हित के कानून बनाने से तथा जनतन्त्र की भूमिका तैयार करने से ही हो सकता है। इसलिये वे चाहते थे कि मध्यकालीन सरकार नागरिकता के अधिकारों की रक्षा करे, उनकी सीमा की वृद्धि करे, मज़दूरों के काम के घण्टे कम करे, उनकी मजदूरी बढ़ाये, उनके लिए अन्य सुविधाओं का आयोजन करे, ट्रेड यूनियन आन्दोलन को पुष्ट करे, उद्योग धंधों का जनता के हित में नियन्त्रण करे तथा यातायात के मार्ग तथा बिजली और कोयले के कामों को राष्ट्र की सम्पत्ति करार दे। उनके विचार में प्रान्तीय क्षेत्र में जमीन्दारी प्रथा का अन्त, सहयोग समितियों और ग्राम पंचायतों की स्थापना, स्थानीय स्वायत्त शासन का सुधार तथा सम्मिलित निर्वाचन प्रणाली की प्रतिष्ठा परम आवश्यक है।

देश का बटवारा

पाकिस्तान के प्रश्न पर मुस्लिम लीग दृढ़ रही। उसने केबिनेट मिशन की दीर्घ कालीन योजना मानने से इनकार कर दिया, गो कुछ सोचने के बाद वह केबिनेट मिशन की अल्प कालीन योजना के अन्तरगत मध्यकालीन सरकार में शरीक हो गयी। जिस समय वायसराय वेवल ने मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों को मध्य कालीन सरकार में शरीक किया, उस समय उन्हें आशा थी कि आगे चलकर मुस्लिमलीग दीर्घकालीन

योजना को स्वीकार कर संविधान सभा में भी भाग लेने को राजी हो जायगी। पर मुस्लिम लीग संविधान सभा का बहिष्कार करती रही और मध्यकालीन सहकार में उसके प्रतिनिधियों ने कांग्रेस के प्रतिनिधियों से सहयोग कर सम्मिलित जिम्मेदारी के आधार पर केन्द्र का शासन चलाने के बजाय अपनी खिचड़ी अलग पकाना शुरू की और अपनी गति-विधि से मध्यकालीन सरकार को पंगु बना डाला। ऐसी परिस्थिति में वाइसराय लार्ड माउन्ट बेटन की राय से कांग्रेस ने देश का बटवारा मंजूर कर लिया। ३ जून सन् १९४७ को सरकार की ओर से इसकी घोषणा हो गयी और १५ अगस्त को देश दो हिस्सों में बट गया।

आचार्यजी मुस्लिम राष्ट्र के सिद्धान्त को गलत समझते थे और वह देश के बटवारे के विरुद्ध थे। उनकी राय में धर्म के आधार पर राष्ट्र नहीं होते, मुसलमान प्रथक राष्ट्र नहीं है और पाकिस्तान की योजना देश के लिये आत्मघातक है। उनकी धारणा थी कि देश के बटवारे का फैसला केवल धार्मिक अल्पसंख्यकों पर नहीं छोड़ा जा सकता और सामान्य आर्थिक हितों के लिये सामान्य संघर्ष के जरिए देश की हिन्दू और मुसलमान जनताओं में एका स्थापित किया जा सकता था। पर जब सन् १९४७ में कांग्रेसी नेताओं ने मुस्लिम राष्ट्र के सिद्धान्त को नामंजूर करते हुए देश के बटवारे के सम्बन्ध में मुस्लिम लीग के नेताओं से समझौता कर लिया, तब अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में वे अपने दूसरे समाजवादी साथियों के साथ तटस्थ रहे। उनका कहना था कि हिन्द-चीन और इंडोनेशिया के नेताओं की तरह कांग्रेस के नेताओं को भी ब्रिटिश सरकार से समझौते की बात करते हुए क्रान्ति के वातावरण को बनाये रखने की चेष्टा करनी चाहिए थी, ताकि अनुकूल समझौता न होने पर संघर्ष शुरू किया जा सकता। पर जब कांग्रेस के नेताओं ने इस बात की फिक्र न की, एकमात्र समझौते का रास्ता अपनाकर क्रान्ति का वातावरण नष्ट कर दिया और मुस्लिम लीग के नेताओं से देश के बटवारे का समझौता कर लिया जिसे ब्रिटिश सरकार और मुस्लिम लीग की कौंसिल ने भी स्वीकार कर लिया और जिसके अनुसार कार्य भी आरम्भ हो गया, तब ऐसी स्थिति में इस योजना को नामंजूर करने से दशा सुधरने के बजाय बिगड़ती, देश को भयंकर गृहयुद्ध का सामना करना पड़ता और देश की प्रगति खत्म हो

जाती। चूँकि सोशलिस्टों के लिये बटवारे के आत्मघातक सिद्धान्त को स्वीकार करना या भयंकर गृहयुद्ध की जिम्मेदारी लेना दोनों ही गलत होता, अतः अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में तटस्थ रहना ही उन्होंने ठीक समझा।

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण

राष्ट्रसेवी नरेन्द्रदेव को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में काम करने की फुर्सत नहीं थी। पर उनका दृष्टिकोण विश्वभावना से अनुप्राणित था। मानव समाज की एकता पर उनका पूरा विश्वास था। वे देशबन्धुत्व के साथ साथ विश्वबन्धुत्व के सिद्धान्त को मानते थे। उनका अध्ययन काफी व्यापक और तुलनात्मक था। विश्व-इतिहास की घटनाओं और प्रक्रियाओं का उन्हें अच्छा ज्ञान था। एक सार्वजनिक कार्यकर्ता तथा सुशिक्षित व्यक्ति के लिये संसार की प्रगति और प्रतिक्रियाओं की समुचित जानकारी रखना वे आवश्यक समझते थे। अतः जहां उन्होंने काशीविद्यापीठ में एशिया के राष्ट्रीय आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय आन्दोलन का अध्ययन-अध्यापन किया; वहां उन्होंने सन् १९३४ के बाद यूरोप की समाजवादी विचारधारा और हलचल की पृष्ठभूमि में अपने देश में समाजवादी आन्दोलन को पुष्ट किया। दूसरे विश्व-युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का ज्ञान और भी अधिक आवश्यक हो गया था और उस ओर जनता का ध्यान दिलाना वे बहुत ही आवश्यक समझने लगे थे।

अतः नजरबन्दी से रिहा होने के बाद नरेन्द्रदेवजी ने अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर कई लेख और टिप्पणियां पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराईं। इन लेखों में उन्होंने एशिया के स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास, अमरीका तथा हिन्दचीन में कम्युनिस्ट पार्टी का व्यवहार, यूरोप की स्थिति तथा अन्तर्राष्ट्रीय हलचल, फासिज्म का वास्तविक रूप, तथा मिश्र, ईराक और इन्डोनेशिया आदि देशों की राजनीतिक स्थिति आदि अनेक विषयों का सारगर्भित विश्लेषण किया।

जेल से छूटने के कुछ दिन बाद ही अर्थात् अगस्त सन् १९४५ में 'संगम' पत्रिका में यूरोप की स्थिति पर तथा नवम्बर सन् १९४५ में कलकत्ता के 'विश्वमित्र' में 'एशिया के स्वतंत्रता आन्दोलन की रूपरेखा' पर उनके लेख प्रकाशित हुए। पहले लेख में पूंजीवादी और फासिस्ट

वादी शक्तियों की आलोचना तथा यूरोप की दयनीय दशा की समीक्षा करते हुए उन्होंने खेद प्रकट किया कि 'यूरोप का शासनवर्ग...अब भी पूँजीवादी प्रथा से चिपका हुआ है और युग धर्म की गतिविधि को पहचान कर अपनी गतिविधि को बदलने को तैयार नहीं है। जनतन्त्र की दुहाई देने वाले यह पूंजीपति भी उस समय तक जनतन्त्र के भक्त हैं कि जब तक जनतन्त्र उनके विशेषाधिकारों को संशय में नहीं डालता। ये सोच भी नहीं सकते कि कोई दूसरा भी कानून, कोई दूसरे प्रकार के अधिकार और अन्य सामाजिक तथा आध्यात्मिक मूल्य हो सकते हैं'। नरेन्द्रदेवजी ने लिखा कि 'पूंजीवादी जनतन्त्र के विशीर्ण होने पर ही फाशिज्म अधिकारारूढ़ हुआ, अत एक ऐसी नवीन आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था कायम होने पर ही, जिसके द्वारा सामान्य जनता अपनी परिपूर्णता अनुभव करे, संसार में शान्ति और सुख स्थापित हो सकता है।' साम्राज्यवाद और राज्य के सर्वाधिकार की समीक्षा करते हुए उन्होंने लिखा कि 'जब तक महान् राष्ट्र अपने कुछ अधिकारों को छोड़ने को तैयार नहीं हो जाते, तब तक अन्तर्राष्ट्रीय समाज गठित नहीं हो सकता' और 'जब तक यूरोप के छोटे छोटे राज्य आर्थिक और सैनिक दृष्टि से स्वतन्त्र रहना चाहते हैं तब तक शान्ति स्थापित करना भी सम्भव नहीं होगा'। उनके विचार में 'अन्तर्राष्ट्रीय समाज की स्थापना के लिये राष्ट्रीयता का वर्तमान विकृत रूप बदलना होगा, उसका प्राधान्य सांस्कृतिक क्षेत्र तक ही सीमित रखना होगा। राजनीतिक तथा आर्थिक क्षेत्र में उसकी प्रधानता हानिकर होगी'। जिस तरह राज्यों का अखण्ड-अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय समाज के सिद्धान्त से असंगत है, उसी तरह 'संसार की कल्याणकारी दृष्टि के साथ साम्राज्यवाद का असामञ्जस्य है। अमरीका के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ स्वर्गीय वेंडल विल्की के शब्दों में 'स्वतन्त्रता शब्द अभिवाज्य है, यदि हम उसका उपभोग करना चाहते हैं और उसके लिये लड़ना चाहते हैं तो हमें सबको समान रूप से स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिये तैयार रहना चाहिए, चाहे वह अमीर हो या गरीब, चाहे वह हमसे सहमत हो या नहीं, चाहे वह किसी भी जाति या वर्ण के क्यों न हों। संसार के सब भाग एक दूसरे से सम्बन्धित हैं और कोई भी राष्ट्र अकेले अपने पूर्ण विकास को प्राप्त नहीं कर सकता'। दूसरे लेख में नरेन्द्रदेवजी ने साफ शब्दों

में घोषित किया कि 'जब तक युद्ध के कारण दूर नहीं किये जाते, तब तक शान्ति की स्थापना असम्भव है। मित्र राष्ट्र शत्रुओं का विनाश करने के लिये अस्त्र-शस्त्र का निर्माण कर सकने की सामर्थ्य रखते हैं, किन्तु शान्ति की प्रतिष्ठा करने की योग्यता उनमें नहीं पायी जाती। कूटनीतिज्ञता से शान्ति कायम नहीं होगी। युद्धों का अन्त तभी होगा जब साम्राज्यवाद और पूंजीवाद का अन्त कर सच्चे जनतन्त्र की स्थापना होगी'।

जनवरी सन् १९४७ में पेरिस के शान्ति सम्मेलन की समस्याओं और गतिविधि तथा विभिन्न बड़े-बड़े राष्ट्रों की चालों और नीतियों का विश्लेषण करते हुए नरेन्द्रदेवजी इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पेरिस सम्मेलन सफल नहीं हो पायगा और शान्ति की समस्याओं को हल करने के लिये कई सम्मेलन करने पड़ेंगे। उनके विचार में समझौता तभी हो सकता है कि जब कोई ऐसा सिद्धान्त सब को मान्य हो जिसके अधीन सब उद्देश्यों का निबटारा हो सके। पर सर्वमान्य सिद्धान्त के अभाव के कारण बड़े-बड़े राष्ट्र गुटों में बट गये हैं और छोटे राज्यों को किसी बड़े राज्य का साथ देना पड़ रहा है। नरेन्द्रदेवजी ब्रिटेन सोवियत रूस और संयुक्तराज्य अमरीका तीनों की गतिविधि और कूटनीतिज्ञता से असन्तुष्ट थे। उस समय ब्रिटेन में मजदूर-सरकार और सोवियट रूस में कम्यूनिस्ट सरकार का शासन था। नरेन्द्रदेव आशा करते थे कि ये सरकारें किसी बुनयादी सिद्धान्तों के आधार पर अपनी अन्तर्राष्ट्रीय नीति निर्धारित कर उसके अनुसार स्थाई शान्ति और सामाजिक न्याय के निमित्त काम करेंगे। पर उन्हें दुःख था कि ये दोनों सरकारें ऐसा नहीं कर रही थीं। ब्रिटेन की मजदूर सरकार की वैदेशिक नीति टोरियों की नीति से विशेष भिन्न नहीं थी। जहाँ उसने ग्रीस में जनतन्त्र का गला घोंट कर राजवंश को गद्दी पर बिठाया, वहां वह अपने साम्राज्य की रक्षा के लिये अमरीका का पुछल्ला बनी रही। उसकी औपनिवेशिक नीति भी प्रगतिशील नहीं थी। रंग का भेद भी किया जा रहा था। रूस भी अपनी स्वार्थ सिद्धि और आत्मरक्षा को सुदृढ़ बनाने में ही संलग्न था और साम्राज्यवादी राष्ट्रों की नीति क अनुसरण कर रहा था। उन्होंने बड़े सन्तप्त हृदय से लिखा कि 'जिस प्रकार इङ्गलैण्ड की कोई स्थायी वैदेशिक नीति नहीं है, जो सिद्धान्तों

पर आश्रित हो, उसी प्रकार रूस की नीति किसी सिद्धान्त पर आश्रित नहीं है। आत्मरक्षा के भाव से प्रेरित होकर ही रूस आज अपनी नीति बनाता है, किसी नये युग के उपयुक्त जीवन के नये मूल्यों को ध्यान में रख कर नहीं। यह बड़े दुःख की बात है', वे चाहते थे कि रूस 'राजनीति के दाव पेच को छोड़ कर एक स्थायी शान्ति के लिये प्रयत्नशील हो'। पर नरेन्द्रदेव जी रूस की नीति से भी अधिक संयुक्तराज्य अमेरिका की नीति से असन्तुष्ट थे। उनका कहना था कि जहाँ ब्रिटेन का साम्राज्य 'ह्रास की अवस्था में है, वह दुर्बल और क्षीण हो रहा है'; वहां 'अमेरिका का डालर इम्पीरियलिज्म तेजी से बढ़ रहा है और उसका साम्राज्यवाद संसार के लिये एक बड़ा खतरा बनता जाता है।' उनके विचार में 'यद्यपि इस समय अमेरिका को किसी से डरने का कोई विशेष कारण नहीं है', जबकि 'रूस को अमेरिका से डरने का पर्याप्त कारण है', पर वास्तव में 'दोनों दल एक दूसरे से भयभीत हैं' और 'युद्ध की तैयारी में लगे हैं'। नरेन्द्रदेवजी ने बताया कि 'यदि इङ्गलैंड और अमेरिका पश्चिमी राष्ट्रों का ग्रुप बना रहे हैं, तो रूस पूर्वी यूरोप को अपने अधीन कर चुका है। वह चाहता है कि उत्तर में फिनलैण्ड से लेकर नीचे तुर्की-सीरिया की सीमा तक पश्चिमी ब्लाक के विरुद्ध एक बाँध खड़ा कर दिया जाय ताकि पूँजीवाद का प्रभाव प्रवेश न कर सके'। प्रत्येक राष्ट्र अपने लिये सबसे अधिक लेना चाहता था और दूसरे को सबसे कम देना चाहता था।

नरेन्द्रदेव जी के विचार में इस तरह स्थायी शान्ति कायम नहीं हो सकती। उसे प्रतिष्ठित करने के लिये तो पक्षपातरहित सर्वमान्य सिद्धान्तों के आधार पर समस्याओं को हल करना होगा। उनके अपने विचार में यूरोप के पुनर्निर्माण के लिये सब की राय से योजना बनाना चाहिए। इस सम्बन्ध में उनकी राय थी कि जहाँ नाजियों को दण्ड देना, उनके प्रभाव को नष्ट कर देना जरूरी है, वहाँ समस्त जर्मन जाति को दण्ड देना न्याय-संगत नहीं होगा। लोगों को अपने देश से बहिष्कृत करना और उनसे गुलामों की तरह काम लेना अन्याय ही होगा। उनका कहना था कि 'जर्मनी को बर्बाद कर, उसकी आर्थिक पद्धति को छिन्न-भिन्न कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर यूरोप सुख की नींद नहीं सो सकेगा। आज वह जमाना नहीं है जब दूसरों को दुःखी कर

कोई देश सुखी हो सके। यूरोप की समृद्धि जर्मनी की समृद्धि पर निर्भर है। यह कोई कोरी कल्पना नहीं है और न कोई आदर्शवादिता ही है। यह स्थूल सत्य है। सारा संसार एक हो रहा है। एक अंग का फोड़ा सारे संसार को विकल कर देता है। उनकी राय में हरजाना दिलाने के प्रश्न को और प्रभाव क्षेत्रों को बढ़ाने के प्रयासों को खत्म किया जाय; तेल के चश्मे उस देश की मिल्कियत हों जहाँ वे पाये जाते हों, परन्तु सब राष्ट्रों को अपनी अपनी आवश्यकताओं के अनुसार उचित दाम देने पर उसमें हिस्सा मिलना चाहिए और इस विषय के सारे अधिकार एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के हाथ में होना चाहिए।

जून सन् १९४७ में एक दूसरे लेख के जरिये संयुक्तराज्य अमरीका की नयी साम्राज्यशाही नीति की कड़ी आलोचना करते हुए नरेन्द्रदेव जी ने लिखा कि 'इसमें सन्देह नहीं कि अमरीका की शती का आरम्भ हो गया है। किन्तु यह शती संसार के कल्याण के लिये नहीं होगी। वस्तुतः अमेरिका के बढ़ते हुए प्रभाव से संसार का अमङ्गल होगा'। उनको दुःख था कि अमेरिका जो लोकतांत्रिक होने का दावा करता है 'सर्वत्र प्रतिक्रिया का ही समर्थन कर रहा है'। यदि वह वास्तव में रूस से अपनी और लोकतान्त्रिक पद्धति की रक्षा करना चाहता है तो वह काम दमन सिद्धान्त से नहीं होगा। उससे अमेरिका का प्रभाव-क्षेत्र बढ़ सकता है, पर लोकतन्त्र का गला घुटेगा और प्रगतिशील शक्तियों का रूस की ओर झुकाव भी बढ़ेगा। और इस तरह यह सिद्धान्त 'घातक' सिद्ध होगा। 'यदि अमेरिका की जीवन प्रणाली का आधार लोकतन्त्र और स्वतन्त्रता है तो अमेरिका को ससार की प्रगतिशील शक्तियों का नेतृत्व करना चाहिए'। उसे समझना चाहिए कि 'आज यूरोप और एशिया के आर्थिक जीवन में क्रान्ति हो रही है। इसके साथ योग देने से, न कि इसका विरोध करने से, अमेरिका का उद्देश्य सिद्ध हो सकता है। किन्तु क्रान्ति से सहयोग करने का अर्थ होता है यूरोप में समाजवाद का समर्थन करना और पुराने प्रतिगामी और लोकतन्त्र-विरोधी शासकों का अन्त करना'। पर इसके विपरीत अमेरिका के व्यवहार से तो 'स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र के नाम पर एक नये साम्राज्यवाद का जन्म हो रहा है'।

इस तरह आचार्य नरेन्द्रदेव अमेरिका की विदेश-नीति के साथ साथ

कम्युनिस्ट रूस तथा ब्रिटेन की सोशलिस्ट सरकार की वैदेशिक नीति से भी असन्तुष्ट थे। उन्हें हिन्द चीन की स्वतन्त्रता के प्रति फ्रान्स के कम्युनिस्टों की उपेक्षा भी नापसन्द थी। यूरोप के कम्युनिस्टों और समाजवादियों के व्यवहार को देखकर उन्होंने महसूस किया कि 'जब तक एशिया के सब देश स्वतन्त्र नहीं हो जाते तब तक यूरोप के देशों की समाजवादी और कम्युनिस्ट पार्टियों के साथ हमारा सहयोग नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि यूरोप की विविध पार्टियाँ या तो सोवियत रूस के आदेश पर काम करती हैं या स्वयं अपने-अपने राज्य का स्वार्थ परित्याग करने के लिये तैयार नहीं हैं। एशिया के जो देश आज अपनी स्वतन्त्रता के लिये लड़ रहे हैं, उन देशों की समाजवादी पार्टियों का एक सम्मेलन होना आवश्यक है। इससे एक दूसरे को प्रोत्साहन और बल मिलेगा। इस सम्मेलन में सबके स्वार्थ और हित परस्पर विरोधी नहीं होंगे और न एक पार्टी दूसरे को दबा सकेगी। जिनके हित और उद्‌देश्य समान हैं, जिनकी विचारधारा एक है और जो एक दूसरे के साथ समानता का व्यवहार करने को तैयार हैं उन्हीं का सम्मेलन होना चाहिए'।

१२. संविधान और सम्बन्ध-विच्छेद

समाजवाद का प्रचार

१८ जून सन् १९४५ को अल्मोड़ा जेल से छूटने के बाद ही नरेन्द्रदेवजी ने शोषित जनता के संगठन और उनकी आर्थिक समस्याओं पर, जनतन्त्र के समाजवादी स्वरूप की व्याख्या पर, नवयुवकों की सामाजिक चेतना पर तथा समाजवादी आन्दोलन को सुदृढ़ बनाने पर जोर देना शुरू कर दिया। समाजवादी विचारों तथा दृष्टिकोण को व्यापक बनाकर समाजवादी आन्दोलन को सुदृढ़ बनाने के निमित्त वे एक देशव्यापी दौरा भी करना चाहते थे और इस उद्देश्य से वे मद्रास गये भी, पर वहाँ बीमार पड़ जाने पर उन्हें दौरा करने का इरादा छोड़ना पड़ा तथा लेखों और वक्तव्यों द्वारा ही उन्हें अपने विचारों को प्रसारित करना पड़ा। फिर भी सन् १९४६ के प्रारम्भ में डालमियांनगर में मज़दूरों की हड़ताल के निपटारे के लिये वे मज़दूरों और मालिकों दोनों की ओर से पंच नियुक्त हुए और उन्होंने उनकी पंचायत की। मई-जून सन् १९४६ में उनकी प्रेरणा से देहरादून में एक समाजवादी शिक्षण शिविर भी आयोजित हुआ जिसमें लगभग एक सौ कार्यकर्ताओं ने एक मास समाजवाद तथा भारत की प्रमुख समस्याओं का अध्ययन किया।

प्रगतिशील और समाजवादी विचारों के प्रसार के लिये नरेन्द्रदेवजी ने लखनऊ से साप्ताहिक 'संघर्ष' को फिर से निकालने का प्रबन्ध किया और काशी से मासिक 'जनवाणी' को भी निकालना शुरू किया। ये दोनों पत्र पांच छः वर्ष तक चलते रहे, फिर धन के अभाव के कारण बन्द हो गये। दोनों पत्रों के सम्पादक मण्डलों में नरेन्द्रदेवजी का प्रमुख स्थान था। वही इनके प्राण थे, उन्हीं की प्रेरणा और सहयोग से सब काम होता था। इन पत्रों में समाजवादी सिद्धान्तों और देश की समस्याओं तथा विदेश की परिस्थितियों पर नरेन्द्रदेवजी स्वयं अपने विचार व्यक्त करते और अपने मित्रों को लिखने के लिये प्रोत्साहित करते थे। 'जनवाणी' ने हिन्दी मासिक पत्रिकाओं में काफी महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। 'संघर्ष' के सम्पादन में

श्री विश्वेश्वरप्रसाद् सिन्हा और श्री रमाकान्त शास्त्री का तथा 'जनवाणी' के प्रबन्ध में श्री बैजनाथ सिंह विनोद और श्री रमाशंकर पाण्डेय का विशेष योग था। 'संघर्ष' में श्री दामोदर स्वरूप सेठ और 'जनवाणी' में सर्वश्री राजाराम शास्त्री और मुकुटबिहारीलाल भी लेख लिखते रहते थे। 'जनवाणी' के चलाने में सर्वश्री गंगाशरण सिंह और रामवृक्ष बेनीपुरी का भी अच्छा योग था। श्री गंगाशरण सिंह जी ने जिन्हें पत्रकारिता का काफी अनुभव था इस पत्र के लिये आर्थिक साधनों के जुटाने में काफी सहायता पहुँचायी। श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी ने कई लेख भी लिखे। बेनीपुरीजी स्वाधीनता-संग्राम के वीर सेनानी हैं। जनतान्त्रिक समाजवाद पर उनकी अटल श्रद्धा है। बिहार के समाजवादी आन्दोलन की प्रगति में उनका विशेष योग रहा है। वे बहुत ही विनोद प्रिय व्यक्ति हैं। वे उच्चकोटि के साहित्यज्ञ हैं। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने बहुत ही प्रशंसनीय काम किया है, उनका योगदान बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।

जयप्रकाशनारायण का नेतृत्व

यद्यपि नरेन्द्रदेवजी कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्यों के साथ जून सन् १९४५ को ही रिहा हो गये थे, श्री जयप्रकाशनारायण, डाक्टर राममनोहर लोहिया, सर्वश्री रामनन्दन मिश्र, सूरजनारायण सिंह, बसावन सिंह आदि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बहुत से नेता और कार्यकर्ता प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों के बन जाने के बाद ही जेल से छोड़े गये। बाहर निकलते ही उन्होंने अपना काम शुरू कर दिया। श्री अच्युत पटवर्धन ने जो भूमिगत थे अंग्रेजी साप्ताहिक 'जनता' की देखभाल और आगे चलकर उसका सम्पादकत्व सम्भाला, डाक्टर राममनोहर लोहिया ने गोवा में सत्याग्रह कर स्वतन्त्रता-संघर्ष के क्षेत्र का विस्तार किया, श्री जयप्रकाशनारायण ने सारे देश का भ्रमण कर जनता को क्रांति की तैयारी के लिये आह्वान किया। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सभी नेता मूलतः आचार्य नरेन्द्रदेव के विचारों से सहमत थे। सबने अपने वक्तव्यों और लेखों में अपने-अपने ढंग से उनकी पुष्टि की।

पार्टी के दूसरे नेताओं से मशवरा करने के बाद श्री जयप्रकाश नारायण ने २८ जुलाई सन् १९४६ के साप्ताहिक 'जनता' में एक लेख

प्रकाशित कराया। इस लेख में उन्होंने लिखा कि 'ब्रिटेन के संवैधानिक प्रस्तावों को स्वीकार कर लेने पर स्वतन्त्रता का संघर्ष समाप्त नहीं होता। संघर्ष जारी रहेगा। वास्तव में वह अधिक गम्भीर और विस्तृत हो जायगा'। उनके विचार में राष्ट्रीय एकता की समस्या तथा आर्थिक प्रश्न अधिक प्रबल हो जायंगे। स्वतन्त्रता के निमित्त संघर्ष के साथ साथ इन समस्याओं के सम्बन्ध में भी संघर्ष करना होगा। इन सब कामों के लिये जनता में संघर्ष की मनोवृत्ति जागृत करनी होगी, विभिन्न संघटनों द्वारा जनशक्ति को संगठित करना होगा, कांग्रेस को अधिक गतिशील और सुदृढ़ बनाना होगा तथा जनता से उसके सम्पर्क को अधिक विस्तृत करना होगा। उनकी धारणा थी कि राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिये जनसाधारण में काम करना होगा, मुसलमानों में धैर्यपूर्वक राजनीतिक काम करना होगा, आर्थिक और वर्ग संस्थाओं का संगठन करना होगा, हिन्दुओं में समाज-सुधार का कार्य करना होगा, सामान्य सांस्कृतिक तथा मनोरंजनात्मक कार्यों को प्रोत्साहित करना होगा और समाज में उन शक्तियों को सुदृढ़ बनाना होगा जो स्वभावतः राष्ट्रीय एकता को दृढ़ करती हैं। कांग्रेस सोशलिस्टों के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा कि उन्हें कांग्रेस के अन्दर काम करते रहना चाहिए, पर अगस्त क्रान्ति के काल की तरह अब कांग्रेस के नाम पर काम करना उनके लिये सम्भव नही होगा। उन्होंने लिखा कि 'सब वामपक्षीय पार्टियों और ग्रुपों की एकता के अर्थ मे तो वामपक्षीय एकता असम्भव है', पर 'कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को सब स्वतन्त्रता सेनानियों का संगठन बनना चाहिए'। स्वतन्त्रता और समाजवाद दोनों ही उसके लक्ष्य हैं। निन्यानवे प्रतिशत स्वतन्त्रता सेनानियों का झुकाव भी समाजवाद की ओर है। समाजवाद के बिना केवल स्वतन्त्रता से उन्हें सन्तोष नहीं होगा। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को अपने कार्यक्षेत्र को विस्तृत कर अधिक व्यवस्थित ढंग से काम करना चाहिए। कार्यकर्ताओं के चयन और प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। यह प्रशिक्षण अध्ययन, विचार-विमर्श तथा कार्य द्वारा होना चाहिए। किसान सभाओं और मजदूर यूनियनों के संगठन के साथ-साथ उत्पादक सहकारी संस्थाओं तथा सहकारी खेती के संगठन को तथा अस्पृश्यता निवारण, बुनियादी शिक्षा, नशाबन्दी, गाँवों की सफाई आदि गान्धीजी के रचनात्मक कार्यों को भी कांग्रेस सोशलिस्ट

पार्टी के कार्यक्रम में शामिल करना चाहिए। राष्ट्रीय एकता और गाँव-संगठन पर विशेष ध्यान देने की जरूरत बताते हुए 'साम्प्रदायिक तथा जातिगत द्वेष और अहंकार के सर्वथा परित्याग एवं मानवमात्र के प्रति समता के व्यवहार को' उन्होंने 'स्वतन्त्रता-सेनानी की सर्वप्रथम आवश्यकता' बतायी।

संविधान सभा

फरवरी सन् १९४६ को आचार्य नरेन्द्रदेव ने लिखा था कि 'हम उस संविधान सभा में शामिल नहीं होंगे जो जनता की आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित और प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न नहीं करती और जो प्रभुसत्ता-सम्पन्न नहीं है। हम दूसरों से निर्देशित होना नहीं चाहते और संविधान के निर्माण में जनता के सर्वाधिकार पर किसी प्रतिबन्ध को सहन करने को तैयार नहीं हैं'। पर जब सोशलिस्टों के विरोध के बावजूद कांग्रेस ने कुछ प्रतिबन्धों के साथ संविधान सभा में जाना स्वीकार कर लिया, तब श्री जयप्रकाश नारायण ने घोषित किया कि संविधान सभा की प्रभुसत्ता पर इस तरह समझौते के जरिए प्रतिबन्ध नहीं लगाये जा सकते, संविधान सभा को इनकी उपेक्षा करते हुए अपनी स्वेच्छा से संविधान बनाने का अधिकार होगा। नरेन्द्रदेव जी आदि बहुत से कांग्रेस सोशलिस्टों ने जनता की आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करने के लिये संविधान सभा में जाना भी उचित समझा। पर श्री अच्युत पटवर्धन अपने विरोध पर डटे रहे। उनका कहना था कि किसी प्रतिबन्ध के होते हुए जनता के स्थान पर विधान सभाओं द्वारा चुनी संविधान सभा में जाना सिद्धान्तः गलत होगा। उनके आग्रह पर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने संविधान सभा का बहिष्कार कर दिया। केवल सर्वश्री दामोदर स्वरूप सेठ और फूलनप्रसाद वर्मा, जिन्होंने बहिष्कार का आदेश मिलने से पहले अपने नामजदगी के पत्र दाखिल कर दिये थे और जिन्हें कांग्रेस विधायक दल के नेताओं ने अपना नाम वापस लेने की आज्ञा नहीं दी, संविधान सभा के सोशलिस्ट सदस्य रहे। १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत के स्वतन्त्र होने के बाद सोशलिस्टों के संविधान सभा में शामिल होने के प्रश्न पर श्री जयप्रकाश नारायण की पण्डित जवाहरलाल नेहरू से बातचीत हुई। पर कोई नतीजा नहीं निकला श्री अच्युत पटवर्धन तस्लीम करते हैं कि संविधान सभा के

बहिष्कार के सम्बन्ध में उनका आग्रह सिद्धान्तः सही होते हुए भी व्यवहारिक दृष्टि से गलत था।

कानपुर अधिवेशन

मार्च सन् १९४७ में कानपुर में डाक्टर राममनोहर लोहिया की अध्यक्षता में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में अपने स्वागत भाषण में नरेन्द्रदेवजी ने समाजवाद और जनतन्त्र के पारस्परिक सम्बन्ध पर जोर देते हुए सोवियत रूस के अधिनायकवाद की, राजनीतिक जनतन्त्र के प्रति उनकी उपेक्षा की, तथा कम्युनिस्ट पार्टी के कुचक्रों की निन्दा की। उन्होंने बताया कि 'समाजवाद ही पूर्ण जनतन्त्र है'। वह 'मानव व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास पर उतना ही जोर देता है जितना आर्थिक स्वतन्त्रता पर'। उन्होंने कहा कि मार्क्स अपने युग का एक महान् मानवतावादी था, वह जीवन भर जनता की स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्नशील रहा, उसने स्वयं कहा कि 'हम लोग उन कम्युनिस्टों में नहीं हैं जो व्यक्ति की स्वतंत्रता का नाश करने के लिये बद्धपरिकर हों, जो विश्व को एक विशाल बैरक अथवा कारखाने में परिणत करना चाहते हैं। हम लोग स्वतन्त्रता के बदले बराबरी नहीं चाहते। हम लोगों का विश्वास है कि किसी भी सामाजिक व्यवस्था में वैसी पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी जैसी ऐसे समाज में जो सामाजिक स्वामित्व पर आधारित हो'। सोवियत रूस की तानाशाही की भर्त्सना करते हुए नरेन्द्रदेव जी ने कहा कि रूस की स्थिति को समाजवाद का नमूना मानकर समाजवाद की निन्दा करना सर्वथा अनुचित है। आचार्य जी को क्षोभ था कि कम्युनिस्ट पार्टी के आचरण, उसके षड्यन्त्र और द्विविधामूलक व्यापार, उसकी स्पष्ट अवसरवादिता और दूसरों के साथ व्यवहार में नैतिक मान्यताओं की नितान्त अवहेलनाओं के कारण समाजवाद बदनाम हो रहा है। आचार्य जी की धारणा थी कि 'कम्युनिस्टों के सिद्धान्त-शून्य व्यापार, उनकी संदिग्ध नैतिकता, उनकी चालों में कौतूहल-पूर्ण सतत परिवर्तन के कारण उनके साथ सोशलिस्टों का चलना नामुमकिन है'। उन्होंने बताया कि 'जब कभी कम्युनिस्ट पार्टी ने दूसरी राजनीतिक पार्टियों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाया है तो उसने अपने लाभ और सुभीते के लिये किया है और जब कभी इसने दूसरी संस्थाओं के साथ सम्बन्ध जोड़ने

का प्रयत्न किया है तो उसका उद्देश्य या तो उसे हथिया लेने का रहा है या उसे छिन्न-भिन्न कर देने का'।

देशी रियासतों की समस्या

आचार्य नरेन्द्रदेव जी रजवाड़ों की जनता की लोकतान्त्रिक आजादी को भारतीय आजादी का अविछिन्न अंग मानते थे। रजवाड़ों का भारतीय राष्ट्र में एकीकरण और वहाँ की जनता के जनतान्त्रिक अधिकारों का विस्तार और सुरक्षण आचार्य जी की माँग थी। सन् १९३९ में मध्य भारत रियासती प्रजा कान्फ्रेंस में अपने अध्यक्षीय भाषण मे उन्होंने छोटे छोटे रजवाड़ों का प्रान्तों में विलीनीकरण का समर्थन किया और जमींदारी प्रथा और नरेश प्रथा का अन्त करने की माँग की। उन्होंने अपने दूसरे साथियों के साथ कांग्रेस के नेताओं से बार बार अनुरोध किया कि कांग्रेस देशी रियासतों की आजादी के संघर्ष को देशव्यापी साम्राज्य विरोधी संघर्ष का अंग तसलीम करके उन संघर्षों का नेतृत्व करे। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की तरफ से कांग्रेस प्रस्तावों मे इस आशय के संशोधन भी पेश किये गये। पर कांग्रेस के नेताओं का कहना था कि कांग्रेस रियासती जनता की आजादी की माँग का समर्थन कर सकती है, उसके संघर्षों में उनके साथ सहानुभूति प्रकट कर सकती है, पर सारे देश में फैली सभी रियासतों के संघर्ष की जिम्मेदारी कांग्रेस की शक्ति के बाहर है। व्यक्तिगत रूप से कतिपय कांग्रेस के नेताओं ने रियासतों के संघर्षों का नेतृत्व अवश्य किया। जहाँ पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने आल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेंस के संगठन में बहुत बड़ा काम किया, वहाँ सरदार वल्लभ भाई पटेल ने राजकोट के संघर्ष का नेतृत्व किया। आजादी की घोषणा के बाद रियासती जनता की कान्फ्रेंस और उसके संगठनों को कांग्रेस का अंग बना लिया गया और रियासतों को भारतीय संघ का अंग बनाने की कार्यवाही शुरू कर दी गयी।

जून सन् १९४७ में आचार्य नरेन्द्रदेव ने अपने मित्र डाक्टर मंगल सिंह और प्रोफेसर मुकुटबिहारी लाल के साथ रियासती जनता की माँगों के सम्बन्ध में एक पत्र प्रकाशित किया। इस पत्र में उन्होंने विभिन्न ढंग से भारतीय-संघ में रियासतों के एकीकरण की माँग करने के साथ साथ इस बात की माँग की कि हरेक रियासत की जनता

की सामूहिक सत्ता राज्य की प्रमुख सत्ता तसलीम की जाय, रियासतों के सम्बन्ध में रियासती जनता का हित ही परम हित समझा जाय और रियासतों के राजनीतिक भविष्य का निर्णय जनहित के आधार पर जनमत के मुताबिक किया जाय, भारतीय संघ का रियासतों और प्रान्तों के प्रति समान अधिकार और जिम्मेदारी हो. रियासती जनता का प्रान्तीय जनता की तरह भारतीय संघ (इंडियन यूनियन) से सीधा सम्बन्ध हो, जनमत ही संघ सरकार की सत्ता का आधार समझा जाय और उनके प्रतिनिधियों के प्रति ही संघ सरकार जिम्मेदार हो, भारतीय संघ मे रियासती जनता का प्रान्तीय जनता के बराबर का स्थान हो, रियासत का प्रत्येक निवासी भारतीय सघ का नागरिक तसलीम किया जाय और उसे समान नागरिक अधिकार और हक हासिल हों. उसके कर्तव्य भी समान हों, भारतीय संघ की व्यवस्थापिका सभा के लिये रियासती जनता द्वारा प्रतिनिधि चुने जावें। भारतीय संघ के विधान में रियासती जनता को भी नागरिकों के मौलिक हक हासिल हों। उन नागरिक हकों की रक्षा के लिये रियासती जनता को हिन्दुस्तान के सुप्रीम कोर्ट में अपील करने का हक हासिल हो। संघ के विधान की धारा के जरिये संघ से सम्बन्धित सभी रियासतों में जिम्मेदार हुकूमत कायम करना लाजमी हो। संघ विधान में यह साफ कर दिया जाय कि संघ की राजनीतिक और फौजी ताकत रियासती जनता की लोकतान्त्रिक आजादी के संघर्ष को दबाने में इस्तेमाल नहीं की जा सकती। रियासतों में जागीरदारी प्रथा खत्म की जाय। जागीरदारों को विशेष आर्थिक और राजनीतिक हकों और अधिकारों से वंचित किया जाय। जागीरदारियों में रहनेवाली जनता को रियासती जनता के सब हक हासिल हों। वे जागीरदारों के राजनीतिक हकों से मुक्त किये जायं और रियासत की सरकार से उनका सीधा और समान सम्बन्ध हो। संघविधान के जरिये संघ से सम्बन्धित रियासतों में दहेज में दी गयी बांदी रखेली तथा दारोगा जैसी नीम गुलामी की प्रचलित प्रथाओं को गैर कानूनी करार दिया जाय और इन प्रथाओं में फंसे लोगों को उनके बंधनों से मुक्त किया जाय। रियासतों में जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों की विधान परिषदें कायम की जायं और उनके द्वारा निर्मित विधान कार्यान्वित किये जायं।

जब तक नये विधान के अनुसार सरकारें नहीं बनतीं तब तक के लिये प्रजा मण्डल, स्टेट कांग्रेस जैसी लोकप्रिय राजनीतिक संस्थाओं के मशवरे से अन्तरीम सरकारें बनाई जायं, जिन्हें शासन के सब अधिकार प्राप्त हों और जो विधान परिषदों के कायम होने पर उन्हें उत्तरदायी हों। एकीकरण के सम्बन्ध में आचार्यजी की राय थी कि जो रियासतें साधारण जिले के इंतजाम का खर्च भी बर्दाश्त नहीं कर सकतीं, उनकी पृथक शासन सत्ता खत्म की जाय और इन रियासतों को अगर मुमकिन हो तो पास के किसी जिले में मिला दिया जाय, वरना कई रियासतों को मिला कर उचित शासन खण्ड बनाये जायं, हैदराबाद और मैसूर तथा जम्मू-कश्मीर राज्यों को वैधानिक इकाइयों की हैसियत से भारतीय संघ में शामिल किया जाय। मध्य भारत, राजपूताना और गुजरात काठियावाड़ में रियासतों और शासन खण्डों को मिला कर उपसंघ कायम किये जायं, मध्य भारत में दो उपसंघ भी कायम किये जा सकते हैं; त्रावणकोर, कोचीन और मालाबार जिलों को मिलाकर मालाबार उपसंघ कायम किया जाय। इन उपसंघों की केन्द्रीय सरकारें जनता द्वारा चुनी व्यवस्थापिका सभा के प्रति जिम्मेदार हों और उनका जनता से सीधा सम्बन्ध हो। ये उपसंघ वैधानिक इकाइयों की हैसियत से भारतीय संघ में शामिल हों, दूसरी सब रियासतों का भारतीय संघ और पास के किसी प्रान्त से वैधानिक सम्बन्ध हो, प्रान्तों से सम्बन्धित रियासतों की सरकारों के वही अधिकार हों, जो उपसंघ से सम्बन्धित रियासतों को हासिल हों, इन रियासतों की जनता द्वारा चुने प्रतिनिधि प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य हों और इन प्रतिनिधियों को उन सब मामलों पर राय देने और उन मुहकमों के इन्तजाम की देखभाल करने का समान अधिकार हो, जिनका रियासतों और जिले दोनों से सम्बन्ध हो।

जून सन् १९४७ में रियासती जनता की यह माँगें बहुत क्रान्तिकारी दिखाई देती थीं। अखिल भारतीय स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेंस ने सन् १९४७ में अपने ग्वालियर अधिवेशन में इन माँगों में से कुछ को ही अपनाया था। संविधान सभा में रियासतों के लिये सुरक्षित स्थानों में से आधे स्थान ही रियासती जनता के प्रतिनिधियों को प्राप्त हो सके थे और संविधान सभा द्वारा स्वीकृत भारतीय संविधान में रजवाड़े

की प्रशासकीय व्यवस्था कई बातों में प्रान्तों से भिन्न थी। पर दस वर्ष के अन्दर प्रान्तों और रजवाड़ों का भेद बिल्कुल ही मिट गया, राजाशाही बिल्कुल खत्म हो गयी, रजवाड़ों के उपसंघ बनाने की कोई ज़रूरत ही नहीं रही और दूसरी सभी माँगों का देश की आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में समावेश हो गया। इस तरह आचार्य जी का यह स्वप्न उनके जीवन में ही साकार हो गया।

संविधान की रूपरेखा

आजादी मिल जाने के बाद सोशलिस्ट पार्टी ने स्वतन्त्र भारत के संविधान की रूपरेखा तैयार करने का भी निश्चय किया। इस पुस्तक के लेखक ने संविधान की एक रूपरेखा पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति में जिसकी बैठक देहली में सन् १९४७ में हुई थी पेश किया। कमेटी ने आचार्य नरेन्द्रदेव, श्री अच्युत पटवर्धन और श्री वी० पी० सिन्हा को इसे देखने का आदेश दिया और उनकी राय में वह रूपरेखा ठीक समझी गयी और लेखक को आचार्य जी की देखरेख में एक विस्तृत संविधान बनाने का आदेश हुआ। यह संविधान एक पुस्तक के रूप में मार्च सन् १९४८ को प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में संविधान की धाराओं के अलावा संविधान सभा द्वारा प्रस्तुत संविधान की समीक्षा भी थी। इसके तैयार करने में आचार्यजी का काफी योगदान था। मौलिक अधिकारों की धाराओं को तो उन्हों ने स्वयं पढ़कर संशोधित किया था। साथी जयप्रकाश नारायण की ऐसी राय थी कि इस पुस्तक में संविधान सभा द्वारा प्रस्तुत मसौदे की मौलिक अधिकार सम्बन्धी धाराओं की जितनी विस्तृत आलोचना की जानी चाहिये थी, नहीं की गयी थी। इस छपी हुई पुस्तक में तो इस कमी को दूर नहीं किया जा सकता था। हां, सन् १९५० में संविधान के ऊपर जो प्रस्ताव पार्टी ने स्वीकृत किया उसमें मौलिक अधिकारों की धाराओं की त्रुटियों पर देश का ध्यान आकृष्ट कर दिया गया। साथी जयप्रकाशजी ने इस पुस्तक के संविधान की विशेषताओं पर एक संक्षिप्त नोट प्रधान मन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू के पास भेजा, पर उन्होंने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। साथी दामोदर स्वरूप सेठ ने भी कई संशोधन संविधान सभा में पेश किये, पर इन पर भी कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। सोशलिस्टों के दृष्टिकोण से भारत के संविधान में बहुत सी कमियां रह

गयीं। इन्हीं कमजोरियों को ध्यान में रखते हुये साथी जयप्रकाश नारायण ने लिखा था कि संविधान सभा द्वारा प्रस्तुत संविधान पूर्ण जनतन्त्र का साधन नहीं बन सकता।

भारतीय संविधान के सम्बन्ध में सोशलिस्ट पार्टी के विचारों का सही अनुमान उस प्रस्ताव से लग सकता है जो उसने सन् १९५० में अपने मद्रास-सम्मेलन में इस सम्बन्ध में पारित किया। इसमें पार्टी ने संविधान की कतिपय अच्छाइयों को स्वीकार करते हुए उसकी त्रुटियों की ओर ध्यान आकृष्ट कर उसके संशोधन के लिये प्रयत्न करने का वायदा किया। यह स्वीकार किया गया कि संविधान में बालिग मताधिकार को मान्यता प्रदान की गयी है, प्रतिनिधित्व को समान और सामान्य नागरिकता पर आधारित किया गया है, उत्तरदायी शासन की व्यवस्था की गयी है तथा किसी हद तक न्यायालयों द्वारा नागरिकों के मौलिक अधिकारों को संरक्षण की व्यवस्था भी की गयी है। पर प्रस्ताव में यह साफ तौर पर कहा गया कि संविधान में घोषित जनतान्त्रिक लक्ष्यों की पूर्ति संवैधानिक व्यवस्था द्वारा ठीक तौर पर नहीं होती, बहुत से जनतन्त्रविरोधी तत्वों के कारण इनका स्वरूप विकृत हो गया है और यह संविधान पूर्ण जनतन्त्र का उपकरण नहीं बन सकता। एक ओर केन्द्र और बहुत से राज्यों में विधान मण्डलों का संगठन दो सदनों की प्रथा पर किया गया है जो जनतन्त्र के क्रियाकलापों तथा जनता की आकांक्षाओं की पूर्ति में बाधक सिद्ध हुई है, दूसरी ओर कार्यपालिका को अध्यादेश द्वारा क़ानून बनाने के अधिकार दिये गये हैं। संविधान का स्वरूप संघीय है, पर उसकी भावना एकात्मक है। व्यवस्था बहुत ही केन्द्रित है। इसमें संघटकों को सीमित अधिकार दिये गये हैं। संसद संघसरकार को उन विषयों पर समवर्ती प्रशासकीय अधिकार दे सकती है जो राज्यों के एकमात्र अधिकार में हैं। वित्त व्यवस्था में राज्यों के लिये बड़े ही सीमित साधनों की व्यवस्था की गयी है। आपद्कालीन अधिकार इतने विस्तृत हैं कि संघ सरकार जनता की स्वतन्त्रताओं और राज्यों की आजादी का अपहरण कर सकती है, संसद की अनुमति से तो राज्यों के ऊपर अपनी तानाशाही प्रतिष्ठित कर सकती है। जहां राजाओं को राजभत्ते की गारंटी है, वहां राज्य के कर्मचारियों को बड़े बड़े वेतन की गारंटी है। शान्ति और व्यवस्था के

नाम पर मौलिक अधिकारों पर जो प्रतिबन्ध और शर्तें लगा दी गयी हैं, उनसे उन अधिकारों की मान्यता बहुत कम हो गयी है। एक ओर कार्यपालिका द्वारा प्रख्यापित अध्यादेशों के जरिये नागरिक अपनी स्वतन्त्रताओं और अधिकारों से वंचित किये जा सकते हैं; दूसरी ओर निरोधक नजरबन्दी की आज्ञा द्वारा राजनीतिक विरोधी नजरबन्द किये जा सकते हैं। आर्थिक अधिकार तथा सम्पत्ति से सम्बन्धित धाराएं मूलतः पूंजीवाद की पोषक हैं। एक ओर सरकार द्वारा निजी सम्पत्ति के अधिग्रहण पर मुआवजे का प्रतिबन्ध लगा दिया गया है, दूसरी ओर राज्यों द्वारा पारित सम्पत्ति अधिग्रहण अधिनियमों के लिये राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक कर दी गयी है। राज्य के नीति सम्बन्धी निर्देशन सिद्धान्त जान बूझ कर अस्पष्ट रखे गये हैं। उनमें जमींदारी और पूंजीवादी व्यवस्था को खत्म करने के लिये तथा किसानों के आर्थिक हितों की रक्षा के सम्बन्ध में कोई निर्देशन नहीं है। निःसन्देह राज्य को आदेश है कि वह मजदूरों के हित की वृद्धि करे और थोड़े से व्यक्तियों के हाथ में आर्थिक साधनों और शक्तियों को केन्द्रित न होने दे। पर इन निर्देशनों को कार्यान्वित करके पूंजीवाद को नियन्त्रित किया जा सकता है। इनसे प्रभावशाली सामाजिक जनतन्त्र प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता। प्रस्ताव में कहा गया कि जनता को अपने अधिकारों और स्वतन्त्रताओं के प्रति सदा जागरूक रहना होगा, स्वस्थ जनतान्त्रिक प्रणालियों को प्रतिष्ठित करने के लिये प्रयत्न करना होगा, जनतान्त्रिक समाजवादी व्यस्था की ओर बढ़ना होगा, सम्पत्ति के अधिकार सम्बन्धी धाराओं को रद्द करना होगा ताकि मुआवजा सम्बन्धी प्रतिबन्ध समाजवादी ढंग के आर्थिक निर्माण में बाधक न हों। संविधान के दूसरे जनतन्त्र विरोधी नियमों को भी निकालना ही होगा'। अन्त में सोशलिस्ट पार्टी ने विश्वास दिलाया कि वह स्वस्थ जनतान्त्रिक प्रथाओं और परम्पराओं को प्रतिष्ठित करने के लिये तथा संविधान में संसद तथा संविधान सभा द्वारा मूलभूत तब्दीली के लिये प्रयत्न करेगी।

जिस समय संविधान की यह समीक्षा मद्रास-सम्मेलन में स्वीकार की गयी नरेन्द्रदेवजी उपस्थित नहीं थे। पर उन्हें इस समीक्षा की सब बातें मंजूर थीं। फिर भी वे कटु आलोचना करने में ही सारा

समय नष्ट करने के पक्ष में नहीं थे। वे संविधान को मूलत: जनतान्त्रिक समझते थे और चाहते थे कि जनतन्त्र पर विश्वास रखने वाले सोशलिस्ट और दूसरे सामाजिक तत्त्व भारतीय संविधान में निहित जनतान्त्रिक सिद्धान्तों के आधार पर देश में जनतान्त्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनायें, जनतान्त्रिक प्रणालियों और परम्पराओं को प्रतिष्ठित करें, जनता में जनतान्त्रिक भावना को जागृत करें, उसमें जनतान्त्रिक सिद्धान्तों और मूल्यों के लिये निष्ठा पैदा करें तथा राजनीतिक जनतन्त्र की बुनियाद पर सामाजिक जनतन्त्र अर्थात् समाजवादी समाज का निर्माण करें। उनके विचार में जनतान्त्रिक व्यवस्था को प्रतिष्ठित करने के लिये दीर्घकाल तक सतत प्रयत्न आवश्यक होंगे।

सुदृढ़ जनतन्त्र

आजादी के प्रश्न पर समझौता हो जाने के बाद देश में सुदृढ़ राष्ट्रीय राज्य का संगठन एक आवश्यक कार्य था। देश के कतिपय नेता सोचते थे कि एक शक्तिशाली सेना और नौकरशाही के दृढ़ संगठन से यह काम सिद्ध हो सकता है। पर आचार्यजी का विचार था कि शक्तिशाली सेना और नौकरशाही वाला राज्य, जिसमें नौकरशाही की मनोवृत्ति पर नियंत्रण रखने और शासन प्रबन्ध में प्रमुख भाग लेने वाली लोकतन्त्रात्मक संस्थाएं न हों लोकतन्त्र के लिये भारी खतरा साबित होता है। उनकी राय में भारतीय संघ को सर्वग्रासी अधिनायक-तन्त्रवादी राज का रूप ग्रहण करने से बचाते हुए सुदृढ़ राष्ट्रीय राज्य की स्थापना के लिये जरूरी है कि लोकतन्त्रात्मक प्रक्रियाओं को अपनाया और व्यापक बनाया जाय, लोकतन्त्र-विरोधी मिथ्या विश्वासों और आस्थाओं का अन्त किया जाय, सर्वसाधारण को शक्तिमान बनाया जाय, उनमें सार्वभौमिक शिक्षा का प्रसार किया जाय, जनता में यह विश्वास पैदा किया जाय कि उनमें ही राष्ट्र की प्रभुशक्ति निहित है और वे स्वयं शासन व्यवस्था के एक मुख्य अवयव हैं, तथा इस विश्वास के आधार पर उन्हें महान् निर्माण कार्य में समुचित योग देने के लिये प्रेरित किया जाय। उनकी यह भी धारणा थी कि सुदृढ़ राज्य की स्थापना के लिये हमें समाज को समता के आधार पर संगठित करना होगा, सामाजिक और आर्थिक विषमताओं को समाप्त करना होगा

प्रत्येक समूह को उन्नति का समान अवसर प्रदान करना होगा, गैर सरकारी संस्थाओं की स्थापना करनी होगी, सहकारी आन्दोलन को बढ़ावा देना होगा तथा हिन्दू राज्य और आक्रमणशील संकुचित राष्ट्रीयता की भावनाओं से देश की रक्षा करनी होगी। आचार्यजी का सुझाव था कि १५ अगस्त सन् १९४७ को स्वतन्त्र भारत की घोषणा करते समय नवनिर्मित सरकार सार्वभौमसत्ता को स्वीकार करते हुए जमींदारी प्रथा की वास्तविक समाप्ति की घोषणा करें तथा राष्ट्र के सामाजिक जीवन के नये आधार को भी घोषित करे।

कांग्रेस की गतिविधि

कांग्रेस ने सत्ता प्राप्त करने के बाद संविधान सभा द्वारा देश के लिये बालिग मताधिकार पर आधारित जनतान्त्रिक संविधान तैयार किया, रजवाड़ों का भारतीय संघ में एकीकरण किया, विभिन्न प्रान्तों में जमींदारी उन्मूलन के लिये योजनाएं बनानी शुरू कीं और संसदीय जनतन्त्र के आधार पर राजकाज चलाने की कोशिश की, पर कांग्रेस ने अगस्त सन १९४२ के आन्दोलन के स्वतन्त्रता सम्बन्धी अंश के अलावा उसके आर्थिक और सामाजिक आदर्श को भुला दिया, वह अपने लक्ष्य को निश्चित और स्पष्ट नहीं कर सकी, उसके कार्यकर्ता पतनोन्मुख होने लगे और बहुत हद तक उसका काम चुनाव लड़ना और सरकार के निर्णयों को मंजूर करना ही रह गया। आचार्यजी कांग्रेस की इस गतिविधि से, कांग्रेसजनों के भ्रष्टाचार से और सरकार की अकर्मण्यता से बहुत चिन्तित और क्षुब्ध थे। उनकी धारणा थी कि परिस्थिति के अनुकूल लक्ष्य और कार्यक्रम के अभाव के कारण ही कांग्रेस दिन पर दिन गिरती जा रही है। उनके विचार में देश को ऊपर उठाने के लिये यथार्थ पर आश्रित आदर्शों की जरूरत है। उनका कहना था कि 'यथार्थवादी व्यक्ति आदर्शों को हवाई बात कह कर उसका उपहास कर सकता है, किन्तु वह भूल जाता है कि इतिहास की प्रेरक शक्ति राजनीति और कूट नीति नहीं वरन् आदर्शों के प्रति विश्वास और उत्कट लगन रही है। सामाजिक अन्याय के विरुद्ध क्रान्तिकारी विद्रोह की भावना ही कांग्रेसजनों के नैतिक स्तर को ऊंचा उठा सकती है, त्याग और तपस्या के लिये प्रेरित कर सकती है, राजनीतिक शक्ति के भ्रष्टाचारी प्रभाव से उन्हें बचा सकती है'। वे चाहते थे कि कांग्रेस अपने लक्ष्य को

निश्चित और स्पष्ट करके उसके अनुरूप नीति और कार्यक्रम को साफ तौर पर स्थिर और प्रस्तुत करे और घोषित लक्ष्य, नीति और कार्यक्रम पर अमल करना भी आरम्भ कर दे।

गान्धी जी की प्रतिक्रिया

कांग्रेस की गति-विधि, कांग्रेस-जनों के पतन और कांग्रेस सरकारों की धाँधली और अकर्मण्यता से गान्धीजी भी बड़े दु:खी थे। प्रतिदिन संध्या समय प्रार्थना के बाद वे अपना दुःख प्रकट करते और बुराइयों के सुधार की ओर ध्यान आकृष्ट करते। सत्ता प्राप्त होने के बाद कांग्रेस में अवसरवादी शक्तियों और स्थिर स्वार्थों के बढ़ते हुए प्रभाव से भी वे बहुत चिन्तित थे। उनका निश्चित मत था कि राजनीतिक स्वराज्य मिल जाने के बाद कांग्रेस को आर्थिक और सामाजिक स्वराज्य की प्राप्ति के लिये सचेष्ट होना चाहिए। गान्धीजी शोषणमुक्त वर्ग-विहीन जातिविहीन समाज का निर्माण करना चाहते थे, और मानने लगे थे कि समाजवाद एक शुद्ध चीज है और सत्याग्रह जैसे शुद्ध उपाय से ही वह प्राप्त हो सकता है। वे चाहते थे कि स्थिर-स्वार्थों के प्रभाव से कांग्रेस की रक्षा करने के लिये सोशलिस्ट कांग्रेस में बने रहें और उन्हें कांग्रेस में रहते हुए वर्गविहीन समाज के निर्माण के लिये प्रयत्न करने की पूरी-पूरी सुविधा प्राप्त हो। वे तो आचार्य नरेन्द्रदेव और श्री जयप्रकाश नारायण जैसे सोशलिस्ट नेताओं के हाथ में कांग्रेस की बागडोर सौंपने को भी तैयार थे।

अध्यक्षता का प्रश्न

सन् १९४७ में गान्धीजी की सलाह से आचार्य नरेन्द्रदेव का नाम कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिये पेश किया गया। उस समय सबने इस बात को तसलीम किया कि नरेन्द्रदेवजी जैसे विद्वान्, सच्चरित्र, राष्ट्रसेवी कांग्रेस की अध्यक्षता के लिये सर्वथा योग्य हैं। पर कुछ व्यक्तियों का निश्चित मत था कि जब तक नरेन्द्रदेवजी का कांग्रेस के अन्दर किसी अल्प संख्यक दल से सम्बन्ध है तब तक उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष बनाना उचित नहीं होगा। इनमें सर्वश्री बल्लभभाई पटेल और शंकरराव देव प्रमुख थे। निस्पृही नरेन्द्रदेव कर्तव्य बुद्धि से कांग्रेस की अध्यक्षता स्वीकार कर सकते थे। पर कांग्रेस की अध्यक्षता जैसे मान के लिये भी वे कांग्रेस समाजवादी दल

से अपना सम्बन्ध विच्छेद करने की बात नहीं सोच सकते थे। कहा जाता है कि जब अध्यक्ष के लिये नरेन्द्रदेवजी के मुकाबले में डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी का नाम पेश किया गया, तब गान्धीजी ने पण्डित गोविन्द वल्लभ पन्त के जरिये राजेन्द्र बाबू को सन्देश भेजा कि वे उसे स्वीकार न करें, पर यह सन्देश उन्हें नहीं पहुंचाया गया और जब बाद को उन्हें स्वयं गान्धीजी से इसका पता चला तब उन्हें इस बात का क्षोभ था कि गान्धीजी की राय न होते हुए भी उन्हें अध्यक्ष का भार ग्रहण करना पड़ा। उन्होंने आचार्य नरेन्द्रदेव और श्री जयप्रकाश नारायण से राष्ट्रीय कार्यसमिति का सदस्य बनने की बात की। पर उनके मना करने पर उनके मशवरे से श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय कांग्रेस की वर्किंग कमेटी की सदस्या बनाई गयीं। इस सबके कुछ समय बाद सरदार वल्लभ भाई पटेल ने आचार्य नरेन्द्रदेव की उपस्थिति में श्री अच्युत पटवर्धन से कहा कि नरेन्द्रदेव कभी के कांग्रेस के अध्यक्ष हो गये होते, तुम लोगों ने उन्हें घेर रखा है। यह सुन कर अच्युतजी चुप रहे, पर नरेन्द्रदेवजी ने जोश में भर कर कहा कि जनाबवाला किसी भी मुल्क के नौजवानों के दिलों पर बादशाहत करना क्या कोई कम बात है। सरदार वल्लभ भाई पटेल का विरोध कांग्रेस की अध्यक्षता के प्रश्न तक सीमित नहीं था। वे तो नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व से इतने रुष्ट थे कि उनके हाथ में वे किसी संस्था का सौंपा जाना उचित नहीं समझते थे। इसी लिये उन्होंने सन् १९४७ में आल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष शेख अब्दुल्ला की नजरबन्दी पर उस संस्था के स्थानापन्न अध्यक्ष के लिये आचार्य नरेन्द्रदेव के विरोध में डाक्टर पट्टाभि सीतारामय्या का डट कर समर्थन किया। इस विरोध की उपेक्षा करते हुए नरेन्द्रदेवजी इस संस्था के ग्वालियर अधिवेशन में गये और वहां उन्होंने स्थानापन्न अध्यक्ष पट्टाभि से कहीं अधिक प्रभावशाली व्याख्यान द्वारा रियासतों की जनता के अधिकारों को पुष्ट किया।

गान्धी जी का सुझाव

गान्धीजी को कांग्रेस की बिगड़ती दशा पर बहुत क्षोभ था। वे नहीं चाहते थे कि जिस संस्था ने एक राष्ट्रीय संस्था की हैसियत से स्वतन्त्रता संघर्ष में नेतृत्व किया हो, वह दलबन्दी की दलदल में फंसे,

भ्रष्टाचार के लिये बदनाम हो, शक्ति-संघर्ष का शिकार हो। इसलिये अपने निधन से कुछ पहले उन्होंने कांग्रेस को मशवरा दिया था कि वह अपने को लोकसेवक संघ में बदल दे और राजनीतिक सत्ता के चक्र से अलग रहते हुए आर्थिक और सामाजिक स्वराज्य के लिये प्रयत्न करे, एवं जो कांग्रेस कार्यकर्ता राजकाज में दिलचस्पी रखते हों वे अपनी नीति और कार्यक्रम के आधार पर अपना राजनीतिक दल बना कर काम करें। कांग्रेस के बहुसंख्यक नेतृत्व को गान्धीजी का यह सुझाव पसन्द नहीं था। वे अपनी सत्ता बनाये रखने के लिये कांग्रेस के संगठन और प्रतिष्ठा का प्रयोग करना चाहते थे। अतः गान्धीजी के निधन के बाद जब यह प्रश्न अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सामने उपस्थित हुआ, तो उसने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया। कांग्रेस के नेतृत्व में लोक सेवकसंघ के नाम से एक संस्था जरूर खोली गयी पर वह पनप न सकी।

गान्धी जी का बलिदान

देश के बटवारे ने साम्प्रदायिक समस्या को हल करने के बजाय उसे अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बना दिया, सारे देश में क्रोध और द्वेष की अग्नि को प्रज्वलित कर दिया। पाकिस्तान और उत्तर भारत में साम्प्रदायिक वैमनस्य ने नरसंहार का रूप धारण कर लिया। इस भयंकर परिस्थिति में हिन्दू अल्प संख्यकों की सहायता के लिये गान्धी जी नोआखाली गये तथा मुसलमानों की रक्षा के निमित्त उन्होंने कलकत्ते और दहली में उपवास किये। उनके सतत प्रयत्नों से स्थिति में कुछ सुधार जरूर हुआ, पर रोष शान्त नही हुआ। कतिपय हिन्दू साम्प्रदायिकों ने भारत में हिन्दूराज्य प्रतिष्ठित करने तथा अपने हृदय की ज्वाला को शान्त करने के लिये गान्धी जी की हत्या करना निश्चित किया। गान्धी जी को साम्प्रदायिक षड्यन्त्र का शिकार होना पड़ा। उनकी प्रार्थना सभा में बम फेका गया पर वार खाली गया। इसके दस दिन पश्चात् नाथूराम विनायक गोडसे नामक एक व्यक्ति ने ३० जनवरी सन् १९४८ को लगभग दो गज के फासले से, प्रार्थना सभा में जाते हुए गान्धी जी पर तीन बार गोली चलायी और इस तरह उनकी निर्मम हत्या कर डाली। हिन्दू साम्प्रदायिकता के कतिपय पुजारियों ने हर्षान्वित हो मिठाई बांटी, पर देश में हाहाकार मच गया। हिन्दू

साम्प्रदायिकता दोषी ठहराई गयी। उसे अभिशाप समझा जाने लगा और कुछ समय के लिये उसे तिरस्कार के दामन में अपना मुंह छिपाना पड़ा। सरकार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को गैरकानूनी घोषित कर उसके प्रमुख नेताओं और कार्यकर्ताओं को नजरबन्द कर दिया।

नरेन्द्रदेव की श्रद्धाञ्जलि

गान्धी जी के निधन पर युक्त प्रान्त की असेम्बली में उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि 'महात्मा जी इस देश के सर्वश्रेष्ठ मानव थे, इसी लिये हम उनको राष्ट्रपिता कहते हैं' 'महात्मा गान्धी ने भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति को, उसकी पुरातन शिक्षा को परिष्कृत कर युग धर्म के अनुरूप उसको नवीन रूप प्रदान कर, उसमें वर्तमान युग के नवीन सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्य का पुट देकर एक अद्भुत एवं अनन्यतम सामञ्जस्य स्थापित किया। उन्होंने इस नवयुग की जो अभिलाषाएँ हैं, जो उसके उद्देश्य हैं, उनका सच्चा प्रतिनिधित्व किया। इसीलिये वे भारतवर्ष के ही महापुरुष नहीं थे अपितु सारे संसार के महापुरुष थे'। नरेन्द्रदेवजी ने बताया कि गान्धीजी की 'राष्ट्रीयता उदारता से पूर्ण थी, ओतप्रोत थी', उनका 'हृदय विशाल' था, उन्होंने 'सामान्य जीवन में जनता के स्तर को ऊँचा किया—जनता में स्वाभिमान को उत्पन्न किया'। नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि गान्धीजी की अहिंसा की व्याख्या 'अद्भुत, बेजोड़ और निराली' थी, वह एक 'महान् अस्त्र है जो समाज की आज की विषमताओं का, जो वैमनस्य और विद्वेष का कारण हैं, उन्मूलन करना चाहती है'। गान्धीजी की 'अहिंसा की शिक्षा केवल व्यक्तिगत आचरण की शिक्षा नहीं है'। वह तो हमें सिखाती है कि 'सामाजिक और आर्थिक विषमता को दूर कर, मनुष्य को मानवता से विभूषित कर, आत्मोन्नति के लिये सबको ऊंचा उठा कर जाति-पाँति और सम्प्रदाय के बन्धनों को तोड़ कर ही हम अहिंसा की सच्चे अर्थों में प्रतिष्ठा कर सकेंगे'। अन्त में नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि गान्धीजी के लिये हम सब की सच्ची श्रद्धाञ्जलि यही हो सकती है कि हम इस अवसर पर शपथ लें, प्रतिज्ञा करें कि हम आजीवन उनके बताये मार्ग पर चलेंगे, जो जनतन्त्र का मार्ग, समाज में समता लाने का मार्ग, विविध धर्मों और सम्प्रदायों में सामञ्जस्य स्थापित करने का मार्ग है, जो छोटे से छोटे मानव को भी

समान अधिकार देता है, जो किसी मानव का पक्षपात नहीं करता जो सबको समानरूप से उठाना चाहता है'।

कांग्रेस का आर्थिक लक्ष्य

स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद कांग्रेस के लिये अपना आर्थिक लक्ष्य निश्चित करना जरूरी हो गया था। कुछ लोगों की राय थी कि समाजवादी जनतन्त्र की स्थापना कांग्रेस का भावी लक्ष्य हो। पर मार्च सन् १९४८ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने 'कोआपरेटिव कामनवेल्थ' अपना लक्ष्य निश्चित किया। इस लक्ष्य की रूपरेखा बड़ी ही अस्पष्ट और अनिश्चित थी। कांग्रेस के बड़े बड़े नेताओं का भी इस सम्बन्ध में एक मत नहीं था। सब की अपनी अपनी व्याख्या थी। पण्डित नेहरू का कहना था कि इस नये लक्ष्य का तो धीरे धीरे विकास हो रहा है, फिर उसकी व्याख्या कैसे की जा सकती है।

सम्बन्ध विच्छेद

आजादी मिल जाने की सम्भावना हो जाने के बाद ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बहुत से सदस्य सोचने लगे थे कि अब जनतान्त्रिक समाजवादी समाज के लक्ष्य की पूर्ति के लिये कांग्रेस से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेना ही ठीक होगा। मार्च सन् १९४७ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने अपना नाम बदल कर सोशलिस्ट पार्टी रखा और निश्चय किया कि भविष्य में उसके सदस्यों के लिये कांग्रेस का सदस्य होना जरूरी नहीं होगा, यानी वे समाजवादी जो कांग्रेस के सदस्य नहीं हैं वे भी सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य हो सकते हैं। पर आचार्य नरेन्द्रदेव के आग्रह पर पार्टी ने कांग्रेस से अपना सम्बन्ध बनाये रखना निश्चय किया। पार्टी के पुराने नेता और कार्यकर्ता कांग्रेस के सदस्य बने रहे। पर गान्धीजी के निधन के बाद मार्च सन् १९४८ में कांग्रेस ने निश्चय किया कि किसी दूसरी पार्टी का सदस्य कांग्रेस का सदस्य नहीं हो सकता। कहा जाता है कि डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद इस निर्णय के पक्ष में नहीं थे। उनका विचार था कि गान्धीजी की निर्मम हत्या के बाद देश की परिस्थिति को सँभालने के लिये जरूरी है कि कोई ऐसा कार्य न किया जाय कि जिसके कारण उन लोगों को, जिन्होंने देश की स्वतन्त्रता के लिये कुर्बानियां की हैं और जो साम्प्रदायिक शक्तियों से संघर्ष करने को तैयार हैं, कांग्रेस छोड़ देना पड़े। उन्हें इस बात का भी ध्यान

था कि गान्धीजी चाहते थे कि सोशलिस्ट कांग्रेस में बने रहें। पर श्री बल्लभ भाई पटेल सोशलिस्टों को कांग्रेस से निकालनेपर तुल गये थे, क्योंकि श्री जयप्रकाश नारायण आदि सोशलिस्ट नेताओं ने केन्द्रीय सरकार विशेषत: उसके गृह मन्त्री वल्लभ भाई पटेल पर यह आरोप लगाया था कि उन्होंने गान्धीजी की सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं किया, साम्प्रदायिक शक्तियों की गति-विधि की आवश्यक रोकथाम नहीं की।

कांग्रेस के इस निर्णय के बाद कि किसी दूसरी पार्टी का सदस्य कांग्रेस का सदस्य नहीं रह सकता आचार्य नरेन्द्रदेव और दूसरे समाजवादियों ने सोशलिस्ट पार्टी को भंग कर कांग्रेस में बने रहने के बजाय कांग्रेस को छोड़ देने का निश्चय किया। इसमें सन्देह नहीं कि यदि कांग्रेस ने ऐसा निर्णय नहीं किया होता तो आचार्यजी गान्धीजी के निधन के फौरन बाद अपने समाजवादी साथियों को कांग्रेस छोड़ने की सलाह नहीं देते। पर जैसा कि आचार्यजी ने अपने एक लेख में साफ किया है समाजवादी पार्टी के सदस्यों को कांग्रेस छोड़ने के कई ऐसे गम्भीर कारण थे जिसकी वजह से उन्हें कांग्रेस छोड़ना ही होता और शायद आचार्यजी कुछ रुकने का मशवरा नहीं देते तो मार्च सन् १९४७ में ही सोशलिस्ट पार्टी ने कांग्रेस छोड़ने का निश्चय कर लिया होता।

नासिक अधिवेशन

कांग्रेस के नये संविधान के बनने के कुछ दिन बाद ही मार्च सन् १९४८ में श्री पुरुषोत्तम त्रिकमदास की अध्यक्षता में महाराष्ट्र के प्रसिद्ध नगर नासिक में सोशलिस्ट पार्टी का अधिवेशन हुआ। इसमें निश्चय हुआ कि सोशलिस्ट पार्टी के सब सदस्य कांग्रेस से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लें। इस अधिवेशन में राजनीतिक स्थिति पर प्रस्ताव पेश करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने कांग्रेस छोड़ने का समर्थन किया तथा उसकी नीति तथा गति-विधि की समीक्षा की। उन्होंने कहा कि कांग्रेस एक राष्ट्रीय मोर्चा थी, गान्धीजी उसे 'जन सेवक का छत्ता' बनाना चाहते थे, उसे 'लोकसेवक संघ' का रूप देना चाहते थे, पर उसने अपने को एक राजनीतिक दल में बदल डाला है। 'शक्ति का फल चखना' ही उसका काम हो गया है। एक तरफ सोशलिस्टों को

कांग्रेस से बाहर निकाला जाता है और दूसरी तरफ उसमें पूंजीपतियों और साम्प्रदायवादियों को शामिल किया जाता है। कांग्रेस के लक्ष्य और कांग्रेस सरकारों के व्यवहार में भारी अन्तर पैदा हो गया है। अब कांग्रेस के अन्दर जनतान्त्रिक प्रक्रियाएं असम्भव हो गयी हैं। उसमें बने रहना असम्भव है। कांग्रेस में सत्तावाद बढ़ रहा है। कांग्रेस सरकारें सर्वाधिकारी हो गयी हैं। सत्ताधारी दल के विरुद्ध एक 'जनतान्त्रिक, स्वतन्त्र, निर्भीक और स्वस्थ विरोध की' माँग है। सोशलिस्ट पार्टी ही इस माँग को पूरा कर सकती है। इतिहास की इस चुनौती को हमें स्वीकार करना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि कांग्रेस 'निर्जीव' होती जा रही है, राष्ट्र आशा की एक नयी किरण की खोज में है, उसे एक ऐसे स्रोत की खोज है जिससे नयी आशा उत्पन्न हो। इस स्रोत का उद्गम किसानों और मजदूरों में है। इस नयी आशा की किरण की खोज सोशलिस्ट पार्टी का उत्तरदायित्व है। हमें कांग्रेस से अलग होकर कुछ समय बियाबान में रहना होगा, पर मुझे विश्वास है कि हम समाजवादी समाज का विकास करने में, जनतान्त्रिक समाजवाद को प्रतिष्ठित करने में सफल होंगे। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि 'जनतन्त्र की जड़ें जनता में हैं, अगर जनता सबल है, तो राज्य भी सबल होगा'।

अपने इस व्याख्यान में नरेन्द्रदेवजी ने यह भी कहा कि 'माउन्टबैटन योजना को मंजूर करके कांग्रेस ने अपने मौलिक सिद्धान्तों को छोड़ दिया। निःसन्देह, देश स्वतन्त्र हो गया। पर स्वतन्त्रता मौत और तबाही का पैगाम लेकर आयी। पुरानी बीमारियां उभर आयीं। जो कुछ हमने स्वतन्त्रता के फौरन बाद देखा वैसा इतिहास ने कभी नहीं देखा। साम्प्रदायिक विद्वेष कत्लेआम में फूट पड़ा। सामन्तशाही तथा स्थिर स्वार्थों से समर्थित सम्प्रदायवाद सारे देश में एक अन्धाधुन्ध तूफान की तरह फैल गया। विभाजन के बाद उन्मुक्त साम्प्रदायिक घृणा और प्रकोप हमारे नये राज्य की जड़ों पर ही आघात करने का प्रयत्न कर रहे हैं'। उन्होंने कहा कि 'भारत को धर्मनिरपेक्ष जनतन्त्र के लिये सुरक्षित रखने के लिये हमें इन प्रतिक्रियावादी शक्तियों से संघर्ष करना होगा'। राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिये 'धर्म-निरपेक्ष जनतन्त्र का वातावरण' आवश्यक है। 'साम्प्रदायिक घृणा और

प्रकोप को मिटा देने के लिये' सोशलिस्टों को कांग्रेस से मिल कर संघर्ष करने को तैयार होना चाहिए।

आचार्य नरेन्द्रदेव के विचार में साम्प्रदायिक शक्तियों के साथ-साथ कम्युनिस्टों से भी संघर्ष करना होगा, क्योंकि उनकी निष्ठा देशातीत है और उन्हें नये राष्ट्र की तनिक भी चिन्ता नहीं है। उन्होंने कहा कि कांग्रेस मजदूरों को सम्बोधित करते हुए कहती है कि 'पैदा करो या मरो' और वे उनसे त्याग की माँग करती है। पर इस नारे को मजदूरों के प्रति ही प्रयोग करना ठीक नहीं। पूंजीपतियों और दूसरे धनियों को भी यह नारा सम्बोधित करना चाहिए। उनसे भी त्याग की माँग करनी चाहिए। अगर स्थिर स्वार्थ चार कदम आगे बढ़ने को तैयार होंगे तो फिर मजदूर भी पीछे रहने वाले नहीं हैं।

सोशलिस्ट पार्टी के नासिक अधिवेशन में श्री जयप्रकाश नारायण प्रधान मन्त्री तथा सर्वश्री नाना साहब गोरे, प्रेमभसीन, के० वी० मेनन, और सुरेश देसाई संयुक्त मन्त्री नियुक्त हुए।

श्री सुरेश देसाई जो सन् १९४२ के संघर्ष में सक्रिय भाग लेने के बाद सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हुए थे कार्यालय के कार्य में विशेष रुचि और क्षमता रखते थे। उन्हें केन्द्रीय कार्यालय के काम का प्रबन्ध ही सौंपा गया। आगे चल कर सन् १९६० में वह पार्टी की ओर से राज्य सभा के सदस्य चुने गये, पर कुछ वर्षों के बाद वह कांग्रेस में शामिल हो गये। पूंजीवाद की पुष्टि ही इस समय उनका मुख्य कार्य है।

डाक्टर के० वी० मेनन ने संयुक्त राष्ट्र अमरीका में समाज विज्ञान की शिक्षा प्राप्त की थी। हिन्दुस्तान लौटने पर उन्होंने कुछ समय पण्डित जवाहरलाल नेहरू द्वारा संचालित नागरिक स्वतंत्रता संघ (Civil Liberties Union) में काम किया। फिर उसके बाद वे समाजवादी आन्दोलन में शामिल हो गये। मेनन साहब मालाबार के रहने वाले थे। मालाबार उस समय मद्रास प्रान्त का हिस्सा था। मेनन साहब का मुख्य कार्यक्षेत्र मालाबार ही था, पर वे सारे दक्षिण भारत के समाजवादी आन्दोलन के चार्ज में थे।

प्रेम भसीन

श्री प्रेमभसीनजी ने मुन्शी अहमद दीन के सम्पर्क और नेतृत्व में मार्क्सवाद का अध्ययन और समाजवाद का कार्य प्रारम्भ किया।

प्रारम्भ में वे मार्क्स, एंगिल्स और लेनिन के साथ-साथ स्तालिन से भी काफी प्रभावित थे, स्तालिन की नीति-रीति गति-विधि का भी वे समर्थन करते थे। पर आगे चल कर वे शुद्ध जनतान्त्रिक समाजवादी बन गये। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, धर्मनिरपेक्षता, जनतन्त्र और समाजवाद पर उनकी अटल निष्ठा है। वे व्यक्ति पूजा, तानाशाही एवं कम्युनिस्टों के कुचक्रों और राष्ट्रविरोधी नीतियों के कट्टर विरोधी हैं। वे समता के आधार पर समाजवादी शक्तियों के अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के समर्थक हैं, पर अन्तर्राष्ट्रीयता के नाम पर किसी विशेष देश के प्रभुत्व को स्वीकार करने को वे तैयार नहीं हैं, किसी बाहरी कम्युनिस्ट शक्ति की सहायता से समाजवादी समाज प्रतिष्ठित करने की चेष्टा को वे राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिये घातक समझते हैं। उनका सार्वजनिक जीवन विद्यार्थी आन्दोलन से प्रारम्भ हुआ। सन् १९३७ में बी० ए० की परीक्षा पास करने के बाद ही वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शरीक हो गये और सन् १९३९ में एम० ए० की परीक्षा पास करने के बाद वे सक्रिय राजनीति में कूद पड़े। विश्व युद्ध के शुरू होते ही उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के निर्णय के अनुसार जनता को स्वतन्त्रता-संघर्ष के लिये तैयार करना शुरू कर दिया और सन् १९४० में वे छिप कर काम करने लगे। सन् १९४१ में वे पुलिस द्वारा पकड़ लिये गये और सन् १९४६ तक उन्हें जेल की यातनाएँ सहनी पड़ीं। फरवरी सन् १९४७ में वे सोशलिस्ट पार्टी की कार्यसमिति के सदस्य निर्वाचित हुए और सन् १९४८ में संयुक्त मन्त्री नियुक्त होने पर दिसम्बर सन् १९५३ तक वे इसी पद पर काम करते रहे। इस बीच सन् १९४९ में नेपाल दिवस पर डाक्टर लोहिया के साथ गिरफ्तार हुए और दो महीने जेल में बिताये। सन् १९५३ में किसानों की बेदखलियों के विरुद्ध संघर्ष करते हुए हिसार में फिर गिरफ्तार कर लिये गये। सन् १९५५ में श्री विपिनपालदास के त्यागपत्र देने पर उनकी जगह फिर संयुक्त मन्त्री नियुक्त हुए। सन् १९६२ में प्रजासोशलिस्ट पार्टी के भोपाल अधिवेशन में प्रधान मन्त्री नियुक्त हुए और उसके बाद दोनों समाजवादी पार्टियों के विलयन के अनन्तर संयुक्त मन्त्री की हैसियत से काम करते हुए फरवरी सन् १९६५ में उन्होंने प्रजासोशलिस्ट पार्टी के प्रधान मन्त्री का उत्तरदायित्व फिर ग्रहण किया। जनतान्त्रिक समाजवाद के

सिद्धान्तों और नीति-रीति पर उनकी अटल निष्ठा प्रजासोशलिस्ट पार्टी का एक मुख्य आधार है।

विधान-सभा से इस्तीफा

सन् १९४६ में कांग्रेस के सदस्य की हैसियत से ही सोशलिस्टों ने विधान सभाओं के चुनाव में हिस्सा लिया था और वे युक्त प्रान्त की विधान सभा के सदस्य चुने गये थे। इसलिये सन् १९४८ में सोशलिस्ट विधायकों ने कांग्रेस छोड़ने के साथ-साथ विधान सभा से भी इस्तीफा देना उचित समझा, कुछ व्यक्तियों का ऐसा विचार जरूर था कि जिस तप और कुर्बानी के आधार पर कांग्रेस ने चुनाव में विजय प्राप्त की उनमें सोशलिस्टों का दूसरे नेताओं और कार्यकर्ताओं से कम योग नहीं था और कांग्रेस से अलग हो जाने पर भी उन्हें उन कुर्बानियों के बल पर विधान सभा का सदस्य बने रहने का पूरा हक था। ऐसा भी अनुमान किया जाता था कि यदि विधान सभा से इस्तीफा नहीं दिया जाय तो नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व में कम से कम ५० सदस्यों का एक तगड़ा विरोधी दल बनाया जा सकता है। जो भी हो सर्वश्री नरेन्द्रदेव, रघुकुलतिलक, मलखानसिंह, हरिश्चन्द्र बाजपेयी, बुद्धिसिंह, ईश्वरशरण, गजाधरप्रसाद, चन्द्रहास, सर्वजीतलाल वर्मा, दामोदरदास, चन्द्रिकाप्रसाद, रामनरेशसिंह, सिद्धेश्वरराय ने विधान मण्डल से इस्तीफे दे दिये। श्री रघुकुलतिलक, जो मेरठ के एक प्रसिद्ध धनी-मानी परिवार के सुशिक्षित रत्न हैं, उस समय पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी थे। उन्होंने विधान सभा के साथ-साथ इस पद से भी इस्तीफा दे दिया।

३१ मार्च सन् १९४८ को इन इस्तीफों के सम्बन्ध में आचार्य नरेन्द्रदेव ने विधान सभा में जो वक्तव्य दिया वह बहुत ही अनूठा था। उसमें रोष, कड़वाहट और अकड़ का अभाव तथा प्रेम, सन्ताप और विनय का बाहुल्य था। आचार्यजी ने कहा कि कांग्रेस से अलग होने का निर्णय कठोर कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर ही तथा अपने आदर्शों और उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ही किया गया है और उनका यह कार्य किसी प्रकार की कटुता या विद्वेष और विरोध भावना से प्रेरित नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि सन्तप्त हृदय से कांग्रेस छोड़ते समय वह और उनके साथी विश्वास दिलाना चाहते हैं कि विरोधी दल

का कर्तव्य पालन करते हुए तथा अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहते हुए वे पुराने आदर्शों और उच्च उद्देश्यों के अधिकारी बने रहने का प्रयत्न करेंगे, उनकी आलोचना सदा किसी उद्देश्य से होगी, वे व्यक्तिगत विवाद में नहीं पड़ेंगे, व्यक्तिगत आक्षेपों से सदा बचने का प्रयत्न करेंगे, राजनीतिक जीवन को स्वस्थ और नीतिपूर्ण बनाने की कोशिश करेंगे, और इन बातों में महात्माजी का उपदेश उनका पथ-प्रदर्शन करेगा। उन्होंने यह आशा भी प्रकट की कि कांग्रेस के पुराने साथी और सहकर्मियों के साथ उनका सम्बन्ध मधुर रहेगा और हमारे समान राजनीतिक आदर्श और हमारी समान निष्ठा अब भी हमको एक प्रकार से एक सूत्र में बांधे रहेगी।

कांग्रेस से अलग होने के कुछ दिन बाद उत्तर प्रदेश की प्रान्तीय कार्यसमिति ने आचार्यजी आदि कांग्रेस समाजवादियों की पुरानी सेवाओं के प्रति अपनी सराहना व्यक्त करते हुए उनसे कांग्रेस में फिर शामिल होने का अनुरोध किया। इस प्रस्ताव के लिये अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने फिर से कांग्रेस में शामिल न होने की मजबूरी जाहिर की। उन्होंने लिखा कि कांग्रेस के नये विधान के अनुसार अपनी पार्टी को खत्म करके ही वे कांग्रेस में रह सकते हैं, जिसके लिये वे तैयार नहीं हैं। पत्र के अन्त में उन्होंने लिखा कि वे अपने पुराने मित्रों का बड़ा आदर करते हैं और वे उनसे मैत्री के सम्बन्ध बनाये रखने का सदा प्रयत्न करते रहेंगे। उन्होंने लिखा कि उन्हें इस बात का सन्तोष है कि इस निर्दयी अन्यायपूर्ण संसार में उनके पुराने साथी उनके निर्णय को नापसन्द करते हुए भी उदारता से उनका मूल्यांकन करने को और उनकी पुरानी सेवाओं को तसलीम करने को तैयार हैं।

उपचुनाव

सोशलिस्टों द्वारा विधान सभा की सदस्यता छोड़ने के बाद दो तीन महीने के अन्दर ही उपचुनाव कराये गये और इन सब में कांग्रेस ने सोशलिस्टों के विरुद्ध उम्मीदवार खड़े किये। आचार्यजी के विरुद्ध बाबा राघवदास जी खड़े किये गये। इन उपचुनावों में कांग्रेस ने राजनीतिक प्रश्नों पर पर्दा डाल कर अप्रासंगिक प्रश्नों को उपस्थित कर जनता को भ्रम में डालने की पूरी कोशिश की। जनता की तर्कशक्ति और

बुद्धि के स्थान पर परम्पराजनित विश्वासों, भावनाओं और रूढ़ियों का उद्‌बोधन किया गया। कांग्रेसजनों ने समाजवादियों पर पितृघात का दोष लगाया, जनतान्त्रिक विरोध को भी भारतीय संस्कृति के विपरीत बताया तथा निर्वाचकों को प्रभावित करने के लिये शासनतन्त्र का प्रयोग किया और अनेक भ्रष्टाचारों का आश्रय लिया। आचार्य नरेन्द्रदेव के विरुद्ध तो गान्धीजी की आत्मा का बार-बार आह्वान किया गया, निर्वाचकों को यह बताया गया कि आचार्यजी नास्तिक हैं, धर्म और संस्कृति को भ्रष्ट करना चाहते हैं, जबकि बाबा राघवदास भारतीय संस्कृति के ज्ञाता और पोषक हैं तथा धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिये ही महात्मा गान्धीजी की दैवीप्रेरणा से आचार्यजी के विरुद्ध चुनाव लड़ रहे हैं। इन हथकण्डों से आचार्यजी आदि सभी समाजवादियों ने ऐसा अनुभव किया कि कांग्रेस से विरोधी दलों के प्रति बरती जाने वाली जनतान्त्रिक सद्‌भावना की आशा भी नहीं की जा सकती। उनके चित्त में कम से कम कुछ कांग्रेसी नेताओं के प्रति अश्रद्धा और कड़वाहट जरूर पैदा हुई। आचार्यजी को जहां इस बात का दुःख था कि कांग्रेसजनों ने शायद किसी कांग्रेसी नेता के इशारे पर जनतान्त्रिक मर्यादाओं का उल्लंघन किया, वहां उन्हें इस बात का भी सन्तोष था कि कतिपय कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने उनसे पुरानी सद्भावना और मधुर सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयत्न किया।

कांग्रेस के इस गलत प्रचार से क्षुब्ध हो सोशलिस्ट पार्टी के कुछ कार्यकर्ता कांग्रेस को वैसा ही मुंहतोड़ जवाब देना चाहते थे। पर आचार्यजी ने ऐसा करने की आज्ञा नहीं दी? उन्होंने कहा कि छोटे और असत्य प्रचारों से हिन्दुस्तान में सच्चे जनतन्त्र की स्थापना नहीं की जा सकती। जनतन्त्र की रीढ़ सत्य है, सत्य को छोड़ कर जनतन्त्र की स्थापना नहीं हो सकती और जनतन्त्र के बगैर समाजवाद की प्रतिष्ठा असम्भव है। कांग्रेस के जनतन्त्र विरोधी हथकण्डों और कुचक्रों के लिये पण्डित गोविन्द बल्लभ पन्त ही जिम्मेदार समझे जाते थे। फिर भी जब पन्तजी फैजाबाद गये, तब आचार्यजी ने अपने समाजवादी कार्यकर्ताओं को आदेश दिया कि पन्तजी के मान की रक्षा हो, उनकी शान के खिलाफ कोई बात न की जाय। इसी तरह जब फैजाबाद के एक कार्यकर्ता ने कुछ दबाव डाल कर नरेन्द्रदेवजी के पक्ष में वोट मांगे,

तब उन्होंने उसके कार्य को बुरा बताते हुए कहा कि चाहे वे चुनाव में हार जाएँ, पर इस तरह की बात नहीं होने देंगे।

इन उपचुनावों में सोशलिस्टों ने कुछ क्षेत्रों में ३८, ४२ और ४३ प्रतिशत तक वोट प्राप्त कर लिये, पर सभी क्षेत्रों में वे पराजित हुए। इसका जनता के मन पर बड़ा घातक प्रभाव पड़ा, सोशलिस्टों को भी बहुत क्षोभ हुआ। इस अवसर पर आचार्यजी ने अपनी पराजय को भी दूसरे समाजवादी उम्मीदवारों के क्षोभ दूर करने के लिये इस्तेमाल किया और हर प्रकार से सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहित किया। आचार्यजी का अदम्य साहस और उत्साह सोशलिस्ट पार्टी के बड़े आधार थे।

१३. किसानों की समस्या

कौटुम्बिक वातावरण

नरेन्द्रदेवजी के दादा श्री कुंजबिहारीलालजी मध्यम श्रेणी के एक साधारण व्यापारी थे। पर उनके पिता श्री बलदेवप्रसादजी एक प्रतिभाशाली वकील थे। उनकी काफी आमदनी थी। उन्होंने काफी दान किया। फिर भी अपनी कमाई के बल पर उन्होंने एक अच्छी खासी जमींदारी इकट्ठी कर ली और अवध के अच्छे जमींदारो में उनकी गिनती होने लगी। पर इसका नरेन्द्रदेवजी के जीवन और विचारों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। पिता की उदार सांस्कृतिक और धार्मिक प्रेरणा के कारण सामन्तशाही वातावरण के बजाय सांस्कृतिक वातावरण में ही नरेन्द्रदेवजी के जीवन का विकास हुआ। जमींदारों की ऐंठ, अकड़ और वाह्य आडम्बर के बजाय विनय, शील और करुणा से ही उनका जीवन अनुप्राणित हुआ।

पिताजी के निधन के बाद नरेन्द्रदेवजी के बड़े भाई महेन्द्रदेवजी ही कौटुम्बिक सम्पत्ति की देखभाल करते थे। नरेन्द्रदेवजी ने स्वयं इसमें कोई दिलचस्पी नहीं ली। प्रगतिशील विचारों का अध्ययन अध्यापन तथा देशसेवा ही उनका काम था। स्वतन्त्रता, सांस्कृतिक उत्थान, अन्याय का प्रतिरोध और शोषितों के हितों की रक्षा एवं अभिवृद्धि ही उनके जीवन का लक्ष्य था। कृषिप्रधान देश में किसानों की समस्या ही गरीब जनता की प्रमुख आर्थिक समस्या थी। इस समस्या का समुचित समाधान देश की एक बड़ी ऐतिहासिक आवश्यकता थी। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद तो इस समस्या ने काफी उग्ररूप धारण कर लिया था और राष्ट्र के स्वतन्त्रता संघर्ष में संलग्न कार्यकर्ताओं के लिये इसकी उपेक्षा असम्भव ही थी।

किसान आन्दोलन

वकालत के धन्धे को छोड़कर सारा समय राष्ट्र की सेवा में लगाने का निश्चय करने के तुरन्त बाद ही नरेन्द्रदेवजी ने फैजाबाद जिले के

किसान आन्दोलन में डटकर काम किया। सन् १९३० में किसानों की दशा की जानकारी प्राप्त करने के लिये वे उत्तर प्रदेश के कई जिलों में गये और सन् १९३२ में प्रान्तीय कांग्रेस द्वारा संगठित कमेटी के सदस्य की हैसियत से सारे प्रान्त के किसानों की दयनीय अवस्था का उन्होंने अध्ययन किया।

सन् १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना के बाद किसानों का संगठन और उनके हितों की रक्षा एवं अभिवृद्धि ही आर्थिक क्षेत्र में नरेन्द्रदेवजी का एक मुख्य काम था। उनकी धारणा थी कि भूमि व्यवस्था में कतिपय सुधारों द्वारा किसानों की समस्या का समाधान नहीं हो सकता। जमींदारी प्रथा का उन्मूलन ही इस समस्या का सही हल है। देश की आर्थिक प्रगति और किसानों की अभिवृद्धि इसीमें निहित है। इस काम के लिये किसानों को वर्ग संघर्ष के लिये तैयार करना वे अत्यन्त आवश्यक समझते थे। उनके विचार में क्रान्तिकारी राजनीतिक और आर्थिक संघर्षों द्वारा ही किसानों का उद्धार हो सकता है और इसलिये सम्प्रति सामाजिक परिस्थिति में हिन्दुस्तानी किसान मूलत क्रान्तिकारी हैं। उनकी क्रान्तिकारी आवश्यकताओं के आधार पर उनकी क्रान्तिकारी भावनाओं को जागृत करना तथा राजनीतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता-संघर्ष के लिये उन्हें संगठित और तैयार करना नरेन्द्रदेवजी नितान्त आवश्यक समझते थे। वे किसानों की माँगों के आधार पर उनकी क्रान्तिकारी वर्गचेतना को जागृत करके कृषिक्रान्ति को समाजवादी क्रान्ति का अंग बनाते हुए किसानों और मजदूरों के संयुक्त क्रान्तिकारी प्रयत्नों के जरिये आजादी हासिल करना और समाजवादी समाज स्थापित करना चाहते थे। वे किसानों को समाजवाद की भावना में दीक्षित कर सहकारी संस्थाओं के माध्यम से उन्हें समाजवादी निर्माण कार्य में लगाना चाहते थे। उनका मत था कि सहकारिता में गाँवों और किसानों का भला है। स्वतन्त्र किसान के रूप में जनतन्त्र के आधार पर सहकारी समाज में गाँवों का पुनः निर्माण आवश्यक है। उनके मतानुसार इसी तरह किसान अपनी चिरकालीन दासता से छुटकारा पा सकता है। वे किसानों को सब प्रकार के शोषण से मुक्त कर सहकारिता के माध्यम से अपने बल पर खड़ा करना चाहते थे। वे किसानों के हितों के

समर्थक थे, पर किसानवाद के विरोधी थे। उनकी राय थी कि यह संकुचित किसानवाद सब प्रश्नों को किसानवर्ग के संकुचित दृष्टिकोण से देखता है, उसकी मनोवृत्ति मध्यमवर्गीय किसान की है और निम्न मध्यम श्रेणी का अर्थतन्त्र ही उसकी आर्थिक व्यवस्था का आधार है। आचार्यजी की राय में किसानवाद का दृष्टिकोण अवैज्ञानिक है और यह मनोवृत्ति किसान को जरूरत से अधिक महत्त्व प्रदान करती है। वे किसानों को समाजवाद का ऐतिहासिक महत्त्व समझाते हुए किसान आन्दोलन को समाजवादी रंग में रंगना चाहते थे।

नरेन्द्रदेवजी चाहते थे कि कांग्रेस किसानों और मजदूरों की सुसंगठित संस्थाओं को मान्यता प्रदान करते हुए उन्हें सामूहिक सदस्यता और प्रतिनिधित्व द्वारा अपने से सम्बद्ध करें। सन् १९३४ के बाद वे इसके लिये सतत प्रयत्न करते रहे। सन् १९३६ में उन्होंने प्रान्तीय कांग्रेस के सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय अभिभाषण में इस बात पर जोर देते हुए कहा कि जनता के दैनिक जीवन के आर्थिक संघर्ष को साम्राज्य विरोधी संग्राम से सम्बन्धित करने से ही जनता राष्ट्रीय आन्दोलन में सजीव भाग लेने को तैयार की जा सकती है। किसान और मजदूर का संगठन और उनकी संस्थाओं के साथ कांग्रेस का प्रत्यक्ष सम्बन्ध अत्यन्त आवश्यक है। मजदूर और किसान संघों के सदस्यों को कांग्रेस में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त होना चाहिए, केवल इसलिये नहीं कि कांग्रेस के सम्मुख उनका दृष्टिकोण रखा जा सके, किन्तु इसलिये कि वह कांग्रेस के निर्णयों को अधिकाधिक प्रभावित कर सकें। कांग्रेस के सदस्य की हैसियत से नहीं, किन्तु अपनी संस्थाओं के प्रतिनिधि की हैसियत से ही वे यह काम कर सकते हैं। कई बार किसानों और मजदूरों के संगठनों के सामूहिक सम्बन्ध तथा प्रतिनिधित्व के लिये कांग्रेस संविधान में संशोधन पेश किये गये, पर इन प्रयत्नों में कोई सफलता प्राप्त नहीं हुई। कांग्रेस के बहुमत ने गान्धीजी के नेतृत्व में सामूहिक सम्बन्ध के सिद्धान्त को मानने से इनकार कर दिया। फिर भी कांग्रेस पर किसानों का प्रभाव बढ़ता ही गया। राजनीतिक और आर्थिक परिस्थिति के साथ साथ समाजवादी शक्तियों का तथा गान्धीजी, नेहरू जी और कतिपय दूसरे नेताओं का नेतृत्व इस प्रभाव के मूल कारण थे। नरेन्द्रदेवजी का भी

इसमें विशेष योगदान था।

सन् १९३२ के सविनय अवज्ञा आन्दोलन के बाद बिहार, उत्तर प्रदेश, आन्ध्र आदि प्रान्तों में किसान आन्दोलन ने काफी जोर पकड़ा। विभिन्न प्रान्तों और जिलों में किसान सभाएँ संगठित हुईं और बड़े बड़े प्रान्तीय और जिला किसान सम्मेलन हुए जिनमें हजारों किसानों ने भाग लिया और उनकी माँगों को दोहराया गया। अखिल भारतीय किसान सभा की भी स्थापना हुई। उसका प्रथम अधिवेशन अप्रैल सन् १९३६ को बिहार प्रान्त के प्रमुख किसान नेता स्वामी सहजानन्द की अध्यक्षता में हुआ। इस सम्मेलन के आयोजन में संयुक्त प्रान्त के समाजवादी कार्यकर्ता सर्वश्री मोहनलाल गौतम, स्वामी भगवान आदि का काफी योगदान था। इसमें कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के नेता सर्वश्री अच्युत पटवर्धन और राममनोहर लोहिया ने जमींदारी उन्मूलन का जोरदार शब्दों में समर्थन किया।

उत्तर प्रदेश में किसान सभाओं के संगठन में नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व में समाजवादी शक्तियों का विशिष्ट योग था। इस कार्य में नरेन्द्रदेवजी के साथ जिन व्यक्तियों ने कार्य किया उनमें श्री मोहनलाल गौतम तथा स्वामी भगवान का विशिष्ट स्थान था। स्वामी जी एक गरीब किसान परिवार के साहसी राष्ट्रभक्त समाजसेवी थे। उन्होंने राष्ट्र के स्वतन्त्रता-संघर्षों में डट कर भाग लिया और किसान आन्दोलन का आजीवन नेतृत्व किया। मार्च सन् १९४९ में स्वामीजी अखिल भारतीय किसान पंचायत की संगठन समिति के उपाध्यक्ष मनोनीत हुए और सन् १९५० में सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्य समिति के सदस्य चुने गये। श्री मोहनलाल गौतम ने भी सन् १९३४ से सन् १९४७ तक नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व में विभिन्न पदों से समाजवादी आन्दोलन के साथ साथ किसान आन्दोलन में डट कर काम किया।

अखिल भारतीय किसान सभा

सन् १९३९ में नरेन्द्रदेवजी अखिल भारतीय किसान सभा के गया अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये। उस समय प्रोफेसर रंगा किसान सभा के प्रधान मन्त्री थे। दोनों के सामाजिक दृष्टिकोण और लक्ष्य कुछ भिन्न थे। नरेन्द्रदेवजी मार्क्सवादी थे, उनका सामाजिक

विश्लेषण मूलतः मार्क्सवादी था। समाजवादी समाज की स्थापना उनका लक्ष्य था। प्रोफेसर रंगा को नरेन्द्रदेवजी का मार्क्सवादी विश्लेषण तथा किसानवाद की समीक्षा स्वीकार नहीं थी। पर नरेन्द्रदेवजी की तरह प्रोफेसर रंगा भी सामन्तशाही के विरोधी और जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के पक्ष में थे। दोनों ही राष्ट्रवादी थे और स्वतन्त्रता संघर्ष के वीर सेनानी थे। दोनों राष्ट्र की स्वतन्त्रता तथा किसानों के उद्धार के लिये कांग्रेस और किसान संगठन के सहयोग को जरूरी समझते थे और कम्युनिस्टों के कांग्रेसविरोधी प्रचार को देश के लिये हानिकारक समझते थे।

इस सम्मेलन की सफलता में बिहार के प्रमुख किसान नेता स्वामी सहजानन्द तथा बिहार की कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के प्रमुख नेताओं और कार्यकर्ताओं का विशिष्ट योगदान था। सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, रामनन्दन मिश्र, जदुनन्दन शर्मा, वागेश्वर मिश्र, रामवृक्ष बेनीपुरी, रामचन्द्र शर्मा आदि का सक्रिय सहयोग था। गया तो उस समय कांग्रेस समाजवादी आन्दोलन का गढ़ था। स्थानीय कार्यकर्ताओं के बलबूते पर ही वहां किसान सभा का अधिवेशन निमन्त्रित किया गया था तथा उसकी शानदार कामयाबी उन्हीं के सतत प्रयत्नों का परिणाम था।

आचार्य नरेन्द्रदेवजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में किसान सभाओं और कांग्रेस संगठनों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों पर जोर दिया और कहा कि जहां औपनिवेशिक शोषण और आधिपत्य से मुक्ति की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुये किसान सभाओं को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के प्रतीक और साम्राज्य विरोधी संघर्ष के प्रमुख उपकरण कांग्रेस के साथ सहयोग करना चाहिए; वहां कांग्रेस को भी समझना चाहिए कि किसान सभाओं के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार और राष्ट्रीय आधार पर उनका विकास ही देश की प्रगति के हित में है।

इस गया अधिवेशन में किसान सभा ने नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व में निश्चय किया कि कांग्रेस को उसके साम्राज्यविरोधी संघर्ष में किसान सभाओं द्वारा सहयोग प्रदान किया जाय और इस तरह देश में एक स्वतन्त्र जनतान्त्रिक राज्य स्थापित किया जाय। उसने निश्चय किया कि किसानों के दिन प्रतिदिन के संघर्षों को एक बृहद् साम्राज्य विरोधी

संघर्ष में तथा कृषिक्रान्ति में परिपक्व किया जाय, जिसके द्वारा किसान अपनी जमीन के मालिक बन जायं, राज्य और किसानों के बीच के सब मध्यवर्ती शोषकों के शोषण का अन्त हो, कर्जे के बोझ से किसानों का छुटकारा हो और वे अपने श्रम के लाभ का पूरा-पूरा उपभोग कर सकें।

इस सम्मेलन ने निश्चय किया कि किसानों के राजनीतिक संघर्षों को तीव्र किया जाय, सरकार द्वारा आयोजित भारतीय संघ व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता की जानकारी किसानों को करायी जाय, आने वाले देशव्यापी संघर्ष के औचित्य का उनमें प्रचार किया जाय तथा कांग्रेस, अखिल भारतीय किसान सभा, अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस और दूसरे साम्राज्य विरोधी संगठनों का एक संयुक्त मोर्चा बनाया जाय।

किसान पंचायत

जब सन् १९४२ के स्वतन्त्रता संघर्ष में कांग्रेस के वे सब नेता और कार्यकर्ता जेल चले गये जो किसान सभाओं में काम करते थे तब उनकी अनुपस्थिति में कम्युनिस्टों ने किसान सभाओं पर अपना प्रभुत्व जमा लिया, उनको अपने रंग में रंग लिया। स्वतन्त्रता संघर्ष के खत्म होने पर एक नये किसान संगठन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। सन् १९४६ में स्वामी सहजानन्द और श्री इन्दुलाल याज्ञिक ने एक किसान संघ बनाया। उसमें सब विचारों के लोग सम्मिलित हो सकते थे। पर ये दोनों कम्युनिस्ट विचारधारा से काफी प्रभावित थे और उनके द्वारा सञ्चालित किसान संघ भी बहुत हद्तक कम्युनिस्ट रंग में ही रंग गया। मार्च सन् १९४९ में सोशलिस्ट पार्टी ने अपने पटना अधिवेशन में किसानों और मजदूरों की संस्थाओं के सामूहिक सम्बन्ध और प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त की अपने संविधान में व्यवस्था की और किसान पंचायत संगठन समिति बनायी। इस समिति के अध्यक्ष डाक्टर राममनोहर लोहिया, उपाध्यक्ष स्वामी भगवान और मन्त्री श्री रामनन्दन मिश्र मनोनीत हुए। रामनन्दनजी दरभंगा जिले के एक सम्पन्न परिवार के प्रतिभाशाली नवयुवक हैं। जनवरी सन् १९२२ में अपनी आयु के सोलहवें वर्ष में प्रवेश करते ही वे जयनारायण स्कूल से असहयोग करके काशी विद्यापीठ के स्कूल में जहाँ उस समय हिन्दी के

प्रसिद्ध लेखक मुंशी प्रेमचन्दजी प्रधानाध्यापक थे, दाखिल हो गये। सन् १९२३ में स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद वे काशी विद्यापीठ के कालेज विभाग में पढ़ने लगे। यहां उन्होंने नरेन्द्रदेवजी से शास्त्री की परीक्षा के लिये चार वर्ष अध्ययन किया। उसके बाद गान्धी जी की प्रेरणा से उन्होंने बिहार में परदे की प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन किया। आगे चल कर उन्होंने कांग्रेस द्वारा सञ्चालित स्वतन्त्रता संघर्षों में डटकर काम किया और जेल की यातनाएँ सहीं तथा सन् १९४२ के आन्दोलन में श्री जयप्रकाश नारायण के साथ हजारीबाग जेल की दीवारों को फांदकर बाहर निकले और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिये भरसक प्रयत्न किया। कांग्रेस के तत्त्वावधान में समाजवादी आन्दोलन के शुरू होने के कुछ अर्से के बाद ही वे उसमें भाग लेने लगे। किसानों के हितों की रक्षा और अभिवृद्धि उनके समाजवादी नेतृत्व का एक विशिष्ट अंग था। किसान पंचायत के तो वे कर्ताधर्ता ही थे। उनके नेतृत्व में किसान पंचायतों के तत्त्वावधान में किसानों ने बाकाश्त के विरुद्ध बहुत से संघर्ष किये और देश के बहुत से दूसरे भागों में किसान पंचायतों ने किसानों के हितों की पुष्टि में आन्दोलन और संघर्ष किये।

सन् १९४९ में पटना अधिवेशन से पहले ही उत्तर प्रदेश की किसान पंचायत का प्रान्तीय सम्मेलन कानपुर जिले के सिठमरा ग्राम में आचार्य नरेन्द्रदेवजी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में उन्होंने किसानों की माँगो को दोहराते हुए उन्हें जागरूक होकर अपनी संगठित शक्ति द्वारा अपने हितों के लिये संघर्ष करने की तथा शोषण विहीन समाजवादी समाज बनाने की सलाह दी।

इस आन्दोलन के नेतृत्व में आजमगढ़ आदि कई जिलों में नावाजिब बेदखलियों के विरुद्ध किसानों ने डटकर संघर्ष किया। आजमगढ़ के संघर्ष में सर्वश्री विश्रामराय, सन्तोषानन्द, उमाशंकर मिश्र, दलसिंगार पाण्डेय, रामसुन्दर पाण्डेय, अर्जुन सिंह आदि समाजवादी कार्यकर्ताओं का बड़ा हाथ था। करीब-करीब सभी जिलों की किसान पंचायतों के संगठन में गाँवों से सम्बन्ध रखने वाले समाजवादी कार्यकर्ताओं ने काफी डटकर काम किया। इस सम्बन्ध में आजमगढ़ के इन कार्यकर्ताओं के अलावा सर्वश्री बुद्धी सिंह, चन्दन सिंह, गेंदा सिंह, सत्यदेव सिंह, स्वामी भगवान, वीरसेन यादव, दलसिंगार दुबे, राजनारायण सिंह,

रामनाथ दीक्षित, रामलछन तिवारी, अर्जुन सिंह भदोरिया, विश्वनाथ सिंह गहमरी, सिद्धेश्वर राय का नाम लिया जा सकता है। बहुत से दूसरे कार्यकर्ताओं के साथ इन सबने राष्ट्र के स्वतन्त्रता संघर्षों में भाग लिया, समाजवादी विचारों का प्रसार किया और किसानों के हितों के लिये संघर्ष किया।

गन्ने की खेती में संलग्न किसानों के संगठन और संघर्षों के सञ्चालन में गेन्दासिंहजी ने इतना डट कर काम किया कि वे आगे चल कर मित्रों द्वारा हंसी में गन्ना सिंह के नाम से पुकारे जाने लगे। सन् १९५० में वे प्रान्तीय सोशलिस्ट पार्टी के मन्त्री निर्वाचित हो गये और उसके बाद तो जब तक वे पार्टी के सदस्य रहे एक प्रमुख नेता की हैसियत से उसके कामों के संचालन में महत्त्वपूर्ण हिस्सा लेते रहे। सन् १९५२ में वे उत्तर प्रदेश की विधान सभा के सदस्य चुने गये और उन्होंने वहाँ बारह वर्ष प्रजासोशलिस्ट पार्टी के एक सम्मानित नेता की हैसियत से जनता की विशेषतः किसानों की डट कर सेवा की और विधान सभा में मान प्राप्त किया। सन् १९६४ में वे श्री अशोक मेहता के साथ कांग्रेस में शामिल हो गये और कुछ अर्से के बाद श्रीमती सुचेता कृपालानी ने उन्हें अपने मन्त्रिमण्डल में शामिल कर लिया।

किसान प्रदर्शन

२५ नवम्बर सन् १९४९ को डाक्टर राममनोहर लोहिया की प्रेरणा से सोशलिस्ट पार्टी और किसान पंचायत के संयुक्त नेतृत्व में लखनऊ में किसानों का एक बड़ा प्रदर्शन हुआ। इस जुलूस में पचास हजार से अधिक किसान सम्मिलित थे। इस दिन उत्तर प्रदेश के मुख्यमन्त्री पण्डित गोविन्द बल्लभ पन्त को किसानों की माँगों का एक परिपत्र दिये जाने का निर्णय था। पर पन्तजी लखनऊ से बाहर चले गये। इस सूचना के मिलने पर जुलूस में 'किसान जागा, पन्त भागा' के जोर-जोर से नारे लगने लगे। आचार्यजी ने इस प्रकार के नारे लगाना ठीक न समझ कर उसे बन्द करने का आदेश दिया। उनके कहने पर भी उनसे काफी दूर पर यह नारा इस तरह लगता रहा कि नरेन्द्रदेवजी उसे न सुन सकें। श्री दामोदर स्वरूप सेठ ने किसानों के परिपत्र को विधान भवन की दीवार पर चस्पाँ किया।

इस अवसर पर नरेन्द्रदेवजी ने अपने ओजस्वी भाषण में किसानों के प्रति सरकार की उपेक्षा तथा अन्याय की भर्त्सना एवं जमींदारी उन्मूलन सम्बन्धी सरकार की योजना की कड़ी समीक्षा करते हुए कहा कि जमींदारी-उन्मूलन-कोष की योजना अवश्य ही असफल रहेगी। उन्होंने गान्धीजी के दण्डी यात्रा से किसानों के इस प्रदर्शन की तुलना करते हुए आशा प्रगट की कि यह प्रदर्शन प्रान्त में एक नये जीवन का संचार करेगा।

जो परिपत्र साथी दामोदर स्वरूप सेठ ने चस्पाँ किया था उसमें किसानों की निम्नलिखित नौ माँगे थीं :—

१. जमींदारी फौरन खत्म की जाय। भूमि खेतिहरों की हो। भूमिधर और असामियों के सब भेद मिटा दिये जायँ तथा सबके लिये एक और समान कानून हो।

२. भूमि इस तरह बांटी जाय कि ३० एकड़ से अधिक कोई जोत न हो। इतनी नयी जमीन तोड़ी जाय कि प्रत्येक किसान परिवार के पास कम से कम १२॥ एकड़ जमीन हो।

३. छोटी मशीनों द्वारा सञ्चालित गृहउद्योग प्रत्येक गांव में चलाये जाएँ और गांव के नवयुवकों को कला-कौशल की शिक्षा दी जाय।

४. गांवों में सहकारी कार्यों को प्रोत्साहित किया जाय।

५. नयी जमीनों को खेती के काम में लाने के लिये भूमिसेना का संगठन किया जाय।

६. खेती से पैदा पदार्थों तथा कपड़ा, सिमेन्ट आदि उपभोग्य सामग्रियों की कीमतों में सन्तुलन हो।

७. जमींदारी के खत्म होने पर किसानों से उतनी रकम वसूल की जाय कि जितनी जमींदार उस जमीन के लिये मालगुजारी देता है।

८. खेतिहर मजदूरों के कर्जे माफ हों और वे अपनी जमीनों से बेदखल न किये जायं।

९. खजाने की आमदनी का एक पर्याप्त हिस्सा ग्रामोत्थान के लिये गांव पंचायतों और जिला बोर्डों के सुपुर्द किया जाय।

२५ नवम्बर सन् १९४९ को ही श्री जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में पटना में किसान प्रदर्शन हुआ। फरवरी सन् १९५० मे डाक्टर राममनोहर लोहिया की अध्यक्षता में रीवां में हिन्द किसान पंचायत का पहला अधिवेशन हुआ जिसमें आचार्य नरेन्द्रदेव ने भी किसानों के हितों के समर्थन में एक प्रभावशाली व्याख्यान दिया। ३ जून सन् १९५१ को देहली में बहुत शान के साथ जनवाणी दिवस मनाया गया जिसके प्रदर्शन में पहली बार बहुत जोर से नारा लगा कि 'रोजी रोटी कपड़ा दो वरना गद्दी छोड़ दो'। किसान पंचायत के तत्त्वावधान में कई प्रान्तों में किसानों के बहुत से संघर्ष हुए। जिनमें सोशलिस्ट पार्टी के बहुत से कार्यकर्ताओं ने डटकर हिस्सा लिया। सन् १९५४ में सारे उत्तरप्रदेश में आबपाशी आन्दोलन हुआ जिसमें हजारों सत्याग्रहियों को सजा भुगतनी पड़ी। ४ जुलाई को डाक्टर राममनोहर लोहिया स्वयं फरुखाबाद में गिरफ्तार हुए। पर हाईकोर्ट ने अध्यादेश को अवैधानिक घोषित करते हुए उनकी गिरफ्तारी गैरकानूनी करार दी। अतः डाक्टर राममनोहर लोहिया के साथ साथ सब सत्याग्रही छोड़ दिये गये।

जमींदारी उन्मूलन कमेटी

८ अगस्त सन् १९४६ को युक्त प्रान्त की लेजिसलेटिव असेम्बली ने एक प्रस्ताव द्वारा जमींदारी प्रथा को, जिसमें काश्तकारों और राज्य के बीच के सभी मध्यवर्ती शामिल थे, खत्म करने के सिद्धान्त को स्वीकार किया और निश्चय किया कि मध्यवर्तियों के हकों को मुआवजा देकर हासिल कर लिया जाय। उसको आदेश दिया गया कि वह इस मकसद के लिये एक स्कीम तैयार करने को एक कमेटी नियुक्त करे। इस प्रस्ताव के मुताबिक सरकार ने प्रधानमन्त्री पण्डित गोविन्द वल्लभ पन्त की अध्यक्षता में जमींदारी उन्मूलन कमेटी बनायी।

स्मृतिपत्र

इस कमेटी को आचार्य नरेन्द्रदेव ने सन् १९४७ में एक लिखित स्मृतिपत्र भेजा। इस स्मृतिपत्र में उन्होंने लिखा कि जमींदारी प्रथा के उद्भव और आज तक जमींदारों द्वारा किसान पर किये गये अत्याचारों को ध्यान में रखते हुए यदि इस प्रश्न पर विचार किया

जाय तो मुआवजा देने और जमींदारों के पास जमीन छोड़ने की बात पीछे पड़ जाती है। भूमि तो प्रकृति की देन है। इसके साथ सारे समाज के जीवन का घनिष्ट सम्बन्ध है। इसको किसीकी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं समझा जा सकता। वस्तुत: वह राष्ट्र की पवित्र धरोहर है। उसकी उर्वरता समाज का धन है। उसकी रक्षा और अभिवृद्धि राष्ट्रका कर्तव्य है। पर मध्यवर्ती जमींदारों ने तो इसकी नितान्त उपेक्षा ही की है। किसानों का शोषण तथा विलासिता और आवारागर्दी की जिन्दगी बिताना ही उनका एकमात्र जीवन लक्ष्य रहा है।

आचार्यजी ने मध्यवर्तियों के भूमिस्वामित्व के अधिकारों की समालोचना करते हुए कहा कि कुछ तो ऐसे हैं जो बिना एक पैसा खर्च किये ही विशाल भूमि के स्वामी बन बैठे हैं। बड़े मध्यवर्तियों में अवध के तालुकेदार इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिनको विभिन्न प्रकार से मूल्य चुकाना पड़ा है। किन्तु समय के दौरान में इन जमींदारों ने कानूनी तौर से मिलने वाला लगान तो वसूल ही किया, पर इसके अतिरिक्त नजराना, गुप्त लगान, अनाधिकृत सायर आदि रकमों को भी बहुत नीच और जंगली तरीकों से वसूल किया है। उन्होंने बताया कि समय-समय पर काश्तकारों को बेदखल करने के लिये उन्होंने तरह-तरह के उपाय निकाले और कई कानून बनवाये, ताकि अधिक लगान और नया नजराना ले कर वे दूसरे काश्तकारों को खेत दे सकें।

आचार्यजी ने स्मृतिपत्र में लिखा कि जिस तरह से जमींदारों ने किसानों को लूटा, खसोटा और चूसा है यदि उसका हिसाब लगाया जाय तो किसानों के ऋण से उऋण होना जमींदारों के बूते की बात नहीं है। उनकी राय में ऐसी हालत में मुआवजा देने का सवाल ही नहीं उठता।

आचार्यजी ने मुआवजे के सम्बन्ध में जमींदारों की माँग को पूरा करना असम्भव बताया। स्मृतिपत्र में उन्होंने कहा कि चालू बाजार दर पर जमींदारी की कीमत चुकाना न तो उचित है न शक्य है। जमींदारों की यह माँग कि जितना वार्षिक लगान वे पाते हैं उसके बराबर सालाना सूद की रकम उन्हें मुआवजे में मिले, बिल्कुल ही 'वाहियात, अनुचित और असम्भव है'। आचार्यजी की राय थी कि भूमिप्राप्ति का कानून दरअसल जमीन के छोटे टुकड़ों के लिये बना था, जिसकी

कीमत काफी ऊँची दी जा सकती थी, लेकिन जब सारे प्रान्त की भूमि-सम्पत्ति लेने की बात हो, तो यह सम्भव नहीं हो सकता।

आचार्यजी ने लिखा कि चूंकि सन् १९३५ के ऐक्ट की २९९ वीं धारा के अनुसार मुआवजा देना और मुआवजे के सिद्धान्त को बताना जरूरी है, इसलिये उनकी राय में नये कानून में मुआवजे के सिद्धान्त को निश्चित तो किया जाय, पर सिद्धान्त निश्चित करते समय केवल जमींदारों के हितों का ख्याल न रखा जाय, बल्कि यह भी देखा जाय कि सरकार इतना दे सकती है या नहीं, वरना मुआवजे की रकम कागज पर धरी रह जायगी। आचार्यजी के राय में न तो पूरी बाजार दर दी जाय और न मुआवजा ही दिया जाय। बल्कि भूमिहृत जमींदारों को पुनर्वास की समुचित रकम देने के लिये एक ऐसा पैमाना कायम किया जाय जिसके अनुसार छोटे जमींदारों को अधिक से अधिक और बड़े जमींदारों को क्रमशः कम मिले। यह रकम घटाते जा कर किसी को पांच लाख से अधिक न दी जाय। इस प्रकार पुनर्वास की कुल रकम हिसाब से सौ करोड़ के लगभग होती है। यदि बंजर जमीन का मुआवजा देना ही पड़े तो वह दो रुपये एकड़ से अधिक नहीं होना चाहिए। उनकी राय में उस समय किसानों से जो २४ करोड़ रुपये लगान में वसूल किया जाता था उसमें से पहले की तरह ८ करोड़ रुपये मालगुजारी की शक्ल में सरकार ले, ८ करोड़ रुपये मुआवजे की अदायगी में खर्च किये जाएँ, ४ करोड़ रुपये की छूट किसानों को दी जाय और ४ करोड़ रुपये भूमि सुधार में लगाये जाएँ।

बनारस किसान सम्मेलन

अप्रैल सन् १९४७ में बनारस जिला किसान सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए उन्होंने घोषित किया कि समाजवादी 'सिद्धान्ततः मुआवजा देने के विरोधी हैं' और कहा कि हमारे देश में मुआवजा देने का प्रश्न सिद्धान्त की दृष्टि से इसलिये भी नहीं उठता कि जमींदारी प्रथा हमारे देश की अपनी प्रथा न होकर विदेशी शासन द्वारा अपनी सुविधा और सहायता के लिये खड़ी की गयी प्रथा है। उन्होंने जमींदारों की धाँधलियों का जिक्र करते हुए किसानों के हितों की समुचित रक्षा की तथा सार्वजनिक चरागाहों, मार्गों और जंगलों पर जमींदारों के बेजा

कब्जे को रोकने की माँग की। सहकारी खेती की आवश्यकता बताते हुए उन्होंने कहा कि समूचे गाँव के लोग मिल कर सहकारी खेती की प्रथा को अपनावें, सबकी जमीन एक साथ जोती और बोयी जाय। फसल काटने के समय क्षेत्रफल के हिसाब से पैदावार बाँट ली जाय। खेती के विकास के लिये सरकार द्वारा सिचाई का समुचित प्रबन्ध किया जाय और सस्ते दर पर सूद देने वाले सहकारी बैंक खोल कर किसानों को साहूकारों के फंदे से मुक्त कराया जाय तथा सहकारी समितियों द्वारा खरीद और बिक्री की व्यवस्था की जाय। आचार्य नरेन्द्रदेव ने अपने इस भाषण में किसानों की मनोवृत्ति के बदलने पर जोर दिया और कहा कि हमें किसानों के मस्तिष्क से भाग्यवाद को निकाल फेंकना है। उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होना सिखाना है, एक दूसरे के साथ सहयोग करना सिखाना है। ग्राम और नगर के फर्क को मिटाने के लिये शोषण पर आधारित सामान्तवाद तथा पूंजीवाद का अन्त किया जाना जरूरी बताते हुए उन्होंने कहा कि 'शोषणमुक्त समाज की स्थापना के लिये किसान-सभाओं को मजदूर सभाओं के साथ घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करके आन्दोलन करना होगा।'

जमींदारी उन्मूलन कमेटी की रिपोर्ट

सन् १९४८ में युक्त प्रान्तीय सरकार द्वारा नियुक्त जमींदारी उन्मूलन कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित की गयी। इस रिपोर्ट में इस बात को स्वीकार करते हुए भी कि छोटे किसानों पर से लगान के बोझ को कम करने की जरूरत है इस काम को चालीस वर्ष तक मुलतवी रखने का सुझाव दिया गया, गो दस एकड़ तक के किसानों के लगान में कुछ कमी की सिफारिश की गयी। रिपोर्ट में यह भी स्वीकार किया गया कि जमीन के पुनर्वितरण से सामाजिक न्याय और उत्पादन की वृद्धि होगी, पर उसका यह कह कर विरोध किया गया कि इसके कारण गावों में बड़े बड़े किसानों के विद्रोह का भय है और भूमि के वितरण के बाद सारी पैदावार को किसान स्वयम् खा जायंगे और नगरों की जनता के लिये कुछ बाकी नहीं रहेगा। रिपोर्ट में यह बात मानी गयी कि खेती के काम में पूंजी लगाना, उसमें घाटे नफे की जिम्मेदारी लेना, खेती का प्रबन्ध करना और खेती के काम में अपना

श्रम लगाना किसान के चार काम हैं, पर इनमें से पहले तीन काम ही प्रमुख काम स्वीकार किये गये। इस तरह से जमींदारी के उन्मूलन की सिफारिश करते समय युक्त प्रान्तीय कमेटी ने सब प्रकार के मध्यवर्तियों के अधिकारों के उन्मूलन की सिफारिश नहीं की। रिपोर्ट में शिकमियों तथा सीर और खुदकाश्त के किसानों को ६ महीने के अन्दर बेदखल करने की जमींदारों को छूट दी गयी। रिपोर्ट में जमींदारी उन्मूलन के समय जमींदारों को मुआवजा देने की और छोटे-छोटे जमींदारों को मुआवजे के साथ-साथ पुनर्वास देने की सिफारिश की गयी। मुआवजे और पुनर्वास की सब रकम किसानों से वसूल करना जरूरी समझा गया, और इसके लिये यह सुझाव दिया गया कि किसानों से पुराना लगान ही मालगुजारी के रूप में वसूल किया जाय और दस साल का लगान वसूल करके किसानों को भूमिधरी के अधिकार वेचे जाएँ।

आचार्यजी को जमींदारी उन्मूलन कमेटी की ये सिफारिशें मंजूर नहीं थीं। उनके विचार में कमेटी की रिपोर्ट धारा सभा के मन्तव्य को ठीक तौर पर पूरी नहीं करती और उसे प्रगतिशील नहीं कहा जा सकता। उसकी सिफारिशों में जहां भूमि के पुनर्वितरण के विचार का विरोध किया गया है, वहां भूमिहीन किसानों के हितों के समुचित संरक्षण की उपेक्षा की गयी है। कमेटी के सुझाव शिकमीदारों के बहुत बड़े हिस्से को अधिकार विहीन कर देते हैं, अलाभकर जोतों के किसानों को भी राहत नहीं पहुँचाते। मुआवजे के सम्बन्ध में कमेटी ने जिस व्यवस्था की सिफारिश की है उससे छोटे जमींदारों का पुनर्वास असम्भव है और बड़े जमींदारों को काफी बड़ी रकम मिल जाती है।

भूमिसुधार

यू० पी० जमींदारी उन्मूलन कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने के कुछ अर्से के बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा नियुक्त कृषि सुधार समिति लखनऊ गयी। जमींदारी उन्मूलन कमेटी की रिपोर्ट की आलोचना करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने भूमिसुधार सम्बन्धी अपने विचारों को इस समिति के सामने रखा।

उनका अपना प्रस्ताव था कि 'सरकार और कृषकों यानी जमीन जोतने वालों के बीच कोई मध्यवर्ती लोग न हों, जमीन के पुनर्वितरण का अधिकार सरकार तुरन्त अपने हाथ में ले, और पुनर्वितरण के बाद किसी हाथ में तीस एकड़ से अधिक जमीन न हो'। आचार्यजी का सुझाव था कि जमींदारों से जो मालगुजारी वसूल होती है वही रकम किसानों से वसूल की जाय और उन्हें पुराना लगान देने पर मजबूर न किया जाय। उनका विशेष आग्रह था कि 'जो खाते लाभकर नहीं हैं उन खातों के किसानों के खाते जब तक लाभकर नहीं बन जाते तब तक यदि इन्हें पूरे लगान की छूट नहीं दी जा सकती हो तो कम से कम इस लगान को बहुत कुछ घटा दिया जाय'। मुआवजे के सम्बन्ध में मार्क्सवादियों तथा दूसरे समाजवादियों के विचारों का विश्लेषण करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि हमारी राय में किसी को जमीन का मालिक समझकर क्षतिपूर्ति की रकम न दी जाय, पर जिन लोगों से जमीन ली जाय उनके पुनर्वास का प्रबन्ध किया जाय। इस हिसाब से अमीरों को क्षतिपूर्ति का कोई अधिकार नहीं होगा, पर गरीबों को अधिक से अधिक रकम मिलनी ही चाहिए और उनके लिये ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी चाहिए कि वे कोई नया उद्योग धन्धा शुरू कर सकें। पर यदि सरकार मुआवजा देना ही चाहे तो यह नियम बनाया जाय कि किसी को एक लाख रुपये से अधिक मुआवजे में नहीं दिया जायगा और जिन मालिकों को दस हजार रुपये से अधिक मुनाफा मिलता है उन्हें मुनाफे की तिगुना रकम ही दी जायगी। उन्होंने छोटे जमींदारों के पुनर्वास के सम्बन्ध में जमींदारी उन्मूलन कमेटी की सिफारिशें नाकाफी बताते हुए सुझाव दिया कि जो छोटा जमींदार दूसरों के परिश्रम का शोषण न कर हल चलाना चाहे उन्हें जमीन की शक्ल में पुनर्वास दिया जाय। उन्होंने शिकमी काश्तकारों के हकों को तसलीम करने तथा बेदखलियों को बन्द करने पर जोर दिया। सामूहिक खेतों का विरोध करते हुए उन्होंने सहकारी खेती का समर्थन किया और सुझाव दिया कि उसके सम्बन्ध में किसानों का जन-मत लिया जाय और यदि समाज के दो तिहाई से अधिक बालिग लोग सहकारी खेती के पक्ष में हों तो उसे आरम्भ कर दिया जाय। ऐसे खेतों को विशेष अवसर और विशेष सुविधायें दी जानी चाहिए, ताकि दूसरे लोग भी इसका अनुकरण करने

लगें। उन्होंने कहा कि देहातों में लोकतन्त्रात्मक चालढाल, रहन सहन तथा लोकतन्त्र की परम्परा स्थापित करने के लिये सहकार की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करना नितान्त आवश्यक है। सहकार ही ग्राम जीवन का आधार होना चाहिए ताकि जनता परस्पर सहयोग करना सीखे। सहकार से उत्पादन करे और सहकार से ही अपने उत्पादन का क्रय-विक्रय करे। इस सहकार की अभिवृद्धि के लिये पंचायत-पद्धति का पुनरुद्धार किया जाय। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया की कृषि सम्बन्धी मजदूर की कम से कम मजदूरी निश्चित करने वाला कोई कम से कम मजदूरी का कानून शीघ्र ही बनाया जाय और जब नये सरकारी फार्म बन जाएँ, तब भूमिहीन किसानों को उन पर बसाने को राजी किया जाय। उनकी दशा को सुधारने के लिये सहकार के आधार पर गृहशिल्प के धन्धों को चलाना भी जरूरी है। गांवों की दशा को सुधारने के लिये उन्होंने गांव के स्कूल और पाठशालाओं को सामाजिक जीवन के केन्द्र बनाये जाने पर जोर दिया और आशा की कि हमारे नवयुवक शिक्षा ग्रहण कर इस योग्य बनेंगे कि जनता की सेवा के लिये वे गांवों में रह सकें।

विधेयक

सन् १९४९ में उत्तर प्रदेश के कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल ने जमींदारी प्रथा को खत्म करने के लिये एक विधेयक विधानसभा में प्रस्तुत किया। इस विधेयक में किसनों को—भूमिधर, सीरदार, अधिवासी और असामी—इस चार वर्गों में बाट दिया गया था। जबकि सभी जमींदारों को अपनी सीर और खुदकाश्त पर भूमिधर के अधिकार प्राप्त थे, वहां इन अधिकारों को हासिल करने के लिये सीरदार को दसगुने लगान और शिकमियों को बीस गुने लगान की अदायगी जरूरी थी। इस विधेयक में सीरदार से उसी लगान को वसूल करने की व्यवस्था की गयी थी जो किसान उस समय जमींदार को देता था, जब कि भूमिधर से उसका आधा लेने की और शिकमी से असामी की हैसियत से दुगना लगान वसूल करने की व्यवस्था थी। इस विधेयक में बेदखलियों पर रोक तो लगायी गयी थी, पर खुदकाश्त के नाम पर किसानों और शिकमियों से जमीन ले लेने की व्यवस्था करदी गयी थी। जमीन के वितरण के प्रश्न की तो नितान्त उपेक्षा की गयी थी। उस

विधेयक में और भी कई ऐसी धाराएं थीं कि जिनकी मदद से पुराने जमींदार बड़े बड़े फार्म बना सकते थे तथा अपने पास पुराने बाग रख सकते और नये बाग लगा सकते थे। भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के हितों की रक्षा की भी कोई व्यवस्था नहीं की गयी थी। इस विधेयक में छोटे और बड़े जमींदारों में भेद तो किया गया था। जहां सब जमींदारों को एकही शरह पर मुआवजे की व्यवस्था थी, वहां छोटे और मझोले जमींदारों के लिये मुआवजे के अतिरिक्त विभिन्न शरह के आधार पर पुनर्वास की भी व्यवस्था थी। पर मुआवजे की कोई अधिकतम हद निश्चित नहीं की गयी थी और मुआवजे की जो शरह निश्चित की गयी थी वह बड़े जमींदारों को एक बड़ी रकम की वसूली का हकदार बना देती थी, जब कि छोटे जमींदारों को इतनी कम रकम मिलती थी कि जिससे उसका पुनर्वास असम्भव ही था।

सोशलिस्ट पार्टी इस विधेयक से बिल्कुल असन्तुष्ट थी। उसने इसकी कड़ी आलोचना करते हुए उसके सुधार के लिये बहुत से सुझाव प्रस्तुत किये। किसानों का चार भागों में विभाजन, भूमिधरी की व्यवस्था, जमीन के पुनर्वितरण की व्यवस्था की कमी, शिकमी और खेतिहर मजदूरों के हितों के संरक्षण का अभाव, खुदकाश्त के नाम पर जमींदारों को बेदखली की छूट आदि बातें उसे पसन्द नहीं थीं। सोशलिस्ट पार्टी को विधेयक की मुआवजा सम्बन्धी धाराएं भी ठीक नहीं मालूम होती थीं। उसने मुआवजे के सिद्धान्त का विरोध करते हुए छोटे जमींदारों के पुनर्वास की समुचित व्यवस्था की माँग की।

सोशलिस्ट पार्टी के सुझावों का विरोध करते हुए एक सरकारी प्रवक्ता ने नरेन्द्रदेवजी के सन् १९४७ के स्मृति-पत्र की ओर संकेत करते हुए सोशलिस्ट पार्टी की मुआवजा सम्बन्धी तजवीज को नरेन्द्रदेवजी के विचारों के विपरीत बताया।

वक्तव्य

इसके जवाब में नरेन्द्रदेवजी ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने विधेयक की आलोचना करते हुए सोशलिस्ट पार्टी के सुझावों का समर्थन किया। उन्होंने विधेयक की कुछ धाराओं को तो जमींदारी उन्मूलन कमेटी के सुझावों से भी अधिक खराब बताया। इस विधेयक

में, उन्होंने लिखा, जमींदारी प्रथा को खत्म करने की कोई अवधि निश्चित नहीं की गयी है, जमींदारों को हजारों एकड़ के फार्म रखने की इजाजत है और गरीब किसानों के बोझ में कोई कमी नहीं की गयी है। उन्होंने यह भी लिखा कि जब कांग्रेस वर्गविहीन समाज बनाने का दावा करती है, तब किसानों को भूमिधर, सीरदार, अधिवासी और असामी इन चार वर्गों में क्यों बाँटती है। उन्होंने लिखा कि जमींदारी उन्मूलन की वह योजना 'अधिगामी' ही समझी जा सकती है जो गरीब किसानों में जमीन का फिर से बटवारा करने की व्यवस्था नहीं करती। जबकि लगभग सत्तर प्रतिशत जोतें अलाभकर हैं. उस समय बड़ी जोतों को तोड़ कर ही उनकी संख्या को कम किया जा सकता है। उन्होंने यह भी लिखा कि जबकि जमींदारी उन्मूलन कमेटी का सुझाव था कि गांव पंचायतों की स्वीकृति से गांवसमाज के लोगों में ही भूमि को हस्तान्तरित किया जा सकता है, वहां इस विधेयक में भूमिधरों को भूमिहस्तान्तरित करने के अनियन्त्रित अधिकार दे दिये गये हैं और वे चाहें तो अपनी भूमि को उन लोगों को भी बेच सकते हैं जिनका कृषि के व्यवसाय से कोई सम्बन्ध नहीं है। आचार्यजी ने यह स्वीकार किया कि सन् १९४७ में जो योजना उन्होंने जमींदारी उन्मूलन कमेटी के सामने पेश की थी वह सोशलिस्ट पार्टी की मौजूदा योजना से भिन्न है। पर इसका एक मात्र कारण यह है कि उस समय सन् १९३५ के एक्ट की २९९ धारा के कारण देश मुआवजा देने को बाध्य था और अब स्वतन्त्रता मिल जाने के बाद उस धारा को बदला जा सकता है और मुआवजे की बात खत्म की जा सकती है। उन्होंने लिखा कि वे उस समय भी मुआवजे के सिद्धान्त को गलत समझते थे और सोशलिस्ट पार्टी ने जो नयी योजना तैयार की है वह मूलतः उनके सिद्धान्तों को मानती है, उनकी मौजूदगी में ही बनी है और उसे वे स्वीकार करते हैं। सरकार की योजना से अपनी सन् १९४७ की योजना की तुलना करते हुए आचार्यजी ने बताया कि जहाँ उन्होंने अपनी योजना में अधिक से अधिक एक सौ करोड़ रूपये मुआवजे में देने का सुझाव रखा था, वहाँ सरकार की योजना में १७० करोड़ रूपये मुआवजे में देने का अनुमान है और जहाँ उन्होंने सिफारिश की थी कि किसानों को लगान में चार करोड़ रुपये साल की छूट दी जाय

और अलाभकर जोतों के किसानों के लगान में काफी कमी की जाय, वहाँ सरकार किसी किसान को भी लगान में छूट देना नहीं चाहती। अन्त में उन्होंने सरकारी प्रवक्ता से पूछा कि क्या सरकार सन् १९४७ के उनके परिपत्र के अनुरूप विधेयक में संशोधन करने को तैयार है और कहा कि यदि सरकार ऐसा करे तो वे अपनी पार्टी को उसे मंजूर करने के लिये राजी करने का प्रयत्न करेंगे। मुख्यमन्त्री पन्तजी ने जमींदारों से कहा है कि वह विधेयक पर जनमत लेने को तैयार हैं, तो क्या वे सोशलिस्ट पार्टी के सुझावों पर जनमत लेकर यह निश्चय करने को तैयार हैं कि पार्टी के सुझावों को स्वीकार किया जाय अथवा नहीं?

गांव पंचायत

स्वतन्त्रता के बाद स्थानीय स्वायत्त शासन को दृढ़ बनाने के निमित्त उत्तर प्रदेश में बालिग मताधिकार के आधार पर गांव पंचायतों और गांव अदालतों की नयी व्यवस्था की गयी। फरवरी सन् १९४८ को चुनाव कराना निश्चित हुआ। सोशलिस्ट पार्टी यह नहीं चाहती थी कि गांव पंचायतें और पंचायती अदालतें दलबन्दी की दल दल में फँसे, इसलिये उसकी उत्तर प्रदेश की कार्यसमिति ने निश्चय किया कि पार्टी की ओर से इन संस्थाओं के लिये उम्मीदवार खड़े न किये जाएँ। इसके बाद कांग्रेस ने भी यही निश्चय किया। चुनाव के कुछ दिन बाद प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने निश्चय किया कि सरकार गांव पंचायतों और पंचायती अदालतों के सोशलिस्ट पंचों के काम की जांच करे और जांच के बाद सोशलिस्ट सदस्यों के विरुद्ध कार्यवाही करे। पंचायती इंसपेक्टरों ने भी पंचों को मजबूर करना शुरू किया कि वे दस साल के लगान की वसूली में सरकार के कर्मचारियों का साथ दें, वरना वे ग्राम पंचायतों या पंचायती अदालतों से इस्तीफा दे दें।

इसी जमाने में २९ मई सन् १९४८ को डाक्टर राममनोहर लोहिया की प्रेरणा से उनकी अध्यक्षता में लखनऊ में पंच सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने गांवों में शोषितों का संयुक्त मोर्चा कायम करने पर पंचों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने गांववालों को बालिगमत के आधार पर अपने प्रतिनिधियों को भेजने का अधिकार दिये जाने पर खुशी जाहिर की और कहा कि

'बालिग मताधिकार एक क्रान्तिकारी अधिकार है। यह प्रजातन्त्र की आधार शिला है। जम्हूरियत का बुनियादी पत्थर है। जाति, समुदाय या सामाजिक हैसियत का भेद किये बगैर सभी बालिग स्त्री पुरुषों को एक दर्जा दिये बिना जम्हूरियत, प्रजातन्त्र, कायम नहीं हो सकता' उन्होंने स्वीकार किया कि 'ग्राम पंचायतों के चुनाव में ऊँच और नीच जातियों का संघर्ष वस्तुतः शोषकों और शोषितों के बीच चलनेवाले संघर्ष का रूप है और वह बहुत हद तक हिन्दुस्तान की सामाजिक परिस्थिति का परिणाम है'। पर उनके विचार में संघर्ष की यह शक्ल खतरे से खाली नहीं थी। इस संघर्ष को सही शक्ल देना वे समाजवादियों का कर्तव्य समझते थे। उन्होंने कहा कि 'कुचला हुआ मजदूर आर्थिक एकाधिकार का दोष जाति की ऊँचाई को देता है। वह यह नहीं देख पाता कि शोषक और शोषित ऊँची और नीची दोनों जातियों में बँटे हैं, किसी में थोड़े हैं, किसी में ज्यादा। देहात का गरीब बिरादरी की परिभाषा में ही सोचता है। हमें देहात की शोषित जनता को समझाना है कि जाति, वंश और सम्प्रदाय के भेदों को भुलाकर शोषक वर्गों के आर्थिक प्रभुत्व के विरुद्ध वे संयुक्त मोर्चा कायम करें। चूसे जानेवाले मेहनतकशों का बेलिहाज जांत-पात और मजहब मिल्लत खेमा बने'।

वक्तव्य

इस सम्मेलन के कुछ दिन बाद नरेन्द्रदेवजी ने गांव पंचायतों के काम में प्रान्तीय सरकार के अनावश्यक हस्तक्षेप और पंचों पर नामुनासिब दबाव डालने के विरोध में एक वक्तव्य प्रकाशित किया। उन्होंने लिखा कि देश में जनतान्त्रिक परम्पराओं को प्रतिष्ठित करने के लिये जरूरी है कि पार्टी और सरकार के भेद को कायम रखा जाय और पार्टी को सरकार के नाम पर जनतान्त्रिक संस्थाओं के कार्य में हस्तक्षेप करने की इजाजत न हो। विकेन्द्रित जनतन्त्र की रक्षा के लिये यह भी जरूरी है कि प्रान्तीय सरकार स्थानीय जनतान्त्रिक संस्थाओं के कार्य में हस्तक्षेप न करे और संस्था के सदस्यों को अपनी अपनी इच्छा और मत के अनुसार स्थानीय मामलों के प्रबन्ध की आजादी हो। जनतन्त्र में यह बहुत सम्भव है कि जहां किसी एक विशेष दल का प्रान्त में बहुमत हो, वहाँ किन्हीं विशेष स्थानों पर किसी दूसरे दल का

बहुमत हो। विकेन्द्रित जनतन्त्र का यही गुण है कि जिन स्थानों पर उन पार्टियों का बहुमत हो कि जो सारे प्रान्त में अल्पमत रखती हैं, उन स्थानों में वे पार्टियां वहां की जनता कि राय के अनुसार वहां की स्थानीय समस्याओं का प्रबन्ध करें। प्रान्तीय सरकारों को कोई अधिकार नहीं कि वे ग्राम पंचायतों और पंचायती अदालतों की स्वतन्त्रता का अपहरण कर उन्हें एक सरकारी एजेन्सी में तबदील कर दें। उनका निश्चित मत था कि दसगुने लगान की वसूली गांव पंचायतों का काम नहीं है और इसलिये इस काम में सरकारी कर्मचारियों को मदद करने के लिये पंचों को मजबूर नहीं किया जा सकता। उन्होंने लिखा कि 'जनतान्त्रिक परम्परा की प्रतिष्ठा के लिये जरूरी है कि इस विषय पर गांव पंचायतें तटस्थ रहें और कोई पंच किसी शक्ल में पंचायत के अपने अधिकार या प्रभाव को इस काम में इस्तेमाल न करें। हां, यदि वे चाहें तो व्यक्तिगत हैसियत से अपने अपने मत के मुताबिक इस प्रश्न पर अपने विचार जनता पर प्रकट कर सकते हैं'।

देवरिया सत्याग्रह

सन् १९४९ में पछुवा हवा और ओलों के कारण देवरिया जिले में फसल को बहुत क्षति पहुँची। क्षति कितनी हुई इसके सम्बन्ध में किसानों और सरकारी कर्मचारियों में मतभेद था। किसानों का कहना था कि फसल इतनी कम हुई है कि कानून के मुताबिक उनका लगान माफ हो जाना चाहिए। सरकार का कहना था कि केवल सैंतीस गावों की दशा ही बहुत खराब हुई है, उन्हीं में लगान की माफी होनी चाहिए। सोशलिस्ट पार्टी की प्रान्तीय कार्यसमिति ने परिस्थिति की जांच के लिये सर्वश्री गेंदा सिंह, मुकुट बिहारीलाल और स्वामी भगवान की एक जांच कमेटी नियुक्त की। यह कमेटी जांच करके इस निश्चय पर पहुँची कि क्षति जिले भर में है और पटवारियों पर विश्वास न करके इसकी निष्पक्ष जांच कराना जरूरी है। आचार्य नरेन्द्रदेव की अनुमति से कमेटी के सदस्य मुख्यमन्त्री पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त से मिले और उनसे बहुत ही विनम्रता से कहा कि उनकी जैसी व्यापक सहानुभूति रखनेवाले किसी गैरसरकारी सज्जन से दशा की जांच कराना उचित होगा। उनसे यह भी कहा गया कि यह जांच किसी गैरसरकारी

कांग्रेसी नेता या कार्यकर्ता के सुपुर्द भी की जा सकती है। पर पन्तजी ने कहा कि नई स्वतन्त्र सरकार बन जाने के बाद यह कैसे समझा जा सकता है कि गांव के पटवारी उनकी व्यापक सहानुभूति से अनुप्राणित नहीं हैं। उन्होंने यह भी कहा कि जब गैरसरकारी सदस्य को चढ़ने के लिये जीप दी जायगी और सफर खर्च के लिये भत्ता दिया जायगा, तब वह भी सरकारी आदमी हो जायगा। कुछ देर की बातचीत के बाद उन्होंने कहा कि गैरसरकारी व्यक्तियों में उत्तरदायित्व की भावना का अभाव है। पन्तजी की यह बात सुनकर कमेटी के सब सदस्य चुप रह गये, उनकी समझ में नहीं आता था कि जब गैरसरकारी व्यक्तियों के प्रति पन्तजी की ऐसी धारणा है, तब फिर क्या कहा जा सकता है फिर भी गेंदासिंह जी अपनी बात कहते ही रहे। पर पन्तजी ने कोई बात नहीं सुनी। कमेटी के सदस्य अपनासा मुंह लेकर खाली हाथ लौटे और उन्होंने आचार्यजी को सब हाल सुनाया। दूसरे कई सार्वजनिक संस्थाओं और कार्यकर्ताओं ने भी पन्तजी का ध्यान देवरिया के किसानों की ओर दिलया। पर उनकी बात भी नहीं सुनी गयी। आखिर सोशलिस्ट पार्टी ने किसानों का शान्तिमय सत्याग्रह शुरू किया।

यह बात पन्तजी को कब अच्छी लगने वाली थी। सरकार की ओर से सत्याग्रह का विरोध हुआ और पन्तजी ने देवरिया में भाषण देते हुए कहा कि स्वतन्त्र जनतान्त्रिक देश में सत्याग्रह का कोई स्थान नहीं। इस पर आचार्यजी ने समाचार पत्रों में एक वक्तव्य प्रकाशित कराया। इसमें उन्होंने कहा कि 'मुझे पता नहीं कि राजनीति की किस पुस्तक में यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है। इसके विपरीत, मैं ग्रीन और लास्की जैसे लेखकों और स्वयम् गान्धी जी की राय इस सिद्धान्त के समर्थन में पेश कर सकता हूँ कि जब साधारण वैधानिक उपाय विफल हो जाते हैं, तब सही उद्देश्य (cause) के लिये शान्तिमय सत्याग्रह (अधिकारियों की अवज्ञा) आवश्यक हो जाती है। आधुनिक युग में जनतन्त्र में सर्वग्राही होने की प्रवृत्ति है और इसके अलावा सबसे अच्छी सरकार भी जनता के प्रति अन्याय के लिये इतनी उपेक्षित हो जाती है कि उसे कार्य करने के लिये मजबूर करना होता है। कांग्रेस सरकारें जनतन्त्र के सिद्धान्तों से अनुप्राणित नहीं हो पायी हैं और वे अकसर ऐसा व्यवहार करती हैं जिससे इसमें सन्देह नहीं रहता कि वे

पुरानी नौकरशाही के जमाने की परम्पराओं से बहुत बंधी हुई है। इस कारण से हमारे देश में शान्तिमय सत्याग्रह के हक को तसलीम करना और भी जरूरी हो जाता है। मेरी धारणा है कि जो अपने को गान्धी जी का अनुयायी कहते हैं, उनके नाम की दुहाई देते और फिर यह कहकर सत्याग्रह का विरोध करते हैं कि हिन्दुस्तान में अब जनतन्त्र है, वे गान्धीजी और उनके आदेशों का परित्याग करते हैं। जो इस अस्त्र के प्रयोग को मना करते हैं, उन्हें अत्याचार और अन्याय के प्रतिरोध के लिये किसी न किसी बहाने हिंसा के प्रयोग के लिये तैयार रहना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि इस शान्तिमय सत्याग्रह में एक सिद्धान्त का प्रश्न भी निहित है। प्रश्न यह है कि जनतान्त्रिक हिन्दुस्तान में पुराने नौकरशाही तरीके चलते रहेंगे या जनमत पर उचित ध्यान दिया जायगा। देवरिया के सोशलिस्टों ने जिस प्रश्न को उठाया है उस पर जनमत जिलाधीश की राय के विरुद्ध है। जिम्मेदार जनमत की अवहेलना नहीं की जा सकती। कोई भी सरकार जो जनता के कल्याण की वास्तव में परवाह करती है सचाई को जानने के लिये एक जुडीशियल जांच के लिये तैयार हो गयी होती'।

पंजाब में किसान संघर्ष

अप्रैल सन् १९५० में नरेन्द्रदेवजी ने सोशलिस्ट पार्टी की पंजाब शाखा के सम्मेलन की जालन्धर में अध्यक्षता की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने और बहुत सी बातों का जिक्र करते हुए पार्टी के कार्यकताओं को किसानों और खेतिहर मजदूरों के संघर्षों में डटे रहने की सलाह दी। उन्होंने कहा कि 'जब तक कोई पार्टी गरीबों की, दुःखी जनता की, समस्याओं को लेकर संघर्ष नहीं करती उसे शक्ति नहीं मिल सकती। अगर आप जनता की तहरीकों को नहीं उठाते और वोट के चक्कर में फँस जाते हैं तो मैं आपको बताऊं कि जनतान्त्रिक समाजवाद नहीं हो सकता। जनतान्त्रिक समाजवाद तो इस बात की माँग करता है कि आप जनता की माँगों को समझ कर उनके लिये आन्दोलन करें। आन्दोलन और संघर्ष से जो शक्ति मिलती है वह और किसी तरह नहीं मिल सकती। उनसे अनुभव प्राप्त होता है और अनुभव ही ठीक लाभदायक पुस्तक है। कांग्रेस ने जब कभी आन्दोलन किये उसके

बाद उसे शक्ति प्राप्त हुई। आप भी आन्दोलन करें। मैं आपको विश्वास दिलाऊं कि कोई कुर्बानी बेकार नहीं जाती। अगर कोई फल इस समय नहीं मिलता तो कल जरूर मिलेगा। अगर जनता यह समझ ले कि सोशलिस्ट पार्टी ने उसके लिये कुर्बानी की है तो जनता जरूर आपका साथ देगी'।

यह बातें आचार्य नरेन्द्रदेव ने हिसार जिले में बेदखलियों के विरुद्ध संघर्ष के सिलसिले में कहीं थी। इस जिले में दादा गणेशीलालजी के नेतृत्व में सोशलिस्ट पार्टी के तत्त्वावधान में किसानों ने बेदखलियों के विरुद्ध एक प्रभावशाली संघर्ष किया था। इस संघर्ष से प्रभावित हो मुख्य मन्त्री भीमसेन सच्चर ने बेदखलियाँ बन्द करने का वायदा किया। पर कुछ दिन बाद उनके स्थान पर श्री गोपीचन्द भार्गव प्रधान मन्त्री बने और उन्होंने सच्चर साहब के वायदे को पूरा करने से इनकार कर दिया। इस पर सोशलिस्ट पार्टी को फिर संघर्ष शुरू करना पड़ा और फिर सरकार को मजबूर होकर बेदखलियाँ बन्द करने के सम्बन्ध में कानून बनाना पड़ा।

इस संघर्ष के साथ साथ सन् १९४९ और १९५३ के दरम्यान सोशलिस्ट पार्टी और गांव पंचायतों के नेतृत्व में दो और संघर्ष खेतिहरों और शिकमियों के चलाये गये। होशियारपुर में बाबा महेन्द्र गोपाल सिंह के नेतृत्व में उन खेतिहरों के लिये संघर्ष हुआ जो पश्चिमी पंजाब को छोड़ पूर्वी पंजाब में आये थे। ये खेतिहर बटाई पर कुछ जमीनें पश्चिमी पंजाब में बड़े किसानों की जोतते थे। उनकी माँग थी कि जब पश्चिमी पंजाब के किसानों को पूर्वी पंजाब में जमीन मुआवजे की शक्ल में मिलीं तो खेतिहरों को भी मिलनी चाहिए। सन् १९४७ के एक निर्णय के अनुसार पश्चिमी पंजाब से निष्क्रान्त लगभग ६७ हजार शरणार्थी काश्तकारों को निष्क्रान्त मुसलमान खेतिहरों की जमीनें दे भी दी गयीं थीं। पर शरणार्थी भूमिस्वामियों के दबाव पर सरकार ने केवल उन्हें ही जमीनें देने का निर्णय किया और शरणार्थी खेतिहरों को बेदखल करना शुरू कर दिया, उनके पुनर्वास की समस्या पर उचित ध्यान देना जरूरी नहीं समझा।

तीसरा संघर्ष फिरोजपुर और अम्बाला जिलों में सरदार हरभजन सिंह के नेतृत्व में पूर्वी पंजाब के पुराने मुसलमान जमींदारों के हिन्दू और सिक्ख शिकमियों के पक्ष में था। इन शिकमियों का कहना था कि जब पाकिस्तान में चले जाने के कारण मुसलमान जमींदारों की जमीनों को सरकार ने निष्क्रान्त सम्पत्ति घोषित कर उस पर अधिकार जमा लिया, उन्हें पश्चिमी पंजाब से आने वाले किसानों में वितरित किया. उस समय पुराने भूमिस्वामियों के काश्तकारों के हक़ तो सुरक्षित रहना ही चाहिए, उन हकों की उपेक्षा तो उनके साथ अन्याय होगा। इस संघर्षों में सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं को काफी कष्ट सहन करना पड़ा। साथी हरभजन सिंह आदि कार्यकर्ताओं को बार बार जेल की यातनाएँ सहन करनी पड़ीं।

अन्त में इन संघर्षों के फलस्वरूप किसानों और खेतिहरों को बहुत कुछ लाभ हुआ। सरकार को कई कानून पास करना पड़े, अपने व्यवहार में भी तबदीली करनी पड़ी। पर पंजाब के साम्प्रदायिक वातावरण की तीव्रता के कारण सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं की कुर्बानियों का सोशलिस्ट पार्टी के भविष्य पर कोई महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ा। आचार्य नरेन्द्रदेव ठीक ही कहते थे कि सम्प्रदायवाद और जातिवाद राष्ट्रीयता, जनतन्त्र और समाजवाद के शत्रु हैं तथा सम्प्रदायवाद और जातिवाद पर विजय पाकर ही समाजवादी शक्तियों के आधार पर समाजवादी समाज का निर्माण किया जा सकता है।

१४—मजदूर आन्दोलन

मजदूर आन्दोलन और समाजवाद

सचेत सुसंगठित मजदूर ही समाजवादी आन्दोलन की रीढ़ है। पूंजीवाद के शोषण के विरुद्ध मजदूरों का वर्गसंघर्ष ही समाजवादी क्रान्ति का मूल मन्त्र है। मज़दूरों की आर्थिक आवश्यकताएँ और आकांक्षाएँ ही उनके सगठन और संघर्ष का मूल आधार हैं। इसलिये कतिपय विचारकों और क्रान्तिकारियों की राय में मज़दूरों के क्रान्तिकारी आर्थिक संघर्ष द्वारा ही समाजवादी क्रान्ति सम्भव है। पर मार्क्स की धारणा थी कि केवल आर्थिक संघर्षों द्वारा पूंजीवाद का विनाश तथा समाजवादी समाज की स्थापना सम्भव नहीं है। उनके द्वारा तो मज़दूरों को आर्थिक क्षेत्र में कुछ सुविधाएँ ही प्राप्त हो सकती हैं। आर्थिक व्यवस्था तथा सुविधाजनक वर्ग के आर्थिक हितों का संरक्षण राज्य द्वारा होता है। राज्य की शक्ति को अधिकार में करके तथा उसका क्रान्तिकारी प्रयोग करके ही समाजवादी शक्तियां आर्थिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर सकती हैं, पूंजीवादी व्यवस्था के स्थान पर समाजवादी आर्थिक व्यवस्था तथा वर्गविहीन, शोषण-विहीन समाज स्थापित कर सकती हैं। इस काम की सिद्धि के लिये तो मज़दूरों में राजनीतिक चेतना पैदा करनी होगी, उन्हें समझाना होगा कि आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन के बाद ही पूंजीपतियों के आधिपत्य और शोषण से छुटकारा हो सकता है, प्रतिदिन के झंझटों और मुसीबतों से पिंड छुड़ाया जा सकता है। इस बात के लिये मजदूरों के प्रतिदिन के आर्थिक संघर्षों को समाजवादी क्रान्ति से सम्बन्धित करना होगा तथा उन्हें जीवन के क्रान्तिकारी लक्ष्य से अनुप्राणित हो आगे बढ़कर समाजवादी राजनीतिक संघर्षों में क्रान्तिकारी भाग लेना होगा।

नरेन्द्रदेवजी वर्गसंघर्ष के इस मार्क्सवादी विश्लेषण से सहमत थे। उनकी धारणा थी कि औद्योगिक श्रमिक अपने अनुभवों और आर्थिक संघर्षों द्वारा केवल ट्रेड यूनियन मनोवृत्ति को ही विकसित कर सकते हैं,

मध्यमवर्गीय क्रान्तिकारी चिन्तकों और कार्यकर्ताओं के सम्पर्क से ही उन्हें समाजवाद का सन्देश प्राप्त हो सकता है, राजनीतिक संघर्षों में भाग लेकर ही वे अपने में राजनीतिक चेतना विकसित कर सकते हैं तथा समाजवादी समाज को प्रतिष्ठित करने में अग्रदूत का काम कर सकते हैं। इसलिये नरेन्द्रदेवजी चाहते थे कि मज़दूरों की आर्थिक आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के आधार पर सब सम्प्रदायों और बिरादरियों के औद्योगिक मज़दूरों को ट्रेड यूनियनों में संगठित किया जाय, उनके दिन-प्रतिदिन के झगड़ों को व्यापक वर्गसंघर्ष में परिणत कर उनमें वर्गचेतना को जागृत किया जाय, उनके आर्थिक संघर्षों को राष्ट्र के व्यापक राजनीतिक संघर्षों से सम्बन्धित कर उन्हें राजनीतिक संघर्षों में सक्रिय भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया जाय तथा राजनीतिक संघर्ष के समाजवादी आर्थिक स्वरूप को विकसित किया जाय। आचार्य नरेन्द्रदेव मजदूरों का आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक प्रशिक्षण आवश्यक समझते थे। उनकी राय में मजदूरों को मौजूदा आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति का तथा समाजवाद के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक लक्ष्यों और मूल्यों का ज्ञान कराया जाय, उन्हें सम्प्रदाय और जांत-पांत की संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठकर देश की समस्याओं पर सोचने के लिये प्रोत्साहित किया जाय, उनके सांस्कृतिक जीवन को यथाशक्य परिष्कृत किया जाय तथा उनकी सहज नैतिक प्रेरणाओं को जागृत और विकसित करने में उन्हें प्रोत्साहित किया जाय, उन्हें जनतान्त्रिक सहकारी कार्यपद्धति के अभ्यास की ओर प्रेरित किया जाय। आचार्यजी के विचार में 'नैतिक तथा आध्यात्मिक विशिष्टता प्राप्त करने का प्रयत्न वर्ग-संघर्ष का अविच्छिन्न अंग है'। उनका कहना था कि 'समाजवाद की लड़ाई मज़दूर-वर्ग के नैतिक उत्कर्ष की अपेक्षा करती है। यदि हम नैतिक आधार पर पूंजीवाद को घृणित बताते हैं तो हमको एक नैतिक स्तर पर समाज को एक नयी दृष्टि देनी चाहिए'। उनकी धारणा थी कि 'सर्वहारा मज़दूरों को रोजमर्रा के भोजन की अपेक्षा आत्मविश्वास, स्वाभिमान और स्वतन्त्रता की कहीं अधिक जरूरत है'। नरेन्द्रदेवजी मज़दूरों तथा ट्रेड यूनियन के कार्यकर्ताओं का समुचित प्रशिक्षण भी आवश्यक समझते थे।

भारत का मजदूर आन्दोलन

यूं तो बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होते होते बम्बई के मज़दूरों में इतनी राजनीतिक जागृति हो गयी थी कि उन्होंने सन् १९०८ में लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की सज़ा के विरोध में कई दिन की हड़ताल की थी, फिर भी सन् १९२० मे लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में ट्रेड यूनियन कांग्रेस के संगठन के बाद ही भारतीय मजदूरों के आन्दोलन ने देशव्यापी संगठन का स्वरूप धारण किया तथा उसके जरिये मज़दूरों में धीरे-धीरे राजनीतिक चेतना जागृत हुई। इस ट्रेड यूनियन कांग्रेस में सब राजनीतिक विचारों के कार्यकर्ता शामिल थे। उदारवादी सर्वश्री शिवाराव और एन० एम० जोशी, राष्ट्रवादी दीवान चम्मनलाल तथा सर्वश्री वी० वी० गिरि और जमुनादास मेहता, मार्क्सवादी श्रीशिवनाथ बनर्जी तथा कम्युनिस्ट सर्वश्री श्रीपाद अमृत डांगे, आर० एस० निम्बकर, देशपांडे आदि सभी इसमें शामिल थे। पण्डित जवाहर लाल नेहरू तथा श्री सुभाषचन्द्र बोस प्रभृति राष्ट्रीय स्तर के राजनीतिक नेता भी इनके अधिवेशनों की अध्यक्षता के लिये निमन्त्रित किये जाते थे। फिर भी दूसरे तत्त्वों की तुलना में कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं का प्रभाव दिन पर दिन बढ़ता जाता था।

मेरठ षड्यन्त्र केस

२० मार्च सन् १९२९ को सर्वश्री बी० एफ० ब्रेडले, फिलिप स्प्राट, लेस्टर हटचिन्सन, श्रीपाद अमृत डांगे, निम्बकर, सोहनसिंह जोश, केदारनाथ सहगल आदि इकतीस ट्रेड यूनियन कार्यकर्ता भारत सम्राट के विरुद्ध षड्यन्त्र करने के अभियोग में गिरफ्तार कर लिये गये। उन सब पर युक्तप्रान्त के प्रसिद्ध नगर मेरठ में षड्यन्त्र का मुकदमा चलाया गया। सबूत पक्ष ने अभियुक्तों के क्रियाकलापों के साथ-साथ विश्वव्यापी कम्युनिस्ट आन्दोलन की नीति-रीति तथा गति-विधि का विस्तृत विश्लेषण करते हुए षड्यन्त्र को साबित करने का प्रयत्न किया। यह मेरठ षड्यन्त्र मुकदमा चार वर्ष तक चलता रहा। १५ जनवरी सन् १९३३ को मेरठ के दौरा जज ने तीन व्यक्तियों को रिहा करते हुए बाकी अभियुक्तों को षड्यन्त्र का दोषी करार देते हुए सजाएँ कर दीं। पर अगस्त सन् १९३३ को इलाहाबाद हाई कोर्ट ने बहुत से अभियुक्तों

को रिहा करते हुए बाकी सबकी सजाएँ बहुत कम करदीं। जिस व्यक्ति को मेरठ की अदालत ने आजीवन कालेपानी की सजा दी थी हाईकोर्ट ने उसकी सजा घटाकर तीन वर्ष कर दी। जिन व्यक्तियों को बारह वर्ष के कालेपानी की सजा दी गयी थी, उनकी सजाएँ दो वर्ष करदी गयीं। दस वर्ष की सजाएँ घटाकर एक वर्ष कर दी गयीं। जिन्हें इससे कम दण्ड दिये गये थे, उन्हें हाईकोर्ट ने या तो बिल्कुल रिहा कर दिया या उनकी सजा इतनी घटा दी कि वे हाईकोर्ट के फैसले के दिन छोड़ दिये गये।

इस मुकदमे में श्री शिवनाथ बनर्जी भी गिरफ्तार किये गये थे जो आगे चलकर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो गये। यह राजनीतिक और आर्थिक क्रान्ति पर विश्वास करते हैं, रूस की क्रान्ति को फ्रान्स की अठारहवीं सदी की क्रान्ति के बाद संसार की सबसे महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना तथा सामाजिक क्रान्ति मानते हैं। मार्क्सवाद पर उनकी दृढ़ निष्ठा है। मज़दूरों की सेवा और जनतान्त्रिक समाजवादी समाज की स्थापना ही उनके जीवन का लक्ष्य है।

विघटन

मेरठ षड़यन्त्र के मुकदमे ने मज़दूरों में राजनीतिक चेतना को तथा कम्युनिस्टों के प्रभाव को घटाने के बजाय इतना बढ़ाया कि राष्ट्रवादी और उदार विचार के मज़दूर नेताओं के लिये ट्रेड यूनियन कांग्रेस में कम्युनिस्टों के साथ काम करना असम्भव हो गया। सन् १९३० में सर्वश्री एन० एम० जोशी, वी० वी० गिरि, शिवाराव, नायडू, एस० एस० जोशी आदि ने ट्रेड यूनियन कांग्रेस को छोड़कर ट्रेड यूनियन फेडरेशन कायम की। आगे चल कर तृतीय कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल के सन् १९२८ के आदेशानुसार कम्युनिस्टों ने सन् १८३१ में ट्रेड यूनियन कांग्रेस को छोड़ कर लाल ट्रेड यूनियन कांग्रेस का गठन किया और इस मंच से सभी गैरकम्युनिस्ट मज़दूर नेताओं की भर्त्सना शुरू की।

नरेन्द्रदेव के अभिभाषण

इस तरह सन् १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बनने के समय मज़दूर आन्दोलन तीन प्रतिद्वन्द्वी संघटनों में विभाजित था। आचार्य

नरेन्द्रदेव को इसका बहुत क्षोभ था। उनको इस बात की खुशी थी कि 'हिन्दुस्तान में मज़दूर आन्दोलन शुद्ध ट्रेड यूनियन स्वरूप से आगे बढ़ रहा है। श्रमिक वर्ग धीरे-धीरे राजनीतिक चेतना विकसित कर रहा है।' पर उन्हें दुःख था कि 'अवसरवादी नेताओं ने उनकी श्रेणी में फूट पैदा कर दी है और मज़दूरों को गुमराह कर रखा है। क्षमता-सम्पन्न क्रान्तिकारी नेतृत्व की कमी है, संगठन अपूर्ण है। इसलिये मज़दूरों की हड़तालें इतनी बार असफल होती हैं।' उन्हें विश्वास था कि 'अगर एकता के प्रयास सफल हुए और ठीक ढंग का नेतृत्व मिला तो मज़दूर आन्दोलन शीघ्र ही बहुत शक्तिशाली बन जायगा।' पर उन्हें दुःख था कि औद्योगिक श्रमिकों के प्रति कांग्रेस की उपेक्षा के कारण संगठित मजदूर यूनियनों में कांग्रेस के प्रति विरक्ति और दुराव पैदा हो गया है और मजदूरों को राजनीतिक हड़ताल के लिये आह्वाहन करना कांग्रेस के लिये असम्भव हो गया है। नरेन्द्रदेवजी यह स्वीकार करते थे कि श्रमिक वर्ग 'क्रान्तिकारी शक्ति' है और 'महान् राजनीतिक ताकत' बन सकता है, 'राष्ट्रीय आन्दोलन पर अपना प्रधान्य प्रतिष्ठित कर सकता है'। पर उनके विचार में हिन्दुस्तान की तात्कालिक परिस्थिति में यह तभी सम्भव है कि जब 'कांग्रेस द्वारा सञ्चालित साम्राज्यविरोधी संघर्ष में श्रमिक शामिल हों'। मजदूरवर्ग के राजनीतिक प्रभाव के विस्तार के लिये जरूरी है कि 'राष्ट्रीय संघर्ष के निमित्त आम हड़ताल के अस्त्र का प्रयोग कर वह निम्न मध्यम श्रेणी के दिल में हड़ताल की क्रान्तिकारी सम्भावनाओं को बिठला दें'। कांग्रेस द्वारा सञ्चालित राष्ट्रीय संघर्ष से मज़दूरों को अलग रखने की कम्युनिस्टों की नीति तो 'आत्मघाती' है। इस नीति पर चलकर मजदूर न राजनीतिक शक्ति बन सकते हैं और न देश का कोई भला कर सकते हैं।

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी

सन् १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना के बाद ही बहुत से ट्रेड यूनियन कार्यकर्ता उसमें शामिल हो गये और उनके सहयोग से पार्टी के नेतृत्व ने मज़दूर आन्दोलन को सुदृढ़ और शक्तिशाली बनाने के प्रयत्न किये। इस कार्य में साथी मेहर अली का विशेष योग था।

राजनीतिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस से अपना सम्बन्ध जोड़ना ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी ने उचित समझा। दोनों में एक लिखित समझौता हुआ जिसके अनुसार निश्चय हुआ कि पार्टी अपनी यूनियनों को ट्रेड यूनियन कांग्रेस से सम्बद्ध करेगी और उसे मजदूरों का केन्द्रीय संगठन मानेगी' और ट्रेड यूनियन कांग्रेस पार्टी को मजदूर वर्ग की राजनीतिक संस्था स्वीकार करते हुए उसका समर्थन करेगी।

आचार्य नरेन्द्रदेव के कतिपय विद्यार्थी उनकी प्रेरणा से मजदूर आन्दोलन में जुट गये। उनमें सर्वश्री हरिहरनाथ शास्त्री, राजाराम शास्त्री तथा बृजकिशोर शास्त्री प्रमुख थे। ये सब स्वतन्त्रता संघर्ष में भाग लेते, मजदूरों का संगठन करते, उनके संघर्षों का नेतृत्व करते और उनके साथ उनके निमित्त कष्ट सहते। जहां सर्वश्री हरिहरनाथ शास्त्री और राजाराम शास्त्री ने कानपुर के मजदूर आन्दोलन के संगठन में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य किया और मजदूरों की बहुत सी हड़तालों का समुचित नेतृत्व किया, वहां श्री बृजकिशोर शास्त्री ने आगे चलकर बिहार तथा उत्तरप्रदेश के चीनी के कारखानों के मजदूरों के संगठन और संघर्षों में बहुत क्षमता के साथ हिस्सा लिया।

बसावनसिंह

मजदूर आन्दोलन के सिलसिले से ही श्री बसावनसिंह से नरेन्द्रदेवजी की घनिष्ठता बढ़ी। बसावनसिंहजी एक क्रान्तिकारी योद्धा हैं। राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष ही उनके जीवन का लक्ष्य है। वे बचपन में ही क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में आये और क्रान्तिकारी भावनाओं से अनुप्राणित हुए। बहुत अर्से तक क्रान्तिकारियों के साथ उनकी नीति-रीति से साम्राज्यशाही के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। जिस समय कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बनी उस समय वे जेल में थे। पर जब आठ वर्ष की कैद काटने के बाद वे जून सन् १९३६ में रिहा हुए तब उन्होंने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में काम करना शुरू कर दिया। २ दिसम्बर सन् १९३६ को वे पार्टी की बिहार शाखा के संयुक्त मन्त्री नियुक्त हुए और उसके बाद एक सोशलिस्ट कार्यकर्ता की हैसियत से उन्होंने स्वतन्त्रता संघर्षों में हिस्सा लिया, मजदूर आन्दोलन

में काम किया और समाजवादी आन्दोलन को संगठित और पुष्ट करने के लिये प्रयत्न किये। अपनी क्षमता, लगन और योग्यता के बल पर उन्होंने आगे चलकर समाजवादी तथा मजदूर आन्दोलनों में ऊंचा स्थान प्राप्त कर लिया। आचार्य नरेन्द्रदेव की तरह बसावनसिंहजी भी मार्क्सवादी हैं, मार्क्सवाद के मौलिक सिद्धान्तों पर उनकी निष्ठा है। पर कम्युनिस्टों के कुचक्रों तथा दुरंगी नीतियों के वे बहुत विरोधी हैं। उनकी राय में कम्युनिस्टों से समझौते की बातचीत करना व्यर्थ ही है। कम्युनिस्टों से सदा सतर्क रहना ही बसावनसिहजी उचित समझते हैं। मज़दूरों का संगठन और नेतृत्व आर्थिक क्षेत्र में उनका विशिष्ट कार्य है। हिन्द मज़दूर सभा, कोयला मज़दूर संगठन, रेलवे मैन फेडरेशन आदि मज़दूर संस्थाओं के संगठन, सञ्चालन और संघर्षों के नेतृत्व में उनका महत्त्वपूर्ण योग है।

कानपुर

सन् १९३७ में युक्तप्रान्त में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के संगठित होने के कुछ अर्से बाद सरकार ने कानपुर के मिल मजदूरों की दशा की जांच के लिये कांग्रेस के प्रसिद्ध नेता श्री राजेन्द्रप्रसादजी की अध्यक्षता में मद्रास के मजदूर नेता श्रीशिवाराव तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के प्राध्यापक प्रोफेसर एस० के० रुद्रा की एक जांच कमेटी नियुक्त की। नरेन्द्रदेवजी स्वयं इस कमेटी में इसलिये शामिल नहीं हुए कि समाजवादी होने के नाते पूँजीपति उनपर 'शक करते' और 'नाजायज चालों से एक पुण्य कार्य में पक्षपात का इल्जाम लगाते'। पर पूँजीपतियों ने राजेन्द्रप्रसादजी पर भी दोषारोपण करते हुए जांच कमेटी की सिफारिशों को मानने से इनकार कर दिया। पूँजीपतियों के इस रुख से क्षुब्ध हो मई सन् १९३८ में कानपुर के मजदूरों ने हड़ताल कर दी। मजदूरों के आन्दोलन का समर्थन करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने सरकार से अपील की कि वह पूँजीपतियों के दबाव की उपेक्षा करते हुए कमेटी की रिपोर्ट को पूरी तौर पर मंजूर करके उसकी सिफारिशों को शीघ्र से शीघ्र लागू करें।

जनवरी सन् १९३८ को कानपुर कर्मचारियों के एक सम्मेलन में भाषण देते हुए नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि जिस प्रकार यूरोप के देशों में कानून द्वारा 'कर्मचारियों को भोजन के लिये पर्याप्त समय दिया जाता

है, सप्ताह में एक दिन की छुट्टी दी जाती है, काम के घंटे नियत कर दिये जाते हैं, वर्ष में साप्ताहिक छुट्टी के अतिरिक्त कुछ और छुट्टियां सवेतन दी जाती हैं और प्राविडेन्टफंड का आयोजन किया जाता है, उसी तरह अपने प्रान्त के बड़े बड़े बाजारों के कर्मचारियों के हित में एक विधान बहुत जल्द बनना चाहिए'।

डालमियानगर

सन् १९३८ में बिहार प्रान्त में डालमियानगर के मजदूरों के संघर्ष का निपटारा कराने के लिए एक ट्रिब्यूनल बनी। श्री बसावनसिह के कहने पर नरेन्द्रदेवजी मजदूरों के प्रतिनिधि की हैसियत से इस ट्रिब्यूनल में काम करने को राजी हो गये। बीमार पड़ जाने के कारण नरेन्द्रदेवजी इसमें तो मजदूरों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सके और यह काम उनके स्थान पर श्रीफूलनप्रसाद वर्मा को करना पड़ा, पर इससे डालमियानगर के मजदूरों से उनका विशेष सम्बन्ध कायम हो गया। नरेन्द्रदेवजी वहां के मजदूरों की हलचल में विशेष दिलचस्पी लेते और बसावनसिह को यथोचित सहायता और सलाह देते रहते। जब सन् १९४० में बसावनसिहजी की अनुपस्थिति में डालमियानगर के मजदूरों ने युद्ध के बोनस के सम्बन्ध में हड़ताल की, तब नरेन्द्रदेवजी स्वयं वहां गये, मजदूरों का उचित नेतृत्व किया और पार्टी की बिहार शाखा के संयुक्तमन्त्री श्रीविश्वेश्वर प्रसाद कोयराला को संघर्ष के समुचित सञ्चालन के लिये वहां भेजा। हड़ताल में मजदूरोंको सफलता मिली। सन् १९४६ में जब वहां के मजदूरों ने फिर हड़ताल की तब नरेन्द्रदेवजी मिलमालिक और मजदूर दोनों की ओर से पंच नियुक्त हुए और उन्होंने समझौता कराया।

विश्वेश्वरप्रसाद कोयराला

श्री विश्वेश्वरप्रसाद कोयराला, जिन्हें नरेन्द्रदेवजी ने सन् १९४० में डालमियानगर भेजा था, नेपाल राज्य के सुप्रसिद्ध राजनीतिक नेता श्री कृष्णप्रसाद उपाध्याय के सुपुत्र हैं। उपाध्याय जी के राजनीतिक विचार क्रान्तिकारी थे। उनके पुत्र श्रीविश्वेश्वरप्रसाद ने क्रान्तिकारिता का पहला पाठ अपने पिता के जीवन और क्रियाकलापों से ही पढ़ा था। सन् १९३० में कोयराला साहब ने बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में अध्ययन

शुरू किया। पर कुछ दिन बाद ही श्री जोगेन्द्र शुक्ल तथा अपने भाई मातृकाप्रसाद के साथ वे षड्यन्त्र के अभियोग में पकड़ लिये गये। वे चार पांच महीने जेल में रहे। फिर तिरहुत षड्यन्त्र केस के चलने से पहले ही सबूत न मिलने पर छोड़ दिये गये। सन् १९३४ में उन्होंने राजनीति आदि विषयों की शिक्षा प्राप्त कर बी०ए० की परीक्षा पास की। उसके बाद वे कांग्रेस समाजवादी आन्दोलन में कूद पड़े। कई वर्ष तक क्षमता और लगन से कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की बिहार शाखा के संयुक्त मन्त्री की हैसियत से उन्होंने काम किया। सन् १९४२ में 'भारत छोड़ो' संघर्ष के सिलसिले से भारत सरकार द्वारा वे पकड़ लिये गये और ढाई तीन वर्ष उन्होंने भारत की स्वतन्त्रता के निमित्त जेल की यातनाएँ सहीं। सन् १९४५ में जेल से छूटने के बाद उन्होंने नेपाल में राणाशाही के आधिपत्य को खत्म कर जनतान्त्रिक व्यवस्था प्रतिष्ठित करने के उपायों को सोचना प्रारम्भ किया। सन् १९४६ में उन्होंने नेपाल की जनता का संगठन करना शुरू किया और सन् १९४७ में सत्याग्रह प्रारम्भ कर दिया। पहली बार वे जोगमनी-विराटनगर में पकड़े गये, फिर छोड़ दिये गये। इस प्रकार बहुत अर्से तक सत्याग्रह का सिलसिला चलता रहा। अन्ततोगत्वा उन्होंने सशस्त्र क्रान्ति करने का निश्चय किया, भारत में उसके लिये तैयारी शुरू की। सन् १९५०-५१ में सशस्त्र क्रान्ति हुई, राणा फौज पराजित हुई और राणाशाही का आधिपत्य खत्म हुआ। श्री मोहन शमशेर के प्रधान मन्त्रित्व में जनता की सरकार का गठन हुआ और श्रीविश्वेश्वर प्रसाद कोयराला गृहमन्त्री बनाये गये। कुछ अर्से के बाद उन्होंने इस्तीफा दे दिया और उनके बड़े भाई मातृका प्रसाद कोयराला के प्रधान मन्त्रित्व में नयी सरकार संगठित हुई। सन् १९५९ में नये संविधान के अन्तर्गत नेपाल में चुनाव हुए। नेपाल कांग्रेस विजयी हुई और उसके नेता की हैसियत से श्रीविश्वेश्वर प्रसाद ने प्रधानमन्त्री का उत्तरदायित्व ग्रहण किया। उनके नेतृत्व में नेपाल संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बना और उसने अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में एक सम्मानित स्थान प्राप्त किया। अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी जगत में, विशेषतः एशियन सोशलिस्ट कान्फ्रेंस में, भी नेपाल कांग्रेस और कोयराला साहब ने विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया। श्री विश्वेश्वर प्रसाद कोयराला जन-तान्त्रिक समाजवाद पर विश्वास करते हैं, उसके मूल सिद्धान्तों के

आधार पर नेपाल के आर्थिक और राजनीतिक जीवन का निर्माण करना चाहते हैं। पर वे बहुत अर्से तक निर्माण कार्य नहीं कर सके। दिसम्बर सन् १९६० में नेपाल नरेश ने अपने फौजी बाडीगार्ड की मदद से श्री बी०पी० कोयराला को गिरफ्तार कराके तथा उनके साथ उनके दूसरे बहुत से साथियों को जेल में नजरबन्द करके जनतान्त्रिक व्यवस्था को भंग कर अपनी तानाशाही कायम कर ली।

एकता और विघटन

सन् १९३५ में तृतीय कम्युनिस्ट इन्टरनेशनल ने अपने सन् १९२८ के निर्णय को बदल कर संसार की कम्युनिस्ट पार्टियों को आदेश दिया कि फासिज्म और नाजीवाद की बढ़ती हुई शक्ति का मुकाबला करने के लिये उन्हें जनतान्त्रिक समाजवादी और राष्ट्रवादी शक्तियों से मिलकर एक संयुक्त जनतान्त्रिक मोर्चा बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इस आदेश के आधार पर भारत के कम्युनिस्टों ने लाल ट्रेड यूनियन कांग्रेस भंग करदी और वे फिर आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में शामिल हो गये। सन् १९३८ में ट्रेड यूनियन फेडरेशन भी ट्रेड यूनियन कांग्रेस में शामिल हो गयी। पर कुछ अर्से के बाद ही इस संस्था में फिर विघटन शुरू हो गया। सन् १९३९ में विश्वयुद्ध शुरू होने के बाद आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने युद्ध विरोधी प्रस्ताव पारित करते हुए भारत की स्वतन्त्रता की माँग की। प्रस्ताव द्वारा घोषित किया गया कि 'उस युद्ध में, जो भारत में स्वतन्त्रता और जनतन्त्र स्थापित करने में सफल न हो, भारत का हिस्सा लेना भारत तथा श्रमिक वर्ग को लाभदायक नहीं होगा'। इस प्रस्ताव के पारित होने के कुछ अर्से के बाद हालैण्ड, डेनमार्क, बेलजियम आदि देशों पर जर्मनी की विजय से त्रसित हो श्री एम० एन० राय ने युद्ध में ब्रिटिश सरकार की सहायता करने का निश्चय किया और 'इन्डियन फेडरेशन आफ लेबर' के नाम से एक अलग मजदूर संगठन स्थापित किया। आगे चलकर आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस के कम्युनिस्ट और राष्ट्रवादी तत्त्वों के लिये भी साथ-साथ काम करना उस समय असम्भव हो गया जब जर्मनी और रूस में युद्ध छिड़ जाने के बाद भारतीय कम्युनिस्टों ने युद्ध को जनयुद्ध घोषित करते हुए भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष का विरोध तथा ब्रिटिश सरकार का समर्थन शुरू किया।

युद्ध के जमाने में स्वतन्त्रता संघर्ष के सिलसिले से समाजवादी और दूसरे राष्ट्रवादी कार्यकर्ताओं के गिरफ्तार हो जाने पर कम्युनिस्ट पार्टी तथा 'इण्डियन फेडरेशन आफ लेबर' मज़दूर आन्दोलन पर छा गया तथा आल इन्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में समाजवादियों और राष्ट्रवादियों के लिये काम करना कठिन हो गया। युद्ध के बाद कम्युनिस्टों ने जो विघटनकारी नीति अपनायी उसका समर्थन भी इन दोनों के लिये असम्भव था।

इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस

ऐसी परिस्थिति में मई सन १९४७ में सरदार वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में आयोजित एक सम्मेलन में इण्डियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस संगठित हुई। अहमदाबाद का मज़दूर संघ इस नयी संस्था का प्रारम्भिक आधार था। मजदूर क्षेत्र में कांग्रेस सरकार की औद्योगिक और श्रमिक नीति का समर्थन ही इस संस्था का वास्तविक उद्देश्य था। इस उद्देश्य में सरकार को पर्याप्त सफलता भी मिली और सरकार की पूरी सहायता से इस संस्था की भी काफी अभिवृद्धि हुई।

हिन्द मज़दूरसभा

सोशलिस्ट पार्टी के करीब करीब सभी कार्यकर्ता इस प्रकार के गठबन्धन को ठीक नहीं समझते थे। वे स्वतन्त्र ट्रेड यूनियनिज्म के सिद्धान्त को मानते थे। अतः उन्होंने इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस में शामिल होने से इनकार कर दिया और आल इंडिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस से अलग विभिन्न प्रान्तों में हिन्द मजदूर पंचायत संगठित करने का निश्चय किया। मार्च सन् १९४८ में सोशलिस्ट पार्टी के नासिक अधिवेशन के अवसर पर मजदूर संगठनों से सम्बन्ध रखने वाले पार्टी के कार्यकर्ताओं ने प्रान्तों में हिन्द मजदूर पंचायतों का संगठन जारी रखते हुए एक व्यापक राष्ट्रीय संस्था को बनाने का निश्चय किया। पार्टी के प्रधानमन्त्री श्री जयप्रकाश नारायण के निमन्त्रण पर २७-२८ नवम्बर सन १९४८ को मजदूर वर्ग की सात पार्टियों के १०० ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं का बम्बई में सम्मेलन हुआ। इसमें निर्णय हुआ कि आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस तथा इण्डियन ट्रेड यूनियन कांग्रेस से अलग एक तीसरा अखिल भारतीय मज़दूर

संस्थान बनाया जाय और इस काम के लिये कलकत्ते में ट्रेड यूनियनों की प्रतिनिधि सभा बुलायी जाय। यह सम्मेलन २४-२७ दिसम्बर सन् १९४८ को कलकत्ते में हुआ। इसमें छः लाख मजदूरों के लगभग सात सौ प्रतिनिधियों ने 'हिन्द मजदूर सभा' कायम करने का निश्चय किया। 'एक ऐसे समाजवादी राज्य को प्रतिष्ठित करना जिसमें श्रमिक को अपने बौद्धिक और शारीरिक व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का अवसर हो' हिन्द मजदूर सभा का मुख्य लक्ष्य घोषित किया गया।' सब श्रमिकों के लिये निर्वाह योग्य मजदूरी, प्रत्येक नागरिक के लिये सुरक्षित कार्य, पूर्ण सामाजिक संरक्षण की योजनाओं की तथा व्यापक स्वास्थ्य रक्षा की व्यवस्था, श्रमिकों के आराम का समुचित प्रबन्ध, निःशुल्क अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था तथा व्यवसायिक प्रशिक्षण की सुविधा एवं सामूहिक सौदे के अधिकार की कारगर वास्तविक मान्यता' उसके दूसरे लक्ष्य घोषित किये गये। अपने घोषणापत्र में हिन्द मजदूर सभा ने ट्रेड यूनियन कार्य के रचनात्मक पक्ष पर विशेष जोर दिया। श्रमिकों के हितों के संरक्षण और अभिवृद्धि के लिये सतत् प्रयत्न और संघर्ष के साथ-साथ श्रमिकों में उद्योगों के समुचित विकास में तथा देश के जनतान्त्रिक जीवन में सक्षम भाग लेने की योग्यता की वृद्धि भी उसने अपना प्रमुख कार्य निश्चित किया।

यद्यपि इस संगठन में कई राजनीतिक तत्त्व शामिल थे, पर इसके सञ्चालन में आरम्भ से ही सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं का प्रमुख योग था। श्री अशोक मेहता ने प्रारम्भ में दो वर्ष तक उसके प्रधानमन्त्री का काम किया, उसके बाद भी कई वर्ष तक वे उसके कार्य का निर्देशन करते रहे। उनके अलावा सर्वश्री जी० जी० मेहता, शिवनाथ बैनर्जी, देवेन सेन, बागाराम तुलपुले, मनोहर कोतवाल, बसावन सिंह, राजाराम शास्त्री, पीटर अलवरेस, ब्रजकिशोर शास्त्री, एस० एम० जोशी, वी० डी० जोशी, चिनन दुराई, सनत मेहता, नटवर शाह आदि सैकड़ों समाजवादी कार्यकर्ताओं ने हिन्द मजदूर सभा से सम्बद्ध ट्रेड यूनियनों द्वारा श्रमिकों की सेवा की। इनमें श्री वी० डी० जोशी सन् १९५४ में तथा श्री राजाराम शास्त्री सन् १९५६ में इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस में चले गये तथा जब सन् १९६६ में श्री चिनन दुराई ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को छोड़ कर कांग्रेस में शामिल होने का निश्चय किया तब हिन्द मजदूर

सभा से सम्बन्धित कोयम्बटूर सूत मिल मजदूरों की यूनियन ने उन्हें मन्त्रिपद से अलग कर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेता श्री ए० सुब्रह्मण्यम को अपना मन्त्री नियुक्त किया। पर सोशलिस्ट पार्टी के कतिपय कार्यकर्ताओं ने इस पार्टी को छोड़ कर कांग्रेस में शामिल हो जाने के बाद भी हिन्द मजदूर सभा से अपना पुराना सम्बन्ध बनाये रखा। सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं के अलावा, मनिबेन कारा तथा सर्वश्री अलिन मित्रा, अनथानी पिले, रजनी मुकर्जी, बी० बी० कारनिक, खेडकीकर, रुइकर आदि बहुत से लब्ध प्रतिष्ठ मजदूर नेताओं ने भी हिन्द मजदूर सभा का महत्त्वपूर्ण नेतृत्व किया। इनमें श्री रजनी मुकर्जी आगे चलकर कम्युनिस्टों द्वारा निर्देशित आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में शामिल हो गये।

जिस समय मजदूर आन्दोलन इस तरह विभिन्न संगठनों में बट रहा था, रेलवे मेन्स फेडरेशन ने अपनी एकता बनाये रखते हुए मजदूर आन्दोलन की एकता को पुनः कायम कराने की कोशिश की। इस फेडरेशन का मजदूर क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कई वर्ष तक इस संस्था के अध्यक्ष की हैसियत से श्री जयप्रकाश नारायण ने इसका नेतृत्व किया। इसी तरह श्री एस० एम० जोशी ने 'आल इंडिया डिफेन्स सर्विस सिविलियन इम्पलाईज़ फेडरेशन' का नेतृत्व किया।

नरेन्द्रदेव का अभिभाषण

हिन्द मजदूर सभा के संगठन के तीन महीने बाद मार्च सन् १९४९ में पटना में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में सोशलिस्ट पार्टी का वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। अपने अध्यक्षीय भाषण में नरेन्द्रदेवजी ने हिन्द मजदूर सभा की नीति-रीति का समर्थन, इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस की गतिविधि की आलोचना तथा कांग्रेसी सरकारों के पक्षपात की भर्त्सना एवं उसकी औद्योगिक नीति की समीक्षा की। उन्होंने कहा कि 'औद्योगिक झगड़ों के निपटारे के लिये सरकार ने जो व्यवस्था की है, उससे मजदूरों के सामूहिक रूप से सौदा करने के अधिकार में अनेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। औद्योगिक झगड़ों को तय करने के लिये सरकार ने समझौता बोर्डों और औद्योगिक पंचायती अदालतों की स्थापना की है, किन्तु उनकी व्यवस्था इतनी जटिल है तथा उनकी कार्यप्रणाली इतनी धीमी और दीर्घ सूत्री है कि उससे

मालिकों का ही लाभ होता है और मजदूरों की पर्याप्त रक्षा नहीं हो पाती। इतना ही नहीं, कारखाना समितियों का विधान तो औद्योगिक लोकतन्त्र की जड़ ही काट देता है'। इस विधान में कारखाने के सब मजदूरों को अपने वोट से अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार देने के बजाय राज्य द्वारा मान्यताप्राप्त मजदूर यूनियन को ही सब मजदूरों की ओर से प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया था। इससे बहुत से वे मजदूर जो मान्यताप्राप्त यूनियनों के सदस्य नहीं होते थे वास्तविक प्रतिनिधित्व से वंचित रहते थे। इसे गलत बताते हुए नरेन्द्रदेवजी ने मान्यता के सम्बन्ध में सरकार की पक्षपातपूर्ण नीति की कड़ी आलोचना की। उन्होंने कहा कि 'सरकार गैर-कांग्रेसी संगठनों की उपेक्षा करती है'''भारतीय राष्ट्रीय मजदूर संघ को वह मजदूरों का सबसे अधिक प्रतिनिधित्व करनेवाली संस्था स्वीकार करती है। युक्त प्रान्त में तो इसे ही कारखाना-समितियों के सदस्यों को मनोनीत करने का अधिकार दे दिया गया है। अपनी कारखाना-समितियों के लिये कार्यकर्ताओं को निर्वाचित करने के मजदूरों के लोकतान्त्रिक अधिकार पर यह एक प्रहार है। फलत. अनेक कारखानों की कारखाना-समितियां अपने मजदूरों का प्रतिनिधित्व नहीं करतीं और मजदूरों का विश्वास उन्हें प्राप्त नहीं है। इस लोकतन्त्र-विरोधी प्रथा के कुप्रभावों पर रोशनी डालते हुए नरेन्द्रदेवजी ने यह भी बताया कि अक्सर 'कारखाना समितियां मजदूर यूनियनों के विरोध में खड़ी कर दी जाती हैं' और इस तरह 'मजदूरों की संगठित शक्ति को दबाने के लिये कानून का प्रयोग किया जाता है'। कांग्रेसी सरकारों की इस नीति से उन्हें ऐसा पता चलता था कि 'मजदूर आन्दोलन को छिन्न-भिन्न कर देना कांग्रेस द्वारा नियन्त्रित भारतीय राष्ट्रीय मजदूर संघ को अप्रत्यक्ष सहायता और स्वीकृति प्रदान कर मजदूरों को उसके कब्जे में आ जाने के लिये विवश करना तथा हड़ताल करने के अधिकारों से मजदूरों को वंचित करना ही सरकार का एकमात्र उद्देश्य है'। उन्हें इस बात का दुःख था कि 'भारतीय राष्ट्रीय मजदूर संघ (इनटक) समझौता वार्ता तथा पंचायत पर ही विश्वास करता है और किसी भी स्थिति में हड़ताल करना उसे स्वीकार नहीं है'। सरकार द्वारा गैर-कांग्रेसी यूनियनों की उपेक्षा, वैधानिक कार्यों का विरोध एवं उनके कार्यकर्ताओं के विरुद्ध दमन नीति के प्रयोग की

जोरदार शब्दों में भर्त्सना करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने सरकार को चेतावनी दी कि 'हड़ताल करने के अधिकार की अमान्यता के तथा संगठित रूप से उचित मजदूरी माँगने के अधिकार पर विभिन्न प्रतिबन्धों के फलस्वरूप शान्तिपूर्ण तरीकों पर से स्वभावतः मजदूरों का विश्वास उठ जायगा।' उन्होंने कहा कि 'सरकार, जो अन्य दलों पर राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये मजदूरों को बरगलाने का दोषारोपण करती है', स्वयं 'पक्षपात की दोषी' है और 'इस पक्षपातपूर्ण नीति का परित्याग' करके ही सरकार मजदूर समस्या का समाधान कर सकती है। उन्हें इस बात का खेद था कि 'सरकार मजदूरों के असन्तोष के आधारभूत कारणों का समाधान न करके पूँजीपतियों को प्रसन्न करने की नीति अपना रही है', वह उत्पादन में वृद्धि करने के लिये मजदूरों से अपील करती है, किन्तु प्रतिनिधि तथा प्रभावशाली संगठनों की उपेक्षा करके और मजदूरों के सिर पर अनुचित ढंग से एक ऐसे संगठन को लाद करके जो वस्तुतः थोड़े से मजदूरों का ही प्रतिनिधित्व करता है, वह उत्पादन-वृद्धि के कार्य में सहयोग देने से मजदूरों को हतोत्साहित करती है'। आचार्यजी की धारणा थी कि 'कांग्रेसी सरकार की नीतियों में निम्न मध्यमवर्ग की मानसिक स्थिति की छाया झलकती है जिसमें न तो जन-क्रान्ति के पथ पर चलने का साहस है और न अपने स्वार्थों को पूर्ण रूप से पूँजीवादी वर्ग के स्वार्थों से मिला देने की इच्छा ही है। यह वर्ग सदा ही इन दो परस्पर विरोधी स्वार्थों में क्षणिक सामञ्जस्य स्थापित करने की चेष्टा करता रहता है और मुख्यतः पूर्ण रूप से पूँजी-वादी वर्ग के प्रभाव में रहता है'। पर इस समय 'मौलिक परिवर्तन की साहसपूर्ण और सुदृढ़ नीति से ही परिस्थिति सँभल सकती है'।

सरकार का पक्षपात

कांग्रेसी सरकारों के पक्षपात के कारण हिन्द मजदूर सभा के कार्य-कर्ताओं और यूनियनों को, विशेषतः प्रारम्भ में, बहुतसी कठिनाइयों और परेशानियों का सामना करना पड़ा। उनके काम में नाना प्रकार की बाधाएँ उपस्थित की गयीं। तामिलनाड, बिहार, करनाटक, महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में मजदूर आन्दोलन से सम्बन्धित बहुत से पार्टी कार्य-कर्ताओं को बिना किसी अपराध के उनके कार्यक्षेत्रों से सरकार ने

निष्कासित कर दिया तथा उनमें से कुछ को निरर्थक गिरफ्तार भी कर लिया। जबकि हिन्द मजदूर सभा से सम्बन्धित यूनियनों को खत्म कर देने के लिये मजदूरों पर बेजा दबाव डाला गया, महाराष्ट्र तथा मैसूर आदि में राष्ट्रीकृत यातायात तथा रेलवे के मजदूरों को इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस की यूनियनों में ही शामिल होने के लिये मजबूर किया गया। संयुक्त प्रान्त में तो इनटक की यूनियनों को ही मान्यता दी गयी तथा हिन्द मजदूर सभा द्वारा संगठित यूनियनों के साथ मालिकों तथा सरकार दोनों ने दुर्व्यवहार किया। कोयम्बटूर और डालमियानगर में मजदूरों की हड़ताल को तोड़ने के लिये मिल मालिकों ने गुण्डों का प्रयोग किया और सरकार ने गुण्डों के अत्याचार से मजदूरों की रक्षा करने के बजाय स्वयं पुलिस द्वारा मजदूरों के बच्चों तक को परेशान और त्रसित किया। कोयम्बटूर में पुलिस का अत्याचार पराकाष्ठा की सीमा का भी उल्लंघन कर गया और अन्ततोगत्वा सरकार की रजामन्दी से जो समझौता हुआ उसको लागू कराने के प्रति भी सरकार ने उपेक्षा की। डालमियानगर में श्री बसावन सिंह द्वारा सुसंगठित पुरानी यूनियन की मान्यता की माँग को ठुकरा कर मिल मालिकों और सरकार ने अत्याचार और दमन द्वारा मजदूरों की शक्ति को कुचल देने की कोशिश की। शांतिपूर्ण हड़ताल को भंग करने के लिये फौज का उपयोग किया गया और निकटस्थ ग्रामों के निवासियों को हड़तालियों के साथ सहानुभूति रखने के कारण आतंकित किया गया। हड़तालियों के नेता साथी बसावन सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया। जमशेदपुर में सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति के सदस्य मुन्शी अहमददीन को गिरफ्तार कर लिया गया और पार्टी के अनेक कार्यकर्ताओं को निष्कासित भी कर दिया गया। आचार्य नरेन्द्रदेव ने कांग्रेसी सरकारों के इस प्रकार के अत्याचार और पक्षपातपूर्ण व्यवहार की कड़े शब्दों में आलोचना करते हुए उन्हें आगाह किया कि इन तरीकों के परिणाम-स्वरूप शान्तिपूर्ण तरीकों पर से स्वभावतः मजदूरों का विश्वास जाता रहेगा। इस चेतावनी का सरकार पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसका पक्षपात जारी रहा। सरकार और मालिकों की दुधारी मार के कारण हिन्द मजदूर सभा की प्रगति ठीक तौर पर नहीं हो पायी। वह इनटक की सी प्रगति नहीं कर पायी। फिर भी उसने श्रमिक क्षेत्र में सम्मानित स्थान प्राप्त कर ही लिया।

बम्बई में हड़ताल

अगस्त सन् १९५० को हिन्द मजदूर सभा के नेतृत्व में एक बृहद् हड़ताल बम्बई के मजदूरों ने शुरू की। यह हड़ताल दो महीने तक चलती रही। यह हड़ताल भी डालमियानगर के मजदूरों की हड़ताल की तरह ट्रेड यूनियन की मान्यता के प्रश्न पर ही की गयी थी। मिल मालिकों ने इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस से सम्बन्धित यूनियन की ही मान्यता स्वीकार की। हिन्द मजदूर सभा का कहना था कि मान्यता प्राप्त यूनियन का इतने कम मजदूरों से सम्बन्ध है कि उसे मजदूरों की प्रतिनिधि संस्था नहीं कहा जा सकता। उसकी माँग थी कि कारखाने के सब मजदूरों के वोट से ही उनके प्रतिनिधियों का चुनाव होना तथा मान्यता दी जानी चाहिए। सरकार ने इस प्रश्न पर मजदूरों का साथ देने के बजाय मिल मालिकों का ही साथ दिया। यह देखते हुए भी कि आइ० एन० टी० यू० सी० की यूनियन के विरुद्ध मजदूरों की इतनी बड़ी हड़ताल है, उस यूनियन की मान्यता को बनाये रखना ही उसने उचित समझा। उसने कानून और व्यवस्था के नाम पर मजदूरों की शक्ति को कुचलने की कोशिश की। बहुत से मजदूर और सोशलिस्ट कार्यकर्ता जेल में भेज दिये गये। इस हड़ताल के दौरान में प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू बम्बई गये। वहां श्री अशोक मेहता, जो इस हड़ताल का नेतृत्व कर रहे थे, नेहरूजी से मिले। नेहरूजी ने इस मामले में हस्तक्षेप करने से इनकार किया और नासिक से एक वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने कहा कि मजदूरों की माँगें उचित हैं अथवा नहीं यह वे नहीं जानते, पर अगर यह माँगें ठीक भी हैं तब भी मजदूरों ने हड़ताल करके गलती की है और उनकी शिकायतों को दूर करने के लिये इस समय कुछ नहीं किया जा सकता।

इस वक्तव्य पर नरेन्द्रदेवजी ने २४ सितम्बर सन् १९५० को एक प्रेस वक्तव्य दिया। इसमें आचार्य जी ने बम्बई सरकार और प्रधान मन्त्री नेहरू के व्यवहार के प्रति क्षोभ प्रकट करते हुए हड़ताल का समर्थन और मज़दूरों के साहस और धैर्य की प्रशंसा की। उन्होंने कहा कि यह दुःख की बात है कि इस सम्पत्ति के हकों और मनुष्यों के हकों के संघर्ष में बम्बई की सरकार अपनी दमन-शक्ति को मज़दूरों को घुटने

टेकने को बाध्य करने के लिये प्रयोग कर रही है। वे यह मानने को तैयार नहीं थे कि राष्ट्रीय सरकार की हुकूमत में मज़दूरों को हड़ताल करने का कोई हक नहीं। हमारी राजनीतिक स्वतन्त्रता पूंजी और श्रम के संघर्ष को खत्म नहीं कर सकी है, फिर मज़दूरों को हड़ताल के हक से कैसे वंचित किया जा सकता है। जनतान्त्रिक आदर्शों पर दृढ़ रहने की पण्डित नेहरू ने जो अपील की थी उसके जवाब में नरेन्द्रदेवजी ने उनसे पूछा कि क्या बम्बई सरकार ने 'इनटक' को बम्बई के सूती मिल मजदूरों का एकमात्र प्रतिनिधि होने की मान्यता देकर जनतान्त्रिक कार्य किया है। क्या यह हड़ताल इस दावे को खोखला सिद्ध नहीं करती। नरेन्द्रदेवजी ने सरकार को आगाह किया कि 'अगर सरकार मज़दूरों के साथ इसलिये न्याय करने को तैयार नहीं कि उन्होंने हड़ताल की है, तब वह दिन दूर नहीं कि जब मज़दूर लोग वैधानिक और शान्तिमय उपायों से विश्वास खोकर उन राजनीतिक दलों के प्रभाव और कन्ट्रोल में आ जायेंगे जिन्हें हिंसा और तोड़ फोड़ में विश्वास है। यह बात जनतन्त्र के लिये बड़ी हानिकर होगी, यदि जनता अपनी शिकायतों के निवारण के लिये हिंसा का प्रयोग करने को मजबूर हो'। अन्त में उन्होंने जनता से अनुरोध किया कि वह इस संघर्ष में बम्बई के मजदूरों का साथ दें और २७ सितम्बर को देशभर में उनके समर्थन में सभाएं करें।

मजदूर नीति

सन् १९५१ में कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी की औद्योगिक और श्रमिक कार्यक्रमों की तुलना करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि जब कि कांग्रेस अपनी चुनावघोषणा में राष्ट्रीयकरण के प्रश्न पर चुप है और मज़दूर के हितों के अधिकांश प्रश्नों की उपेक्षा करती है, सोशलिस्ट पार्टी बैंकों और बीमा कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण को प्राथमिकता देते हुए खानों, चाय बागान तथा बुनियादी धन्धों एवं वस्त्र, चीनी और सीमेन्ट आदि उद्योगों के राष्ट्रीयकरण का वायदा करती है, तथा व्यक्तिगत उद्योगों के साथ साथ राष्ट्रीकृत उद्योगों के प्रबन्ध में भी मज़दूरों को हिस्सा दिलाने की प्रतिज्ञा करती है। उन्होंने कहा कि सोशलिस्ट पार्टी अपनी चुनाव घोषणा में 'बीमारी और बेकारी' के 'बीमा' का तथा वृद्ध अवस्था में

'पेन्शन' दिलाने का मजदूरों से वायदा करते हुए उन्हें विश्वास दिलाती है कि 'स्वतन्त्र संगठन' बनाने तथा 'हड़ताल करने के उनके अधिकार' पूर्णरूप से सुरक्षित रहेंगे। उन्होंने कहा कि इस तरह सोशलिस्ट पार्टी का कार्यक्रम 'मजदूरों की सामाजिक स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करता है'।

प्रजासोशलिस्ट पार्टी

सितम्बर सन् १९५२ में सोशलिस्ट पार्टी और किसान-मजदूर-प्रजा पार्टी ने मिलकर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का संगठन किया जिसमें फारवर्ड ब्लाक का एक ग्रुप भी शामिल हो गया। इस नयी पार्टी के भी सभी कार्यकर्ताओं ने मजदूर क्षेत्र में हिन्द मजदूर सभा द्वारा काम करना ही उचित समझा।

१९ जून सन् १९५३ को प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के बैतूल अधिवेशन के अवसर पर पार्टी के साठ ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं ने मजदूर आन्दोलन की एकता को सुदृढ़ करने का निश्चय किया। उनका विचार था कि ट्रेड यूनियन एकता जो स्वयं वांछनीय है श्रमिक वर्ग की बढ़ती हुई कठिनाइयों की पृष्ठभूमि में इस समय और भी अधिक अभीष्ट हो गयी है। इस समय जब कि मिल मालिक और सरकार दोनों ने ही मजदूरों की छंटनी शुरू कर दी है, पंचवर्षीय योजना नौकरी के अवसरों की समुचित वृद्धि में असफल रही है, मालिकों द्वारा मजदूरों की छटनी का भय बढ़ रहा है, सरकार के हस्तक्षेप द्वारा राहत मिलने की आशा कम हो गयी है, 'एक संयुक्त जनतान्त्रिक आन्दोलन ही, जो दलबन्दी की राजनीति और सरकार के प्रभाव से मुक्त हो, परिस्थिति का सामना कर सकता है'। मजदूर आन्दोलन के कतिपय क्षेत्रों में एकीकरण की प्रक्रिया पर सन्तोष प्रकट करते हुए कन्वेशन ने अपनी राय व्यक्त की कि जब तक एकीकरण की प्रक्रिया को बोधपूर्वक सुनियोजित ढंग से सब स्वतन्त्र और जनतान्त्रिक ट्रेड यूनियनों को एक संयुक्त ट्रेड यूनियन आन्दोलन में संगठित करने के उद्देश्य से आगे नहीं बढ़ाया जाता, यह प्रक्रिया शीघ्र ही क्षीण हो सकती है या वह ऐसे तीव्र पारस्परिक सन्देह और विरोध में भ्रष्ट हो सकती है जिससे ट्रेड यूनियन आन्दोलन का विघटन और भी गम्भीर हो जाय।' ट्रेड यूनियन आन्दोलन की

एकता को बढ़ाने के निमित्त सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, अशोक मेहता, सुरेशचन्द्र बनर्जी, ब्रजकिशोर शास्त्री और शिवनाथ बनर्जी की एक कमेटी गठित की गयी। इस कन्वेंशन ने यह भी निश्चय किया कि उसकी अपनी राय में संयुक्त ट्रेड यूनियन आन्दोलन निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए :—

१—मालिकों, सरकार तथा राजनीतिक दलों के प्रभुत्व से ट्रेड यूनियनों की स्वतन्त्रता।

२—अन्तिम आश्रय के रूप में हड़ताल का अधिकार।

३—यूनियन के आन्तरिक प्रबन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता।

४—मतगणना द्वारा समकक्ष यूनियनों के भेदों का निबटारा।

५—जनतान्त्रिक समाजवादी समाज के ध्येय को स्वीकार करना।

इस कन्वेंशन के निर्णयों के आधार पर इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस (इनटक) से एकीकरण की बातचीत बहुत काल तक चलती रही, पर प्रयास असफल रहा।

नीति घोषणा

दिसम्बर सन् १९५५ में प्रजासोशलिस्ट पार्टी ने अपने गया सम्मेलन में आचार्य नरेन्द्रदेव के निर्देशन में जो नीति-घोषणा स्वीकार की उसमें घोषित किया गया कि समाजवादी समाज में राष्ट्रीकृत उद्योगों की व्यवस्था ऐसी की जायगी कि जिसमें 'मजदूरों को अधिकाधिक स्वतन्त्रता तथा सुरक्षा सुलभ हो सके' और उनके प्रबन्ध में मजदूरों को 'स्वायत्त शासन के अधिकार' प्राप्त हों। इस घोषणा में 'काम करने का अधिकार और कर्तव्य' स्वीकार करते हुए कहा गया कि 'अधिकतम उत्पादन और सुख के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति को ऐसी स्थिति में रखा जाय जिससे वह समाज को अपना सर्वोत्तम योगदान कर सके और उसे एक अच्छा जीवनयापन तथा अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये समुचित साधन सुलभ हो सकें। अतएव यदि कोई व्यक्ति सामाजिक हित की दृष्टि से आवश्यक कार्य को अपनी योग्यतानुसार अच्छे से अच्छे ढंग से करता है तो उसे उसका ऐसा प्रतिफल भी मिलना चाहिए जिससे वह सभ्य नागरिक जीवन व्यतीत कर सके इस

प्रकार का प्रतिफल स्वयं उसके मानवीय गुण में निहित है।···इस निम्नतर राष्ट्रीय स्तर के ऊपर पुरस्कार में अन्तर समाजहित की दृष्टि से किया जा सकता है। प्रतिफल की इस व्यवस्था से हर किसी को सुरक्षा और पर्याप्तता सुलभ होगी तथा कुछ लोगों को कुछ विशेष सुविधायें इसलिये प्राप्त हो सकेंगी कि उनकी सेवाएँ समाज के लिये अधिक उपयोगी हैं।' इस नीति-घोषणा में मजदूरों के ऐसे प्रशिक्षण की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया जिससे 'मजदूर-वर्ग का पिछड़ापन दूर' हो, 'उनमें सामाजिक जागरूकता तथा निर्णय करने की क्षमता उत्पन्न' हो, 'समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना' जागृत हो और उन्हें कम से कम उस उद्योग की वास्तविक स्थिति की जानकारी प्राप्त हो सके जिससे उनका सम्बन्ध है।

उद्योगों के समाजीकरण के समर्थन में सम्पत्ति के अधिकार का विश्लेषण करते हुए नीति-घोषणा में कहा गया कि 'राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था के विकास में सारी जनता की सम्पत्ति समाज का मुख्य आधार है और सम्पत्ति के अधिकार को समाज के हितों के विरुद्ध व्यवहृत नहीं किया जा सकता। उसमें घोषित किया गया कि सभी मानव-अधिकार सामाजिक, क्रियात्मक और विकासात्मक हैं और सामाजिक कर्तव्यों के साथ उनका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। सम्पत्ति का अधिकार भी इस नियम का अपवाद नहीं हो सकता। सम्पत्ति भी एक सामाजिक संस्था है और अन्य सामाजिक संस्थाओं के समान ही सामाजिक कानूनों, आवश्यकताओं और परिस्थितियों से शासित होती है। उसे सामाजिक हित का साधन बनना होगा। सभी देशों में सम्पत्ति सम्बन्धी कानूनों में समय समय पर परिवर्तन हुए हैं और प्रायः बिना किसी प्रकार का मुआवजा दिये ही स्वामित्व के अधिकारों में परिवर्तन किया गया है और उन्हें समाप्त कर दिया गया है।

१५. समाजवाद की ओर

पटना सम्मेलन

मार्च सन् १९४९ में सोशलिस्ट पार्टी का वार्षिक अधिवेशन पटना में हुआ। इस अधिवेशन के लिये साथी मेहरअली अध्यक्ष मनोनीत किये गये थे। वे अस्वस्थ होने के कारण पटना नहीं आ सकते थे। उनकी अनुपस्थिति में नरेन्द्रदेवजी ने अध्यक्ष का स्थान ग्रहण किया। अपने अध्यक्षीय भाषण में आचार्यजी ने कांग्रेस के इस दावे को कि उसके और सोशलिस्ट पार्टी के उद्देश्यों में कोई अन्तर नहीं है, गलत बताया। उन्होंने कहा कि कांग्रेस उग्र राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व करती है और वह अधिनायकवाद की ओर अग्रसर हो रही है। वे सरदार पटेल की इस बात से सहमत थे कि वर्तमान सरकार उद्योग धन्धों के राष्ट्रीयकरण की योजना कार्यान्वित करने में असमर्थ है। उनका विचार था कि कांग्रेस जिस मार्ग पर चल रही है वह उसे एक अन्धी गली में ले जायेगी और आज की महत्त्वपूर्ण समस्याओं को वह हल नहीं कर पायेगी। प्रतिक्रियावादी और साम्प्रदायिक शक्तियों को भी कांग्रेस में शामिल कर लेने की प्रयास की तीव्र आलोचना करते हुए उन्होंने कहा कि यदि यह काम सम्पन्न हो गया तो कांग्रेस की क्या दशा होगी यह सोचकर हम कांप जाते हैं। आचार्यजी ने सम्प्रदायवाद को जनतन्त्र का सबसे बड़ा शत्रु बताते हुए तथा प्राचीन संस्कृति के पुनर्जीवन के आन्दोलन को शीघ्रगामी सामाजिक परिवर्तन के युग में गलत बताते हुए वर्तमान समाज के लिए अपरिहार्य राजनीतिक और सामाजिक मूल्यों को अपनाने का आग्रह किया।

नरेन्द्रदेवजी ने साम्प्रदायिकता के साथ ही साथ प्रान्तीयता को भी अभिशाप बताया और अन्तर्प्रान्तीय बन्धुत्व और मेल को दृढ़ करने पर जोर दिया। उनके विचार में यह काम एकतान्त्रिक शासन-प्रणाली द्वारा या भाषा के आधार पर प्रान्तों के विभाजन की माँग की उपेक्षा द्वारा नहीं हो सकता इसके लिये तो एक दूसरे को समझने की तथा एक दूसरे की भाषा और साहित्य को जानने की जरूरत है। [illegible]

भाषाओं के लिये एक ही लिपि तथा सारे देश के लिये एक सामान्य आर्थिक संगठन और सामान्य दीवानी कानून राष्ट्रीय एकता को दृढ़ करने के दूसरे साधन हैं। उन्होंने कहा कि हमें 'पारस्परिक अविश्वास और विरोध के सभी कारणों को दूर करना चाहिए और प्रान्त के अन्तर्गत समस्त समुदायों, विशेषतः अल्पसंख्यकों, को विश्वास दिलाना चाहिए कि उनके उचित स्वार्थों के लिये कोई खतरा नहीं रहेगा और समस्त वर्गों के साथ सामाजिक न्याय होगा।'

इस अभिभाषण में नरेन्द्रदेवजी ने कम्युनिस्ट पार्टी की कड़ी आलोचना करते हुए एक अधिनायकवादी पार्टी को एक सोशलिस्ट पार्टी या वामपक्षीय पार्टी मानने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि 'कोई अधिनायकवादी पार्टी सोशलिस्ट पार्टी नहीं हो सकती चाहे इसके सामाजिक उद्‌देश्य सोशलिस्ट पार्टी जैसे ही क्यों न हों। किसी राजनीतिक दल की कार्य-प्रणाली की उपेक्षा नहीं की जा सकती। उस दल का स्थान निर्णय करते समय इसकी विवेचना करनी ही होगी, क्योंकि साध्य और साधन अन्योन्याश्रित हैं और एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। साम्यवाद (कम्युनिज्म) जनतन्त्र का हिमायती नहीं है। वह मानव-व्यक्तित्व के विकास के लिये आवश्यक मूल्यों का आदर नहीं करता। वह उस वैधानिक जनतन्त्र की खिल्ली उड़ाता है जिसकी रक्षा के लिये इसने विगत महायुद्ध में इतना जोर लगाया। इसके लिये नैतिक नियमों की कोई उपयोगिता नहीं है और क्षणिक लाभ के लिये सन्देहात्मक नैतिकता के उपायों का आश्रय लेने में भी इसे हिचक नहीं होती। इसके साथ ही साथ यह रूस की वैदेशिक नीति का पुछला है और उसके लिये यह अपने ही राज्य की प्रादेशिक एकता को छिन्न-भिन्न कर सकता है या अपने ही राज्य को पलट सकता है'।

कम्युनिस्ट पार्टी के वैदेशिक दृष्टिकोण की निन्दा करने के साथ ही साथ नरेन्द्रदेवजी ने हिन्दुस्तान को ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल में बनाये रखने का भी विरोध किया। वे तटस्थ वैदेशिक नीति के पक्ष में थे। उनका विचार था कि ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल का सदस्य रहते हुए हिन्दुस्तान इस तटस्थ नीति का ठीक-ठीक अनुसरण नहीं कर सकेगा और उसकी तटस्थता पर दूसरों को सन्देह बना रहेगा। वे ब्रिटेन की परराष्ट्र नीति से हिन्दुस्तान का बंधा रहना गलत समझते थे, पर वह

सांस्कृतिक और व्यवसायिक कार्यों के लिये ब्रिटेन के साथ मैत्री का सम्बध बनाये रखने के पक्ष में थे।

आचार्यजी ने कहा कि सरकार को जनतन्त्र की सीमाओं को सीमित करने के बजाय उन्हें विस्तृत करना चाहिए और जनशिक्षा द्वारा सामान्य जन को इस योग्य बनाने का प्रयत्न करना चाहिए कि वे अपनी इच्छा को व्यक्त कर सकें और शासन व्यवस्था की आलोचना के अपने अधिकारों का भी उपयोग कर सकें। शिक्षा के द्वारा नवयुवकों में जनतन्त्र के प्रति श्रद्धा और जनतान्त्रिक व्यवहार की आदत डालने की जरूरत बताते हुए आचार्यजी ने कहा कि देश के उन तरुणों को जो ध्वंसात्मक सिद्धान्तों के विषैले प्रभाव में आ गये हैं, पुनः शिक्षा द्वारा इसके दुष्परिणामों से बचाना है और इसके लिये हमारे शिक्षाकेन्द्रों में जनतान्त्रिक विचारों एवं भावों का वातावरण तैयार करना है। अध्येताओं में वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करने की जरूरत बताते हुए उन्होंने कहा कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण को मानव मूल्यों में आस्था रखकर ही आगे बढ़ाना है, जिससे अश्रेयस्कर प्रयोजनों की सिद्धि के लिये विज्ञान का दुरुपयोग न हो। समाजवाद के मानवतावादी, जनतान्त्रिक और सांस्कृतिक तत्वों की व्याख्या करते हुए उन्होंने अधिनायकतन्त्र का विरोध किया तथा जातिवाद को हिन्दू समाज का अभिशाप बताते हुए समाजवादी ढंग से निम्न जातियों के आर्थिक और सामाजिक स्तर को ऊँचा करने की सलाह दी। आचार्यजी ने रचनात्मक कार्य पर विशेष जोर दिया और कहा कि समाजवादी कार्यकर्ताओं के लिये विस्तृत क्षेत्र में केवल प्रचार कार्य की अपेक्षा चुने हुए क्षेत्रों में ठोस कार्य अधिक वांछनीय हैं। उन्होंने कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिये ऐसे श्रमिक विद्यालयों के खोलने की सलाह दी जहां उनके सैद्धान्तिक ज्ञान की वृद्धि के साथ ही साथ उनकी कार्य-क्षमता का उचित विकास भी हो सके। आचार्यजी का सुझाव था कि किसानों और मजदूरों के वर्ग संगठनों को दृढ़ करने के साथ साथ बुद्धिजीवियों में प्रविष्ट होकर उन्हें भी पार्टी के झंडे के नीचे संगठित किया जाय। उन्होंने कहा कि अर्थशास्त्र तथा समाज-विज्ञान के अध्येताओं को पार्टी में लाना है और अपनी नीति निर्धारित करने तथा समस्याओं के अध्ययन करने के लिये उनके परामर्श और पथ-प्रदर्शन को सदा प्राप्त करते रहना है।

पंजाब सम्मेलन

अप्रैल सन् १९५० को सोशलिस्ट पार्टी की पंजाब शाखा के सम्मेलन की जालन्धर में नरेन्द्रदेव जी ने अध्यक्षता की। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने साम्प्रदायिक विद्वेष की भर्त्सना करते हुए राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ बनाने पर जोर दिया तथा कम्युनिस्टों की तानाशाही मनोवृत्ति की कड़ी आलोचना करते हुए जनतन्त्र और समाजवाद की मान्यताओं को पुष्ट किया। देश के बटवारे पर, पंजाब की जनता के कष्टों और मुसीबतों पर दुःख प्रकट करते हुए तथा साम्प्रदायिकता की बुराइयों पर रोशनी डालते हुए उन्होंने कहा कि 'जब तक इस देश के हिन्दू, सिक्ख और मुसलमान सही अर्थों में एक नहीं हो जाते, सब के सब राष्ट्रीयता के रंग में रंगे नहीं जाते और यह नहीं समझ लेते कि हिन्दुस्तान इन सबका देश है, सबको बराबर के अधिकार और उन्नति के अवसर मिलना चाहिए, उस समय तक हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिक प्रश्न हल नहीं हो सकते। याद रखिये अगर आप राष्ट्रीयता की भावना को नहीं अपनाते, तो समाजवाद को तो जाने दीजिये आप इस देश में अपने राष्ट्रीय राज्य को भी कायम नहीं रख सकेंगे। आज जो प्यार और भावनाएँ बिरादरियों और साम्प्रदायों के लिये हैं वे भावनाएँ इस देश के कोने-कोने में रहने वाले सब लोगों के लिये होना चाहिए।' उन्होंने संतप्त हृदय से कहा कि 'यदि आपको जिन्दा रहना है तो आपके लिये जरूरी है कि राष्ट्रीयता को अपनाएँ, जनतन्त्र को अपनाएँ और साम्प्रदायिकता को निकाल भगायें'। आज की हालत में ऊँच नीच और भेद भाव की कोई जगह नहीं है इसे खत्म कीजिये।'''सबको अपना मजहब मुबारक हो, लेकिन कौम के मामले में उसे दखल नहीं होना चाहिए'।

नरेन्द्रदेवजी ने अपने इस अभिभाषण में कम्युनिस्टों की तोड़फोड़ और हिंसा की नीति का विरोध करते हुए कहा कि हिन्दुस्तान में कम्युनिस्टों ने विघटन की नीति अपना ली है, वे देश के टुकड़े-टुकड़े करना चाहते हैं क्योंकि 'वे समझते हैं कि छोटे-छोटे मुल्कों में गड़बड़ी करना आसान होता है'। आचार्य नरेन्द्रदेवजी ने बताया कि 'कम्युनिस्टों ने पाकिस्तान का समर्थन किया, मुस्लिम लीग को कौम-

परस्त कहा और अपने साथियों को लीग में भेजा' और अब वे बाकी हिन्दुस्तान की तोड़फोड़ करना चाहते हैं। कम्युनिस्टों की नीति-रीति न तो देश के लिये हितकर है और न ही उसे मार्क्सवादी कहा जा सकता है। मार्क्सवाद कोई तास्सुब नहीं है, वह तो अध्ययन और कार्य-प्रणाली का ढंग है जिसे मार्क्स ने संसार को सिखाया था। मार्क्स ने स्वयं स्वीकार किया कि ऐतिहासिक स्थिति के बदलने पर काम का ढंग भी बदल जाता है।

नरेन्द्रदेवजी ने अपने साथियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि 'हमने जनतान्त्रिक समाजवाद को अपनाया है। मार्क्स ने स्वयं कहा था कि जिस समाजवाद में जनतन्त्र नहीं वह समाजवाद नहीं... समाजवाद को कायम करने में जो नयी व्यवस्था बनानी पड़ती है, वह एक नया सिलसिला प्रारम्भ करती है, इसके लिए हमें जनतन्त्र को कायम रखना चाहिए। रूस में जनतन्त्र नहीं हैं। हम इस बात को नहीं भूल सकते कि मनुष्य केवल रोटी ही नहीं चाहता, वह आजादी भी चाहता है, वह सोचने की आजादी, लिखने पढ़ने की आजादी चाहता है। चूँकि यह व्यक्तिगत आजादी आज रूस में मौजूद नहीं है, इसलिये हमें इस पर ज्यादा जोर देना है'।

नरेन्द्रदेवजी ने अपने सोशलिस्ट साथियों से अपील की कि वे अपने अमल से साबित करें कि वे कांग्रेस के लोगों से भिन्न हैं, कुर्सियों पर बैठने पर उनमें खराबी नहीं आयेगी। वे जनता की स्वतन्त्रताओं का अपहरण नहीं करेंगे। 'पार्टी का मेम्बर बनाते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अगर हमारे कार्यकर्ता अच्छी आदतों और ऊँचे स्तर के न हुए तो हमारी भी वही हालत हो जायगी जो आज कांग्रेस की हो गयी है। हमें अपने संगठन को मजबूत करना है, संघर्ष करना है, गरीब जनता की लड़ाइयाँ लड़नी हैं, अगर हमें इसमें दुःख झेलना पड़े तो इससे भी हटना नहीं है। हम नये समाज का निर्माण करने जा रहे हैं और यह मार्ग दुःखों और कष्टों का रास्ता, कांटों और कुर्बानियों का रास्ता है।'

नरेन्द्रदेवजी ने कार्यकर्ताओं को सलाह दी कि मजदूरों के साथ साथ किसानों और निम्न मध्यम श्रेणी के बुद्धिजीवियों को भी समाज-

वादी आन्दोलन में आकृष्ट किया जाय और इन तीनों का संयुक्त मोर्चा बनाने का प्रयत्न किया जाय। उन्होंने कहा कि जहाँ जनता में ७० प्रतिशत किसान हों, वहाँ किसानों के सहयोग के बिना क्रान्ति नहीं हो सकती। एशिया के स्वतन्त्रता संघर्षों में मजदूरों से कहीं अधिक किसानों ने हिस्सा लिया है। इस बात को भूलना एक भारी गलती होगी।

कांग्रेस पार्टी के सम्बन्ध में अपनी राय देते हुए नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि उसका और सोशलिस्ट पार्टी का अन्तर गति का नहीं, बल्कि मार्ग का है और इन दोनों पार्टियों की संयुक्त सरकार नहीं बन सकती।

तिलकराज चड्ढा

पंजाब पार्टी के इस अधिवेशन में श्री तिलकराज चड्ढा मन्त्री और ओमप्रकाश शैदा संयुक्त मन्त्री चुने गये। श्री तिलकराज चड्ढा एक व्यापारी के क्रान्तिकारी भावनाओं से अनुप्राणित प्रतिभाशाली सुपुत्र हैं। जब वे विद्यार्थी थे तभी सन् १९३० में विद्यार्थी आन्दोलन के सिलसिले में कैद हुए और सरदार भगत सिंह द्वारा स्थापित नौजवान भारत सभा के माध्यम से आतंकवादी क्रान्तिकारी आन्दोलन तथा 'दि हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसियेशन (हि० सो० रि० ए०)' के सम्पर्क में आये जिसका मुख्य उद्देश्य भारत में समाजवादी गणतन्त्र (सोशलिस्ट रिपब्लिकन स्टेट) स्थापित करना था। सन् १९३४ में जब चड्ढा साहब बी० ए० के विद्यार्थी थे वे पंजाब सोशलिस्ट पार्टी के संस्थापक सदस्य बन गये तथा सन् १९३६ में जब वे एम० ए० के विद्यार्थी थे वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में शरीक हो गये। सन् १९३७ में अर्थशास्त्र में दूसरा स्थान प्राप्त करते हुए एम० ए० की परीक्षा पास करके रावलपिंडी के दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज में उन्होंने अध्यापन का काम शुरू किया। पर क्रान्तिकारी मार्क्सवादी भावना से अनुप्राणित तिलकराजजी स्वतन्त्रता तथा समाजवादी समाज की स्थापना के काम में काफी लगे रहे तथा विश्वयुद्ध के शुरू होने पर उन्होंने भूमिगत कार्य शुरू कर दिया और इस सिलसिले में जनवरी सन् १९४१ में उन्हें गिरफ्तार करके देवली कैम्प में नजरबन्द कर दिया गया। यहां ये कम्युनिस्टों के अधिक सम्पर्क में आये और उनसे काफी प्रभावित भी हुए। पर

अन्ततोगत्वा वहीं पर श्री जयप्रकाश नारायण के निकट सम्पर्क में आने पर उन्होंने कम्युनिस्टों से अपना सारा सम्बन्ध तोड़ लिया। सन् १९४६ में वे कांग्रेस पार्टी के उम्मीदवार की हैसियत से पंजाब की विधान सभा के सदस्य चुने गये, पर मार्च सन् १९४९ में सोशलिस्ट पार्टी के निर्णय के अनुसार प्रधान मन्त्री श्री भीमसेन सच्चर के मना करने पर भी उन्होंने सदस्यता से इस्तीफा दे दिया। जून सन् १९५० में पंजाब सोशलिस्ट पार्टी के मन्त्री चुने जाने पर दो साल तक इस पद पर काम करने के बाद सन् १९५४ में वे पंजाब प्रान्तीय शाखा के अध्यक्ष तथा राष्ट्रीय कार्यसमिति के सदस्य चुने गये। सन् १९५५ में उन्होंने अध्यापन का कार्य फिर प्रारम्भ किया और इस समय वे यमुनानगर में एल० एन० कालेज के प्रिंसिपल का काम कर रहे हैं। श्री तिलकराज चड्ढा एक योग्य समाजवादी विचारक तथा क्रान्तिकारी योद्धा के साथ साथ उच्च कोटि के शिक्षाशास्त्री, प्रबन्धक और प्रशासक हैं। उनकी अध्यक्षता में कालेज बराबर उन्नति कर रहा है।

शोमप्रकाश शैदा

श्री शोमप्रकाश शैदा स्वतन्त्रता-संघर्ष के वीर सेनानी पण्डित अर्जुन दास के प्रतिभाशाली सुपुत्र थे। विद्यार्थी जीवन में ही शोमप्रकाशजी क्रान्तिकारी भावनाओं से इतने अनुप्राणित हो गये थे कि सन् १९३८ में सत्रह वर्ष की आयु में रावलपिन्डी के इस्लामिया हाई स्कूल की इमारत से यूनियन जैक उतार कर राष्ट्रीय ध्वजा फहराने के अभियोग में उन्हें अठारह मास का दण्ड भोगना पड़ा था। जेल से लौटने पर उन्होंने फिर पढ़ाई प्रारम्भ की। सन् १९४२ में एम० ए० की परीक्षा पास कर वे राष्ट्रीय संघर्ष में कूद पड़े और दिसम्बर सन् १९४२ में गिरफ्तार कर लिये गये। जेल में उन्होंने समाजवाद का गहरा अध्ययन किया तथा सन् १९४६ में जेल से छूटते छूटते उग्र जनतान्त्रिक राष्ट्रवादी ने स्वतन्त्र समाजवादी समाज की स्थापना अपना जीवन लक्ष्य निश्चित कर लिया। सन् १९४६ में उन्होंने अपना सारा समय समाजवादी कार्यकर्ता की हैसियत से व्यतीत करने का निर्णय किया और बड़ी क्षमता और उत्साह से इस व्रत का पालन किया। शैदा साहब उच्चकोटि के शायर, बहुत ही प्रतिभाशाली वक्ता तथा योग्य कार्यकर्ता और प्रबन्धक थे।

सन् १९६२ के चुनाव की समुचित व्यवस्था के लिये पार्टी के केन्द्रीय कार्यालय में अधिक परिश्रम और तत्परता से काम करने के कारण वे हृदय के रोग से ऐसे ग्रसित हुए कि फिर दौड़धूप का काम करना उनके लिये असम्भव हो गया और अक्तूबर सन् १९६२ में श्री जयप्रकाश नारायण की राय से वे अखिल भारतीय पंचायत परिषद् में काम करने लगे। ८ फरवरी सन् १९६८ को देहली में उनका निधन हुआ। छोटी-सी आयु में ही उनका निधन राष्ट्र की एक भारी क्षति है।

पंजाब का दौरा

नवम्बर सन् १९५१ में नरेन्द्रदेवजी ने आम चुनाव के सिलसिले से एक बार फिर पूर्वी पंजाब का दौरा किया। वे जालन्धर और अमृतसर गये। उन्होंने खालसा कालेज में भाषण दिया और उनकी प्रेरणा से कालेज के प्रिंसिपल सरदार जोधसिंह सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो गये। इस दौरे में जातपांत, धर्म और क्षेत्रीयता के नाम पर वोट माँगने के प्रयत्नों की निन्दा करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने जनता को सलाह दी कि वह आजाद उम्मीदवारों के फेर में न पड़कर विभिन्न राजनीतिक दलों की नीति-रीति और कार्यक्रम का अध्ययन करे और जिस पार्टी की बात ठीक वे समझें उसका वे समर्थन करें। कांग्रेस तथा जनसंघ की नीति-रीति की समीक्षा करते हुए उन्होंने जनता से सोशलिस्ट पार्टी के उम्मीदवारों को वोट देने की अपील की। उन्होंने कहा कि स्वतन्त्रता संघर्ष के जमाने में मौजूदा कांग्रेस के कार्यकर्ताओं के साथ साथ सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं ने भी आजादी के लिये कुर्बानियाँ कीं, पर अब जब कि कांग्रेस पार्टी ने पूँजीपतियों से गठबन्धन कर लिया है, सोशलिस्ट पार्टी महनतकशों के हितों का समर्थन करती है और देश के आर्थिक ढाँचे में क्रान्तिकारी परिवर्तन करना चाहती है। इस दौरे में श्री तिलकराज चड्ढा और सरदार हरभजन सिंह उनके साथ थे।

सरदार हरभजन सिंह

सरदार हरभजन सिंह ने, जिनका जन्म सन् १९२१ में पंजाब के गुजरात जिले में हुआ था, सन् १९४० में ही राजनीति में सक्रिय भाग लेना शुरू कर दिया था। सन् १९४२ में राष्ट्रीय संघर्ष के सिलसिले में

वे गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें जेल की यातनाएँ सहन करनी पड़ी सन् १९४६ में वे कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के सदस्य बन गये और उसके बाद तो वे अपना सारा समय पार्टी के आदेश के अनुसार ही समाज की सेवा में लगा रहे हैं। सन् १९४७ में देश के विभाजन के कारण उन्हें भारी क्षति उठानी पड़ी। माता, पिता और सबसे बड़े पुत्र के साथ साथ उनके परिवार के दूसरे तेईस सदस्यों को मौत का शिकार होना पड़ा। फिर भी मुसलमानों के प्रति उनका स्नेह बना रहा, उनकी रक्षा और सेवा करना भी वे अपना कर्तव्य समझते रहे। यह उनकी धर्मनिरपेक्षता, व्यापक उदार राष्ट्रीयता तथा समाजवाद के सिद्धान्तों पर दृढ़ निष्ठा का ज्वलन्त और व्यवहारिक प्रमाण है। वे सम्प्रदायवाद के कट्टर विरोधी हैं, उसे वह देश का भारी अभिशाप समझते हैं। इसीलिये उन्होंने कभी अकाली दल की सदस्यता स्वीकार नहीं की। सरदार हरभजन सिंह ने सन् १९४७ में पश्चिमी पंजाब के निष्क्रान्तों के पुनर्वास के लिये भरसक काम किया तथा दिसम्बर सन् १९४७ में वे जम्मू गये जहाँ वे जनवरी सन् १९४८ में गिरफ्तार कर लिये गये। सन् १९४९ से १९५३ तक किसान आन्दोलन में भाग लेते हुए वे कई बार जेल गये। वे सन् १९५५ में पार्टी की पंजाब शाखा के मन्त्री तथा सन् १९५८ में उसके अध्यक्ष निर्वाचित हुए। सन् १९६३ में वे पहली बार पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति के सदस्य चुने गये। इसी समय पंजाब के मुख्यमन्त्री श्री प्रताप सिंह कैरों ने चेतावनी दी कि यदि किसी में साहस हो तो नाम लेकर उनपर भ्रष्टाचार का आरोप लगाये। इस चेतावनी का और किसी ने तो कोई उत्तर नहीं दिया, पर सरदार हरभजन सिंह ने बहुत दिलेरी से चुनौती को स्वीकार किया और नाम लेकर कैरों के लड़कों पर अभियोग लगाया। मुकदमे के सिलसिले से उन्हें तीन महीने जेल में रहना पड़ा। पर सुप्रीम कोर्ट ने सरदार हरभजन सिंह को बरी कर दिया। वे सम्प्रदायवादियों के साथ साथ कम्युनिस्टों की गति-विधि से भी असन्तुष्ट हैं और किसी हालत में उनसे समझौता करने को तैयार नहीं हैं।

मद्रास सम्मेलन

जून सन् १९५० में श्री मेहरअली की अनुपस्थिति में श्री अशोक

मेहता की अध्यक्षता में सोशलिस्ट पार्टी का वार्षिक अधिवेशन मद्रास में हुआ। अस्वस्थ होने के कारण नरेन्द्रदेवजी इस अधिवेशन में उपस्थित नहीं हो सके। डाक्टर राममनोहर लोहिया भी किसी अपने कारण से वहाँ नहीं गये। सम्मेलन में काफी वादविवाद के बाद बहुमत से पण्डित नेहरू की दक्षिण कोरिया सम्बन्धी नीति के समर्थन में एक प्रस्ताव स्वीकार हुआ। डाक्टर राममनोहर लोहिया ने समाचारपत्रों द्वारा इसकी कड़ी आलोचना की। आचार्य नरेन्द्रदेव को भी सम्मेलन का निर्णय ठीक नहीं जँचता था, पर समाचार पत्रों द्वारा आपस में वादविवाद भी उन्हें बुरा लगता था। उनका विचार था कि यदि डाक्टर लोहिया बम्बई में पड़े रहने के बजाय मद्रास गये होते तो यह प्रस्ताव कभी स्वीकार नहीं हो पाता।

सत्याग्रह और समाजवाद

मद्रास सम्मेलन में प्रधानमन्त्री जयप्रकाश नारायण द्वारा दिये गये कुछ भाषणों के सम्बन्ध में पार्टी के कुछ सदस्यों को यह सन्देह हुआ कि वह सत्याग्रह का समर्थन करके मार्क्सवाद और गांधीवाद का समन्वय करना चाहते हैं। इस सन्देह को दूर करने के लिये नरेन्द्रदेवजी ने 'मार्क्सवाद और सत्याग्रह' के शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया। इसमें उन्होंने मार्क्सवाद और गान्धीवाद के मौलिक सिद्धान्तों और दृष्टिकोणों में अन्तर बताते हुए कहा कि सत्याग्रह को स्वीकार करने से 'मार्क्सवाद के किसी सिद्धान्त को कोई हानि नहीं पहुँचती' और 'उससे मार्क्सवाद और गान्धीवाद का समन्वय नहीं' होता। उन्होंने कहा कि 'जहाँ गान्धीवाद अहिंसा के सिद्धान्त को मानता है और वर्गसंघर्ष को तीव्र करने के विरुद्ध है, वहाँ मार्क्सवाद वर्गसंघर्ष की मूल भित्ति पर आश्रित है, वह शोषित वर्गों को संगठित कर उन्हें वर्गसंघर्ष द्वारा अपनी मुक्ति के लिये तैयार करना जरूरी समझता है और अत्यन्त प्रभावोत्पादक उपायों को स्वीकार करता है। मार्क्सवाद को हिंसा का शौक नहीं। यदि अहिंसा के उपायों से लक्ष्य की प्राप्ति हो तो इससे बढ़कर दूसरी बात नहीं, किन्तु यदि यह असम्भव हो तो हिंसा का प्रयोग करने में उसको कोई आपत्ति नहीं। हाँ, मार्क्सवाद विप्लववाद का विरोध करता है, इसे वह निरर्थक ही नहीं वरंच हानिकर समझता है'।

उनका कहना था कि हमारे देश पर सत्याग्रह का गहरा प्रभाव पड़ा है उसका प्रयोग सभी समय समय पर स्वभावतः करना चाहते हैं। ऐसा करना मार्क्सवाद के विरुद्ध नहीं समझा जा सकता।

जनतन्त्र और समाजवाद

मद्रास सम्मेलन में कुछ प्रतिनिधियों ने सोशलिस्ट पार्टी के मूल सिद्धान्त 'जनतान्त्रिक समाजवाद' के बारे में अपना मतभेद प्रकट किया। उनके भ्रम को दूर करने के लिये आचार्य जी ने 'जनतान्त्रिक समाजवाद ही क्यों ?' इस शीर्षक से एक बड़ा लेख लिखा। इसमें आचार्यजी ने बताया कि पार्टी के नीति वक्तव्य में 'टोटेलिटेरियन कम्युनिज्म' के विपक्ष में 'जनतान्त्रिक समाजवाद' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका यूरोप की 'सोशल डिमाक्रेसी' से कोई सम्बन्ध नहीं है।

उन्होंने कहा कि चूँकि रूसी क्रान्ति के बाद रूस की कम्युनिस्ट पार्टी ने वहाँ श्रमिक वर्ग के अधिनायकत्व के नाम पर एक स्थाई-सा पार्टी-अधिनायकत्व कायम कर समाजवाद और मार्क्सवाद के स्वरूप को विकृत कर उन्हें 'टोटेलिटेरियन कम्युनिज्म' में बदल डाला है, इसलिये समाजवाद के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान कराने को उसके पहले 'जनतान्त्रिक' शब्द जोड़ना आवश्यक हो गया है।

सामाजिक क्रान्ति

इसी लेख में क्रान्ति के उपकरणों और परिस्थिति का विश्लेषण करते हुए आचार्य नरेन्द्रदेव ने लिखा कि आजकल राज्यों की फौजी शक्ति इतनी बढ़ गयी है और इतने नये-नये शस्त्रों का आविष्कार हो गया है कि सशस्त्र क्रान्ति की बात तभी उठायी जा सकती है जब गवर्नमेन्ट शासन कार्य में अपने को असमर्थ पावे और सर्वसाधारण उसे बदलने के लिये प्राणपण से तैयार हो जाय और फौज सरकार का साथ छोड़ने को तैयार हो। एक दूसरे लेख में देश की स्थिति का विस्तृत विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा कि सशस्त्र क्रान्ति की सम्भावनाओं के अभाव में शान्तिमय जनतान्त्रिक उपायों द्वारा कार्य करना जरूरी हो जाता है। 'जनतान्त्रिक उपकरणों में पार्लियामेंट में काम

करने के अतिरिक्त प्रचार, संगठन, हड़ताल, सत्याग्रह आदि भी शामिल हैं। अत: जनतान्त्रिक प्रक्रियाओं को वैधानिक प्रकार कहना उचित नहीं है। वैधानिक उपाय तो इस प्रकार का बहुत ही छोटा सा अंश है और यह भी बेकार साबित होता है यदि अन्य उपायों से काम न लिया जाय। अन्य जनतान्त्रिक उपाय ही मुख्य हैं। सामान्यत: इन्हीं का आश्रय लेना पड़ता है। इनके बिना सशस्त्र जनक्रान्ति की भूमिका भी तैयार नहीं होती। किन्तु सशस्त्र क्रान्ति और विप्लववाद दो भिन्न वस्तुएँ हैं। लेनिन ने विप्लववाद को त्याज्य बताया है। यह सदा विफल होता है और उद्देश्य को क्षति पहुँचाता है। मार्क्स ने यह भी कहा है कि स्थिति के परिपक्व हुए बिना असावधानी से क्रान्ति कर देना मूर्खता है'।

कोई कार्य सुधारवादी है या क्रान्तिकारी, इसका निर्णय उस दृष्टि के आधार पर होता है, जिसको सामने रखकर वह कार्य किया जाता है। समाजवादियों का कर्तव्य है कि वे क्रान्तिकारी दृष्टिकोण से क्रान्तिकारी लक्ष्य को सामने रखते हुए मृदु और तीव्र प्रयोगों की बहस में न पड़कर अपने-अपने स्थान पर सब प्रगतिशील विचारों और कार्यों के केन्द्र बन जाएँ, मजदूरों को जागरूक और श्रेणीसजग बनाने का प्रयत्न करें, वर्गसंघर्ष द्वारा वर्गसंस्थाओं को पुष्ट करें तथा अपने को कार्यकुशल बनाये। हमें इस बात को सदा याद रखना है कि 'यदि क्रान्ति की अवस्था भी उत्पन्न हो जाय पर मजदूर वर्ग तथा पार्टी का दिल और दिमाग तैयार न हो तो क्रान्ति की अवस्था से पार्टी लाभ नहीं उठा सकती'।

अरुणा आसफ़अली को उत्तर

सन् १९५१ में श्रीमती अरुणा आसफअली ने भी एक पुस्तिका प्रकाशित की, जिसमें उन्होंने सोशलिस्ट पार्टी की नीति-रीति, संगठन और सिद्धान्त की आलोचना करते हुए उसे मार्क्सवादी और क्रान्तिकारी पार्टी के बजाय सुधारवादी पार्टी बताया और कांग्रेस में शामिल हो जाने की उसे सलाह दी। सोशलिस्ट पार्टी के विरुद्ध किये गये आक्षेपों का उत्तर देते हुए आचार्यजी ने बताया कि क्रान्ति में निम्न मध्यम वर्ग का बड़ा हाथ होता है, क्योंकि निम्न मध्यवर्ग से ही मुख्यत

क्रान्तिकारी नेतृत्व मिलता है। उनका कहना था कि मार्क्सवादियों के अनुसार क्रान्तिकारी सिद्धान्त के बिना क्रान्तिकारी आन्दोलन नहीं हो सकता और समाजवाद के दर्शन की सृष्टि तथा उसका विकास विद्वानों और चिन्तकों द्वारा ही होता है। वे यह स्वीकार करते थे कि मजदूरवर्ग को श्रेणीसजग बनाना और उसकी शिक्षा की व्यवस्था करना एक मार्क्सवादी का कर्तव्य है, पर उनकी धारणा थी कि निम्न-मध्यम वर्गीय क्रान्तिकारियों के महत्त्व की उपेक्षा गलत है। उनका कहना था कि साधारण मजदूर वर्ग क्रान्ति का भौतिक साधन मात्र है, जब कि क्रान्तिकारी समाजवादी विचारक उसका आध्यात्मिक साधन है। यह उसकी दिव्य दृष्टि है जो आने वाले समाज की रूपरेखा की भविष्यवाणी करती है। आचार्यजी का यह भी कहना था कि चुनाव में भाग लेने के विरुद्ध अरुणाजी के विचार मार्क्सवाद के प्रतिकूल हैं, क्योंकि जहां मार्क्स बालिग मताधिकारों को एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त और मजदूरों की क्रान्तिकारी माँग तसलीम करते हैं वहां एंगिल्स तो चुनाव से पूरा लाभ उठाने का आदेश देते हैं।

सोशलिस्ट पार्टी की नीति-रीति को पुष्ट करते हुए आचार्यजी ने अरुणाजी को स्मरण दिलाया कि सोशलिस्ट पार्लियामेंट का उपयोग करने के साथ साथ वर्गसंघर्ष, सत्याग्रह की लड़ाई और वर्ग-संस्थाओं को अधिक महत्त्व देते हैं। संसार भर की कम्युनिस्ट पार्टियां चुनाव में भाग लेती हैं, और हमारे देश में कम्युनिस्टों के विफल प्रयोग ने यह दिखा दिया है कि सशस्त्र क्रान्ति की बात करना मूर्खता है। उनका कहना था कि समाजवाद तक पहुँचने के कई रास्ते हैं, देश की स्थिति के अनुसार ही पार्टी का स्वरूप और समाजवाद का मार्ग निश्चित हो सकता है। मार्क्सवाद एक वैज्ञानिक पद्धति है और रोमांटिसिज्म का शत्रु है। वह काल और साधनों को देख कर प्रभावशाली उपयोगों का समर्थन करता है। मार्क्सवाद के सिद्धान्त तभी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं जब उनका उपयोग देश की विशेष परिस्थिति को ध्यान में रख कर किया जाय। अतः नरेन्द्रदेवजी के विचार में अपना मार्ग निश्चित करते समय हमें मार्क्सवादी साहित्य के अध्ययन के साथ साथ देश की ऐतिहासिक अवस्था, जनता की मनोवृत्ति और लोक परम्परा का भी अध्ययन करना होगा और संसार की परिस्थितियों को ध्यान में

रखने के साथ साथ हमें यह भी याद रखना होगा कि कोई भी समाजवादी पार्टी इस देश में आगे नहीं बढ़ सकती यदि वह कोई ऐसा काम करती है जिसका परिणाम राष्ट्र को दुर्बल करता है। जनतान्त्रिक समाजवाद के विरुद्ध अरुणाजी के विचारों को भी वे मार्क्सवाद के सिद्धान्तों के प्रतिकूल समझते थे। उनका विचार था कि जनतान्त्रिक समाजवाद ही मार्क्स का कम्युनिज्म है और मार्क्स पूर्ण जनतन्त्र का सबसे बड़ा समर्थक था। जनतन्त्र के बिना समाजवाद की धारणा असम्भव है और जब तक जनतन्त्र की रक्षा होती है और नागरिक अधिकारों में हस्तक्षेप नहीं होता, तब तक सशस्त्रक्रान्ति की भी जरूरत नहीं होती। अगर शासकवर्ग ने चुनाव ईमानदारी से कराया और उसकी हार होने पर उसने विरोधीवर्ग को शासन ग्रहण करने में रुकावट नहीं डाली तब डिक्टेटरशिप की जरूरत नहीं होगी। वे स्वीकार करते थे कि मार्क्स ने डिक्टेटरशिप की बात कही है, पर यह डिक्टेटरशिप पार्टी की नहीं श्रमिक वर्ग की है, इसका उद्देश्य शोषक वर्ग का कुचलना ही है और इस उद्देश्य के पूरा होते ही डिक्टेटरशिप खत्म होना चाहिए। उनका निश्चित मत था कि ऐसी डिक्टेटरशिप जिसका बुनियादी उद्देश्य पूरा हो गया है और जो अनुभव से समाजवादी श्रमिकों पर अल्पसंख्यक की जबरिया हुकूमत साबित हो, समाजवाद के मौलिक मूल्यों को खत्म ही करेगी।

चुनाव घोषणा

सन् १९५२ के चुनाव के लिये उत्तर प्रदेश की चुनाव घोषणा तैयार करने को प्रान्तीय कार्यसमिति ने आचार्य नरेन्द्रदेव और श्री मुकुटबिहारीलाल की एक कमेटी नियुक्त की। इस कमेटी द्वारा तैयार किये गये घोषणापत्र पर पहले कार्यसमिति में फिर प्रान्तीय कार्यकर्ताओं के शिविर में विस्तार के साथ विचार हुआ। इन दोनों की राय से घोषणा में समुचित संशोधन किये गये और संशोधित घोषणा सोशलिस्ट पार्टी की ओर से जनमत के समर्थन के लिये निर्वाचकों के सामने प्रस्तुत की गयी। शिविर के अन्तिम दिन नरेन्द्रदेवजी ने एक बहुत ही सारगर्भित और प्रभावशाली व्याख्यान दिया, जिसे बाद को 'चुनाव घोषणाओं का अध्ययन' के शीर्षक से पुस्तकाकार सोशलिस्ट

पार्टी ने प्रकाशित किया। इस व्याख्यान में नरेन्द्रदेवजी ने कांग्रेस, कम्युनिस्ट पार्टी और सोशलिस्ट पार्टियों की नीतियों का तुलनात्मक विश्लेषण करते हुए सोशलिस्ट पार्टी की नीति और कार्यक्रम को पुष्ट किया। कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी के लक्ष्यों में बुनियादी फर्क दिखाते हुए उन्होंने कहा कि हमारी शिकायत यह नहीं है कि कांग्रेस की नीति धीरे धीरे चलने की है, वरन् यह है कि कांग्रेस विपरीत दिशा में जा रही है। लक्ष्यहीनता के कारण कांग्रेस अधिकाधिक स्थिर स्वार्थों के प्रभुत्व में आ गयी है और उसका यह दावा कि वह समाजवाद को स्वीकार करती है, केवल जनता में भ्रम उत्पन्न करने का एक प्रयत्न मात्र है। कम्युनिस्टों के सम्बन्ध में आचार्यजी ने कहा कि वे इस समय अपने वामपक्षी बचपन के कुपरिणामों से इस तरह सहम गये हैं कि समाजवाद का नाम लेना ही उन्होंने बन्द कर दिया है। कहते हैं कि यह समय केवल पूँजीवादी लोकतान्त्रिक क्रांति का है, समाजवादी क्रांति का नहीं। इसी कारण उनका घोषणा पत्र भी सुधारवादी बातें करता है। सोशलिस्ट पार्टी ही एक ऐसा दल है जो स्पष्ट शब्दों में समाजवाद की स्थापना को अपने कार्यक्रम का लक्ष्य मानता है।

उद्योग-धन्धों के सम्बन्ध में इन तीनों पार्टियों के कार्यक्रम की चर्चा करते हुए आचार्यजी ने कहा कि जहाँ कांग्रेस पार्टी राष्ट्रीयकरण के प्रश्न की उपेक्षा करते हुए, नियन्त्रित पूँजीवाद की नीति अपनाते हुए, मिश्रित अर्थनीति की बात ही कहती है, वहाँ कम्युनिस्ट पार्टी विदेशी पूँजी को जब्त करने की और देशी पूँजी को विकास के लिये अधिक सुविधाएँ और सहायता देने का वायदा करती है। इनके विपरीत सोशलिस्ट पार्टी बैंकों और बीमा कम्पनियों के राष्ट्रीयकरण को प्राथमिकता देते हुए विदेशी पूँजी से अधिकृत खाने और चाय बागान के साथ-साथ बुनियादी धन्धों तथा वस्त्र, सीमेन्ट और चीनी आदि धन्धों के राष्ट्रीयकरण पर जोर देती है। आचार्य जी का निश्चित मत था कि सोशलिस्ट पार्टी के इस कार्यक्रम से देशी और विदेशी दोनों प्रकार की पूँजियों का प्रभुत्व नष्ट होगा और समाजवाद के प्रारम्भिक कदमों का निरूपण होगा।

कृषि समस्याओं और आर्थिक समानता की समस्या पर कांग्रेस पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम की कड़ी आलोचना करते हुए आचार्यजी

ने कहा कि सोशलिस्ट पार्टी के सुझावों पर अमल करने से कृषि-व्यवस्था में समुचित सुधार होगा, किसानों का जीवन स्तर ऊँचा उठेगा और समानता की वृद्धि होगी। सोशलिस्ट पार्टी चाहती है कि छोटे जमींदारों का प्रबन्ध करते हुए जमींदारी बिना किसी मुआवजे के खत्म की जाय, वह यह भी चाहती है कि जमीनों का फिर से इस तरह बटवारा हो कि वही जमीन रखने के अधिकारी हों जो अपने हाथ से खेती करने को तैयार हों और किसी खेतीहर परिवार के पास औसत पैदावार की तीस एकड़ से अधिक जमीन न हो।

वैदेशिक नीतियों का विश्लेषण करते हुए आचार्य जी ने कहा कि कांग्रेस की नीति से हमने मित्र तो नहीं वरन् शत्रु कई बना लिये हैं। किसी भी राष्ट्र का विश्वास हमको प्राप्त नहीं है। जैसी स्थिति है उसे देखते हुए यह कहना भी कठिन है कि इस नीति पर चलकर हम अपने को युद्ध में फंसने से बचा सकेंगे। दूसरी ओर कम्युनिस्ट पार्टी देश की दशा पर तनिक ध्यान न देकर देश को झगड़े में फंसा देना चाहती है, वह अमरीकी गुट को हमलावरों का गुट और रूसी गुटको शान्ति का गुट बताकर भारत को अमरीकी गुट के विरुद्ध रूसी गुट में शामिल होने की सलाह देती है। इसके विपरीत सोशलिस्ट पार्टी अमरीकी गुट और रूसी गुट दोनों की वैदेशिक नीति को संसार की शान्ति के लिये घातक समझती है और मौजूदा शक्ति संघर्ष से तटस्थ रहते हुए एक ऐसी तीसरी शक्ति को प्रोत्साहित करना चाहती है कि जिसका लक्ष्य एक ऐसा विश्व बनाना होगा जिसमें सब राष्ट्र स्वतन्त्र हों, सब राष्ट्रों का समान पद हो, कोई राष्ट्र किसी दूसरे राष्ट्र का शोषण न करता हो और सब प्रकार की राष्ट्रीय असमानताओं का अभाव हो।

चुनाव

आचार्यजी यह नहीं समझते थे कि सन् १९५२ के चुनाव में पार्टी की इतनी कम कामयाबी होगी। उनका अपना विचार था कि यदि पार्टी ने संगठन पर अधिक ध्यान दिया होता, अपने साधनों और शक्ति को इतने क्षेत्रों में नहीं बिखेरा होता, तो चुनाव के नतीजे अधिक अच्छे होते। उनकी राय में अगर पार्टी के नेतृत्व ने इतनी ऊँची आशाएँ नहीं बाँधी और बधाई होती तो चुनाव के बाद इतनी निराशा भी नहीं होती

इस चुनाव में बहुत से नेताओं और कार्यकर्ताओं के साथ-साथ आचार्य जी भी पराजित हुए। उनकी अपनी हार का एक कारण उनकी बीमारी थी जिसकी वजह से वे बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के उपकुलपति का भार वहन करने के साथ-साथ अपने चुनाव के लिये आवश्यक प्रयत्न नहीं कर सके। पर उनकी हार का मुख्य कारण पार्टी के एक प्रमुख कार्यकर्ता की गद्दारी थी जिसने काम करने के बजाय उसे बिगाड़ने की कोशिश की। यूं तो नरेन्द्रदेवजी भी चुनावों के परिणामों से दुःखी थे, पर वे अपनी जगह पर अडिग रहे और निराशा के वातावरण में आशा का दीप जगाते रहे और समाजवाद के प्रति कार्यकर्ताओं की निष्ठा दृढ़ करते रहे।

रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी

सन् १९५२ के आम चुनावों के बाद वामपक्षीय शक्तियों के मेल के प्रश्न ने देश में काफी जोर पकड़ा। बहुत से लोगों का विचार था कि कांग्रेस की बढ़ती हुई तानाशाही और धांधली को रोकने के लिये एक शक्तिशाली वामपक्षीय दल की जरूरत है और इस आवश्यकता को पूरा करने के लिये विभिन्न वामपक्षीय राजनीतिक पार्टियों और गुटों को मिलकर काम करना जरूरी है। नरेन्द्रदेवजी वामपक्षीय समाजवादी शक्तियों और दलों के मेल के पक्ष में थे। वह संकीर्ण सैद्धान्तिकता से ऊपर उठ कर व्यापक जनतान्त्रिक समाजवादी आदर्शों के आधार पर एक विशाल समाजवादी पार्टी और आन्दोलन को संगठित करना ही ठीक समझते थे। उन्होंने सन् १९५२ में क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी (रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी) से मेल की कोशिश भी की। पर वह सोशलिस्ट पार्टी से मेल करने को राजी नहीं हुई।

पचमढ़ी अधिवेशन

मई सन् १९५२ में पचमढ़ी में सोशलिस्ट पार्टी का विशेष सम्मेलन सम्पन्न हुआ। पार्टी के अध्यक्ष नरेन्द्रदेवजी की अनुपस्थिति में, जो सद्भावना मण्डल के एक सदस्य की हैसियत से चीन गये थे, डाक्टर राममनोहर लोहिया ने अध्यक्ष के आसन को सुशोभित किया। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में पूंजीवाद और कम्युनिज्म की कमजोरियों

और अपूर्णताओं की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए बिजली और तेल द्वारा सञ्चालित लघुउद्योग-प्राविधकों के विकास की आवश्यकता पर जोर दिया तथा समाजवाद के मौलिक सिद्धान्तों के विकास को समाजवाद की प्रगति के लिये आवश्यक बताया। मौजूदा युग में कांग्रेस पार्टी और कम्युनिस्ट पार्टी दोनों को समानरूप से असंगत बताते हुए तथा साम्प्रदायिक पार्टियों का विरोध करते हुए, अन्य वामपक्षीय दलों के साथ सहयोग करने का तथा उग्रवाद और समाजवाद की शक्तियों को सुसंगठित करने का उन्होंने सोशलिस्ट पार्टी को मशवरा दिया। डाक्टर साहब ने कहा कि 'सोशलिस्ट पार्टी को कभी भी कांग्रेस की सहायक टोली नहीं होना चाहिए और न ही उसे कभी कम्युनिस्ट पार्टी की सफरमैना का काम करना चाहिए'। उनके विचार में दोनों से अपनी विभिन्नता को स्पष्ट करना, अपने में नये जीवन का संचार करना तथा अपने बहुविध रचनात्मक कार्यों तथा संघर्षों का सञ्चालन करना ही सोशलिस्ट पार्टी का आवश्यक कार्य था। इस काम के साथ साथ दूसरे प्रगतिशील ग्रुपों और पार्टियों को अपनी ओर आकृष्ट करके उनके साथ राष्ट्रीय काम करते हुए उग्रवाद और समाजवाद की शक्तियों का व्यापक संगठन तथा दृढ़ीकरण भी उन्होंने सोशलिस्ट पार्टी का एक आवश्यक उत्तरदायित्व बताया। डाक्टर लोहिया ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इस बात पर भी जोर दिया कि राष्ट्रीय जीवन की कुछ मान्यताएँ दलबन्दी से ऊपर हैं। सभी को राष्ट्रीय गीत और झण्डे का आदर करना है, भेषभूषा और व्यवहार आदि की समानताओं को भी बढ़ाना है तथा बाहरी आक्रमण के अवसर पर देश की रक्षा के लिये सभी को तैयार होना है। उन्होंने देश की आन्तरिक राजनीति से हिंसा के बहिष्कार पर भी जोर दिया और सोशलिस्ट पार्टी को सलाह दी कि उसे अन्याय के विरुद्ध अहिंसात्मक प्रतिरोध तथा बहुविध रचनात्मक कार्यों द्वारा हिंसा के विरुद्ध घृणा को जागृत करना चाहिए'। इस भाषण में डाक्टर साहब ने सोशलिस्टों को सर्वोदय की अपूर्णताओं को ध्यान में रखते हुए स्वेच्छिक भूमिवितरण के अभियान में काम करने की सलाह दी। उन्होंने कहा कि 'हृदय परिवर्तन तथा कानून और शान्तिमय संघर्ष द्वारा परिवर्तन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और दोनों समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। सफलता के लिये दोनों का समन्वित प्रयोग

आवश्यक है। घृणा की बहुत सी क्रान्तियां पहले हुई हैं, पर उन्होंने एक निरंकुशता के स्थान पर दूसरी निरंकुशता ही स्थापित की है। संसार ने प्रेम की बहुत सी क्रान्तियों की भी प्रतिक्षा की है पर वे कभी कार्यान्वित नहीं हुई। जबकि कम्युनिज्म घृणा का सिद्धान्त है, सर्वोदय अभी तक प्रेम का अपर्याप्त सिद्धान्त है। जब प्रेम और क्रोध की, सबके लिये प्रेम और अन्याय के लिये विरोध की, एक क्रान्ति द्वारा सम्मिलित अभिव्यक्ति होगी, तभी मानव समाज आगे बढ़ने में समर्थ होगा'। उन्होंने सत्याग्रह और वर्गसंघर्ष के भेदों को भी निरर्थक बताते हुए कहा कि 'एक सच्चा वर्गसंघर्ष सविनय अवज्ञा है', 'दुष्टता की शक्ति को कम करना तथा साधुता की शक्ति को बढ़ाना' दोनों का काम है।

डाक्टर राममनोहर लोहिया के विचारों के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए, सम्मेलन ने उन पर काफी विस्तार के साथ विचार किया। सम्मेलन के बहुत से सदस्यों ने डाक्टर लोहिया साहब द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का मार्क्सवाद को चुनौती समझ कर विरोध किया। पर श्री जयप्रकाश नारायण ने मार्क्सवाद के प्रति अपनी निष्ठा को दुहराते हुए डाक्टर साहब के विचारों का स्वागत किया और कहा कि ये विचार समाजवादी चिन्तन की अपूर्णताओं को किसी हद तक जरूर दूर करने में सफल होंगे। श्री जयप्रकाश नारायण ने इस अवसर पर भूदान आन्दोलन और सर्वोदय के प्रति भी सम्मेलन का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने कहा कि 'सर्वोदयवादियों की दशा इस समय कांग्रेस जैसी है। उनके विभिन्न तथा परस्पर विरोधी दृष्टिकोण हैं। उनमें से कुछ कम्युनिज्म की ओर आकृष्ट हैं, कुछ कांग्रेस दल को अपना राजनीतिक मंच समझते हैं और एक ग्रुप सिद्धान्तों में हमारे निकट हैं। सर्वोदयवादियों का यह ग्रूप सोशलिस्ट पार्टी से सहयोग चाहता है। हमें भी उनके साथ सम्पर्क के लिये राजी होना चाहिए। जिन शक्तियों की सैद्धान्तिक प्रेरणायें एक हों और जिनके मौलिक दृष्टिकोण कुछ बातों में समान हों वे एक दूसरे का विरोध क्यों करें'? जयप्रकाशजी ने कहा कि 'विनोबा भावे भूदान आन्दोलन द्वारा भूमि वितरण के लिये जनमत तैयार कर रहे हैं तथा सरकार और जनता का इस समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं। वे गान्धीवादी क्रान्तिकारी शक्ति की चिनगारी हैं। अगर यह चिनगारी और सोशलिस्ट पार्टी मिल सके तो यह सारे

देश को हिला सकता है तथा अन्याय के विरुद्ध एक बहुत प्रचण्ड अग्निकांड शुरू कर सकता है'। श्री जयप्रकाश नारायण ने डाक्टर लोहिया की पार्टी लाइन का समर्थन करते हुए भी कहा कि 'हमें कांग्रेस और कम्युनिस्टों की उलझनों से अपने को बचाना चाहिए और उनसे अपने वास्तविक भेदों को स्पष्ट करना चाहिए तथा किसान मजदूर पार्टी और झारखण्ड पार्टी जैसे राजनीतिक दलों को अपने साथ लेने का प्रयत्न करना चाहिए। इन तत्वों के साथ राजनीतिक एकीकरण के लिये प्रयत्न करना चाहिए'।

डाक्टर लोहिया और श्री जयप्रकाश नारायण के इन विचारों का सम्मेलन के कुछ सदस्यों ने समर्थन और कुछ ने विरोध किया। अन्ततोगत्वा सम्मेलन ने राजनीतिक गतिविधि के सम्बन्ध में एक वक्तव्य पारित किया।

राजनीतिक वक्तव्य

इस वक्तव्य द्वारा सोशलिस्ट पार्टी ने घोषित किया कि कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टियों के साथ मेल करके या मोर्चा बनाकर वह अपने विशिष्टता (व्यक्तित्व) को अस्तव्यस्त नहीं करेगी। उसने पार्टी के सदस्यों को आदेश दिया कि वे इस तरह व्यवहार करें कि उसकी विशिष्टताएँ ठीक-ठीक पहचानी जा सकें और समाजवाद का सन्देश स्पष्ट तौर पर सुना जा सके। इस वक्तव्य में यह भी घोषित किया गया कि समाजवाद के यन्त्र के रूप में अपने को परिष्कृत करना सोशलिस्ट पार्टी का परम कर्तव्य है। पार्थक्य के भय से या इस कर्तव्य से पलायन के कारण सिद्धान्तविहीन सहयोग की ओर दिशा परिवर्तन की इच्छा के उदय होने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए। विस्तृत रचनात्मक कार्यों को ही पार्टी के काम का तरीका बनाना चाहिए। इन रचनात्मक केन्द्रों से ही संगठन और स्वयंसेवक दलों का उदय होगा। उनके चारों ओर ही अध्ययन और प्रशिक्षण केन्द्रों का तन्त्र बैठाना चाहिए। पार्टी के प्रत्येक सदस्य को सामुदायिक जीवन में सक्रिय भाग लेना ही चाहिए।

वक्तव्य में कहा गया कि मौजूदा समाज के अन्यायों और दुरुपयोगों से हमें कार्य के लिए प्रेरणा मिलनी चाहिए। अन्याय और

दुर्दशा को रोकने के लिये पार्टी के घटकों और सदस्यों को ऊपर के आदेश की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। उस हालत में जब सब वैधानिक उपाय बेकार सिद्ध हो गये हों ऐसे अन्याय के विरुद्ध सत्याग्रह और संघर्ष तो एक सोशलिस्ट की स्वभाविक प्रतिक्रिया होनी चाहिए।

वक्तव्य में आशा की गयी कि अन्याय के प्रतिरोध तथा निर्माण के सम्पादन द्वारा पार्टी जनता की मनोकामना का संगठन बन जायेगी। विपत्ति और अकाल के भय बढ़ते जा रहे हैं और अल्पमतों से बनी नीतिविहीन सरकार के अधीन आने वाले वर्ष क्लेषपूर्ण हैं। जिस हद तक पार्टी जनता की मनोकामना का यन्त्र बन सकेगी, उस हद तक गम्भीर व्यथा की परिस्थिति घटित नहीं होगी और अगर ऐसी अवस्था पैदा भी हुई तो राष्ट्रव्यापी संघर्ष की प्रक्रिया द्वारा उन पर काबू पाया जा सकेगा।

वक्तव्य में कहा गया कि जबकि अपने को परिष्कृत करना ही पार्टी का मुख्य कर्तव्य है, वह आम चुनावों के फलस्वरूप राजनीतिक जीवन के विखण्डन की भी उपेक्षा नहीं कर सकती। राष्ट्रीय एकीकरण और सामाजिक परिवर्तन के दावों के अनुकूल तरीकों से इस विखण्डन का अन्त करना जनता के प्रति सोशलिस्ट पार्टी का कर्तव्य है।

सम्मेलन ने कांग्रेस पार्टी के प्रगतिशील तत्त्वों से अपील की कि वे सोशलिस्ट पार्टी कांग्रेस में पुनः शामिल हो इस सम्बन्ध में विलाप करने पर अपनी शक्तियों को बरबाद न करें, वरन् वे सोशलिस्ट पार्टी को उग्रवाद और समाजवाद की पार्टी में संगठित करने में तथा यह सिद्ध करने में मदद दें कि कांग्रेस रूढ़िवाद और पूँजीवाद की पार्टी है।

सम्मेलन यह जानते हुए कि सर्वोदय आन्दोलन सामाजिक परिवर्तन की भावना से प्रेरित है उससे आशा करती है कि दोनों के बीच निकट सहयोग के सम्बन्ध में सोशलिस्ट पार्टी की इच्छा के अनुकूल ही सर्वोदय की प्रतिक्रिया होगी।

इस देश में जो दूसरी पार्टियाँ हैं, उनमें से कुछ तो ऐसी हैं जिनकी उग्रता रूढ़ीवाद से मिश्रित है और कुछ ऐसी हैं जिनकी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता तथा जनतन्त्र के प्रति निष्ठा देशातीत सम्बन्धों और कम्युनिस्ट तानाशाही की प्रेरणा द्वारा पराभूत नहीं हुई है। सोशलिस्ट पार्टी इन

दोनों ग्रुपों को निकट लाने और उनके सहयोग से काम करने की इस आशा से इच्छुक है कि इन प्रयत्नों द्वारा लक्ष्य और नीति की अभिन्नता प्रकट होगी तथा प्रगतिवाद और समाजवाद की सुसंगठित पार्टी बनाने के लिये अवसर पैदा होंगे। उन पार्टियों के ग्रुप के प्रति जो सम्प्रदायवाद पर आधारित हैं, सम्मेलन निरन्तर विरोध की नीति पुनः घोषित करती है।

यह सम्मेलन इस नीति की सिद्धि के लिये सोशलिस्टों को प्रयत्न करने का आदेश देता है। वह दूसरी पार्टियों से विशेषतः बुद्धिजीवियों और नवयुवकों से अपील करता है कि वे राष्ट्रीय जीवन के संगठन और सामाजिक परिवर्तन के बृहद् आन्दोलन में तथा सोशलिस्ट पार्टी को उग्रवाद और समाजवाद की पार्टी के रूप में ढालने में मदद देंगे। इस प्रकार भारतीय जनता एक ऐसे यन्त्र को गढ़ेगी जो उन्हें दरिद्रता और भय से रहित सन्तोषमय सरगरमी से गुंजायमान जीवन की ओर बढ़ने के योग्य बनायेगा।

विलयन की वार्ता

सम्मेलन के समाप्त होते ही सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, अशोक मेहता, गंगाशरणसिंह तथा द्वारिकाप्रसाद मिश्र किसान मजदूर प्रजा पार्टी के नेता आचार्य जे० बी० कृपालानी से मिलने देहली गये। डाक्टर राममनोहर लोहिया ने इनके साथ जाने से यह कहकर इनकार किया कि वह आचार्य कृपालानी आदि नेताओं से इस सम्बन्ध में सम्मेलन से पहले ही बात कर चुके हैं। श्री जयप्रकाश नारायण भी एक दिन आचार्य कृपालानी से बात करके किसी दूसरे काम से बाहर चले गये। बाकी तीन सज्जन कुछ दिन और कृपालानीजी से बात करते रहे। बाद को सोशलिस्ट पार्टी की ओर से श्री अशोक मेहता ही ने आचार्य कृपालानी आदि से सोशलिस्ट पार्टी और किसान-मजदूर-प्रजा पार्टी के मेल के सम्बन्ध में बातचीत और पत्रव्यवहार किया। सम्मेलन ने निश्चय किया था कि सहयोग की प्रक्रिया को बढ़ाया जाय ताकि लक्ष्य और नीति की एकरूपता प्रकट हो, पर बातचीत विलयन के आधार पर हुई। जब १ जून सन् १९५२ को यह निश्चय हुआ कि श्रीमती सुचिता कृपालानी के नेतृत्व में प्रजासोशलिस्ट पार्टी और किसान मजदूर प्रजा पार्टी के

सदस्य संसद में मिलकर काम करेंगे. तब श्री अशोक मेहता ने घोषित किया कि विलयन की ओर यह पहला कदम है। कहा जाता है कि इसका मुख्य कारण यही था कि किसान-मजदूर-प्रजा पार्टी के कतिपय नेताओं और कार्यकर्ताओं ने कम्युनिस्ट पार्टी से बातचीत करनी शुरू कर दी थी और कृपालानी जी को भय था कि वह अपनी पार्टी का स्वतन्त्र अस्तित्व बहुत दिनों तक कायम नहीं रख सकेंगे। आचार्य कृपालानी और श्री सादिक अली के वक्तव्यों से यह भी पता चलता है कि डाक्टर राममनोहर लोहिया के पचमढ़ी का अभिभाषण पढ़कर तथा श्री जयप्रकाश नारायण की गतिविधि देखकर उन्हें यह भी विश्वास हो गया था कि सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं का मार्क्सवाद पर से विश्वास उठ गया है और नयी सम्मिलित पार्टी की नीति-रीति को महात्मा गान्धी के सिद्धान्तों के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है। एक बार जयप्रकाशजी ने श्री अशोक मेहता को लिखा कि आन्ध्र में किसान-मजदूर-प्रजापार्टी ने जो गठबन्धन कम्युनिस्ट पार्टी से कर रखा है उसके खत्म हो जाने के बाद ही उस पार्टी से सोशलिस्ट पार्टी का विलयन हो सकता है। पर जब इसकी सूचना डाक्टर राममनोहर लोहिया को मिली, तब उन्होंने बड़े क्रोध में भर कर श्री जयप्रकाश नारायण की इस शर्त का विरोध किया।

हरदोई सम्मेलन

आचार्य नरेन्द्रदेव के चीन से वापस लौटने के तीन चार दिन बाद ही जून सन् १९५२ को हरदोई में सोशलिस्ट पार्टी की संयुक्त प्रान्तीय शाखा का सम्मेलन डाक्टर राममनोहर लोहिया की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में डाक्टर साहब ने अध्यात्मवाद और भौतिकवाद, व्यक्ति और समष्टि, धर्म और विधर्म तथा रोटी और संस्कृति के नये एकीकरण पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि भौतिकवाद और अध्यात्मवाद दोनों अपूर्ण हैं और दोनों के मेल से ही सम्यक ज्ञान सम्भव है। क्षण 'शाश्वत और प्रवाह दोनों है और उसके ये दो गुण भौतिकता और अध्यात्मवाद से सम्बन्ध निश्चित करते हैं। क्षण भविष्य के रूप में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के क्षेत्र से सम्बन्धित है और वर्तमान के रूप में अध्यात्म से सम्बन्धित है। आध्यात्म से अनुप्राणित द्वन्द्वात्मक

भौतिकवाद की पद्धति इतिहास की गति को बता सकता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से अनुज्ञापित अध्यात्म की पद्धति अस्तित्व के प्रासाद को उठा सकती है। इसी तरह धर्म और विधर्म का एकीकरण आवश्यक है। धर्म को अपनी विलापशीलता को तथा वर्तमान व्यवस्था के समर्थन को छोड़ना चाहिए। अब जब कि उसने सब धर्मों की मूलभूत एकता के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है, तब उसे सब धर्मों की आधारभूत अपूर्णता के विचार पर भी चिन्तन करना है। सोशलिस्टों के लिये भी धर्म के करुणामय संयम और नैतिक प्रशिक्षण के प्रति कुछ विनम्रता अनुभव करना ही ठीक होगा। व्यक्ति और समाज तथा रोटी और संस्कृति के सामञ्जस्य की ओर भी डाक्टर लोहिया ने ध्यान आकृष्ट किया।

नरेन्द्रदेवजी की प्रतिक्रिया

आचार्य नरेन्द्रदेव स्वयं व्यक्ति और समष्टि दोनों को समुचित मान्यता दिये जाने के पक्ष में थे, वे दोनों के अधिकारों का समुचित सामञ्जस्य आवश्यक समझते थे। वे रोटी और संस्कृति के सामञ्जस्य को भी स्वीकार करते थे। वे कहा करते थे कि समाजवाद केवल आर्थिक आन्दोलन ही नहीं वरन् सांस्कृतिक आन्दोलन भी है। पर आचार्यजी के विचार में व्यक्ति और समष्टि के मर्यादाओं तथा अधिकारों का सामञ्जस्य एवं समाजवाद का सांस्कृतिक स्वरूप मार्क्सवाद में निहित है। इसके लिये मार्क्सवाद का परित्याग जरूरी नहीं है। नरेन्द्रदेवजी को डाक्टर लोहिया का मार्क्सवाद के विरुद्ध प्रचार तथा अध्यात्मवाद और भौतिकवाद के एकीकरण की व्याख्या मान्य नहीं थी। धर्म और विधर्म के एकीकरण की बात भी वे ठीक नहीं समझते थे। उनको भय था कि मार्क्सवाद को परित्याग कर सोशलिस्ट अपने समाजवादी सिद्धान्तों को परिष्कृत करने की बजाय सिद्धान्तों के विवाद में उलझ कर सिद्धान्त-विहीन हो जायेंगे। उनका यह भय विलयन की वार्ता तथा आचार्य कृपालानी के वक्तव्यों से और भी बढ़ गया था। सर्वोदय के प्रति समाजवादियों का झुकाव भी उन्हें पसन्द नहीं था। नरेन्द्रदेवजी को इस बात का बहुत क्षोभ था कि उनकी अनुपस्थिति में उनके साथियों ने उनसे मशवरा किये बिना पार्टी के विलयन के सम्बन्ध में दूसरी पार्टी के नेताओं से बातचीत शुरू कर दी और बात इतनी आगे बढ़ा दी

कि पीछे हटना कठिन हो गया। उन्हें इस बात का भी क्षोभ था कि जब पचमढ़ी सम्मेलन ने दूसरी पार्टियों के साथ सहयोग की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने का आदेश दिया था, वहाँ पार्टी के नेताओं ने लक्ष्य और नीति की अभिन्नता और एकात्मता पुष्ट किये बिना ही विलयन की प्रक्रिया प्रारम्भ कर दी। नरेन्द्रदेवजी के विचार में जहाँ सम्मेलन ने सिद्धान्तों की स्पष्टता और समाजवादी मान्यताओं के परिष्कार पर जोर दिया था, वहाँ विलयन की प्रक्रिया में संलग्न साथी समाजवादी सिद्धान्तों और मान्यताओं की उपेक्षा करते हुए पार्टी के भौतिक आकार की वृद्धि पर जोर देते हैं और समझते हैं कि दो पार्टियों के मिलने पर सम्मिलित पार्टी अपने बृहद् भौतिक आकार के बल पर समाजवाद की बड़ी सेवा कर सकेगी।

राष्ट्रीय कार्यसमिति

अगस्त सन् १९५२ को वाराणसी में सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति की बैठक हुई। इस बैठक में सोशलिस्ट तथा किसान-मजदूर-प्रजा पार्टियों के विलयन के सम्बन्ध में विचार हुआ। अधिकांश विलयन के पक्ष में थे, यद्यपि कुछ व्यक्तियों की राय थी कि विलयन के बजाय साथ साथ काम शुरू किया जाय और जब समान लक्ष्य, नीति-रीति का विकास और उनकी पुष्टि हो जाय, तब विलयन किया जाय। इसके उत्तर में कहा गया कि किसान-मजदूर-प्रजा पार्टी के नेता विलयन में देरी करने के पक्ष में नहीं हैं। एक व्यक्ति ने विलयन का विरोध करते हुए बड़े व्यंग से कहा कि आचार्य कृपालानी उच्चकोटि के नेता हैं, उन्होंने राष्ट्र की बड़ी सेवा की है, पर यह कैसे कहा जा सकता है कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू कृपलानीजी से कम प्रगतिशील हैं, जब विलयन ही करना था तब कांग्रेस से बात क्यों न की गयी। इस पर श्री अशोक मेहता ने कहा कि 'छः महीने बाद समता की शर्त पर'। उस व्यक्ति ने इस बात की चर्चा करते हुए नरेन्द्रदेवजी से कहा कि 'श्री अशोक मेहता तो कांग्रेस से विलयन करना चाहते हैं'। आचार्यजी ने उस व्यक्ति का अनुमान श्री जयप्रकाश नारायण को लिख भेजा। इस पत्र के जवाब में जयप्रकाशजी ने लिखा कि किसी व्यक्ति को 'अशोक मेहता पर इस प्रकार सन्देह करना उचित नहीं है'।

जब नरेन्द्रदेवजी ने देखा कि राष्ट्रीय कार्यसमिति का बहुमत विलयन के पक्ष में है तब सोशलिस्ट पार्टी के सिद्धान्तों की यथासम्भव रक्षा करते हुए विलयन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाना उन्होंने सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष की हैसियत से अपना कर्तव्य समझा। उस समय कुछ व्यक्तियों का ऐसा विचार था कि इस संयुक्त पार्टी के साथ सोशलिस्ट शब्द न जोड़ा जाय, पर नरेन्द्रदेवजी इस बात के लिये किसी हालत में तैयार नहीं थे। वर्गसंघर्ष के सिद्धान्त पर भी नरेन्द्रदेवजी का दृढ़ विश्वास था। इस सिद्धान्त को स्वीकार करना भी वे संयुक्त पार्टी के लिये जरूरी समझते थे। उनके आग्रह पर विलयन के समझौते में शान्तिमय हड़तालों और सत्याग्रहों को भी जनतान्त्रिक साधनों के आवश्यक अंग के रूप में वर्गसंघर्ष के उपाय मान लिया गया।

जनरल कौंसिल

सितम्बर सन् १९५२ को विलयन के सम्बन्ध में विचार करने के लिये बम्बई में जनरल कौंसिल की बैठक हुई। कुछ अस्वस्थ हो जाने के कारण डाक्टर राममनोहर लोहिया इस बैठक में उपस्थित नहीं थे। पर उन्होंने विलयन के समर्थन में समाचारपत्रों में एक बहुत लम्बा लेख प्रकाशित कराया। इस अवसर पर आचार्य कृपालानीजी ने भी कुछ लेख प्रकाशित कराये। उनके पढ़ने से ऐसा पता चलता था कि कृपालानीजी की राय में नयी पार्टी का सैद्धान्तिक आधार मार्क्सवाद के बजाय गान्धीवाद होगा। ऐसी परिस्थिति में नरेन्द्रदेवजी ने जनरल कौंसिल में विलयन का समर्थन करते हुए बहुत ही संतप्त हृदय से कहा कि वह मार्क्सवादी हैं और वह अपने सिद्धान्तों को किसी हालत में छोड़ने को तैयार नहीं हैं, चाहे इस कारण उन्हें अपने मित्रों का ही साथ छोड़ना पड़े। उन्होंने कहा कि अपने सिद्धान्तों के लिये उन्होंने अपने मित्र जवाहरलाल को छोड़ दिया और अपने सिद्धान्त के लिये वे दूसरे मित्रों को भी छोड़ सकते हैं। उस समय उन्होंने यह भी कहा कि सम्भवतः इस पार्टी में छः महीने के बाद किसी मार्क्सवादी का स्थान नहीं होगा। दूसरे दिन आचार्य कृपालानी ने एक दूसरा वक्तव्य प्रकाशित कराया जिसमें उन्होंने संकेत किया कि प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में जनतान्त्रिक समाजवाद पर विश्वास रखने वाले गान्धीवादी और

मार्क्सवादी दोनों को समान रूप से स्थान होगा। इस वक्तव्य से तनाव में कुछ कमी जरूर हुई। पर फिर भी नरेन्द्रदेवजी का क्षोभ बहुत अर्से तक बना ही रहा।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी

सोशलिस्ट पार्टी और किसान-मजदूर-प्रजा पार्टी के विलयन के बाद नयी पार्टी का नाम प्रजा सोशलिस्ट पार्टी रखा गया। इसके अध्यक्ष आचार्य कृपालानी और प्रधानमन्त्री श्री अशोक मेहता नियुक्त हुए। आचार्य कृपालानी स्वतन्त्रता संग्राम के वीर सेनानी और गान्धीजी के पुराने सहयोगी हैं। सन् १९१७ में चम्पारन के सत्याग्रह के सिलसिले से वे गान्धीजी के सम्पर्क में आये और तब से बराबर उनके साथ रहे। दोनों की प्रकृति में काफी अन्तर था। पर आचार्य कृपालानी को गान्धीजी के नेतृत्व पर और गान्धीजी को कृपालानीजी की देशभक्ति और राष्ट्रसेवा की भावना और क्षमता पर विश्वास था। कृपालानीजी उच्चकोटि के विद्वान्, शिक्षक और विचारक हैं। कांग्रेस संगठन से उनका गहरा सम्बन्ध रहा है। कई वर्ष तक वे कांग्रेस के प्रधानमन्त्री रहे और स्वतन्त्र भारत में एक वर्ष से अधिक उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष पद को भी सुशोभित किया। वे गान्धी-चिन्तनधारा के प्रमुख विचारक और व्याख्याता हैं और उन जैसे प्रतिभाशाली नेता के नेतृत्व में डाक्टर राममनोहर लोहिया आदि कुछ सोशलिस्ट नेताओं को प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और समाजवाद की प्रगति की विशेष आशा थी। आचार्य कृपालानी के विचारों को ध्यान में रखते हुए नरेन्द्रदेवजी डाक्टर लोहिया की इस बात से सहमत नहीं थे। नरेन्द्रदेवजी का विचार था कि कृपालानीजी के लिये समाजवादी नेतृत्व प्रदान करना सम्भव नहीं होगा।

हरिविष्णु कामथ

कुछ दिन बाद फार्वर्डब्लाक का एक ग्रूप भी श्री हरिविष्णु कामथ के नेतृत्व में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में शामिल हो गया। श्री हरिविष्णु कामथ एक सुसंस्कृत परिवार के प्रतिभाशाली रत्न हैं। अपने बड़े भाई की तरह उन्होंने भी उच्चशिक्षा प्राप्त कर इण्डियन सिविल सर्विस में प्रवेश किया। पर जहां उनके भाई साहब ने इस सर्विस में काम करते

हुए उच्च से उच्च पद प्राप्त किया और अवकाश ग्रहण करने के बाद इन्दौर विश्वविद्यालय के उपकुलपति के पद को सुशोभित किया, वहां हरिविष्णुजी कुछ काल तक सरकारी नौकरी करने के बाद देश के स्वतन्त्रता संघर्ष में कूद पड़े। नेता सुभाषचन्द्र बोस के गतिशील व्यक्तित्व से आकृष्ट हो कामथ साहब ने उनके क्रान्तिकारी नेतृत्व को स्वीकार किया। जब सन् १९३८ में सुभाष बाबू ने कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से योजना कमेटी का संगठन किया तब उन्होंने कामथ साहब को भी उसका एक सदस्य बनाया और जब सन् १९३९ में सुभाष बाबू ने फार्वर्ड ब्लाक का गठन किया तब कामथ साहब उसमें शामिल हो गये और सन् १९५२ तक उसके तत्त्वावधान में ही राष्ट्र की सेवा करते रहे। एक वीर सेनानी की तरह उन्होंने स्वतन्त्रता के संघर्ष में हिस्सा लेते हुए जेल की कठिन यातनाएँ सहीं। सन् १९४७ से सन् १९५० तक कामथ साहब ने बड़ी लगन और क्षमता से संविधान सभा के सदस्य की हैसियत से काम किया और अपनी योग्यता तथा निर्भीकता के लिये देश के शिक्षित समाज में काफी ख्याति प्राप्त की। सन् १९५२ में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में शामिल होने के बाद से वे उसके माध्यम से ही देश की सेवा कर रहे हैं। इस पार्टी के नेतृत्व मण्डल में आपका ऊँचा स्थान है। पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति के सदस्य तथा उसकी पार्लियामेन्टरी कमेटी के अध्यक्ष की हैसियत से उसके सञ्चालन में कामथ साहब का महत्त्वपूर्ण योगदान है। आपने कई वर्ष तक लोकसभा में भी पार्टी की नीति-रीति तथा गति-विधि को पुष्ट किया और अपने कार्य से पार्टी के यश की वृद्धि की।

कांग्रेस से समझौते का प्रश्न

आचार्य नरेन्द्रदेव कांग्रेस छोड़ने को उतावले नहीं थे। पर जब उन्होंने कांग्रेस छोड़ी, तब फिर उन्होंने कांग्रेस में वापस जाने की या कांग्रेस के साथ मिलकर मिलीजुली सरकार बनाने की बात कभी नहीं सोची। सोशलिस्ट पार्टी के किसी जिम्मेदार व्यक्ति से इस प्रकार की चर्चा सुनकर उन्हें बड़ा दुःख होता था, कभी कभी वे रोष में भी आ जाते थे। फिर भी कभी न कभी चर्चा चल ही पड़ती। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के बन जाने के कुछ दिन बाद तो इस चर्चा और विचार ने प्रधान

मन्त्री नेहरू और पार्टी के नेताओं में लम्बी चौड़ी बातचीत का रूप धारण कर लिया। सन् १९५३ में नेहरूजी के निमन्त्रण पर श्री जयप्रकाश नारायण उनसे मिले। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों में प्रजा सोशलिस्ट नेताओं के शामिल होने की सम्भावना पर दोनों में विचार-विनियम हुआ। आचार्य कृपालानी और श्री अशोक मेहता ने इसका समर्थन किया। डाक्टर राममनोहर लोहिया ने, जो सोशलिस्ट पार्टी और किसान-मजदूर-प्रजा पार्टी के विलयन के बड़े हामी थे और विलयन को एक बड़ी ऐतिहासिक घटना समझते थे, इस नये विचार का कड़ा विरोध किया। आचार्य नरेन्द्रदेव ने जब यह बात सुनी तब उन्हें बड़ी वेदना हुई और उन्होंने श्री जयप्रकाश नारायण से साफ शब्दों में कहा कि वह इस सुझाव के समर्थन की जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं हैं। श्री जयप्रकाश नारायण ने नेहरू जी के सामने चौदह सूत्रीय कार्यक्रम प्रस्तुत किया और उनके आधार पर मिलीजुली सरकार बनाने की बात पर विचार करने को कहा। नेहरूजी इसके लिये तैयार नहीं थे। बात दस मिनट के अन्दर ही समाप्त हो गयी। कहा जाता है कि कांग्रेस के बहुत से नेता भी मिलीजुली सरकार बनाने के पक्ष में नहीं थे।

इस वार्ता ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में एक विवाद खड़ा कर दिया। जहाँ श्री अशोक मेहता कांग्रेस और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के मेल को देश की पिछड़ी आर्थिक दशा की मजबूरी बताते थे, वहाँ डाक्टर लोहिया मेल की वार्ता को देश की प्रगति के लिये बहुत घातक समझते थे।

बैतूल सम्मेलन

इस विवाद का निबटारा करने के लिये जून सन् १९५३ में बैतूल में पार्टी का एक विशेष कन्वेंशन बुलाया गया। इस कन्वेंशन में श्री अशोक मेहता ने कांग्रेस की विफलता के कारण जनतान्त्रिक नीतियों के बदनाम हो जाने की ओर संकेत करते हुए कहा कि इस संकट से बचने के लिये जरूरी है कि या तो जनतान्त्रिक पार्टियों के बीच कार्यक्रम के सम्बन्ध में कोई समझौता हो या सहमति (agreement) और असहमति (disagreement) के क्षेत्रों का ठीक ठीक स्पष्टीकरण किया जाय। उनके विचार में निर्माण कार्योंमें और दलबन्दी की

राजनीति में अन्तर करना ही होगा। मेहताजी का निश्चित मत था कि सहयोग के वातावरण को बढ़ाना और निर्माणकार्य के अधिक से अधिक क्षेत्र में अधिक से अधिक पार्टियों को साथ में लाना देश के पुनर्निर्माण के लिये जरूरी है।

इसके विरुद्ध डाक्टर लोहिया का कहना था कि कांग्रेस और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के आर्थिक और सामाजिक आदर्शों और कार्यक्रम में मौलिक भेद है और इसलिये दोनों के बीच में सार्वजनिक या सरकारी स्तर पर कोई समझौता सम्भव नहीं है। उनकी राय में पण्डित नेहरू द्वारा चौदह सूत्रीय कार्यक्रम मंजूर कर लेने से भी देश की सामाजिक और आर्थिक दशा में कोई विशेष परिवर्तन नामुमकिन है। उनका विचार था कि कांग्रेस का विधान-सभाओं में इतना भारी बहुमत है कि यदि वह चाहे तो जनकल्याण के निमित्त जनता का सहयोग प्राप्त कर सकती है और उसे इस काम के लिये प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के सहयोग की जरूरत नहीं है। उनकी धारणा थी कि कांग्रेसी सरकारें आर्थिक और सामाजिक अन्यायों को सहन करने के कारण बदनाम होती जा रही हैं और ऐसी हालत में कांग्रेस के साथ सहयोग की बातचीत और असहमति के क्षेत्र की उपेक्षा प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के लिये घातक होगी।

श्री जयप्रकाश नारायण का कहना था कि जब कांग्रेस और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों में आपस में ही सहयोग के सम्बन्ध में इतना गहरा मतभेद है, उस समय दोनों पार्टियों के संयुक्त प्रयत्न की कोशिश बेकार है। उनकी नीजी धारणा थी कि देश के आर्थिक विकास और राष्ट्रीयकरण की समस्याओं को हल करने के लिये संयुक्त प्रयत्न आवश्यक हैं। आज की समस्याओं को कांग्रेस अकेले नहीं सुलझा सकती। पर उन्होंने वायदा किया कि वह कम से कम अगले चुनाव तक सहयोग की कोई बातचीत नहीं करेंगे।

पार्टी के अधिकांश कार्यकर्ता श्री अशोक मेहता और श्री जयप्रकाश नारायण के विचारों के विरुद्ध थे। यह देखकर इन दोनों ने पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति से इस्तीफे दे दिये। पर डाक्टर लोहिया के अनुरोध पर उन्होंने अपने इस्तीफे वापस ले लिये। डाक्टर लोहिया के सुझाव पर पार्टी के कार्यक्रम को तैयार करने के लिये पन्द्रह सदस्यों का एक

पालिसी कमीशन नियुक्त किया गया। डाक्टर लोहिया और अशोक मेहता इस कमीशन के मन्त्री बनाये गये। इस कमीशन ने डाक्टर राममनोहर लोहिया द्वारा तैयार की गयी कार्यक्रम की रूपरेखा दिसम्बर सन् १९५२ को पार्टी के प्रयाग अधिवेशन में प्रस्तुत की और सम्मेलन ने इसे नीति वक्तव्य के रूप में स्वीकार किया। इस सम्मेलन में आचार्य कृपालानीजी पार्टी के अध्यक्ष तथा डाक्टर राममनोहर लोहिया मन्त्री नियुक्त हुए। इस अधिवेशन की कार्यवाही में आचार्य नरेन्द्रदेव और श्री जयप्रकाश नारायण ने कोई विशेष भाग नहीं लिया। वे चुपचाप मंच पर बैठे रहे। अन्तिम दिन नरेन्द्रदेवजी ने आचार्य कृपालानी के लिये धन्यवाद का प्रस्ताव पेश करते हुए एक ओजपूर्ण भाषण दिया। श्री जयप्रकाश नारायण ने इसका समर्थन किया। आचार्य नरेन्द्रदेव ने अपने भाषण में वर्गसंघर्ष और विलयन के सम्बन्ध में अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए वर्गसंघर्ष को समाज का एक आधार-भूत सिद्धान्त बताया और भविष्य में विलयन की चर्चा को बन्द करने पर जोर दिया।

नरेन्द्रदेव का वक्तव्य

बैतूल कन्वेन्शन के बाद भी कांग्रेस से समझौता किया जाय अथवा नहीं इस विषय पर पार्टी में विवाद चलता ही रहा। अतः इस सम्बन्ध में अगस्त सन् १९५३ में आचार्य नरेन्द्रदेव ने एक लेख द्वारा अपने विचारों का स्पष्टीकरण किया।

आचार्यजी ने लिखा कि 'मैं गवर्नमेन्ट में सहयोग देने के पक्ष में नहीं हूं। किन्तु इसके पक्ष में हूं कि जिन प्रश्नों पर हमारा एक मत हो उन पर कांग्रेस के साथ सहयोग करना चाहिए। मेरे लिये सहयोग का प्रश्न वाद या सिद्धान्त का प्रश्न नहीं है, मेरे लिये वह एक शुद्ध व्यवहारिक राजनीति का प्रश्न है। मैं मानता हूं कि आज की परिस्थिति में गवर्नमेन्ट में सहयोग देना पार्टी के लिये घातक होगा। इससे न पार्टी को बल मिलेगा और न पार्टी के उद्देश्य ही आगे बढ़ेंगे। कुछ लोग कहते हैं कि देश के हित के लिये यदि आवश्यक हो तो व्यक्ति और दल का बलिदान कर देना चाहिए। किन्तु मेरी ऐसी धारणा है कि यह आत्मबलिदान नहीं आत्महत्या के समान होगा"

आचार्यजी यह मानते थे कि 'हमारी पार्टी में और कांग्रेस में र बातों में साम्य है। दोनों जनतन्त्र और राष्ट्रीयता के हामी हैं'। पर उनकी धारणा थी कि 'हमारी विशेषता यह है कि हम मौलिक सामाजिक परिवर्तन चाहते हैं, जबकि कांग्रेस इसके लिये तैयार नहीं है इस सम्बन्ध में अन्तिम कार्यक्रम की बात करना व्यर्थ है। आज जब समाजवाद फैशन हो गया है तब सभी पूँजीवाद का अन्त करने की बात करते हैं। आज सच्ची कसौटी अन्तिम कार्यक्रम नहीं है, किन्तु तात्कालिक क्या करना चाहते हैं यह है। इस कसौटी पर कसने में कांग्रेस असफल ठहरती है। यह उसकी दुर्बलता है और यही हमारी शक्ति है। अपनी विशेषता पर जोर देना हमारा कर्तव्य है, अन्यथा पार्टी के अस्तित्व की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि जनतन्त्र या राष्ट्रीयता खतरे में है तो हम कांग्रेस का साथ देंगे और उन शक्तियों का विरोध करेंगे जो इन सिद्धांतों का आघात करना चाहती हैं। इस अर्थ में हम कम्युनिस्ट पार्टी की अपेक्षा कांग्रेस के अधिक निकट हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में हमको यह भी सोचना चाहिए कि आज की स्थिति में में बिना सामाजिक परिवर्तन किये जनतन्त्र और राष्ट्रीयता की रक्षा भी नहीं हो सकती। लोगों के आर्थिक कष्ट भी बढ़ गये हैं और वह सजग हो गये हैं। वे पैदावार बढ़ाने को तैयार नहीं जब तक उनको यह विश्वास न हो जाय कि इस वृद्धि में उन्हें उचित हिस्सा मिलेगा'।

इस सम्बन्ध में आचार्य नरेन्द्रदेव यह भी कहते थे कि एक और दृष्टिकोण से भी गवर्नमेन्ट में सहयोग देने की बात आज सोशलिस्ट नहीं सोच सकते। ऐसा होने पर विरोधी दल का कार्य फिर कौन करेगा। उस स्थान को कम्युनिस्ट पार्टी ले लेगी जो ठीक नहीं होगा।

राज्यसभा की सदस्यता

अप्रैल सन् १९५२ में आचार्य नरेन्द्रदेव उत्तर प्रदेश की विधान सभा द्वारा राज्यसभा के सदस्य चुने गये और अप्रैल सन् १९५४ में फिर छः वर्ष के लिये चुने गये। बीमारी और दूसरे सार्वजनिक कामों में घिरे रहने के कारण आचार्यजी राज्यसभा की बैठकों में ठीक तौर पर भाग नहीं ले सके। फरवरी सन् १९५३ में राष्ट्रपति के अभिभाषण पर उन्होंने जो भाषण दिया उसमें उन्होंने 'अन्नसंकट' के प्रति चिन्ता

प्रकट करते हुए अन्न समस्या को राष्ट्र की प्रमुख और केन्द्रीय समस्या बताया और उसके समाधान के लिये भूमि समस्या का समाधान जरूरी करार दिया। प्रथम पंचवर्षीय योजना की भूमिसुधार नीति की समीक्षा करते हुए उन्होंने कहा कि उसमें कोई भी ऐसी बात नहीं कि जो जनता में नयी आशा और नये विश्वास का सञ्चार कर सके। जहाँ जन-उत्साह की अभिवृद्धि के लिये भूमिहीन खेतिहरमजदूरों और अलाभकर जोतों के छोटे किसानों में बेहतर भविष्य की नयी आशा जागृत करना जरूरी है, वहाँ योजना में खेतिहर मजदूरों और छोटे किसानों पर उचित ध्यान नहीं दिया गया है। उन्हें इस बात की खुशी थी कि योजना कमीशन ने अन्ततोगत्वा भूमि की अधिकतम सीमा के सिद्धांत को कबूल कर लिया है। पर भूमिवितरण के सम्बन्ध में सरकार के विरोध से उन्हें बहुत असन्तोष था। उन्हें इस बात का दुःख था कि भूमिहीन खेतिहर मजदूरों को जो ग्रामीण जनता का सबसे पिछड़ा और सबसे दलित वर्ग है उदारचित्त सम्पन्नों की दया पर ही छोड़ दिया गया है और उनके साथ सामाजिक न्याय की कोई उचित व्यवस्था योजना में नहीं पायी जाती। उनका विचार था कि नयी जमीनें भूमिहीन मजदूरों को ही दी जायं और इस सम्बन्ध में उनके पुनर्वास को दूसरे वर्गों की जरूरतों पर प्राथमिकता दी जाय। साधनविहीन होने के कारण मजदूर नयी जमीनों पर सहकारी खेती के लिये आसानी से तैयार हो जायेंगे और इन सहकारी खेतों की सफलता पुराने किसानों को सहकारी खेती के लिये प्रेरित करेगी।

इसी भाषण में आचार्य नरेन्द्रदेव ने सही ढंग के नेतृत्व के विकास की जरूरत पर जोर दिया और इस सम्बन्ध में विश्वविद्यालयों की दशा सुधारने की ओर ध्यान देने की प्रार्थना की। जनता के दृष्टिकोण में आवश्यक परिवर्तन के लिये उन्होंने सहकारिता की प्रगति को जरूरी बताया और सहकारी आन्दोलन को सजीव बनाने के लिये आग्रह किया।

काश्मीर की दशा की समीक्षा करते हुए उन्होंने प्रजापरिषद् के साम्प्रदायिक आन्दोलन की भर्त्सना की उन्होंने जातिवाद के साथ साथ क्षेत्रीय राष्ट्रीयता की भावना को भी राष्ट्र की प्रगति के लिये हानिकर बताया उनका विचार था कि राष्ट्रीयता और - दो सजीव

शक्तियों ने एशिया की शक्ल को बदल दिया है। उनकी हमें बड़ी जरूरत है। उनका विचार था कि भारतीय समाज की प्रगति के लिये सब सम्प्रदायों के व्यक्तियों में राष्ट्रीय दृष्टिकोण नितान्त आवश्यक है। एक बड़े जनसमूह को प्रभावित करने वाली साम्प्रदायिक भावना को दबाने के लिये दमन नीति का अवलम्बन निरर्थक और अनुचित बताते हुए उन्होंने रचनात्मक ढंग से सम्प्रदायवाद के विरुद्ध संघर्ष की जरूरत बतायी और कहा कि मैंने जीवन भर सम्प्रदायवाद के विरुद्ध डटकर संघर्ष किया है और मैं साम्प्रदायिक शक्तियों से लड़ने के लिये किसी संघटन के साथ सहयोग करने को तैयार हूँ।

१६—शिक्षा और संस्कृति

शिक्षाशास्त्री

आचार्य नरेन्द्रदेव उच्च कोटि के प्रतिभाशाली शिक्षाशास्त्री थे। राजनीति में संलग्न रहते हुए भी अध्ययन-अध्यापन में उनकी विशेष अभिरुचि थी। राष्ट्रोत्थान और जीवन के उत्कर्ष के लिये शिक्षा की समुचित व्यवस्था वे परम आवश्यक समझते थे। इस सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण उदार और व्यापक था तथा सर्वांगीण उत्कर्ष की भावना से अनुप्राणित था। राष्ट्रीय एकीकरण एवं राष्ट्रहित की अभिवृद्धि, प्रगतिशील लोकतान्त्रिक आचरण का गठन तथा व्यापक मानवीय दृष्टिकोण से अध्ययन और चिन्तन की क्षमता एवं हितवर्धक कार्यों में समुचित योगदान की शक्ति की वृद्धि को ही नरेन्द्रदेवजी अध्यापन तथा शिक्षा-सुधार कार्यों का मूल मन्त्र मानते थे।

शिक्षा सुधार समितियां

सन् १९२१ में काशी विद्यापीठ में उन्होंने अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया। सन् १९३८ में प्रान्त के शिक्षा-सुधार में उनका योगदान प्रारम्भ हुआ। २८ मार्च सन् १९३८ को युक्त प्रान्त की सरकार ने प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा पद्धति के सुधार के लिये दो समितियां नियुक्त कीं। नरेन्द्रदेवजी माध्यमिक शिक्षा उपसमिति के अध्यक्ष नियुक्त हुए। १३ अप्रैल सन् १९३८ को सरकार ने घोषित किया कि ये दोनों समितियां एक संयुक्त समिति की उपसमितियों की हैसियत से काम करेंगी। इस संयुक्त समिति ने प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्रों में युक्त प्रान्त की शिक्षा पद्धति के पुनर्गठन के सम्बन्ध में बहुत व्यापक ढंग से जांच करके १३ फरवरी सन् १९३९ को रिपोर्ट तैयार की। आचार्य नरेन्द्रदेव ने इस संयुक्त समिति के अध्यक्ष का कार्य किया।

मई सन् १९३८ को शिक्षा मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में लखनऊ, इलाहाबाद और आगरा विश्वविद्यालयों के कार्यों की जांच

के लिये एक दूसरी समिति बनायी गयी। आगे चलकर इस समिति को दो उपसमितियों में बांट दिया गया। एक समिति के सुपुर्द लखनऊ और इलाहाबाद विश्वविद्यालयों के कार्यों की जांच हुई। इसके अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्रदेव नियुक्त हुए। आगरा विश्वविद्यालय के कामों की जांच एक दूसरी उपसमिति को सौंपी गयी। आचार्य जुगलकिशोर ने उस समिति के अध्यक्ष का काम किया। यह भी निश्चय हुआ कि शिक्षामन्त्री की अनुपस्थिति में आचार्य नरेन्द्रदेव ही संयुक्त समिति की अध्यक्षता करेंगे। नवम्बर सन् १९३९ में विश्वयुद्ध में सहयोग के प्रश्न पर प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल द्वारा इस्तीफा दिये जाने के बाद कमेटी के काम में विघ्न पैदा हो गया। पर काम को चालू रखा गया। दिसम्बर सन् १९४० में कमेटी की रिपोर्ट के पहले दो भागों का मसौदा उसके सदस्यों में वितरण किया गया, पर कमेटी के कई प्रमुख सदस्यों के जेल चले जाने के कारण उन पर कमेटी विचार नहीं कर सकी। जून सन् १९४१ को रिपोर्ट का तीसरा भाग भी सदस्यों के पास भेज दिया गया। १६ जुलाई सन् १९४१ को प्रान्तीय सरकार ने इस कमेटी की सिफारिशों को समाचारपत्रों को प्रकाशन के निमित्त दे दिया और १९ जुलाई सन् १९४१ को वे सिफारिशें प्रान्तीय गजट में प्रकाशित कर दी गयीं। सारी रिपोर्ट भी इस नोट के साथ प्रकाशित कर दी गयी कि कमेटी ने बाकायदा तौर पर अपनी किसी बैठक में इसे स्वीकार नहीं किया है। कमेटी के अध्यक्ष श्री सम्पूर्णानन्द ने इस प्रकार रिपोर्ट के मसौदे के प्रकाशित किये जाने पर आपत्ति की तथा २५ नवम्बर सन् १९४१ को कमेटी के मन्त्री को उसकी बैठक बुलाने को लिखा। पर युक्तप्रान्त की सरकार ने सूचित किया कि नवम्बर सन् १९४० में ही कमेटी समाप्त कर दी गयी थी और इसलिये उसकी बैठक बुलाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

युनिवर्सिटी कमेटी का काम करीब करीब निरर्थक ही रहा। जनता ने कमेटी की तथाकथित सिफारिशों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया, अध्यापकों ने वेतन, प्राविडेन्ट फण्ड आदि से सम्बन्धित सिफारिशों की कड़ी आलोचना ही पर्याप्त समझा। लखनऊ विश्वविद्यालय ने इस पर अपने विचार व्यक्त करना ही जरूरी नहीं समझा। प्रयाग विश्वविद्यालय के कोर्ट द्वारा नियुक्त कमेटी ने सिफारिशों पर विचार करके यह बात स्वीकार की कि बी० ए० की परीक्षा के लिये तीन वर्ष की पढ़ाई का

प्रबन्ध हो, पर इसे कार्यान्वित करने के लिये कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया गया। आगरा विश्वविद्यालय ने कुलपति तथा उपकुलपति की नियुक्ति के सम्बन्ध में की गयी सिफारिशों की कड़ी आलोचना की। हां, उसने शोध कार्य की व्यवस्था की ओर कुछ ध्यान जरूर दिया। शिक्षा विभाग ने भी उसकी अधिकांश महत्त्वपूर्ण सिफारिशों की उपेक्षा ही की।

प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन कमेटी की सिफारिशें किसी हद तक जरूर लागू की गयीं। प्राथमिक शिक्षा में कला-कौशल की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाने लगी और इसके आधार पर प्रान्त की प्राथमिक शिक्षा को बुनियादी शिक्षा के नाम से सम्बोधित करना भी शुरू हो गया। पर यह तो बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धान्तों का उपहास मात्र था। माध्यमिक विद्यालयों में कुछ विषयों की शिक्षा की साधारण पाठ्यक्रम और विशिष्ट पाठ्यक्रम के रूप में व्यवस्था की जाने लगी। पर यह प्रयास असफल रहा। कमेटी की जनतान्त्रिक नागरिकता की शिक्षा सम्बन्धी सिफारिशों को शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारियों ने पक्षपातपूर्ण घोषित कर उसकी उपेक्षा की और विद्यार्थियों में जनतान्त्रिक नागरिकता की क्षमता को पुष्ट करने के सम्बन्ध में कोई ठोस काम नहीं किया गया। हां, व्यावसायिक शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा और सामाजिक विषयों के पाठ्यक्रम का स्तर काफी ऊँचा उठ गया। नागरिक शिक्षा का भी कुछ प्रबन्ध किया गया।

सन् १९५१ में कांग्रेस सरकार ने माध्यमिक शिक्षा की प्रगति पर जांच के लिये आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा समिति नियुक्त की। इस कमेटी ने पिछले दस वर्षों की गतिविधि की जांच कर पाठ्यक्रम में कई संशोधनों की सिफारिश की। उसने साधारण और विशिष्ट पाठ्यक्रम के भेद को मिटाने की सिफारिश की। उसने यह भी सुझाव दिया कि हिन्दी के पाठ्यक्रम में संस्कृत का प्रारम्भिक अध्ययन भी शामिल किया जाय। उसकी यह भी राय थी कि विद्यालयों में प्रति-दिन प्रातः प्रार्थना का भी प्रबन्ध किया जाय। नरेन्द्रदेवजी स्वयं इस सुझाव से सहमत नहीं थे, पर जब कमेटी ने बहुमत से इसे स्वीकार कर लिया, तब अध्यक्ष द्वारा इसके विरुद्ध असहमति का नोट लिखना अनुचित समझ उन्होंने ऐसा नहीं किया।

इस जमाने में ही नरेन्द्रदेवजी ने लिपि सुधार कमेटी और संस्कृत शिक्षा सुधार कमेटी की अध्यक्षता का उत्तरदायित्व भी वहन किया। केन्द्रीय सरकार उन्हें ही उसमानिया युनिवर्सिटी कमेटी का अध्यक्ष भी बनाना चाहती थी। नरेन्द्रदेवजी कुछ राजी भी हो गये थे। पर बाद को उनके स्वास्थ्य को देखकर यह काम उन्हें नहीं सौंपा गया। लिपि सुधार कमेटी का काम नरेन्द्रदेवजी की इच्छा अनुसार नहीं हो सका। जो कुछ सिफारिशे की गयीं, उनमें से अधिकांश पर कोई अमल नहीं हुआ। प्रश्न अब भी मूल रूप से पहले जैसा ही जटिल बना हुआ है। संस्कृत शिक्षा समिति का काम नरेन्द्रदेवजी की जिन्दगी में समाप्त नहीं हो पाया। हां, उन्होंने उस कमेटी की पहली बैठक में संस्कृत शिक्षा के सुधार के सम्बन्ध में जो सुझाव दिये थे उनकी छाप कमेटी के निर्णयों पर जरूर पड़ी।

भाषण

इस जमाने में ही नरेन्द्रदेवजी ने सन् १९४७ में आगरा युनिवर्सिटी और सन् १९४९ में लखनऊ युनिवर्सिटी में उपाधि वितरण के अवसरों पर भाषण दिये। सन् १९४८ में देहली में युनिवर्सिटी टीचर्स कान्फरेन्स में तथा सन् १९५१ में बम्बई में अखिल भारतीय टीचर्स कान्फ्रेन्स में उन्होंने अध्यक्षीय भाषण दिये। इस सबमें उन्होंने बहुत ही संतप्त हृदय से देश की दर्दनाक स्थिति का विश्लेषण करते हुए शिक्षा को अधिक समाजोपयोगी बनाने का आग्रह किया। अध्यापकों के मान और हित की रक्षा और अभिवृद्धि पर अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट किया तथा उनके कर्तव्यों की ओर विद्यार्थियों और शिक्षकों का ध्यान दिलाया। उन्होंने कहा कि हमें 'बुद्धिमत्ता और साहस' के साथ तथा 'दृढ़ता पूर्वक' राष्ट्रीय ध्येय निश्चित करना होगा, 'आधारभूत जीवन-दर्शन में क्रान्तिकारी परिवर्तन' करना होगा, 'परिवर्तनशील जगत की आवश्यकता पूरी करने के लिये शिक्षा को कल्याणात्मक बनाना होगा, उसमें आधुनिक समाज की आवश्यकताओं तथा आकांक्षाओं पर शेष विश्व की दृष्टि से विचार करना होगा,' विश्वविद्यालयों को 'रचनात्मक विचारों और भावनाओं का केन्द्र' बनाना होगा, 'नैतिक मूल्यों को प्रश्रय में' लाना होगा तथा विद्यार्थी समाज में जनतान्त्रिक विचारों



और भावनाओं का प्रसार करते हुए उनके जीवन को जनतान्त्रिक शील और उत्तरदायित्व की भावना से अनुप्राणित करना होगा।

३१ जनवरी सन् १९४९ को आचार्य नरेन्द्रदेव ने 'गान्धीजी और विद्यार्थी' पर आकाशवाणी से एक वार्ता प्रसारित की। इस वार्ता में नरेन्द्रदेवजी ने बताया कि गान्धीजी अंग्रेजी के बजाय भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे और मानसिक एवं शारीरिक शक्तियों तथा भावनाओं का समन्वित विकास ही शिक्षा का लक्ष्य समझते थे। गान्धी जी के विचार में जो शिक्षा चरित्रनिर्माण की उपेक्षा कर एकमात्र पाठ्यपुस्तकों के अध्ययन-अध्यापन पर ही जोर देती है वह बिल्कुल तत्त्वहीन है। गान्धीजी तो यह चाहते थे कि देश के नवयुवक सच्चरित्र, उदार, करुण और समाजसेवी बनें, संयत जीवन व्यतीत करें, जनता की दशा की समुचित जानकारी प्राप्त कर रचनात्मक कार्यों में जुट जायँ तथा दीन-हीन की सेवा में अपना जीवन अर्पण कर दें। विद्यार्थियों को गान्धीजी का यही उपदेश था कि वे डटकर समाजसुधार का काम करें, छुट्टियों में ग्रामसेवा तथा अन्य रचनात्मक कार्य करें। अन्त में नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि गावों की दशा सुधारने के लिये बड़ी 'निष्ठा' के साथ सतत प्रयत्न करने की जरूरत है। देश को ऐसे निष्ठावान कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है जो 'किसी पुरस्कार की आशा के बिना अपने जीवन को जनता की सेवा में लगा देने को तैयार हों'।

उपकुलपति

जेल से छूटने के बाद नरेन्द्रदेवजी पार्टी के संगठन को सुदृढ़ करने में और उसे देशव्यापी बनाने में ही जुट जाना चाहते थे। पर बीमारी के कारण वे देश का भ्रमण कर नहीं पाते थे। इधर शिक्षा के क्षेत्र से बिलकुल अलग रहना भी उनके लिए सम्भव नहीं था। विश्वविद्यालयों को उच्चकोटि के प्रबन्धकों की जरूरत थी। उनकी कमी के कारण विश्वविद्यालयों की दशा बिगड़ती जाती थी। विद्यार्थियों की उद्दण्डता और अध्यापकों की दलबन्दी भी गहरी चिन्ता का विषय बनती जाती थीं। आचार्य नरेन्द्रदेव भी उससे काफी चिन्तित थे। वे समझते थे कि उच्च शिक्षा के केन्द्रों की दशा सुधार कर विद्याचरणसम्पन्न नव-

युवक तैयार किये बगैर केवल आर्थिक योजनाओं द्वारा राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता। ऐसी परिस्थिति में अस्वस्थ होते हुए भी मित्रों और अधिकारियों के आग्रह पर उन्होंने सन् १९४७ में लखनऊ विश्वविद्यालय के और सन् १९५१ में बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के प्रबन्ध का भार ग्रहण ग्रहण किया। वे लगभग साढ़े चार वर्ष लखनऊ विश्वविद्यालय के और लगभग ढाई वर्ष बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के उपकुलपति रहे।

जब उन्होंने इन विश्वविद्यालयों के प्रबन्ध का उत्तरदायित्व ग्रहण किया था, उस समय इनकी दशा काफी चिन्ताजनक थी, प्रबन्ध में अकर्मण्यता थी, शिक्षकों में गुटबन्दी और वैमनस्य था और विद्यार्थियों में अनुशासन की कमी थी, न उनमें आत्मसंयम था और न शिक्षकों तथा प्रबन्धकों के प्रति आदर भावना। ऐसी परिस्थिति में एक अस्वस्थ व्यक्ति के लिये प्रबन्धक के भारी भार को वहन करना कठिन था। बार-बार बीमार हो जाने के कारण वे दशा को सुधारने के लिये जो करना चाहते थे नहीं कर पाते थे। फिर भी उनके कुलपतित्व के जमाने में इन दोनों विश्वविद्यालयों की दशा पहले से अच्छी जरूर हुई। इसका मूल कारण उनका आकर्षक व्यक्तित्व, विद्यार्थियों के प्रति उनकी व्यापक सद्भावना और सहानुभूति, उनकी योग्यता, उनका त्याग और न्यायप्रिय निष्पक्ष व्यवहार थे।

दान

नरेन्द्रदेवजी ने दोनों विश्वविद्यालयों में अपने वेतन का चालीस प्रतिशत यानी आठ सौ रुपये प्रतिमास विद्यार्थियों की सहायता में लगाने का निश्चय किया और अपने दान के आधार पर एक 'छात्र कल्याण निधि (स्टूडेन्ट्स वेलफेयर फण्ड) की स्थापना की। इस निधि में उन्होंने दूसरे दानी महानुभावों से भी धन एकत्र किया। इस निधि द्वारा बनारस और लखनऊ विश्वविद्यालयों के सैकड़ों विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता प्राप्त हो सकी। जहाँ सन् १९५२-५३ में इस कोष द्वारा बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी के २८४ गरीब छात्रों को सहायता दी गयी, वहाँ सन् १९५३-५४ में प्रधान मन्त्री नेहरू तथा बहुत से दूसरे दानियों के सहयोग से ९९० विद्यार्थी सहायता प्राप्त कर सके। गरीब छात्रों की सहायता तथा उनकी समुचित शिक्षा का प्रबन्ध करने में वे



बनारस हिन्दू युनीवर्सिटी के उपकुलपति

बड़े सन्तोष और सुख का अनुभव करते थे। वे समय समय पर इन आठ सौ रुपये मासिक के अतिरिक्त भी गरीब विद्यार्थियों की सहायता करते थे। एक बार एक विद्यार्थी को उन्होंने अपनी जेब से एक सौ रुपये दिये। आचार्यजी की उदारता देखकर विद्यार्थी चकित हो गया। उसने कहा 'आचार्यजी, मैं सोशलिस्ट नहीं हूँ, बल्कि कम्युनिस्ट हूँ'। नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि 'मैंने तो एक विद्यार्थी की सहायता की है। इस सहायता से उसके राजनीतिक विचारों का कोई सम्बन्ध नहीं है'।

विद्यार्थियों की श्रद्धा

विद्यार्थियों के प्रति जो उनकी सद्भावना थी उसका छात्रों को भी एहसास था। वे भी आचार्य जी पर मुग्ध थे। उन्हें अपने उपकुलपति के व्यक्तित्व और योग्यता पर गर्व था। इस स्वतन्त्रता के युग में शायद ही कोई ऐसा उपकुलपति हो जो विद्यार्थियों को अपनी ओर इतना आकृष्ट कर सका हो कि जितना आचार्य नरेन्द्रदेव। शायद संसार के इतिहास में किसी उपकुलपति को भी विद्यार्थियों में इतना मान और प्रेम प्राप्त नहीं हुआ जितना आचार्य नरेन्द्रदेव को उस समय प्राप्त हुआ जब वे लखनऊ यूनिवर्सिटी को छोड़कर बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी गये थे। एक तरफ लखनऊ विश्वविद्यालय के विद्यार्थी उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं थे और समाचार सुनकर बहुत व्याकुल और अधीर थे, दूसरी तरफ बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी उनके स्वागत के लिये बहुत ही उतावले थे। काशी आने पर विद्यार्थियों द्वारा उनका ऐसा भव्य स्वागत हुआ जैसा कि गान्धी जी के अतिरिक्त किसी दूसरे विद्वान या नेता का काशी में कभी नहीं हुआ। वे जब तक काशी में रहे उनके प्रति विद्यार्थियों की निष्ठा बनी रही और वे आचार्यजी पर लट्टू बने रहे। उनकी अनुपस्थिति में भी अनुशासन का पालन करना विद्यार्थी अपना कर्तव्य समझते रहे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह था कि जब सन् १९५३ में लखनऊ और प्रयाग विश्वविद्यालयों में छात्र यूनियनों की व्यवस्था को लेकर काफी विवाद और झगड़ा हो रहा था, उस समय नरेन्द्रदेवजी लखनऊ में बीमार थे, पर उनकी अनुपस्थिति में भी बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के विद्यार्थी चुप थे। वे कोई ऐसी बात करना

नहीं चाहते थे जिससे उनके उपकुलपति के स्वास्थ्य पर कोई बुरा असर पड़े। नरेन्द्रदेवजी के उपकुलपतित्व के जमाने में पण्डित जवाहरलाल नेहरू, डाक्टर कैलाशनाथ काटजू, श्रीमती विजया लक्ष्मी पण्डित आदि जो नेता वाराणसी आये, वे विद्यार्थियों के अनुशासन को देखकर दंग रह गये, उन्हें ऐसा लगा मानों आचार्य नरेन्द्रदेव ने उन पर जादू कर दिया हो।

छोटे कर्मचारियों की वेतन वृद्धि

दोनों विश्वविद्यालयों के छोटे कर्मचारियों से भी नरेन्द्रदेवजी के बहुत ही प्यारे और मीठे सम्बन्ध थे। इन कर्मचारियों के प्रति उनकी विशेष सहानुभूति थी और उनके उपकुलपतित्व के जमाने में दोनों ही विश्वविद्यालयों के छोटे कर्मचारियों के वेतन में काफी वृद्धि हुई।

लखनऊ विश्वविद्यालय ने सन् १९४६ में प्रोफेसर बी० एन० दास गुप्त की अध्यक्षता में क्लर्कों तथा चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के वेतनों में सुधार के लिये एक कमेटी नियुक्त की थी। नरेन्द्रदेवजी ने उपकुलपति की हैसियत से कमेटी के काम में विशेष दिलचस्पी ली। सन् १९४८ में इस कमेटी की सिफारिशों पर इन छोटे कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि की गयी। बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में उपकुलपति बनने से कुछ वर्ष पहले नरेन्द्रदेवजी उसकी एक्जीक्यूटिव कौंसिल द्वारा नियुक्त एक कमेटी के अध्यक्ष नियुक्त हुए थे। चौथी श्रेणी के कर्मचारियों की शिकायतों पर जांच करके उन्हें दूर करने के उपाय बताना इस कमेटी का मुख्य काम था। आचार्य जी के उपकुलपति बनने से पहले ही विश्वविद्यालय ने कमेटी की कुछ सिफारिशों को मंजूर कर उन पर अमल करना शुरू कर दिया था। पर कमेटी की कुछ प्रमुख सिफारिशों पर कोई कार्यवाही नहीं हुई थी। बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के प्रबन्ध का भार सम्भालते ही उन्होंने कमेटी की सिफारिशों को लागू करने का निश्चय किया। श्री महावीर त्यागी की सहायता से, जो उस समय केन्द्रीय सरकार के वित्त विभाग में मन्त्री थे, केन्द्र से समुचित आर्थिक सहायता प्राप्त कर उन्होंने चौथे दर्जे के कर्मचारियों के वेतन में पाँच रुपये मासिक की वृद्धि करा दी।

अध्यापकों से सम्बन्ध

नरेन्द्रदेवजी ने अपने अधिकार-काल में इन दोनों विश्वविद्यालयों के अध्यापकों से भी सम्पर्क बढ़ाया तथा अपने शील, सौजन्य एवं निष्पक्ष और निष्कपट व्यवहार से उनको अपनी ओर आकृष्ट किया। इन विश्वविद्यालयों में नरेन्द्रदेवजी के कुछ पुराने मित्र और स्नेही भी थे। उनके साथ उन्होंने अपना पुराना स्नेह बनाये रखा, पर उनमें से किसी के साथ कोई ऐसा सलूक नहीं किया जिसके कारण कोई व्यक्ति जायज़ तौर पर उन पर पक्षपात का दोष लगा सके। कहा जाता है कि बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से सम्बन्धित एक वयोवृद्ध विशिष्ट व्यक्ति के आग्रह पर भी नरेन्द्रदेवजी ने अपने एक पुराने साथी को एक उच्च पद पर आसीन करने से यह कहकर इनकार कर दिया कि वे उनके मित्र और उनकी पार्टी के सदस्य हैं और उनको इस पद पर नियुक्त करने पर दूसरों को उन पर पक्षपात का दोष लगाने का मौका मिलेगा।

निष्पक्षता

नरेन्द्रदेवजी ने अपने प्रबन्ध काल में इन विश्वविद्यालयों में सोशलिस्टपार्टी या समाजवादी युवक सभा की किसी सभा में कोई भाग नहीं लिया और न ही किसी अध्यापक को अपनी पार्टी मे शामिल करने का प्रयत्न किया। कहा जाता है कि उनके लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति बन जाने के कुछ दिन बाद एक अध्यापक ने जो वास्तव में समाजवादी नहीं थे सोशलिस्टपार्टी का सदस्य बनने की इच्छा की। पर आचार्यजी ने पार्टी के मन्त्री को संकेत किया कि उन्हें पार्टी में लेना उचित नहीं होगा।

पाठ्येत्तर कार्य

नरेन्द्रदेवजी ने दोनों विश्वविद्यालयों में पाठ्येत्तर कार्यक्रमों को प्रोत्साहित कर उनके द्वारा विद्यार्थियों के सांस्कृतिक ज्ञान की अभिवृद्धि की। उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय में स्टूडेन्ट्स यूनियन को जो सन् १९४२ में बन्द कर दी गयी थी फिर से चालू किया तथा सन् १९५३ में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी की स्टूडेन्टस यूनियन को नया विधान प्रदान किया। लखनऊ विश्वविद्यालय में उन्होंने

डाक्टर पी० सी० बागची, डाक्टर ओ० सी० गांगोली, डाक्टर राधाकुमुद मुकर्जी, आचार्य क्षितिमोहन सेन, डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी, प्रोफेसर हुमायूं कबीर आदि विद्वानों से भारतीय संस्कृति के विभिन्न विषयों पर पाठ्येत्तर व्याख्यान दिलवाये, स्वयं भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर व्याख्यान दिये तथा भारतीय संविधान की मौलिक अधिकार-व्यवस्था पर एक सिम्पोजियम कराया। इसी विश्वविद्यालय में उन्होंने सन् १९५१ में विभिन्न दलों की चुनाव घोषणाओं पर हर पार्टी के प्रमुख नेताओं द्वारा व्याख्यानों का आयोजन किया। इसी तरह बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में भी उन्होंने पाठ्येत्तर कार्यक्रमों द्वारा विद्यार्थियों के सांस्कृतिक और राजनीतिक ज्ञान की अभिवृद्धि करने का प्रयत्न किया।

अनुशासन

इस तरह आचार्यजी ने दोनों विश्वविद्यालयों में बहुत ही सहानुभूति के साथ विद्यार्थियों की कठिनाइयों का अध्ययन कर उन्हें दूर करने की कोशिश की और उनके पाठ्येत्तर कार्यक्रमों को सांस्कृतिक स्वरूप देने का प्रयत्न किया। पर जरूरत पड़ने पर अनुशासन की व्यवस्था में उन्होंने सुदृढ़ता से काम लिया। एक दो बार लखनऊ विश्वविद्यालय में कुछ विद्यार्थियों ने भूखहड़ताल की धमकी देकर उन्हें विवश करने की चेष्टा की। पर इन धमकियों की उपेक्षा करते हुए आचार्यजी अपने निर्णय पर दृढ़ रहे। एक बार लखनऊ यूनिवर्सिटी यूनियन के अध्यक्ष ने, जो कि सोशलिस्ट था, एक अध्यापक से किसी बात पर झगड़ा कर उसे राजनीतिक स्वरूप देने का प्रयत्न किया। नरेन्द्रदेवजी मामले की जांच करने के बाद इस निश्चय पर पहुँचे कि दोष विद्यार्थी का ही है। अतः उन्होंने यूनियन के अध्यक्ष को अध्यापक से क्षमा माँगने के लिये मजबूर किया। जब आचार्य नरेन्द्रदेव के स्थान पर आचार्य जुगुलकिशोर लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति नियुक्त हुए तब यूनिवर्सिटी यूनियन के अध्यक्ष के नेतृत्व में कतिपय विद्यार्थियों ने अपने नये उपकुलपति के विरुद्ध प्रदर्शन किया। नरेन्द्रदेवजी को यह बात बुरी लगी। उन्होंने आचार्य जुगुलकिशोर के स्वागत में विश्वविद्यालय के प्रांगण में विद्यार्थियों और अध्यापकों का एक समारोह किया और इस

अवसर पर विद्यार्थियों के प्रदर्शन की कड़ी आलोचना की। यूनियन के अध्यक्ष ने रोते हुए आचार्य जुगुलकिशोर से क्षमा माँगी। इसी तरह जब सन् १९५३ में लखनऊ विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के प्रदर्शनों में समाज-विरोधी तत्त्वों ने टेलीफोन और बिजली के तारों को तोड़ कर राष्ट्र की सम्पत्ति को हानि पहुँचाना शुरू किया, तब आचार्य नरेन्द्रदेव ने, जो उस समय बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के उपकुलपति थे, यूनियन के अध्यक्ष श्री चन्द्रभाल त्रिपाठी से इस प्रकार के व्यवहार की कड़ी आलोचना की और उनकी प्रेरणा से प्रदर्शन बन्द हो गये।

प्रबन्ध समितियों से सम्बन्ध

दोनों विश्वविद्यालयों की प्रबन्ध समितियों से भी आचार्य नरेन्द्रदेव के काफी मधुर सम्बन्ध थे। दोनों ही जितनी देर सम्भव हो उतनी देर तक उनसे विश्वविद्यालय का सम्बन्ध बनाये रखना चाहते थे। इसीलिये जब एक बार मई सन १९५० में स्वास्थ्य लाभ के निमित्त वे छुट्टी लेकर लखनऊ से बाहर जाना चाहते थे, तब लखनऊ विश्वविद्यालय की कार्य-समिति ने उनके कुछ कामों को रजिस्ट्रार और खजांची के सुपुर्द कर ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि वे बाहर रहकर भी उपकुलपति की हैसियत से विश्वविद्यालय का निर्देशन कर सकें। २७ सितम्बर सन् १९५० को कार्यसमिति ने सिफारिश की कि आचार्यजी को फिर अगले तीन वर्ष के लिये वाइसचांसलर नियुक्त किया जाय और चांसलर के अनुरोध पर वे तीन वर्ष तक काम करने को राजी हो गये। पर स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण ३ मई सन् १९५१ को उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। इस पर कार्य-समिति ने उनका त्यागपत्र मंजूर करने के बजाय ६ सितम्बर सन् १९५१ को सरकार से सिफारिश की कि विश्वविद्यालय के अधिनियम में यह संशोधन किया जाय कि विश्वविद्यालय अपने व्यापक हित में जरूरत पड़ने पर प्रो-वाइसचान्सलर नियुक्त कर सकता है। जब २६ नवम्बर सन् १९५१ को कार्यसमिति को आचार्यजी के आग्रह पर उनका त्याग-पत्र मंजूर करना पड़ा तब उसने उनकी सेवाओं की सराहना में एक सुन्दर प्रस्ताव पारित किया।

इसी तरह जब सन् १९५३ में अस्वस्थ्य होने के कारण नरेन्द्रदेवजी ने बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी से त्यागपत्र दिया तब उस विश्वविद्यालय

की कार्यसमिति ने भी नरेन्द्रदेवजी का सम्बन्ध विश्वविद्यालय के हित में जरूरी समझ त्यागपत्र मंजूर करने से इनकार कर दिया। और जब उन्होंने फिर आग्रह किया तब कार्यसमिति ने एक उपसमिति इस बात को सोचने के लिये नियुक्त की कि किस तरह उनके बोझ को इस तरह हल्का किया जाय कि विश्वविद्यालय से उनका सम्बन्ध बना रहे।

कार्यविधि

नरेन्द्रदेवजी के नेतृत्व में दोनों विश्वविद्यालयों की सब कौंसिलों, कमेटियों तथा संस्थाओं का काम नियमानुसार जनतान्त्रिक प्रणाली से होता था। बहुमत का समुचित आदर किया जाता था। पर नरेन्द्रदेवजी तुष्टीकरण की नीति के विरोधी थे। सब प्रकार के विरोधों का मुकाबला करते हुए विश्वविद्यालय के हितों की रक्षा तथा सामाजिक न्याय की पुष्टि वे अपना कर्तव्य समझते थे। श्री चेलापति राव ने अपने संस्मरण में लिखा है कि लखनऊ विश्वविद्यालय में दो ऐसे प्राध्यापक थे जिन्हें कभी प्रोफेसर हो जाना चाहिए था। वे प्रोफेसर पद के सर्वथा योग्य थे, पर गुटबन्दी से अलग रहने के कारण उनके लिये प्रोफेसर बनना सम्भव नहीं हो रहा था। आचार्य नरेन्द्रदेव ने उनकी पदोन्नति कर उन्हें प्रोफेसर बनाने का इरादा किया। इस पर विश्वविद्यालय के एक क्षेत्र से बगावत करने की धमकी दी जाने लगी। पर आचार्यजी अपने निश्चय पर दृढ़ रहे और इन दोनों की पदोन्नति हो गयी।

प्रगति

नरेन्द्रदेवजी ने काफी सद्भावना से दोनों विश्वविद्यालयों का प्रबन्ध किया। उनके प्रबन्धकाल में दोनों विश्वविद्यलयों की दशा में काफी सुधार हुआ। जहाँ लखनऊ विश्वविद्यालय में कई नये शिक्षा-विभाग खोले गये, वहां बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के कालिज आफ इन्डालोजी में डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल तथा डाक्टर टी० आर० वी० मूर्ति आदि विद्वानों को नियुक्त कर उसको समृद्ध किया गया। दोनों विश्वविद्यालयों में बहुत हद तक नये जीवन तथा सद्भावना का सञ्चार हुआ। फिर भी यह कहना कठिन होगा कि वे इन विश्वविद्यालयों की दलबन्दी को खत्म कर पाये तथा अध्यापकों और

विद्यार्थियों में सद्भावना और सहयोग की परम्परा को प्रतिष्ठित कर सके। उनको इस बात का दुःख था कि उनके चले आने पर लखनऊ विश्वविद्यालय और बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी की दशा फिर बिगड़ने लगी और उनका काम स्थायी तौर पर इन विश्वविद्यालयों की दशा नहीं सुधार सका।

कटु अनुभव

सच तो यह है कि सब कुछ सद्भावना रखते हुए भी आचार्य नरेन्द्रदेव को स्वयं कुछ कटु अनुभवों का सामना करना पड़ा। कहा जाता है कि लखनऊ विश्वविद्यालय का यह सुझाव कि उसे उपकुलपति की सहायता के लिये एक प्रो-वाइसचान्सलर नियुक्त करने की इजाजत दी जाय, उत्तर प्रदेश की विधान सभा के कांग्रेसी सदस्यों की संकीर्णता के कारण स्वीकार नहीं हो सका। जब यह प्रश्न कांग्रेस विधानमण्डलीय पार्टी की बैठक में लाया गया, तब एक प्रतिष्ठित व्यक्ति जिनके विचारों का प्रभाव पड़ सकता था इस बैठक में गये ही नहीं और कई प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने किसी न किसी रूप में प्रस्ताव के विरोध का समर्थन किया। एक सज्जन ने तो साफ तौर पर कहा कि इस तरह एक सोशलिस्ट नेता की मदद करना ठीक नहीं है।

जिस समय आचार्य नरेन्द्रदेव ने बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के उपकुलपति के भार को ग्रहण किया, उस समय उन्हें उस विश्वविद्यालय के करीब-करीब सभी प्रोफेसरों और प्रबन्धकों की सद्भावना प्राप्त थी। पर धीरे धीरे एक गुट ने विरोध करना शुरू किया। मामला यहां तक बढ़ा कि श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ ने उस समय जब कि नरेन्द्रदेवजी ने बीमारी के कारण विश्वविद्यालय को छोड़ने का निश्चय कर लिया था इस विश्वविद्यालय के कोर्ट में प्रस्तुत करने को एक ऐसे प्रस्ताव का नोटिस दिया जो आचार्यजी की क्षमता और न्यायप्रियता पर सन्देह प्रकट करता था। गौड़ जी का प्रस्ताव था कि 'इस कोर्ट की दृष्टि में आचार्य नरेन्द्रदेव जैसे ख्यातनामा कुलपति के होते हुए भी गत कई वर्षों से हिन्दू विश्वविद्यालय के कार्य में कोई प्रगति नहीं हो सकी है। जो चक्र जहां था वहीं है तथा नियुक्तियों तथा साधारण प्रबन्ध में कहीं-कहीं उससे भी पीछे है। अतः यह कोर्ट भारत सरकार से अनुरोध

करता है कि वह भविष्य में कुलपति के निर्वाचन में इस बात का ध्यान रखें कि कुलपति पूर्ण स्वस्थ, कुशल, न्यायप्रिय तथा ऐसा व्यक्ति हो जो विश्वविद्यालय की व्यवस्था में पूरा समय लगा सके'।

इस प्रस्ताव ने विश्वविद्यालय में काफी रोष और बेचैनी पैदा कर दी। कोर्ट के बहुत से सदस्यों ने इस प्रस्ताव के विरुद्ध संशोधन के रूप में एक दूसरे प्रस्ताव का नोटिस दिया। कोर्ट की बैठक में मूल प्रस्ताव के प्रस्तावक ने अपना प्रस्ताव वापस ले लिया। प्रस्ताव को वापस लेते समय श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ ने कहा कि 'जिस समय मैंने यह प्रस्ताव भेजा था उस समय उपकुलपति महोदय त्यागपत्र दे चुके थे। मेरा विचार इसमें केवल यह था कि भविष्य में जो कार्यवाही हो उसमें विश्वविद्यालय की गति-विधि और अवस्था पर अच्छी तरह ध्यान रखा जाय। मेरा विचार यह नहीं था कि वर्तमान उपकुलपति आचार्यजी के प्रति कोई आक्षेप किया जाय। आप जानते हैं कि उनकी विद्वत्ता, उनके चरित्र का सम्मान देश में सभी लोग करते हैं। मेरे जैसे व्यक्ति का उन पर आक्षेप करना छोटे मुँह बड़ी बात है, लोगों में कुछ भ्रम हो गया है कि आचार्यजी के प्रति आक्षेप है इसलिये मैं इसको उपस्थित नहीं करता'।

इस प्रस्ताव पर अपने विचार प्रकट करते हुए आचार्य नरेन्द्रदेव ने कहा कि 'उनका प्रस्ताव यह साफ जाहिर करता है कि वह मेरे प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पास कराना चाहते हैं और भारत सरकार से प्रार्थना करना चाहते हैं कि भविष्य में जो वाइसचान्सलर हो वह पूर्ण स्वस्थ, कुशल, न्यायप्रिय तथा ऐसा व्यक्ति हो जो विश्वविद्यालय की व्यवस्था में पूरा समय लगा सके'। आचार्यजी ने कहा कि 'गत वर्ष मैंने ११ और १२ घण्टे प्रतिदिन काम किया और अपने स्वास्थ्य पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसका फल यह हुआ कि मैं भयंकर रोग से ग्रस्त हो गया और लगभग छः महीने तक रोग शैय्या पर पड़ा रहा। अच्छा होने पर जब काम सँभाला तो अनुभव किया कि अधिक श्रम का स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः ११ नवम्बर को त्यागपत्र दे दिया। यदि एक्जीक्यूटिव त्यागपत्र आगे नहीं भेजती है या गवर्नमेन्ट से प्रार्थना करती है कि वह ऐसा प्रबन्ध करे जिसमें मेरा बोझ हल्का हो तो इसमें मैं क्या कर सकता हूँ। उन्होंने यह भी कहा कि

'मैं अस्वस्थ जरूर हूँ। मैं कुशल हूँ या नहीं इस सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना है। इसका निर्णय करने वाले दूसरे हैं'। पर इस आरोप से कि 'मैं न्यायप्रिय नहीं हूँ' उन्हें 'दुःख हुआ है'। उन्होंने कहा कि 'मैं दावे से कह सकता हूँ कि मैंने चालीस वर्ष के सार्वजनिक जीवन में जानबूझ कर किसी के साथ अन्याय नहीं किया है। हो सकता है कि किसी अपराधी के प्रति दया का भाव दिखलाया हो और उसे क्षमा कर दिया हो। यह भी अन्याय है। लेकिन मैं मनुष्य हूँ, हृदय रखता हूँ'।

अपनी इस तकरीर के बाद नरेन्द्रदेवजी कोर्ट की अध्यक्षता का भार प्रोवाइस चान्सलर प्रोफेसर नार्लिकर को सौंप कर चले गये। इसके बाद विश्वविद्यालय के नियम के अनुसार दो तिहाई वोटों से कोर्ट ने निम्नलिखित प्रस्ताव पर विचार करने का निश्चय कर दो चार सदस्यों के बाहर चले जाने के बाद उसे सर्वसम्मति से पारित किया :-

'कोर्ट की यह मीटिंग आचार्य नरेन्द्रदेवजी जैसे ख्यातिनामा वाइस-चान्सलर के प्रति अपना आभार प्रकट करती है जिनके कुशल नेतृत्व में इस विश्वविद्यालय ने सभी क्षेत्रों में प्रगति की है और उसके यश की वृद्धि हुई है। अल्प अवधि में ही उन्होंने विश्वविद्यालय की जैसी सेवा की है वह सर्वथा सराहनीय और सन्तोषप्रद है। विश्वविद्यालय की आर्थिक सुदृढ़ता, निर्धन पीड़ित छात्रों की सहायता, अध्यापकों तथा कर्मचारियों के मान तथा हितों की रक्षा एवं शान्ति और अनुशासन की वृद्धि इसके प्रमाण हैं। अतएव यह कोर्ट आचार्यजी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करती है और विज़िटर से अनुरोध करती है वे ऐसी व्यवस्था करें कि जिससे यह विश्वविद्यालय आचार्य नरेन्द्रदेव जैसे शिष्ट, न्यायप्रिय, जनप्रिय तथा कुशल कुलपति के नेतृत्व में अपने उद्देश्यों और आदर्शों की पूर्ति करता रहे'।

संस्कृति का महत्त्व

नरेन्द्रदेवजी का जीवन सुसंस्कृत था, संस्कृति के मानवीय तत्त्वों से अनुप्राणित था। वे समाजवादी आन्दोलन को राजनीतिक और आर्थिक के साथ सांस्कृतिक भी समझते थे। जनतान्त्रिक समाजवादी संस्कृति के मूलतत्त्वों का विश्लेषण और प्रसार वे आवश्यक समझते थे।

वे तो चाहते थे कि समाजवादी कार्यकर्ता अपने जीवन में समाजवादी नैतिक मूल्यों और शील को संचारित करें और विद्यार्थी-आन्दोलन सांस्कृतिक आधार पर संगठित किया जाय। वे प्रगतिशील साहित्य के पोषक थे। सामाजिक विकास के लिये उसका सृजन वे परम आवश्यक समझते थे। भारत के स्वतन्त्र होने के बाद तो प्रगतिशील साहित्य तथा संस्कृति के विकास के लिये उन्होंने यथासम्भव प्रयत्न किये। उनके मित्र श्री गोपाल चन्द्र सिंह का तो कहना है कि सांस्कृतिक क्षेत्र में नरेन्द्रदेवजी का योगदान उनके राजनीतिक कार्य से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।

नवसंस्कृतिसंघ

सितम्बर सन् १९४८ में काशी के कुछ उत्साही साहित्यकारों ने आचार्य नरेन्द्रदेव की प्रेरणा से एक नव संस्कृति संघ की स्थापना की। ७ अक्टूबर सन् १९४८ को नरेन्द्रदेवजी ने उसका उद्घाटन किया। अपने इस भाषण में उन्होंने आज की परिस्थिति में भार बनने वाली परम्पराओं का परित्याग कर......वर्तमान काल में पुरुषार्थ को प्रेरणा देनेवाले परम्परागत सांस्कृतिक तत्त्वों को तथा नवीन जीवन के विकासमान् मूल्यों को ग्रहण कर केन्द्र में मानव को प्रतिष्ठित करने वाले साहित्य और संस्कृति के निर्माण की सलाह दी। उन्होंने जहां एक तरफ प्राचीनता और परम्परा का अन्धपुजारी साहित्य का विरोध साहित्यिकों का कर्तव्य बताया, वहां दूसरी तरफ पुरानी संस्कृति तथा साहित्य के साधक तत्त्वों के माध्यम से नवीन संस्कृति और साहित्य के निर्माण में प्राचीन संस्कृति और साहित्य से उनकी परम्परा बनाये रखना जरूरी बताया। उनका कहना था कि प्रगतिशील साहित्य का निर्माण करते समय साहित्यिकों को नवीन शैलियों के साथ-साथ प्राचीन साहित्य की टैकनीक सम्बन्धी विशेषताओं को भी अपनाना ही होगा। दीर्घकाल से पुष्ट की जाने वाली शैली, टैकनीक, छन्द एवं शब्द विन्यास आदि की सर्वथा उपेक्षा नहीं की जा सकती।

नरेन्द्रदेवजी के सहयोग और प्रोत्साहन से जनवरी सन् १९४९ में नव संस्कृति संघ का प्रान्तीय सम्मेलन काशी में आयोजित हुआ। इसका उद्घाटन लखनऊ विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डाक्टर धुर्जटी

प्रसाद मुखर्जी ने और सभापतित्व बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने किया। इस अवसर पर प्रान्तीय नव-संस्कृति संघ की संगठन-समिति बनायी गयी और डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी से संघ का घोषणापत्र लिखने की प्रार्थना की गयी। द्विवेदीजी ने जो घोषणापत्र तैयार किया उसे वाराणसी के नवसंस्कृति संघ ने यथावत् स्वीकार कर लिया, पर प्रान्तीय नवसंस्कृति संघ का संगठन नहीं हो पाया।

वाराणसी में नवसंस्कृति संघ तीन चार वर्ष तक काम करता रहा। इसने अपने कार्य को (१) साहित्य परिषद् (२) कला परिषद् (३) नाट्य परिषद् और (४) समाजदर्शन परिषद् में बांटा। सभी में थोड़ा बहुत काम हुआ, पर साहित्य के क्षेत्र में ही सबसे अधिक काम हुआ। बहुत से साहित्य-सम्बन्धी विषयों पर विचार-विमर्श हुआ। संघ की कई गोष्ठियों में नरेन्द्रदेवजी का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। संस्था के मन्त्री श्री शम्भूनाथसिंह तथा अध्यक्ष श्री मुकुट बिहारी लाल थे।

काशी नागरी प्रचारणी सभा

मार्च सन् १९५० को नरेन्द्रदेवजी ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा की अध्यक्षता का भार सँभाला। इस पद पर वे दो वर्ष तक काम करते रहे। उनकी अध्यक्षता के जमाने में ही सितम्बर सन् १९५० को देश में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जन्मशती मनायी गयी। नागरी प्रचारिणी सभा के तत्त्वावधान में आयोजित समारोह में नरेन्द्रदेवजी ने भारतेन्दु जी को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा कि भारतेन्दु जी आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता हैं। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का जो प्रयत्न शुरू हुआ, वे उसके आदि प्रवर्तक थे। उन्होंने हिन्दी की जो सेवाएं की हैं वे अमर रहेंगी। वे सच्चे कलाकार थे, पर साथ ही वे सामन्य-जन की भावनाओं को पहचानते थे। इसका कारण यही था कि वे सहृदय थे और सभी श्रेणी के लोगों के सम्पर्क में आते थे। भारतेन्दुजी की प्रारम्भिक शिक्षा का जिक्र करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि वस्तुतः कलाकार के लिये समाज ही विश्वविद्यालय है जहां वह कला की अपनी रूपरेखा संवारता है। समाज में रहकर ही वह अपनी कला में सजीवता और ताजगी भर सकता है। भारतेन्दु ऐसे ही कलाकारों

में थे। भारतेन्दु मण्डल का जिक्र करते हुए आचार्य नरेन्द्रदेव ने कहा कि भारतेन्दु साहित्यकार ही नहीं साहित्यिकों के नेता भी थे। उनके इर्द-गिर्द उन्हीं के समान सजीव और समाजद्रष्टा कलाकारों की एक बड़ी मण्डली थी। सर्वश्री बद्रीनाथ चौधरी, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, बाल मुकुन्द गुप्त, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी आदि विविध वर्गों के लोग इस मण्डली के सदस्य थे। वे समाज के सभी वर्गों की जनता से मिलते थे। अन्त में नरेन्द्रदेवजी ने भारतेन्दुजी के कार्य की पूर्ति के लिये साहित्यकारों से प्रार्थना की कि वे हिन्दी साहित्य के भण्डार को अधिक समृद्ध बनाएं।

आचार्य नरेन्द्रदेव के बाद एक वर्ष तक डाक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अध्यक्षपद को सुशोभित किया। तदुपरान्त काशी नगरी प्रचारिणी सभा ने पदाधिकारियों तथा कार्यसमिति के सदस्यों को मनोनीत करने के लिये नरेन्द्रदेवजी की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की। सर्वश्री कन्हैयालाल मिश्र और गोपाल चन्द्र सिंह इस कमेटी के दूसरे सदस्य थे। इसने डाक्टर अमरनाथ झा की अध्यक्षता में सभा की नयी कार्यसमिति संगठित की।

समाजविज्ञान परिषद

इसी जमाने में आचार्य नरेन्द्रदेव की प्रेरणा से उनकी अध्यक्षता में काशी में समाजविज्ञानपरिषद् का संगठन किया गया। डाक्टर मंगलदेव शास्त्री और प्रोफेसर मुकुट बिहारी लाल इस संस्था के उपाध्यक्ष तथा प्रोफेसर राजाराम शास्त्री मन्त्री नियुक्त हुए। इस संस्था के कार्य-कलापों का केन्द्र काशी विद्यापीठ था और उसकी प्रगति का बहुत कुछ श्रेय प्रोफेसर राजाराम को ही था। इसके तत्त्वावधान में संस्कृति और समाजशास्त्र सम्बन्धी बहुत सी गोष्ठियों में नरेन्द्रदेवजी का भी महत्त्वपूर्ण योग रहा।

नवम्बर सन् १९५१ को डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदीजी की अध्यक्षता में नागपुर महाविद्यालय के प्राध्यापक डाक्टर विष्णु भिकाजी कोलते ने, जो इस समय नागपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति हैं, 'मराठी सन्तों का सामाजिक कार्य' विषय पर बनारस हिंदू यूनिवर्सिटी के बिड़ला छात्रावास में पांच भाषण दिये। इन भाषणों में उन्होंने

तेरहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध सन्त चक्रधर से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के रामदास तक अनेक महाराष्ट्र सन्तों के सामाजिक दृष्टिकोण और कार्य की विद्वत्तापूर्ण विवेचना की। उन्होंने यह स्वीकार किया कि सन्तों ने जो साहित्य रचा उसका मुख्य उद्देश्य धार्मिक और आध्यात्मिक उपदेश देना ही था। पर उनका कहना था कि महाराष्ट्र के प्रत्येक सन्त ने अपनी दृष्टिकोण से समाज का निरीक्षण कर सामाजिक कार्य में यथाशक्ति अपना हाथ बटाया है और महाराष्ट्र के सामाजिक इतिहास की पृष्ठ-भूमि में इन प्रयत्नों का अध्ययन आवश्यक है। उन्होंने बताया कि जहां कुछ सन्तों ने पुरानी सामाजिक परम्पराओं पर निष्ठा रखते हुए निराग्रही ढंग से अपने व्यवहार से सामाजिक बन्धनों को ढीला करने का उपदेश दिया, भक्ति की उदार भावना से जनता के जीवन को किसी हद तक अनुप्राणित किया, वहां सन्त नामदेव तथा तुकाराम आदि ने प्रचलित धार्मिक और सामाजिक निष्ठाओं को चुनौती देकर ब्राह्मणों के धार्मिक आधिपत्य और व्यवहार की समीक्षा करते हुए तथाकथित हीन जातियों के जनजीवन को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया। दूसरी तरफ सन्त रामदास ने अन्य जातियों की अवहेलना करते हुए ब्राह्मणों की उन्नति के लिये ही मुख्यतः काम किया। सन्त तुकाराम और सन्त रामदास की तुलना करते हुए डाक्टर कोलते ने कहा कि 'तुकाराम ने विठ्ठल पंथ की छत्रछाया में सब वर्णियों (वर्णवालों) को एकत्रित करने का प्रयत्न किया, किन्तु रामदास ने अपने सम्प्रदाय में केवल ब्राह्मणों का संगठन किया। तुकराम ने परस्पर सहयोग बढ़ाने की कोशिश की, तो रामदास ने ब्राह्मणत्व का अभिमान जागृत करके उनके अन्तःकरण में साम्प्रदायिक जातियता का बीज, जो परम्परा से था, अपने उपदेश के जल से सम्वर्धित किया'।

समाजविज्ञान परिषद् के तत्त्वावधान में आगे चलकर बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर निहालरंजनरे ने भारत की चित्रकला पर दो व्याख्यान दिये। इन व्याख्यानों में उन्होंने प्राचीन स्मारकों पर खुदे कतिपय छोटे चित्रों की कारीगरी और सौन्दर्य पर विशेषरूप से ध्यान आकृष्ट कराया। इसी परिषद् के तत्त्वावधान में सितम्बर सन् १९५२ को डाक्टर मंगलदेव शास्त्री ने 'भारतीय संस्कृति के आधार' पर महत्त्व-पूर्ण भाषण दिया जो आगे चलकर परिवर्धित रूप में आचार्य नरेन्द्रदेव

की भूमिका के साथ 'भारतीय संस्कृति का विकास' नाम से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। परिषद् के तत्त्वावधान में दूसरे बहुत से व्याख्यान समय समय पर होते रहे। कई विचार गोष्ठियों में महत्त्वपूर्ण सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्नों पर विचार विमर्श भी हुआ। कई वर्ष तक 'समाज' के नाम से त्रैमासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती रही।

संस्कृत परिषद

नवम्बर सन् १९५१ में जब नरेन्द्रदेव जी लखनऊ विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे उन्होंने उत्तर प्रदेश के तत्कालीन शिक्षामन्त्री डाक्टर सम्पूर्णानन्द तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर को० अ० सुब्रह्मण्य अय्यर आदि के साथ लखनऊ में अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् की स्थापना की। इस संस्था की प्रगति में नरेन्द्रदेवजी की दिलचस्पी बराबर बनी रही। १ जनवरी सन् १९५६ को उन्होंने परिषद् के लिये पाँच लाख रुपये की अपील लिखी। इस अपील में उन्होंने लखनऊ जैसे राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र में एक उच्चकोटि की संस्कृति-संस्था की आवश्यकता पर जनता का ध्यान आकृष्ट किया।

संस्कृत भाषा और वाङ्मय का प्रचार और प्रसार करना, संस्कृत साहित्य के ग्रन्थों का हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में प्रकाशन करना, संस्कृत, पालि और प्राकृत के हस्तलेखों तथा ऐसे प्रकाशित ग्रन्थों को जो अब अप्राप्य या दुर्लभ हो गये हैं प्रकाशित करना, संस्कृत पालि और प्राकृत के हस्तलेखों का अन्वेषण और संचय करना, संस्कृत पुस्तकालयों, वाचनालयों और संग्रहालयों की स्थापना, भारतीय विद्या के सभी क्षेत्रों में शोध कार्य को चलाना, उसे प्रोत्साहन देना तथा उसे पोषित करना, और सब ऐसे कार्यों को करना जो संस्कृत भाषा और वाङ्मय के प्रचार, प्रसार और संरक्षण के लिये आवश्यक हों इस परिषद् के उद्देश्य हैं।

इस परिषद् ने नरेन्द्रदेवजी के मित्र श्री गोपाल चन्द्र सिंह की देख-रेख में अपने उद्देश्य की सिद्धि में काफी प्रगति की है। सन् १९६४-६५ की एक रिपोर्ट से पता चलता है कि परिषद् लगभग ६००० प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त ६००० से अधिक संस्कृत और प्राकृत के

प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ का संग्रह कर चुकी है और उनकी सूची ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित होने लगी है। उसके तत्वावधान में ऐसी गोष्ठियों और विद्वत् सभाओं का आयोजन भी होता रहता है जिनमें शोधपूर्ण लेखों का पाठ और उन पर विचार विनिमय और विशिष्ट विद्वानों के भाषण होते हैं। परिषद् की ओर से कई ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके हैं। प्रौढ़ों की संस्कृत शिक्षा के लिये नियमित रूप से परिषद् के भवन में कक्षाएँ चलती हैं। शोध कार्य की प्रगति के निमित्त एक उच्चस्तरीय षाण्मासिक शोध-पत्रिका निकालने की तथा संस्कृत नाटकों के लिये लखनऊ में एक स्थायी रंगमंच की स्थापना की भी कोशिश की जा रही है।

सांस्कृतिक सम्मेलन

मार्च सन् १९५२ में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की हीरक जयन्ती मनायी गयी। इस अवसर पर आयोजित सांस्कृतिक सम्मेलन के अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्रदेव मनोनीत हुए। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने संस्कृत की विशेषताओं और पश्चिम की महत्त्वपूर्ण देनों का विश्लेषण करते हुए सब प्रकार की संकीर्णताओं का परित्याग कर व्यक्ति और समष्टि दोनों के विकास को ध्यान में रखते हुए सांस्कृतिक विकास करने की सलाह दी। उन्होंने कहा कि 'जो संस्कृति भेदभाव रखती है, मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखना नहीं चाहती, उस संस्कृति से आज हम अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं कर सकते।...जो भेदभाव रखते हैं, मनुष्य को मनुष्य के रूप में नहीं बल्कि ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र के रूप में देखना चाहते हैं वे आज के युग में नागरिक होने के पात्र नहीं हैं।'

बिहारराष्ट्रभाषा परिषद

२१ अप्रैल सन् १९५४ को आचार्य नरेन्द्रदेव ने बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के तृतीय वार्षिकोत्सव का सभापतित्व किया। अपने अभिभाषण में उन्होंने परिषद् के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए और उसकी आशातीत सफलता पर बधाई देते हुए हिन्दी भाषा-भाषियों को उदारता और सहिष्णुता के साथ विनयपूर्वक अहिन्दी भाषाभाषियों की

सद्भावना और सहयोग से हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि तथा हिन्दी भाषा के विस्तार-कार्य में संलग्न होने की सलाह दी। इस भाषण में आचार्य नरेन्द्रदेव ने साहित्य की गरिमा तथा उनके विकास के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि 'जहाँ विज्ञान भौतिक जगत् के विषय का ज्ञान कराता है, वहाँ सच्चा साहित्य मानव सम्बन्धों के विषय में जानकारी कराता है। अतीत के अनुभव के आलोक में वर्तमान को देखना तथा आज के समाज में जो शक्तियाँ काम कर रही हैं उनको समझना तथा मानव समाज के हित की दृष्टि से उनका संचालन करना एक सच्चे कलाकार का काम है'।

आकाशवाणी से वार्ताएं

इस सब के अतिरिक्त नरेन्द्रदेवजी ने अपने बहुत से भाषणों तथा लेखों द्वारा विद्यार्थियों का उनके सांस्कृतिक कर्तव्य की ओर, समाजवादी नवयुवकों का समाजवाद के नैतिक मूल्यों तथा सद्व्यवहार की ओर, कलाकारों का प्रगतिशील साहित्य के सृजन की ओर तथा सभीका जीवन में संस्कृति के महत्त्व की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

इस काल में जो भाषण आचार्य नरेन्द्रदेव ने शिक्षा, संस्कृति तथा साहित्य के सम्बन्ध में दिये उनमें डाक्टर बी० वी० केसकर के अनुरोध पर आकाशवाणी से प्रसारित वार्ताओं का विशिष्ट स्थान है।

इन वार्ताओं में आचार्यजी ने सम्प्रदाय और धर्म के मौलिक भेद की ओर ध्यान आकृष्ट कराते हुए भारतीय धर्म की कतिपय विशेषताओं का विश्लेषण किया। उन्होंने स्वीकार किया कि उदार धार्मिक भावना के फलस्वरूप इतिहास के लम्बे काल में भारतीय समाज ने अनेकता में एकता का दर्शन किया है और यह एकता रक्त, रंग, भाषा, वेष-भूषा, आचार-विचार और सम्प्रदाय आदि की अगणित विभिन्नताओं से ऊपर है। पर उन्होंने यह भी बताया कि वर्तमान काल में धर्मों की शुद्धि की प्रक्रिया ने साम्प्रदायिक पार्थक्य को अधिक गम्भीर बना दिया है जिसका राजनीतिज्ञों द्वारा दुरुपयोग किया जा रहा है और अब इस साम्प्रदायिक समस्या का निराकरण धर्म-निरपेक्ष दृष्टिकोण द्वारा ही हो सकता है, किसी समन्वित धर्म द्वारा नहीं हो सकता। धार्मिक शिक्षा की समीक्षा करते हुए और उसको अनावश्यक

बताते हुए उन्होंने शिक्षा पद्धति में ऐसे सुधार करने का मशवरा दिया जिससे विचारों और भावों की एकता परिपुष्ट हो, मन, बुद्धि और हृदय की एकता साधित हो; बच्चों को स्कूल के अन्दर की परिस्थिति से ही उन सामाजिक आदर्शों और चारित्रिक दृष्टान्तों की शिक्षा मिले जो राष्ट्र को उत्तम बनाने में साधक होते हैं, तथा उनमें मानवता के आधार पर धर्मनिरपेक्ष विश्वास की पुष्टि हो। उन्होंने स्वीकार किया कि 'मनुष्य केवल तर्क से नहीं जी सकता, उसे विश्वास की आवश्यकता होती है'। पर उनके विचार में यह विश्वास 'धर्मनिरपेक्ष' होना चाहिए और 'सामाजिक लोकतन्त्र' हमें ऐसा 'विश्वास' प्रदान कर सकता है। उनकी धारणा थी कि मानव, लोकतन्त्र और समाजवाद पर अटल विश्वास हमें इस युग में आध्यात्मिक प्रेरणा दे सकता है और उन कृत्रिम दीवारों को ढाह सकता है जो हम लोगों को एक दूसरे से अलग करने के लिये धर्म और जात-पांत ने खड़ी की हैं।

जनशिक्षा

व्यापक जनशिक्षा को लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था और लोकतान्त्रिक सार्वजनिक जीवन के लिये आवश्यक बताकर उन्होंने सरकार को मशवरा दिया कि वह इस प्रकार की जनशिक्षा की योजना करे जिससे जनता जीवन के प्रति स्वस्थ और असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण बना सके, लोकतान्त्रिक और मानवीय मूल्य प्रतिष्ठित हों, सामाजिक व्यवहार के नवीन संस्थाओं का निर्माण हो, जनता के अन्दर विवेचनात्मक शक्ति का विकास हो, उसे अपने राष्ट्रीय तथा अन्तराष्ट्रीय कर्तव्यों का ज्ञान हो तथा उन्हें विभिन्न विचार धाराओं में निर्णय करने की क्षमता प्राप्त हो।

जीवन आदर्श

एक अन्य वार्ता में जीवन के आदर्श पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा कि जीवन विभिन्न रंगों से परिपूर्ण है, विभिन्नता उसका गुण है, वह लगातार परिवर्तनों को ग्रहण करता रहता है, और अब जब कि वे परिस्थितियां जिनमें समानता, सामाजिक न्याय तथा शान्ति की प्राप्ति हो सकती है विद्यमान हैं, मानव स्वार्थ और अलगाव से ऊपर

उठकर तथा सामाजिक नैतिकता को अपना कर विज्ञान और राजनीति के सहारे सामूहिक प्रयत्नों द्वारा एक सुन्दर एवं सुखदायी समाज का स्रष्टा बन सकता है। उन्होंने कहा कि निराशावादिता और कुटिलता अस्थाई अवस्थाएं हैं। मानव सत्प्रयत्नों द्वारा इनसे ऊपर उठकर जीवन को एक विशाल और बलिष्ट रूप दे सकता है तथा अच्छे जीवन की दशाएँ सृजित' कर सकता है। अन्त में उन्होंने कहा कि 'हमें दो विकल्पों में एक चुनना है। क्या हम पूर्ण रूप से मानवता की सेवा करेंगे या केवल अपने संकीर्ण और वर्गात्मक हितों की रक्षा करेंगे ? 'मेरे लिये आज सच्चे जीवन का तात्पर्य सामान्य हित के लिये सामाजिक पुनर्निर्माण के अर्थपूर्ण आन्दोलन में सक्रिय भाग लेना ही है'।

समष्टि और व्यक्ति का सामञ्जस्य

उन्होंने कहा कि 'समग्र की पूर्णता ही में व्यक्ति की पूर्णता है, समाज का अंग होकर ही अपने संकुचित स्वार्थ का परित्याग करके ही, सहयोगयुक्त मानवकल्याण के प्रयासों द्वारा ही, व्यक्ति अपनी पूर्णता प्राप्त कर सकता है। पर व्यक्तित्व के विकास के लिए नैतिक, बौद्धिक और कलात्मक जीवन की अभिव्यक्ति का पूरा और स्वतन्त्र अवसर भी आवश्यक होता है।

समष्टि और व्यक्ति के पारस्परिक सम्बन्धों के विषय में विभिन्न सिद्धान्तों का शास्त्रीय विश्लेषण करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने एक दूसरे वक्तव्य में समष्टि और व्यक्ति के सामञ्जस्य पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि 'मनुष्य सामाजिक प्राणी है', समाज मनुष्य के जीवन का अनिवार्य तत्त्व है, "मानवीय गुणों की सृष्टि समाज में ही होती है"। व्यक्ति और समष्टि दोनों का इस तरह गहरा सम्बन्ध है, दोनों के अधिकारों और हितों की मान्यता और मर्यादाओं की रक्षा आवश्यक है।

१७. विदेश यात्रा

स्याम

देशसेवा में संलग्न आचार्य नरेन्द्रदेव को विदेश में जाने का अवसर ही नहीं मिलता था। हिन्दुस्तान के स्वतन्त्र हो जाने के कई वर्ष बाद ही फरवरी सन् १९५० में एक गैरसरकारी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था संयुक्त राष्ट्रों के विश्वसंघ (World Federation of United Nations) के प्रतिनिधि की हैसियत से उसके क्षेत्रीय सम्मेलन में शरीक होने नरेन्द्रदेवजी स्याम (थाईलैण्ड) जा सके। लौटते समय वे कुछ दिन रंगून में ठहरे जहाँ उन्होंने बर्मा की परिस्थिति का अध्ययन किया। इस यात्रा के सम्बन्ध में जो नोट उन्होंने तैयार किया उससे पता चलता है कि स्याम पर प्राचीन भारतीय संस्कृति का गहरा प्रभाव है। उस देश की भाषा में पालि और संस्कृत शब्द काफी संख्या में पाये जाते हैं और बहुत से नये शब्द इन्हीं दो भाषाओं से लिये जाते हैं। वहाँ की लिपि भी हिन्दुस्तान से ही ली गयी है। राज्य का चिन्ह गरुड़ है और रामायण का वहाँ काफी प्रचार है। स्याम की कला पर भी भारतीय कला की गहरी छाप है। हीनयान बौद्धधर्म ही अधिकांश जनता का धर्म है, वहाँ बौद्ध मन्दिर और मठ काफी संख्या में पाये जाते हैं। पुरानी परम्परा के अनुसार प्रत्येक स्यामी को कुछ काल के लिये भिक्खु बनना होता है। इस देश की पुरानी राजधानी अयोध्या के नाम से प्रसिद्ध थी और बहुत से राजाओं के नामों में राम शब्द जुड़ा होता था। वहाँ राजतिलक वैदिक प्रथा से होता है और राजघराने के एक मंदिर में विष्णु, शिव और गणेश की भव्य मूर्तियां विराजमान हैं। इस देश में प्रत्येक आर्टस् के विद्यार्थी को हाईस्कूल तक संस्कृत पढ़नी पड़ती है और भारतीय इतिहास के अध्ययन का भी बी० ए० पाठ्यक्रम में समुचित प्रबन्ध है। पहले यहाँ लोग धोती ही पहनते थे, पर धीरे-धीरे इसका रिवाज कम होता जा रहा है।

नरेन्द्रदेवजी ने देखा कि राजनीतिक स्वतन्त्रता होते हुए भी आर्थिक

क्षेत्र में स्याम स्वतन्त्र नहीं था। इस देश में थोड़े से ही बड़े उद्योग थे जो विदेशियों द्वारा संचालित थे, व्यापार चीनियों के हाथ में था। पुराने ढंग की खेती यहाँ का मुख्य व्यवसाय था। सत्तर प्रतिशत भूमि जंगलों से घिरी थी, केवल दस बारह प्रतिशत भूमि पर ही खेती होती थी। यहाँ भिखारी नहीं थे और लोगों का जीवन निर्वाह आसानी से हो जाता था। पड़ोसी देशों की तुलना में यहाँ के लोगों का जीवन-स्तर कुछ ऊँचा था, पर रईसों की संख्या कम थी।

आचार्यजी की राय में स्याम के राजनीतिक जीवन का स्तर बहुत ही नीचा था। गो वैधानिक नृपतंत्र स्याम की राजनीतिक व्यवस्था थी, पर जनतन्त्र केवल ढकोसला ही था। वहाँ सभी राजनीतिक दल व्यक्तियों के आधार पर संगठित थे। मजदूर संघों के ऊपर सरकार का कन्ट्रोल था और कोई किसान संगठन नहीं था। मध्यस्याम में किसान ही जमीन के मालिक थे, पर कुछ स्थान में गैरहाजिर जमींदार भी पाये जाते थे।

स्याम की राजधानी बैंकाक में लगभग आठ हजार हिन्दुस्तानी रहते थे जो दरबानी का काम करते थे या दूध और कपड़े का व्यापार करते थे। स्वर्गीय सत्यानन्द पुरी ने एक थाई-भारत सांस्कतिक गृह भी वहाँ पर कायम कर दिया था। इन हिन्दुस्तानियों में शिक्षा की कमी थी। बैंकाक की तुलना में रंगून में हिन्दुस्तानी कहीं शिक्षित, सम्पन्न और प्रभावशाली थे। दूसरे विश्वयुद्ध के अन्त तक तो रंगून की साठ प्रतिशत आबादी भारतीय थी और व्यापार भारतीयों के हाथ में ही था। आजादी के बाद धीरे-धीरे उनका प्रभाव घटता जाता था।

बर्मा

रंगून में आचार्य नरेन्द्रदेव पाँच दिन रहे। वे सरकार, सोशलिस्ट पार्टी और हिन्दुस्तानी समाज के प्रमुख व्यक्तियों के सम्पर्क में आये और उन्होंने उनसे बर्मा की परिस्थिति की जानकारी हासिल की। आचार्यजी ने अपने एक नोट में लिखा कि १९ जुलाई सन् १९४७ को आंगसेन और उनके पाँच साथियों की हत्या के बाद बर्मा की राजनीति में विघटन की शक्तियाँ जोर पकड़ने लगीं। जापानी आक्रमण के विरुद्ध जो फासिस्ट-विरोधी संयुक्त मोर्चा बनाया गया था, जिसमें कई दल

शामिल थे और जिसने आंगसेन के नेतृत्व में देश की रक्षा और उसकी स्वतन्त्रता की प्राप्ति में बड़ा हिस्सा लिया था, टूटने लगा था। गो आंगसेन के उत्तराधिकारी प्रधान मन्त्री थाकिननू ने ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री एटली से १७ अक्टूबर सन् १९४७ को एक ऐसा समझौता किया जिसके द्वारा ब्रिटेन ने बर्मा की आजादी मंजूर कर ली, पर इससे बर्मा की राजनीतिक परिस्थिति में समुचित सुधार नहीं हुआ। केरन के लोगों ने बर्मा से अलग हो जाने की माँग की और कलकत्ते में कम्युनिस्ट कान्फ्रेन्स ने सन् १९४८ की क्रान्तिकारी सम्भावनाओं पर एक ऐसी नीति निर्णय की जिसमें सरकार से अपना समर्थन हटा लेने का, जनता को विद्रोह के लिये संगठित करने का, और जनता की क्रान्तिकारी सरकार कायम करने का कम्युनिस्टों को आदेश दिया गया। बर्मा की कम्युनिस्ट पार्टी दो हिस्सों में बट गयी। जहाँ ट्राट्स्कीवादी कम्युनिस्टों ने सरकार का समर्थन जारी रखा, वहाँ स्तालिनवादी कम्युनिस्टों ने, जिन्होंने आंगसेन के जमाने में ही सरकार के विरुद्ध किसानों और मजदूरों को भड़काना और स्थानीय उपद्रव मचवाना शुरू कर दिया था, कलकत्ता कान्फ्रेन्स की नीति का अनुसरण करने का निश्चय किया। इन्होंने नू-एटली संधि के साथ साथ सरकार का डटकर विरोध करना शुरू किया, जनता को बगावत के लिये आह्वाहन किया और राज्य की व्यवस्था को भंग करने की कोशिश की। पीपिल्स वालन्टरी आर्गेनाइजेशन भी दो हिस्सों में बट गया। जहाँ एक हिस्से ने सरकार का समर्थन जारी रखा, वहाँ वाइट बैंड पी० वि० ओ० (White Band PVOS) ने कम्युनिस्टों का साथ देना शुरू किया। बर्मा की सरकार ने कम्युनिस्टों से समझौता करने की कोशिश की, पर जब कम्युनिस्ट बातचीत को टालते रहे तब मजबूर होकर २८ मार्च सन् १९४८ को सरकार ने बहुत से कम्युनिस्ट नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। केरन और कम्युनिस्टों के विद्रोहों ने स्थिति काफी गम्भीर बना दी।

नरेन्द्रदेवजी ने लिखा कि जमीन के राष्ट्रीयकरण का जो कानून बर्मा ने पारित किया है उसके अन्दर जमीन राज्य की सम्पत्ति होगी और उसका वितरण जमीन को जोतनेवाले खेतिहरों में इस शर्त पर होगा कि वे सहकारी खेती करें। जो किसान सहकारी खेती के लिये तैयार नहीं होंगे उन्हें जमीन नहीं दी जायेगी। जमीन के बटवारे के

लिये और जमींदारों को मुआवजा निश्चित करने के लिये कमेटियाँ बना दी गयी थीं। प्रधान मन्त्री थाकिननू ने आचार्यजी से कहा कि अगर जमीन के बटवारे का निर्णय न किया गया होता तो देश टुकड़े-टुकड़े हो गया होता। थाकिननू का विचार था कि सरकार की भूमि-नीति के कारण सरकार को किसानों का पूरा समर्थन प्राप्त है। वे वामपक्षी दलों के संघर्षों को खत्म करने के लिये एक क्रान्तिकारी चौदह सूत्रीय कार्यक्रम बनाने को तैयार थे, पर वे वामपक्षीय शक्तियों की एकता और समर्थन प्राप्त करने में विफल रहे।

बर्मा में रहनेवाले हिन्दुस्तानियों को आचार्य नरेन्द्रदेव का मशवरा था कि अगर वे बर्मा में रहना चाहते हैं तो वे विशेष सुविधाओं का ख्याल छोड़कर बर्मा के नागरिक बन जायें और बर्मा की जनता से अपनी आत्मीयता बढ़ायें। बर्मा के कुछ नेताओं से बात करने के बाद उनका ऐसा विचार था कि बर्मा के बहुत से नेता हिन्दुस्तानियों के साथ सहानुभूति रखते हैं और अगर वहाँ रहनेवाले हिन्दुस्तानी अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठाना सीख लें और बर्मी लोगों से अपने सम्बन्धों को कुछ और दृढ़ करें तो वे बर्मा में सुख और आदर का जीवन बिता सकते हैं।

चीन यात्रा

अप्रैल सन् १९५२ में श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्डित की अध्यक्षता में भारत सरकार ने एक सद्भावना मण्डल चीन को भेजा। आचार्य नरेन्द्रदेव इस मण्डल के एक सदस्य थे। सर्वश्री चेलापति राव, अमरनाथ झा, फ्रैंक मारेस, भगवन्तम और श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख इस मण्डल के दूसरे सदस्य थे। मण्डल छः सप्ताह चीन में रहा। इस दौरे में भी आचार्यजी का स्वास्थ्य कभी कभी बिगड़ जाता था। अस्वस्थ होने के कारण निश्चित कार्यक्रम में भी वह कभी-कभी शामिल नहीं हो पाते थे। फिर भी चीनी जनता के जीवन के प्रति उन्होंने बड़ी अभिरुचि दिखायी और उसकी जानकारी प्राप्त करने की वे बराबर चेष्टा करते रहे। कभी कभी लम्बा दौरा करना पड़ता था जिसमें उन्हें कष्ट होता था, पर वे जिस कार्यक्रम में शामिल होते उसमें बड़े उल्लास से योगदान देते।

चीन में आचार्यजी ने जो बात सबसे पहले नोट की वह यह थी कि दुभाषिये सरल से सरल बात का भी स्वयं उत्तर नहीं देते थे, ऊँचे अधिकारियों से मशवरा करके या आदेश लेकर ही जवाब देते थे, वहाँ अंग्रेजी भाषा के अच्छे से अच्छे चीनी जानकार से भी उन्हें दुभाषिये द्वारा बात करनी पड़ती थी। एक बार इसी तरह एक चीनी प्रोफेसर से दुभाषिये के जरिये बातें हो रही थीं। बातचीत की समाप्ति पर आचार्यजी ने प्रोफेसर से पूँछा कि वे किस विषय को पढ़ाते हैं। प्रोफेसर ने उत्तर में कहा कि अंग्रेजी साहित्य का पढ़ाना ही उनका काम है। आचार्यजी को इस पर आश्चर्य हुआ कि फिर अंग्रेजी में कही गयी बातों के अनुवाद के लिये उन्हें दुभाषिये की जरूरत क्यों पड़ती थी। इस दौरे के दौरान में आचार्यजी ने यह भी अनुभव किया कि चीनी लोग पुलिस से डरते हैं और आपस में भी बहुत कम बात करते हैं। अगर कोई चीनी किसी विदेशी से बात करता था तो फिर पुलिस उससे पूँछताछ शुरू कर देती थी।

आर्थिक तथा राजनीतिक दशा

१ मई को भारतीय दूतावास में स्वागत के अवसर पर स्विटजरलैण्ड के राजदूत से आचार्यजी की बातचीत हुई। उसने बताया कि चीन की सरकार वास्तव में संयुक्त सरकार नहीं है। कम्युनिस्ट पार्टी के अलावा दूसरी पार्टियाँ वास्तव में छोटे छोटे गुट हैं, जिनकी कोई वास्तविक शक्ति नहीं है। इन गुटों के कुछ लोगों को प्रतिनिधि के रूप में नहीं बल्कि व्यक्तिगत रूप में सरकार में शामिल कर लिया गया है। उसने यह भी बताया कि चीन की कम्युनिस्ट सरकार जनता की दशा को अच्छा बनाने की भरसक कोशिश कर रही है। कीमतों की बढ़ोतरी रोक दी गयी है, भ्रष्टाचार भी रोक दिया गया है, गो इसको कम करने के लिये जो तरीके इस्तेमाल किये जा रहे हैं वे ठीक नहीं हैं, मजदूरों की माली हालत में भी उन्नति हुई है, रण्डीबाजी खत्म कर दी गयी है। एक चीनी से बात करने से पता चला कि वहाँ घर पर काम करने वाले नौकरों को चालीस रुपये महीने मिलता था, मध्यम श्रेणी के बुद्धिजीवी को दो सौ साठ रुपये मिलता था जिसमें साठ सत्तर रुपये महीने मकान के किराये में देने पड़ते थे और पाँच छः व्यक्तियों के परिवार का पालन करना पड़ता था। उसने यह भी बताया कि

उच्च अधिकारियों को वेतन के अलावा भारी रकम का भत्ता और मुफ्त मकान आदि की सुविधायें प्राप्त थीं।

भ्रष्टाचार के विरुद्ध अभियान

जिस समय आचार्यजी चीन गये थे उस समय वहाँ भ्रष्टाचार, नौकरशाही और अपव्यय के विरुद्ध अभियान जोरों से चल रहा था। स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय बन्द कर दिये गये थे और साधारण न्यायालयों के स्थान पर जनता के न्यायालय कायम कर दिये गये थे। विद्यार्थी एक झुण्ड के साथ शोर मचाते हुए दुकानों पर जाते थे, दुकानदार पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाते थे। अगर दुकानदार अभियोग स्वीकार कर लेता था, तो उसे रकम वापस करने का आदेश होता था और अगर वह दोष स्वीकार करने से इनकार करता था तो फिर वहाँ ही एक दो गवाही लेकर एकत्रित भीड़ जनता के न्यायालय की हैसियत से दुकानदार को दण्ड दे देती थी। इस प्रकार के व्यवहार से परेशान हो कुछ व्यापारियों ने आत्महत्या कर ली थी। कुछ को प्राणदण्ड की सजा भी दे दी गयी थी। बाजार में काफी उदासी छा गयी थी।

चीन में शिक्षा

कई विश्वविद्यालयों और शिक्षा संस्थाओं ने सद्भावना मण्डल को निमन्त्रित किया। उस समय चीन में पैंतीस हजार विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में पढ़ते थे। प्रत्येक विश्वविद्यालय में लगभग तीन हजार विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। चीनी भाषा ही शिक्षा का माध्यम थी। किसी विदेशी भाषा का अध्ययन अनिवार्य नहीं था, पर अधिकांश विद्यार्थी एक वैकल्पिक विषय के रूप में रूसी या अंग्रेजी भाषा का अध्ययन करते थे। पाठ्यपुस्तकों की बड़ी कमी थी। अधिकांश विद्यार्थियों को प्रोफेसरों के व्याख्यानों के नोट पर ही निर्भर रहना पड़ता था। विभिन्न विद्यालयों में जाकर उन्हें पता चला कि शिक्षा की व्यावहारिकता पर चीन में काफी ध्यान दिया जाता है। शोध के काम के लिये विश्वविद्यालयों से पृथक शोध संस्थायें खोली गयी हैं जहाँ सरकार द्वारा दी गयी वैज्ञानिक समस्याओं को हल करने का वैज्ञानिक लोग प्रयत्न करते हैं।

अभिभाषण

४ मई सन् १९५२ को नरेन्द्रदेवजी ने पीकिंग यूनिवर्सिटी के विद्यार्थियों को पन्द्रह मिनट हिन्दी में सम्बोधित किया। उन्होंने अपने भाषण में चीनी राष्ट्र के स्वतन्त्रता संग्राम और उत्थान में युनिवर्सिटी के प्रोफेसरों और विद्यार्थियों के महत्त्वपूर्ण योगदान की प्रशंसा करते हुए कहा कि इतिहास ने चीन और हिन्दुस्तान की जनता पर बड़ा भारी उत्तरदायित्व लाद दिया है। उन्होंने कहा कि सन् १८५३ में मार्क्स ने अपने से स्वयं प्रश्न किया था कि 'क्या एशिया की सामाजिक स्थिति में मौलिक क्रान्ति के बगैर मानव समाज अपने लक्ष्य की पूर्ति कर सकता है?' उन्होंने कहा कि हम दोनों को बहुत काम करना है, जनता की गरीबी दूर करना है, उसे शिक्षा और संस्कृति से लाभान्वित करना है और इसके अतिरिक्त स्वतन्त्रता, समता, भ्रातृत्व और सामाजिक न्याय के आधार पर एक नया समाज बनाना है। तभी मार्क्स के प्रश्न का उत्तर होगा और मानव समाज अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर पायेगा। उन्होंने कहा कि उनकी दृष्टि में विश्वविद्यालय मानव प्रगति के साधन हैं। इस आधुनिक युग में उन्हें महत्त्वपूर्ण काम करना है। नये युग में विश्वविद्यालयों की शिक्षा का क्षेत्र विस्तृत हो गया है। उन्हें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को पुराने ज्ञान-भण्डार को पहुँचाना और ज्ञान में अभिवृद्धि करना ही नही है, बल्कि राष्ट्र को ह्रास और पतन से बचाने के लिये नये मूल्यों का भी सृजन करना है। शिक्षा का सामाजिक लक्ष्य आवश्यक है। उसे नवयुवकों को जीवन के लिये तैयार करना चाहिए, उनकी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को पूरा करना चाहिए। संसार एक होता जा रहा है और यदि हम भयंकर विपत्ति से अपनी रक्षा करना चाहते हैं, तो हमें अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री और सहानुभूति बढ़ाना चाहिए। इसलिये सब सुसंस्कृत लोगों को अन्तर्राष्ट्रीय गलतफहमी को दूर करने और शान्ति को प्रतिष्ठित करने के लिये प्रयत्न करना चाहिए। जब तक हम अन्तर्राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित नहीं होते तब तक हम कोई सफलता हासिल नहीं कर सकते। आचार्यजी ने कहा कि मुझे खुशी है कि इस विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को नवजागृति के आन्दोलन के नेताओं से एक बड़ी परम्परा विरसे में मिली है और यहाँ विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच विचारों का स्वतन्त्र आदान प्रदान

है तथा लड़कों और लड़कियों में सहशिक्षा ठीक तौर पर चल रही है। उन्होंने कहा कि मुझे पता चला है कि सैंतालीस विद्यार्थी हमारी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का अध्ययन कर रहे हैं। हमारे देश में भी विश्वविद्यालयों में चीनी भाषा की शिक्षा का प्रबन्ध हो रहा है। अन्त में नरेन्द्रदेवजी ने आशा की कि हम दोनों देश, फिर चाहे वे अपने अपने सामाजिक और आर्थिक विकास के लिये किसी मार्ग का भी अवलम्बन क्यों न करें, सदा मित्र रहेंगे तथा शान्ति और अच्छे पड़ोसी के सम्बन्ध बनाये रखेंगे।

राष्ट्रीय विद्यालय

६ मई को नरेन्द्रदेवजी ने जनता का राष्ट्रीय विश्वविद्यालय देखा। यह विश्वविद्यालय पार्टी के कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिये तथा उनके सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा करने के लिये स्थापित किया गया था। यहाँ निम्न माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कार्यकर्ता भर्ती किये जाते थे और उन्हें दो तीन वर्ष की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा में सिद्धान्त और व्यवहार दोनों का ध्यान रखा जाता था। पाठ्यक्रम को निश्चित करते समय हर प्रकार के ज्ञान की व्यावहारिकता पर विशेष ध्यान दिया गया था। और विषयों के साथ साथ मार्क्सवादी अर्थशास्त्र और मार्क्सवाद-लेनिनवाद की शिक्षा भी दी जाती थी। चीन का आर्थिक इतिहास, उसकी आर्थिक परिस्थिति, उसका राजनीतिक इतिहास, विशेषतः क्रान्तिकारी संघर्ष का इतिहास, भी विद्यार्थियों को पढ़ाये जाते थे। इस विश्वविद्यालय के विद्यार्थी परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद रचनात्मक कार्यों में लगाये जाते थे। इनमें से कुछ को कम वेतन पर रखा जाता था और कुछ को कपड़ा, भोजन के साथ साथ पचीस रुपये मासिक जेब खर्च के लिये दिये जाते थे।

विचार-सुधार

जिस समय सद्भावना मण्डल चीन में भ्रमण कर रहा था, उस समय चीन में प्रोफेसरों और दूसरे विचारकों के विचार-सुधार का अभियान भी चल रहा था। अध्यापकों से मार्क्सवाद-लेनिनवाद का अध्ययन कर अपनी मनोवृत्ति बदलने को कहा जाता था। उन अध्यापकों को भी जो अपने को राजनीति से अलग रखना चाहते थे

मार्क्सवाद्-लेनिनवाद् में दिलचस्पी लेने को बाध्य किया जाता था। सभी विचारकों और अध्यापकों को आत्मनिरीक्षण करके यह तसलीम करने को मजबूर किया जाता था कि मार्क्सवाद्-लेनिनवाद्-माओत्सेवाद् ही सही ज्ञान है और इसके विपरीत जो बातें उन्होंने पहले कहीं थीं वे सब गलत थीं, नासमझी और अज्ञान के कारण कही गयीं थीं। प्रोफेसरों को अपनी भूल विद्यार्थियों के सामने कबूल करनी पड़ती थी।

चीन में किसान

चीन का क्रान्तिकारी संघर्ष वास्तव में किसानों का संघर्ष था। किसानों की आर्थिक दुर्दशा और मांगे ही उसका आर्थिक आधार थीं। किसान ही क्रान्तिकारी फौज के सिपाही थे और गाँव ही इस संघर्ष के मुख्य रणक्षेत्र थे। किसानों की दशा सुधारने के लिये अक्तूबर सन् १९२६ में कोमिनटांग पार्टी ने अपनी कान्फ्रेन्स में लगान में पचीस फीसदी की कमी का ऐलान किया था और सन् १९३० में एक भूमि-कानून भी मंजूर किया था, पर लगान की कमी को ठीक तौर पर लागू नहीं किया गया। किसानों पर जमींदारों का पहले जैसा अत्याचार बना रहा। सन् १९४० में कोमिनटांग की सरकार ने फिर एक वर्ष के लिये एक चौथाई लगान माफ करने का आदेश जारी किया, पर इस पर भी ठीक तौर पर अमल दरामद नहीं हुआ। माओत्सेतुंग ने किसानों की दुर्दशा के प्रति सरकार की उपेक्षा को ही अपने क्रान्तिकारी कार्यक्रम का आधार बनाया। उसने जमीन के बटवारे का और जमींदारों के अत्याचारों से किसानों के छुटकारे का वायदा किया। ताकत हाथ में आते ही कम्युनिस्टों ने जमीन का बटवारा शुरू कर दिया। सन् १९४५ और सन् १९४७ में ही चीन के एक बहुत बड़े हिस्से में जमींदारों, रईस किसानों तथा कुछ हालत में मध्यम श्रेणी के किसानों की जमीनें छोटे किसानों और भूमिहीन मजदूरों में बांट दी गयीं। सन् १९४७ में एक कार्यक्रम के जरिये जमीन के इस बटवारे को कानूनी शक्ल भी दी गयी पर यह आदेश जारी किया गया कि भविष्य में मध्यम श्रेणी के खेतों का बटवारा न किया जाय। सन् १९५० में खेती सुधार कानून पारित किया गया। इस कानून के जरिये बड़े-बड़े जमींदारों की जमीन का बटवारा भी बन्द कर दिया गया। पर उससे पहले ही जमीन का बहुत बड़ा भाग बट चुका था और बहुत सी अलाभकर जोतें बन गयीं

थीं। आचार्यजी द्वारा यह पूछे जाने पर कि इन अलाभकर जोतों से खेती की समस्या कैसे हल होगी, उन्हें बताया गया कि किसान स्वयं सहकारी खेती करने पर मजबूर होंगे।

२२ मई को आचार्य नरेन्द्रदेव काओकंग नाम के एक ऐसे गाँव को देखने गये जहाँ सहकारिता के आधार पर खेती होने लगी थी। वहाँ उन्हें पता लगा कि क्रान्ति से पहले इस गाँव की ८८ प्रतिशत जमीन पर जमींदारों का अधिकार था और पचपन भूमिहीन खेतिहर मजदूरों के परिवारों के पास न कोई जमीन थी, न रहने का ठिकाना था। क्रान्ति के बाद जमीन मकान और मवेशी बांट दिये गये थे। जमीनें खेत पर काम करने वाले किसानों की निजी सम्पत्ति हो गयीं थीं। पर खेती को सुचारु रूप से चलाने के लिये सहकारी खेती को प्रोत्साहन दिया गया था। उन्हें बताया गया कि १६६ परिवारों में से १२५ परिवार सहकारी खेती में शामिल हो गये हैं। उन्हें यह भी बताया गया कि पैदावार का १८ फीसदी भूमिकर में देना पड़ता है, बाकी लाभ श्रम और जमीन के रकबे के अनुपात से बांट दिया जाता है। वितरण में ६० प्रतिशत मजदूरी का, ३० प्रतिशत भूमि का और १० प्रतिशत मवेशियों का होता है।

मशीनटूल फैक्टरी

२० मई को आचार्य नरेन्द्रदेव एक मशीनटूल फैक्टरी भी देखने गये। वहाँ उन्हें पता चला कि जापानियों ने इसे काफी क्षति पहुँचायी थी, पर सन् १९४८ से इसमें फिर से काम शुरू हो गया है। उन्हें बताया गया कि काम दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है, मजदूरों का वेतन भी चार वर्ष में दुगुना हो गया है। इस समय काम के आधार पर वेतन दिया जाता है। पर किसी को भी पिछत्तर रुपये मासिक से कम नहीं मिलता।

नरेन्द्रदेवजी की सद्भावना

यो आचार्य नरेन्द्रदेव चीन की बहुत सी बातों की गतिविधि को ठीक नहीं समझते थे, पर सद्भावना मण्डल के सदस्य नरेन्द्रदेव चीन से सद्भावना के साथ लौटे और हिन्दुस्तान में आकर उन्होंने चीन की

गतिशीलता और चीन की अच्छी बातों पर ही अपने साथियों का ध्यान दिलाना उचित समझा। उनकी यह बात उनके कुछ साथियों को बुरी लगती थी, पर जितना ही वे बुरा मानते उतना ही आचार्य नरेन्द्रदेव चीन की अच्छी बातों की ओर उनका ध्यान दिलाना जरूरी समझते। इसका यह मतलब हरगिज नहीं कि वे हिन्दुस्तान में चीन की हर बात की नकल करने को तैयार थे, या वे बहुदलीय संसदीय जनतन्त्र की तुलना में जनवादी लोकतन्त्र के नाम पर कायम कम्युनिस्ट तानाशाही को अच्छा समझते थे, या वे भारत की राजनीति में चीन का प्रभुत्व या प्रभाव स्वीकार करने को तैयार थे। नरेन्द्रदेवजी ने सन् १९५४ में योगोस्लाविया के प्रधान मन्त्री श्री कार्डले से बातचीत करते हुए समाजवादी समाज में भी बहुदलीय जनतन्त्र की आवश्यकता पर और विचारों की स्वतन्त्रता पर जोर दिया था। उन्होंने सन् १९५४ में हिन्दुस्तान में मार्शल टीटो का स्वागत करते हुए भी कहा था कि चीन में युगोस्लाविया की तरह विचारों की स्वतन्त्रता नहीं थी। वे सदा ही मजदूरों की तानाशाही के मार्क्सवादी सिद्धान्त के नाम पर कम्युनिस्टों द्वारा अपनी पार्टी की स्थायी तानाशाही कायम करने का विरोध करते रहते थे और दोनों के बुनियादी अन्तर को समाजवादी कार्यकर्ताओं को समझाते रहते थे। वे अध्यापकों की विचारस्वतन्त्रता के हामी थे। वे अन्तर्राष्ट्रीय भावना के समर्थक थे, पर क्रान्तिकारी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के नाम पर किसी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में किसी विशिष्ट राष्ट्र के प्रभुत्व को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। वे कम्युनिस्टों की तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय पर सोवियत रूस के आधिपत्य के विरोधी थे। और जब सन् १९५४ में कम्युनिस्ट चीन के नेताओं ने 'एशिया एशियावासियों का' नारा लगाया, तब नरेन्द्रदेवजी ने इस नारे के खतरे की ओर एक पत्र द्वारा साथी अशोक मेहता का ध्यान आकृष्ट किया और इसका विरोध आवश्यक समझा। वे किसी क्षेत्रीय या क्रान्तिकारी नारे के आधार पर सारे एशिया पर चीन का प्रभुत्व, अधिकार या विशिष्ट प्रभाव स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। वे स्तालिनवाद के कट्टर विरोधी थे और वे स्तालिनवाद पर आश्रित चीन की अन्तर्राष्ट्रीय नीति और चालों को क्रान्तिकारी, मार्क्सवादी या ठीक मानने को कभी भी तैयार नहीं होते। आचार्य जी के निधन के बाद सन् १९५६ से कम्युनिस्ट चीन

ने हिन्दुस्तान की ओर जो रवैया अख्तियार किया और जिस तरह उसने सन् १९५९ में लद्दाख पर और सन् १९६२ में नेफा पर आक्रमण किया उसका वे यदि जीवित होते तो उसी तरह विरोध करते कि जैसा प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने किया। नरेन्द्रदेवजी ने तो सन् १९५१ में ही एक प्रश्न के उत्तर में कहा था कि 'हम चीन से अच्छे सम्बन्धों का स्वागत करेंगे। लेकिन ठोस वास्तविकता को सामने रखते हुए हमें चलना होगा। मिसाल के तौर पर हम प्रसिद्ध पंचशील का स्वागत करते हैं। इन सिद्धान्तों का समर्थन दोनों देशों के दर्म्यान ठीक तौर पर निश्चित होना चाहिए। सही हिन्दी-चीनी भाइचारे के लिये निम्नलिखित बातें प्राप्त करना चाहिए :—

१. हमारी सरहदें स्पष्टता के साथ मार्क होनी चाहिए। चीन को उन तमाम इलाकों पर से अपने दावे वापस लेना चाहिए जो हमारे हैं।

२. चीन को दूसरे देशों में रहने वाले चीनियों से कहना चाहिए कि उनकी वफादारी उस देश से है जिसमें वे रहते हैं।

३. चीन को साफ तौर पर घोषित करना चाहिए कि वह इस देश की कम्युनिस्ट पार्टी को प्रोत्साहन (शय) नहीं देगी।'

आचार्य नरेन्द्रदेव सामन्तशाही के विरोधी थे सामन्तों के सब प्रकार के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों और प्रभावों का अन्त वे मानव की प्रगति के लिये जरूरी समझते थे। किसी समुचित सामाजिक न्याय के आधार पर किसानों और खेतिहर मजदूरों में जमीन का फिर से बटवारा और सहकारिता के आधार पर खेती की व्यवस्था वे जरूरी समझते थे। वे चाहते थे कि अगस्त सन् १९४७ में ही स्वतन्त्रता की घोषणा के साथ साथ जमींदारी प्रथा के अन्त की घोषणा भी भारत सरकार करती। उन्हें इस बात का दुःख था कि कांग्रेसी सरकारों को जिस तत्परता से भूमि सुधार का काम करना चाहिए था वे नहीं कर रही थीं। उन्हें इस बात की खुशी थी कि चीन ने राजनीतिक क्रान्ति के साथ ही साथ सामन्तों का आर्थिक आधिपत्य भी खत्म कर दिया, जमीनें किसानों और मजदूरों में बाँट दीं और सहकारिता के आधार पर खेती की व्यवस्था शुरू कर दी। पर जब वे चीन की इन सब बातों की चर्चा करते थे, उस समय उन्हें पता नहीं था कि चीन की कम्युनिस्ट सरकार सहकारिता को चालू करने के बजाय

सोवियत रूस से आगे बढ़कर कम्यून (Commune) की शक्ल में जमीन का ऐसा सामूहीकरण करना चाहते थे और ऐसी व्यवस्था कायम करना चाहते थे कि जिसमें खेतिहरों को फौज की सफर मैना की तरह कड़े नियंत्रण के अन्दर काम करना पड़े और उसकी स्वतन्त्रता और उनका पारिवारिक जीवन नष्ट प्रायः हो जाय। आचार्यजी सोवियत रूस की सामूहीकरण की व्यवस्था के विरुद्ध थे, वे चीन की कम्यून व्यवस्था का, जो सामूहीकरण की व्यवस्था से अधिक जटिल और खेतिहरों की स्वतन्त्रता का अधिक अपहरण करने वाली थी, अवश्य ही विरोध करते, यदि यह व्यवस्था उनके जीवन काल में चीन में चालू की गयी होती।

यूरोप की यात्रा

सन् १९५३ में आचार्यजी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था। इसी कारण उन्होंने बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के उपकुलपति के पद से इस्तीफा दिया था। वे सन् १९५४ में अपना इलाज कराने संयुक्त राष्ट्र अमरीका जाना चाहते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने स्नेही डाक्टर गुजराल के जरिये अमरीका के डाक्टरों से परामर्श किया। डाक्टरों ने उन्हें अमरीका आने की सलाह नहीं दी। उनका कहना था कि दमें की बीमारी के इलाज की जो सुविधाएँ अमरीका में हैं वे इंगलिस्तान में भी उपलब्ध हैं और वहां जाना ही अधिक सुविधाजनक होगा। कुछ का तो ऐसा विचार था कि शायद इंगलिस्तान जाने से भी कोई विशेष लाभ नहीं है। कुछ सोचने के बाद आचार्यजी ने इंगलिस्तान जाने का इरादा कर लिया। साधनों के जुटाने में उनके स्नेही श्री बाबूलाल मखारिया का अच्छा योगदान था। जुलाई सन् १९५४ में वे इंगलिस्तान को चल दिये। उनके साथ उनके छोटे पुत्र हर्षवर्धन के मित्र परमेश्वर दयाल भी गये।

आस्ट्रिया

कुछ दिन लन्दन में रहकर इलाज कराया, पर जब वहाँ स्वास्थ्य ठीक नहीं हुआ, तब आस्ट्रिया जाने का इरादा किया। वे वहाँ टिरल प्रदेश में किसी स्थल पर एक मास रहना चाहते थे। यह प्रदेश बहुत ही सुन्दर है। यहाँ जगह जगह पर स्वास्थ्य स्थल हैं जहाँ रोगी

विश्राम करते हैं और स्वास्थ्य लाभ करते हैं। इनमें से कई स्थानों में गंधक आदि के चश्मे भी हैं जहाँ स्नायु रोग के रोगियों को स्नान से लाभ होता है।

जब २८ जून को वे वियना पहुँचे तब उन्हें हवाई अड्डे पर भारतीय दूतावास के उपकौन्सल डाक्टर रामास्वामी और आस्ट्रिया की सोशलिस्ट पार्टी के नवयुवक नेता और संसद सदस्य पीटर स्ट्रासर से भेंट हुई और उन्होंने डाक्टर रामास्वामी की सलाह पर वियना में ही स्वांस के एक प्रसिद्ध चिकित्सक से इलाज कराना शुरू कर दिया। वियना जैसे चिकित्साकेन्द्र में भी इस डाक्टर का बड़ा मान था, वे कई वर्ष वियना विश्वविद्यालय के प्रोफेसर के पद को सुशोभित कर चुके थे। उनके मशविरे पर नरेन्द्रदेवजी ने ५ जुलाई को एक निदानगृह (clinic) में प्रवेश किया। निदानगृह में दाखिल होने के पहले वे वियना में घूमे और कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियों से भेंट की। आचार्यजी को यह नगर बहुत ही पसन्द आया। इस नगर की म्युनिस्पैलटी का प्रबन्ध कई वर्ष से सोशलिस्टों के हाथ में था। सोशलिस्टों ने नगर की जनता के लिये कई बड़े काम किये थे जिनके कारण उन्हें जनता का विश्वास प्राप्त था। उन कामों में निम्न-मध्यम श्रेणी और मजदूरों के मकानों की समस्या को हल करना प्रमुख था। एक लाख से अधिक कक्ष (Apartments) बन चुके थे और नये बनते जा रहे थे। मार्क्स, एंगिल्स आदि प्रमुख समाजवादी विचारकों और नेताओं के नाम पर विभिन्न ब्लाकों का नाम रखा गया था। ये कक्ष बहुत सुन्दर थे, इन्हें देखकर आचार्यजी की 'तबियत खुश' हो गयी। उन्हें यह जानकर भी बहुत प्रसन्नता हुई कि मकानों के विषय में सोशलिस्ट पार्टी का यह प्रयास दूसरे देशों के लिये नमूना बन गया है। आचार्य नरेन्द्रदेव को यह जानकर भी खुशी हुई कि आस्ट्रिया में सोशलिस्टों में आपस में कोई ऐसी गहरी फूट नहीं थी कि जिसका कम्युनिस्ट फायदा उठा सकें जैसा कि इटली में नैनी और दूसरे सोशलिस्ट नेताओं के मतभेद से कम्युनिस्टों द्वारा फायदा उठाया जा रहा था। आस्ट्रिया में मजदूर आन्दोलन में भी एकता थी। सब मजदूर यूनियनों के चेयरमैन सोशलिस्ट ही थे। इस देश में मजदूरों में समाजवाद के सांस्कृतिक पहलू पर विशेष ध्यान दिया जाता था। आचार्य नरेन्द्रदेव

की दृष्टि में आस्ट्रिया के मजदूर आन्दोलन की यह विशेषता अनुकरणीय थी। उन्होंने अपने एक पत्र में इस विशेषता पर सन्तोष प्रकट करते हुए लिखा कि 'वर्ग संघर्ष का अर्थ केवल आर्थिक संघर्ष नहीं है। यदि किसान मजदूर का राज्य होना है तो केवल इससे काम नहीं चलेगा। नैतिक और सांस्कृतिक विशिष्टता के लिये संघर्ष करना वर्गसंघर्ष का एक आवश्यक अंग है। इसके बिना वर्गविहीन समाज की स्थापना सम्भव नहीं है। इसीलिये मैं रोजा लुक्समबर्ग की बात को बारबार दुहराता हूँ कि समाजवाद रोटी-मक्खन का ही सवाल नहीं है, किन्तु एक विश्वव्यापी सांस्कृतिक आन्दोलन है'।

वियना में आचार्य नरेन्द्रदेव ने फेडरल रिपब्लिक के प्रेजीडेन्ट और उपप्रधान मन्त्री तथा दूसरे कई मन्त्रियों, नगर के मेयर आदि से मुलाकात की। प्रेजीडेन्ट कोरनर सोशलिस्ट थे। इनका चुनाव सन् १९५१ में हुआ था वे ८१ वर्ष के बूढ़े और अविवाहित थे। आचार्यजी प्रेजीडेन्ट कोरनर के शील, स्वभाव और व्यवहार से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने एक पत्र में लिखा कि श्री कोरनर 'बड़े ही सरल स्वभाव के हैं ... खुले आम बिना पुलिस के घूमते हैं, अपने बंगले (Villa) से प्रातःकाल दफ्तर चले आते हैं, दिन में टाउनहाल के रेस्तरां में लंच करते हैं और शाम को घर चले जाते हैं। रेस्तरां में इनसे हर एक मिल सकता है। शाम का खाना वे खुद पकाते हैं'। प्रेजीडेन्ट कोरनर ने आचार्यजी को अपने दफ्तर में बुलाया जो कि पुराने शाही महल में था। वहाँ उन्हें वे कमरे दिखाये गये जहाँ महारानी मेरिया थेरिसा रहती थीं और जहाँ वियना की प्रसिद्ध कांग्रेस हुई थी। आचार्यजी उनसे दो बार मिले, अन्तिम बार नरेन्द्रदेवजी ने उनसे कहा कि आपने मुझे सम्मानित किया। वे बोले मैं पहले सिपाही था अब जनतान्त्रिक हूँ। आप तो शिक्षक हैं, आपने मुझे सम्मानित किया।

आचार्यजी वियना के लोगों के सद्व्यवहार से भी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने लिखा कि 'वियना के लोग बड़े तपाक से मिलते हैं। इनका व्यवहार बड़ा शिष्ट और मृदु होता है। उनके दिल में भारत के लिये आदर है'। पर उन्हें यह जानकर दुःख हुआ कि अमरीका की एक समाचार एजेन्सी इस देश में भारत के ऐसे पुराने मृतप्रायः रस्मों-

रिवाज को ही प्रकाशित करती है कि जिससे जान पड़े कि भारतीय बर्बर और असभ्य हैं और इस प्रकार के समाचारों से साधारण जनता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उन्हें इस बात का खेद था कि भारत की ओर से इस प्रकार की बातों के खण्डन का कोई प्रयत्न नहीं हो रहा था।

आचार्यजी को पता चला कि आस्ट्रिया में कम्यूनिस्टों की शक्ति नगण्य है, पार्लियामेन्ट में केवल ४ सदस्य हैं। उन्हें यह भी मालूम हुआ कि 'द्वितीय युद्ध के बाद रूसी फौज ने बहुत अत्याचार किया जिसका वर्णन सुनने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इसके कारण आस्ट्रिया में रूस के प्रति अश्रद्धा हो गयी थी'। उन्हें यह भी पता चला कि 'अब रूसी सिपाहियों को आस्ट्रिया के लोगों से मिलने की इजाजत नहीं है'। वहाँ के लोगों का ऐसा विचार था कि इस आदेश का एक कारण यह भी था कि आस्ट्रिया के लोगों का जीवन स्तर रूसी लोगों के जीवन स्तर से ऊँचा था और इसकी जानकारी रूसी सिपाहियों से छिपाना जरूरी समझा गया था। नरेन्द्रदेवजी ने लिखा कि वे स्वयं इसके सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से नहीं कह सकते।

आचार्यजी कुछ दिन वियना के क्लिनिक में रहे। उसके बाद २१ जुलाई को अपने डाक्टर की राय से ओवलाडिस चले गये। समुद्र से ४५०० फीट की ऊँचाई पर यह एक बड़ा ही रमणीक स्थान है। यह स्थान आचार्यजी को बहुत ही पसन्द आया। यहाँ का जलवायु भी उनके स्वास्थ्य के लिये बहुत लाभकर सिद्ध हुआ। यहाँ उनके स्वास्थ्य में इतना सुधार हुआ कि दो सप्ताह के बाद दवा बन्द कर दी गयी। आचार्यजी को ऐसा लगा मानों किसी ने उन्हें 'अभयदान' दे दिया हो। वे सोचने लगे कि यदि हिन्दुस्तान में कोई ऐसा स्थान होता तो वे वहाँ कुछ काल तक रहकर अभयदान पा सकते।

भ्रमण

ओवलाडिस में लगभग २५ दिन रहने के बाद आचार्य नरेन्द्रदेव १४ अगस्त को अपने पुराने छात्र डाक्टर सत्यनारायण के साथ एक मोटरकार में जनीवा को चल पड़े। रास्ते में सानरिब्रस्टोव पहाड़ी पर पहुँचे। यहाँ उन्हें भारत की पिन्डारी ग्लेशियर की याद आ गयी और उन्होंने अपने छात्र से कहा कि जिसने हिमालय नहीं देखा है

वह इन पहाड़ों को भी नहीं जान सकता। इस पहाड़ी पर ही रात बिता कर १५ अगस्त को वे जनीवा पहुँचे और वहाँ से झील के किनारे किनारे होते हुए वे मोन्तरे (Montreux) पहुँचे। वहाँ से वे बिनलव गये जहाँ किसी समय रोमन रोलां रहते थे। वहाँ से वे माउन्टेन-होस कावस गये जहाँ उन्होंने भारत की राष्ट्रीय ध्वजा फैलाई। वहाँ से वे जूरिच पहुँचे। यहाँ वे दो दिन ठहरे और उन्होंने लेनिन के एक पुराने क्रान्तिकारी साथी से भेंट की। १८ अगस्त को जूरिच से चलकर वे फ्रेन्कफोर्ट पहुँचे। वहाँ जर्मनी के प्रसिद्ध विचारक गेटे (Goethe) के पुराने निवास को देखा और उन्होंने अपने शिष्य सत्यनारायण से पण्डित जवाहरलाल नेहरू की तुलना फास्ट (Faust) से की।

फ्रेन्कफोर्ट से हवाई जहाज के जरिये वे बर्लिन गये और वहाँ एक सप्ताह रहे। इसी बीच वे पूर्वी बर्लिन भी गये। वहाँ वे कुछ रूसी सिपाहियों से मिले और श्री अबनय मुखर्जी के पुत्र से भेंट करके उनसे मास्को के समाचार प्राप्त किये। उन्होंने कई दिन तक पूर्वी बर्लिन की नेशनल लाइब्रेरी में जाकर रूस के प्रसिद्ध विद्वान शिवास्टकी की बौद्ध दर्शन पर लिखी प्रसिद्ध पुस्तक का अध्ययन किया। उन्होंने पश्चिमी बर्लिन में फ्री यूनिवर्सिटी और होबोल्ड यूनिवर्सिटी देखी और जर्मनी के मजदूर नेता शूमाकर से भेंट की। शूमाकर ने उन्हें पश्चिमी जर्मनी की राजधानी बान (Bonn) निमन्त्रित किया।

बर्लिन से फ्रेन्कफोर्ट होते हुए नरेन्द्रदेवजी ब्रसल्स (Brussels) गये। वहाँ से वे बान और म्यूनिख गये और वहाँ उन्होंने जर्मनी के बहुत से समाजवादी नेताओं से बातचीत की। वहाँ से फिर एक सप्ताह के लिये वे ओवलाडिस पहुँचे। वहाँ कई दिन तक आस्ट्रिया के प्रधान मन्त्री डाक्टर ज्यूलिस राव से खाने पर बातचीत करते रहे। ओवलाडिस से इन्सबर्क होते हुए वह फिर वियना पहुँचे। वहाँ उस समय अन्तर-पार्लियामेन्टरी कान्फ्रेन्स हो रही थी। उस कान्फ्रेन्स में आये बहुत से नेताओं से उन्होंने बातचीत की। इस अवसर पर उन्होंने जर्मनी के प्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक कार्लकाउट्स्की के सुपुत्र से भी भेंट की जिन्होंने बहुदलीय व्यवस्था के सम्बन्ध में युगोस्लाविया के नेताओं के साथ अपने विचार विमर्श की एक प्रतिलिपि आचार्य जी को दी।

यूगोस्लाविया

अपने सुपुत्र हर्षवर्धन के मित्र परमेश्वर दयाल के साथ आचार्य नरेन्द्रदेवजी वियना से यूगोस्लाविया गये। वे लुबलियाना, बिलिज्द, जगराव होते हुए बेलग्राड पहुँचे। यहाँ वे कई दिन रहे और यूगोस्लाविया के सम्बन्ध में उन्होंने बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की, पर जितनी जानकारी वे हासिल करना चाहते थे नहीं कर पाये। वे वहाँ पर जिलास से भी मिलना चाहते थे। उनसे आचार्यजी की एक बार हिन्दुस्तान में मुलाकात हुई थी। पर उस समय यूगोस्लाविया की सरकार उनसे खुश नहीं थी और इसलिये उनसे आचार्यजी की भेंट का कोई प्रबन्ध नहीं हो पाया। यहाँ नरेन्द्रदेवजी सरकार के मेहमान थे। यहाँ पर डाक्टर विलफन और उनकी धर्मपत्नी से तथा श्री पोपोलिक से उनकी भेंट हुई और कुछ हिन्दुस्तानी विद्यार्थी भी उनसे मिले। डाक्टर विलफन इस समय यूगोस्लाविया के प्रेजीडेन्ट मार्शल टीटो के सेक्रेटरी जनरल थे और उनकी धर्मपत्नी विदेश से आनेवाले व्यक्तियों की देखभाल के चार्ज में थीं। डाक्टर विलफन कई वर्ष तक भारत में यूगोस्लाविया के राजदूत रह चुके थे। वहीं नरेन्द्रदेवजी का उनसे परिचय और घनिष्ठता हो गई थी।

यहाँ नरेन्द्रदेवजी को अनुभव हुआ कि चीन की तुलना में यूगोस्लाविया में लोगों को अधिक स्वतन्त्रता हासिल है और जनता के सम्पर्क से परिस्थिति की जानकारी हासिल करना ज्यादा आसान है। यूगोस्लाविया का विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी प्रयोग और मजदूरों की कौंसिल की स्थापना भी उन्हें पसन्द थी। उनकी सामाजिक संरक्षता की व्यवस्था से भी आचार्यजी काफी प्रभावित थे। जब आचार्यजी वहाँ गये थे उस समय यूगोस्लाविया में कई समाजवादी दल एक वृहद् सोशलिस्ट सहयोग में शामिल थे। कम्युनिस्टों की पार्टी जो लीग आफ कम्यूनिस्ट के नाम से प्रसिद्ध थी इस सहयोग में प्रमुख स्थान रखती थी। उसी का बोलबाला था, उसी की चलती थी। दूसरी पार्टियों को सोशलिस्ट अलायंस के नाम पर कम्युनिस्टों से सहयोग करना होता था। सब चुनाव इस सोशलिस्ट अलायंस के नाम से लड़े जाते थे। किसी विशेष शर्तों के पूरा होने पर विधान सभा की सदस्यता के लिये कोई व्यक्ति स्वतन्त्र उम्मीदवार की हैसियत से खड़ा हो सकता था, पर

इसका उपयोग विरले ही होता था। वहाँ वास्तव में बहुदलीय व्यवस्था नहीं थी और राजनीतिक क्षेत्र में अधिनायकशाही थी जो आचार्यजी को ठीक नहीं जँचती थी।

डाक्टर काडले से वार्ता

यूगोस्लाविया में बहुदलीय व्यवस्था की आवश्यकता पर डाक्टर काडले से आचार्य नरेन्द्रदेव की एक बड़ी सारगर्भित बात चीत हुई। आचार्यजी ने कहा कि जनतन्त्र के अर्थ विचार की स्वतन्त्रता, बोलचाल की स्वतन्त्रता और संस्था की स्वतन्त्रता है। ये संस्थाएँ विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं। ये राजनीतिक उद्देश्य के लिये भी संगठित की जा सकती हैं और इनका लक्ष्य वोट के जरिये राजनीतिक शक्ति हासिल करना हो सकता है। दूसरों को राजनीतिक संस्थाएँ बनाने से वंचित करना जनतन्त्र को उस हद तक सीमित करना है। उन्होंने कहा कि मैं यह मानता हूँ कि एक मात्र बहुदलीय व्यवस्था कायम करना ही पूर्ण जनतन्त्र नहीं है, क्योंकि इसके लिये तो प्रत्यक्ष जनतन्त्र भी आवश्यक है ताकि जनता आर्थिक और प्रशासकीय दोनों क्षेत्रों में अपने कामों का प्रबन्ध कर सके। इस प्रश्न को इस दृष्टि से देखकर यूगोस्लाविया ने श्रमिक कौंसिलों को खोलकर ठीक ही किया है। आपने जो विकेन्द्रीकरण की शक्तियों को गति दी है, उसका अन्तिम परिणाम तो अपने कामों और व्यवसायों का प्रबन्ध करने में मानव-अधिकार की प्रतिष्ठा ही होगी। लेकिन पूर्ण जनतन्त्र की यह भी माँग है कि जनता से राजनीतिक संस्थाएँ बनाने की स्वतन्त्रता न छीनी जाय।

आचार्य नरेन्द्रदेव ने डाक्टर काडले से यह भी कहा कि हो सकता है कि आपकी धारणा हो कि देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये इस समय एक पार्टी का अस्तित्व जरूरी है, पर इस हालत में भी जनतन्त्र के समर्थकों को यह विश्वास दिलाने की जरूरत है कि एक दलीय व्यवस्था अस्थायी है और मौजूदा कठिनाइयों पर काबू पा लेने पर जनता को राजनीतिक संस्थाएँ और पार्टियां बनाने की स्वतन्त्रता दे दी जायगी।

आचार्यजी ने डाक्टर काडले से यह भी कहा था कि जब अस्सी प्रतिशत किसान सोशलिस्ट अलायन्स में शामिल हो गये हैं जिसके

मौलिक सिद्धांत और नीति 'लीग आफ कम्यूनिस्ट' से भिन्न नहीं है, तब यह समझा जा सकता है कि इस समय भी बहुदलीय व्यवस्था चालू करने से समाजवाद को कोई खतरा नहीं होगा। पर यदि यह भी मान लिया जाय कि इस समय बहुदलीय व्यवस्था चालू करना ठीक नहीं होगा, तब भी यह नहीं माना जा सकता कि प्रत्यक्ष जनतन्त्र के परिणामस्वरूप लीग आफ कम्यूनिस्ट स्वतः मुर्झा जायगी। मार्क्स के इस सिद्धान्त का कि राज्य मुर्झा जायगा इतना ही अर्थ है कि राज्य का दमनकारी अस्त्र यानी फौज और पुलिस खत्म हो जायगी। इसका यह मतलब कभी नहीं कि राज्य के दूसरे सब काम भी खत्म हो जायेंगे। मानव इतिहास में कोई ऐसा समय नहीं सोचा जा सकता कि जब जनता के पथ प्रदर्शन के लिये नेतृत्व वृन्द की जरूरत न हो। समाज में अनियन्त्रित तत्व बहुत काल तक बने रहने की कोशिश करते हैं और स्वतः विलीन नहीं होते। इस सम्बन्ध में जो बात नौकरशाही के लिये सत्य है, वही बात पार्टी के लिये भी सत्य है। सोवियत रूस का दृष्टांत हमारे सामने है। यूगोस्लाविया का यह विचार ठीक है कि रूस में प्रचलित नौकरशाही प्रशासन जनतन्त्र का निषेध (negation) है। लेकिन एकदलीय व्यवस्था को स्थायी बनाना भी एक घातक गलती है, लीग आफ कम्यूनिस्ट के मुर्झाने की आशाएँ झूठी साबित होंगी। आपका विचार है कि जब श्रमिकों के कम्यूनों का पूरा विकास होगा उस समय लीग को बनाये रखने की जरूरत नहीं होगी। लेकिन इस संस्था का स्थानीय समस्याओं से सम्बन्ध है, ये राष्ट्रीय नीति के निर्धारण के लिये उचित संस्थाएँ नहीं हैं। राजनीतिक पार्टियां आवश्यक हैं, क्योंकि स्वस्थ जनतन्त्र के लिये विचारों और सिद्धान्तों का संघर्ष जरूरी है। विभिन्न विचारों की बहस के जरिये ही सही नीति बनायी जा सकती है। मुझे आशा है कि जब आप यह समझ लेंगे कि आपने मौजूदा कठिनाइयों पर काबू पा लिया है तब आप जनता को राजनीतिक संस्थाएँ बनाने की आजादी देंगे। उन्हों ने डाक्टर काडले से कहा कि सन् १९४८ में यूगोस्लाविया के नेताओं को सोवियत रूस के सिद्धान्त और व्यवहार की असलियत का पता चला। यदि योगोस्लाविया में एक से अधिक राजनीतिक पार्टियां होतीं तो बहुत सम्भव था कि इस बात का पता बहुत पहले चल जाता। आप अपने संविधान में सोशलिस्ट

पार्टियों के अलावा दूसरी पार्टियों के बनाये जाने के विरुद्ध व्यवस्था कर सकते हैं। इससे बुर्जुआ पार्टियों के संगठन का खतरा मिट जायगा।

बहुदलीय व्यवस्था की पुष्टि में आचार्यजी ने यह भी कहा कि मार्क्सिस्टों में बहुत से स्कूल हैं। कुछ स्तालिनवादी हैं, कुछ ट्राटस्की-वादी हैं और कुछ दोनों से मतभेद रखते हैं। विभिन्न विचारों के लोगों ने मार्क्सवाद की विभिन्न व्याख्याएँ की हैं। इसलिये भी जरूरी है कि समाजवादी देशों में भी जनता को विभिन्न राजनीतिक दल बनाने का अधिकार हो ताकि पारस्परिक विचार विनिमय के द्वारा सत्य का ज्ञान हो सके।

मार्शल टीटो का सम्मान

बहुदलीय व्यवस्था के समर्थक नरेन्द्रदेवजी की इस समीक्षा का यह मतलब नहीं कि वह यूगोस्लाविया की प्रशासकीय प्रणाली तथा गतिविधि को बिलकुल गलत समझते थे। वे तो वास्तव में यूगोस्लाविया की नीति-रीति के प्रशंसक थे तथा सोवियत रूस और चीन की औद्योगिक और प्रशासकीय नीतियों से यूगोस्लाविया के प्रयोगों को कहीं अच्छा और समाजवाद के सिद्धान्तों के अनुकूल समझते थे। इसका पता उस वक्तव्य से लग सकता है जो उन्होंने सन् १९५५ में देहली में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष की हैसियत से यूगोस्लाविया के प्रधान मार्शल टीटो को सम्बोधित करते हुए उनके स्वागत में पढ़ा था। मार्शल टीटो के साहस, वीरता, त्याग और सफल नेतृत्व की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि हम सबको इस बात की खुशी है कि आपके नेतृत्व से यूगोस्लाविया के बहादुर देश भक्तों ने अपने शौर्य के बल पर अपने देश को जर्मनी की दासता और नाजियों के अत्याचार से मुक्त कराया और सोवियत रूस के साम्राज्यवादी व्यवहारों का दृढ़ता से मुकाबला करते हुए तथा 'नेता-राष्ट्र' के सिद्धान्त को अस्वीकार करते हुए सोवियत रूस और उसके सहचर राष्ट्रों के आर्थिक बहिष्कार का दृढ़ता से सफल सामना किया। इस वक्तव्य में नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि चीन की तुलना में यूगोस्लाविया में कहीं अधिक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है और वहाँ वास्तविक परिस्थिति की जानकारी

प्राप्त करना अधिक सरल है। उन्होंने यह भी कहा कि जहाँ सोवियत रूस में श्रमिक मजदूरी कमाने वाले ही हैं, वहाँ यूगोस्लाविया में वे स्वतन्त्र उत्पादक हैं तथा रूस और चीन के मुकाबले में यूगोस्लाविया में सामाजिक सम्बन्ध अधिक स्वतन्त्र हैं। औद्योगिक और प्रशासकीय क्षेत्रों में यूगोस्लाविया के विकेन्द्रीकरण के प्रयोगों की प्रशंसा करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तों को महत्त्वपूर्ण समाजवादी सिद्धान्त बताया और कहा कि इन प्रयोगों को समाजवादी संसार बहुत उत्कंठा से देख रहा है, भारतीय समाजवादी भी विकेन्द्रीकरण के मार्ग को अपनाना चाहते हैं और इस सम्बन्ध में यूगोस्लाविया के अनुभव उन्हें अवश्य ही बहुत लाभदायक सिद्ध होंगे।

वापसी

यूगोस्लाविया से लौटकर नरेन्द्रदेवजी जर्मनी होते हुए फिर लन्दन वापस चले गये। इस बार भी लन्दन की जलवायु उनके स्वास्थ्य के अनुकूल सिद्ध नहीं हुई। वे फिर बीमार पड़ गये। बीमारी में ही वे मजदूर पार्टी के वार्षिक सम्मेलन के लिये एक सहकारी प्रतिनिधि की हैसियत से लिवरपूल गये। पर बीमारी के कारण वे सम्मेलन में नहीं जा सके। होटल में ही ब्रिटेन की मजदूर सरकार के भूतपूर्व प्रधान मन्त्री लार्ड एटली और अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी संघ (Socialist International) के प्रधान मन्त्री श्री मार्गन फिलिप्स आदि से उन्होंने मुलाकात की।

लन्दन से घर लौटते समय वे कुछ दिन पेरिस और कुछ दिन केरो (Cairo) में रहे। वहाँ से वे इसराइल चले गये। वहाँ उनका भव्य स्वागत हुआ और वे सरकारी मेहमान रहे। उन्होंने वहाँ कई स्थान देखे, तीन दिन भूतपूर्व प्रधानमन्त्री बेन गुरयन के घर पर रहे। उन्होंने वहाँ समाजवादी कार्यकर्ताओं की सभा में एक व्याख्यान भी दिया। वहाँ से नरेन्द्रदेवजी लेबनान गये जहाँ उन्होंने लेबनान सोशलिस्ट पार्टी के अध्यक्ष श्री कमाल जुमलाल से भेंट की, उनसे अरब राष्ट्रों की गतिविधि की तथा पश्चिमी एशिया में समाजवादी शक्तियों की दशा की जानकारी प्राप्त की तथा बलबक के प्रसिद्ध मंदिर को देखा।

१८. विघटन

पार्टी में विवाद

यूरोप से वापस आने पर आचार्यजी अपना सब समय जनतान्त्रिक समाजवाद के सिद्धान्तों और मूल्यों के प्रसार में और विद्याचरणसम्पन्न नवयुवकों को समाजवाद के कार्य में दीक्षित करने में लगाना चाहते थे। पर बीमारी के कारण नवयुवक कार्यकर्ताओं के शिक्षण शिविरों का आयोजन करना उनके लिये कठिन हो रहा था। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये वे जनतान्त्रिक समाजवाद पर एक पुस्तक भी लिखना चाहते थे। यूरोप की यात्रा से लौटने पर जब इस पुस्तक का लेखक उनसे पहली बार लखनऊ में मिला तब उन्होंने उससे कहा कि दोनों को मिलकर ऐसी पुस्तक लिखना चाहिए। उस समय यह भी निश्चय हुआ कि दोनों की विदेश यात्राओं के अनुभवों के आधार पर सोवियत रूस, योगोस्लाविया, नार्वे, स्वीडन, आस्ट्रिया आदि देशों की आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था और गतिविधि पर भी एक पुस्तक लिखी जाय। पर पुस्तकें लिखने के बजाय बीमारी की अवस्था में ही उन्हें प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अस्तित्व को बनाये रखने के लिये पार्टी का नेतृत्व ग्रहण करना पड़ा।

दिसम्बर सन् १९५३ में प्रयाग अधिवेशन के बाद ऐसी आशा हो चली थी कि नये कार्यक्रम और नीतिवक्तव्य के आधार पर सब मिल कर सुचारु रूप से काम करेंगे। कुछ दिन बाद फरवरी सन् १९५४ में तत्कालीन ट्रावनकोर कोचीन राज्य में गवर्नर के शासन को खत्म करने के उद्देश्य से आम चुनाव कराये गये। इस चुनाव में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को विधान सभा में केवल १९ स्थान प्राप्त हुए। चूंकि कांग्रेस पार्टी और कम्यूनिस्ट पार्टी में से किसी को भी बहुमत प्राप्त नहीं हो सका और कांग्रेस पार्टी यह नहीं चाहती थी कि बहुमत के अभाव में वह शासन का भार ग्रहण करे या शासन का अधिकार कम्यूनिस्ट पार्टी को प्राप्त हो, इसलिये उसने निश्चय किया कि यदि कम्यूनिस्ट पार्टी के सहयोग के बिना प्रजा सोशलिस्ट पार्टी सरकार बनाने को तैयार हो तो

अनौपचारिक ढंग पर उस सरकार का समर्थन किया जाय। प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति ने सर्वसम्मति से उत्तरदायित्व ग्रहण करने के पक्ष में प्रस्ताव स्वीकार किया। और श्री पाटमथानु पिले के नेतृत्व में ट्रावनकोर-कोचीन में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का पहला मन्त्रिमण्डल बन गया। अगस्त सन् १९५४ तक यह निर्विघ्न काम करता रहा। पर अगस्त में ट्रावनकोर तामिलनाड नेशनल कांग्रेस (T. T. N. C.) के आन्दोलन ने उग्ररूप धारण कर लिया। उसके एक जलूस ने कुछ सरकारी इमारतों को जलाने के बाद बसों को जलाना शुरू किया और जब पुलिस ने रोकने की कोशिश की तब उन्होंने पुलिस पर पत्थर फेंके। इस पर पुलिस ने गोली चलायी और उससे चार आदमी मर गये और लगभग एक दर्जन घायल हुए। इस गोली काण्ड ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में एक तहलका मचा दिया। पार्टी के प्रधान मन्त्री डाक्टर राममनोहर लोहिया ने इलाहाबाद जेल से जहाँ वह उस समय बन्द थे श्री पाटमथानु पिले को तार दिया कि मन्त्रिमण्डल फौरन इस्तीफा दे और जूडिशल जांच कराई जाय। श्री पाटमथानु पिले ने प्रधान मन्त्री के इस आदेश को मानने से इनकार कर दिया। इस पर डाक्टर लोहिया ने पार्टी के प्रधान मन्त्री के पद से इस्तीफा दे दिया। पार्टी के अध्यक्ष आचार्य कृपालानीजी नैनी जेल में डाक्टर लोहिया से मिले। पर मामला सुलझने के बजाय और उलझ गया। दोनों में वादविवाद खड़ा हो गया। पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति ने गोली काण्ड पर क्षोभ प्रकट किया तथा ट्रावनकोर-कोचीन में गोली काण्ड के सम्बन्ध में जुडीशल जांच कराने का प्रस्ताव स्वीकार किया। श्री हरिविष्णु कामथ की अध्यक्षता में एक कमेटी यह रिपोर्ट करने के लिये भी बनाई गयी कि किन परिस्थितियों में पुलिस को गोली चलाने की इजाजत होनी चाहिए। पर कार्यसमिति ने बहुमत से निश्चय किया कि जुडीशल जांच की रिपोर्ट से पहले मन्त्रिमण्डल को इस्तीफा देना उचित नहीं होगा। डाक्टर लोहिया राष्ट्रीय कार्यसमिति के इस निर्णय को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। अतः नवम्बर सन् १९५४ में नागपुर में पार्टी का विशेष सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन में काफी बहस के बाद २१७ वोटों के विरुद्ध ३१३ वोटों से राष्ट्रीय कार्यसमिति का फैसला स्वीकार हुआ।

अध्यक्षता

इस वाद-विवाद के उपरान्त आचार्य कृपालानी ने यह कह कर कि उनके लिये पार्टी में अनुशासन बनाये रखना मुमकिन नहीं पार्टी के अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे दिया। उनके साथ ही कार्यसमिति ने भी इस्तीफा दिया। पार्टी के सामने नया संकट उपस्थित हो गया। ऐसी परिस्थिति में सब प्रमुख कार्यकर्ताओं के आग्रह पर और डाक्टर लोहिया की अनुमति से आचार्य नरेन्द्रदेव ने बीमार होते हुए भी पार्टी का अध्यक्ष बनना और नयी कार्यसमिति को संगठित करना स्वीकार कर लिया। आचार्यजी की यह स्वीकृति जितनी ही पार्टी के अस्तित्व के लिये आवश्यक थी उतनी ही उनके अपने स्वास्थ्य के लिये घातक थी।

आचार्य नरेन्द्रदेव पार्टी के आन्तरिक विवाद से बड़े क्षुब्ध थे। विवाद से अलग रहना ही उचित समझ कर वह नागपुर सम्मेलन में चुप रहे। अध्यक्ष बन जाने पर विवाद के दोनों पक्षों के समर्थकों की मिलीजुली कार्यसमिति का संगठन ही उन्होंने उचित समझा। इसलिये उन्होंने डाक्टर लोहिया के प्रस्ताव के समर्थक श्री त्रिलोकीसिंहजी को प्रधान मन्त्री और सर्वश्री विपिनपालदास और फरीदुलहक अन्सारी को संयुक्त मन्त्री नियुक्त किया और उसके विरोध में वोट देने वाले श्री एस० आर० दण्डवते को तीसरा संयुक्त मन्त्री नियुक्त किया। कार्यसमिति में भी उन्होंने डाक्टर लोहिया के साथ उनके समर्थक श्री मधुलिमये, श्री महादेव सिंह, श्री राजनारायण सिंह और महाराजा विजयानगरम् राजू को स्थान दिया। पर डाक्टर लोहिया, श्री मधुलिमये और श्री महादेव सिंह ने सदस्य बनने से इनकार कर दिया। आचार्य कृपालानी ने भी कार्यसमिति का सदस्य बनना अस्वीकार किया। पर जहां आचार्य कृपालानी ने निमन्त्रित की हैसियत से कार्यसमिति में उपस्थित रहने का वायदा किया, वहां डाक्टर लोहिया ने ऐसा करने से भी इनकार किया। कार्यसमिति ने डाक्टर लोहिया को केन्द्रीय पार्लियामेन्टरी बोर्ड का सदस्य चुना, पर उन्होंने इससे भी इस्तीफा दे दिया और नागपुर के पार्टी निर्णय के विरुद्ध प्रचार को तीव्र कर दिया।

परिपत्र

२१ दिसम्बर सन् १९५४ को आचार्य नरेन्द्रदेव ने प्रान्तीय और

जिला मन्त्रियों को एक परिपत्र भेजा जिसमें उन्होंने आत्म-संयम और अनुशासन पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि 'जनतान्त्रिक समाजवाद एक जीवन-प्रणाली और विश्वव्यापी सांस्कृतिक आन्दोलन है और इस हैसियत से उसकी भावना हमारे सम्पूर्ण जीवन में व्याप्त होना आवश्यक है। हम बराबरवालों का स्वतन्त्र समाज बनाना चाहते हैं, पर हमारी पार्टी इस लक्ष्य का सफल साधन कैसे बन सकती है जब तक हम अपने व्यक्तिगत जीवन को इस आदर्श के अनुकूल बनाने की भरसक चेष्टा न करें'। उनका निश्चित मत था कि 'हमारे सर्वोत्तम सिद्धान्त और कार्यक्रम अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में उस समय तक विफल रहेंगे जब तक हम आपस में सौहार्द की भावना को परिपक्व न करें, एक दूसरे की राय का आदर न करें, सहनशील न हों, शोषित और दलित वर्गों के साथ एकात्मता की उत्तरोत्तर प्राप्ति का प्रयत्न न करें और साथ ही पार्टी के अनुशासन का पालन न करें'। उन्होंने सब साथियों से 'पार्टी का अनुशासित सिपाही' होने की अपील की और कहा कि 'अनुशासन के बिना तो किसी पार्टी या संस्था का ठीक तौर पर चलना या पनपना नामुमकिन है, क्योंकि अनुशासन का अभाव तो अराजकता और विघटन की ओर ही ले जा सकता है'।

इस परिपत्र में उन्होंने दुःख व्यक्त किया कि कुछ जिम्मेदार पदाधिकारियों ने पार्टी के नियमों की उपेक्षा करते हुए नीतिसम्बन्धी प्रश्नों पर राष्ट्रीय कार्यसमिति की अनुमति के बिना ही प्रेस वक्तव्य दिये। उन्होंने घोषित किया कि 'प्रयाग में पार्टी कान्फ्रेन्स द्वारा स्वीकृत नीति वक्तव्य ही उस समय तक हमारा पथप्रदर्शन करेगा जब तक वह बदल न जाय और पार्टी के अध्यक्ष की हैसियत से यह देखना मेरा कर्तव्य होगा कि हमारे सब काम उसके अनुकूल हैं'। नीति सम्बन्धी प्रश्नों पर वक्तव्यों की बारीकियों, कठिनाइयों और पेचीदगियों की ओर सदस्यों का ध्यान आकृष्ट करते हुए उन्होंने इस सम्बन्ध में पार्टी के निर्णयों, नियमों और अनुशासन के पालन पर विशेष तौर पर जोर दिया।

कांग्रेस का प्रस्ताव

इस परिपत्र के कुछ दिन बाद दिसम्बर सन् १९५४ में लोक सभा ने

प्रधान मन्त्री पण्डित नेहरू के इस प्रस्ताव को स्वीकार किया कि समाजवादी ढंग का समाज बनाना ही आर्थिक योजनाओं का लक्ष्य होगा।

लोकसभा में प्रस्ताव के स्वीकार हो जाने पर आचार्य नरेन्द्रदेव ने एक वक्तव्य में नये लक्ष्य की व्याख्या की माँग की और कहा कि समाजवादी समाज को कायम करने के लिये जरूरी होगा कि कांग्रेस में प्रतिगामी शक्तियों को निकाल कर उसका पुनर्संगठन किया जाय और कर्मचारीवर्ग नये लक्ष्य की सिद्धि में नयी भावना से काम करे। उन्हें सन्देह था कि कांग्रेस पार्टी ने आन्तरिक विश्वास के बजाय प्रधान मन्त्री की इच्छा के प्रति आदर भाव से प्रभावित होकर ही प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है। फिर भी उन्होंने कांग्रेस की घोषित नीति में इस तबदीली का 'स्वागत' किया, क्योंकि उनके विचार में यह 'जनतान्त्रिक समाजवाद की बढ़ती हुई शक्ति का परिचायक थी'।

कुछ दिन बाद जनवरी सन् १९५५ में कांग्रेस ने अपने अवाड़ी अधिवेशन में एक प्रस्ताव स्वीकार कर स्थापित किया कि 'समाजवादी ढंग का ऐसा समाज (Socialistic Pattern of Society) कायम करना ही योजना का लक्ष्य होगा जिसमें पैदावार के मुख्य साधन समाजिक मिलकियत या नियन्त्रण में हों, उत्पादन उत्तरोत्तर बढ़ता जाय और राष्ट्रीय सम्पत्ति का समुचित बटवारा हो'। विषय समिति में इस प्रस्ताव को पेश करते हुए मौलाना अबुलकलाम आजाद ने कहा कि यह लक्ष्य समाजवाद से भिन्न है और इसके जरिये कांग्रेस की पुरानी नीति में कोई परिवर्तन नहीं होता। खुले अधिवेशन में प्रस्ताव को पेश करते हुए प्रधान मन्त्री नेहरू ने मौलाना आजाद की इन बातों को दोहराते हुए कहा कि कांग्रेस सन् १९३१ से इस लक्ष्य को मानती चली आती है।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में नया विवाद

कांग्रेस के इस प्रस्ताव ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में एक नया विवाद खड़ा कर दिया। श्री अशोक मेहता ने कुछ दिन बाद ही २६ जनवरी सन् १९५५ को पार्टी के साप्ताहिक 'जनता' में 'प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और कांग्रेस' के शीर्षक से एक लेख लिखा जिसमें उन्होंने कांग्रेस पार्टी के

नये सामाजिक लक्ष्यों का स्वागत करते हुए खुशी जाहिर की कि कांग्रेस और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में सम्पर्क की कुछ नयी बातें जाहिर हुईं और सहमति का क्षेत्र अधिक साफ हुआ। उन्होंने कहा कि वे चाहेंगे कि अगले कदमों के सम्बन्ध में जनमत तैयार किया जाय और जहाँ सही कदम हों वहाँ सहयोग किया जाय, जहाँ गलत नीति मजबूर करे वहाँ आलोचना और विरोध किया जाय। उनका विचार था कि 'जन-साधारण प्रस्तुत समस्याओं का हल चाहता है और इस क्षेत्र में दोष-निवारण जरूरी है और बहुत शोधक प्रहारों द्वारा ही विकल्प की धारा निकलती है।'

'जनता' के अगले अंक में श्री एम० आर० दण्डवते ने नेहरूजी के समाजवादी नारे के विरुद्ध राष्ट्र को आगाह करते हुए कहा कि लक्ष्य सम्बन्धी नारों के बजाय व्यवहारों से ही कांग्रेस ठीक तौर पर आंकी जा सकती है। उनका कहना था कि हित-संघर्षों के अवसरों पर कांग्रेस ने सदा स्थिर स्वार्थों का साथ दिया है और समाजवादी तत्त्वों का दमन किया है तथा कांग्रेस संगठन की दशा को देखते हुए इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं कि वह समाजवादी ढंग के समाज को बनाने में विफल रहेगी। उन्हें डर था कि कांग्रेस अपने वक्तव्यों के जरिए प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की हैसियत को गिराने की कोशिश करेगी। उन्होंने कहा कि सही आलोचना तथा संघर्ष और रचना के साहसपूर्ण कामों के जरिए ही हम जनता को दिखा सकेंगे कि समाजवाद की सही पार्टी कौन है।

सर्वश्री जी० सी० भार्गव, केशव गोरे, राजेन्द्र सच्चर आदि ने भी 'जनता' के अंकों में श्री अशोक मेहता के लेख का विरोध किया। १७ फरवरी सन् १९५५ को प्रजा सोशलिस्ट पार्टी, बम्बई, की कार्यसमिति ने बहुमत से निश्चय किया कि उसकी राय में चूँकि कांग्रेस के अवाड़ी प्रस्तावों से उसकी नीति में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं होता, अत प्रयाग में निश्चित नीति और कार्यक्रम में किसी प्रकार के परिवर्तन की जरूरत नहीं है। कार्यसमिति ने अपने इस विश्वास को दोहराते हुए कि प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ही सामाजिक क्रान्ति का साधन है पार्टी के सदस्यों से अनुरोध किया कि वह कांग्रेस द्वारा घोषित समाजवादी ढंग के समाज के आदर्श के भ्रम में न फसें।

यह वाद-विवाद पार्टी की सीमा में ही सीमित नहीं रहा। श्री मधुलिमये ने २४ जनवरी सन् १९५५ को फ्रीप्रेस जनरल में प्रकाशित कराया कि प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के बहुसंख्यक सदस्य कांग्रेस की समाजवादी घोषणा को एक 'बड़ा धोखा' समझते हैं। १० फरवरी को बम्बई के प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नौ सदस्यों ने श्री मधुलिमये के वक्तव्यों का विरोध करते हुए कहा कि 'कांग्रेस द्वारा समाजवाद के सिद्धान्तों का अपनाना सही दिशा में स्वागत योग्य कदम है और इसका श्रेय उस सोशलिस्ट पार्टी को है कि जिसने इस लक्ष्य की विजय के लिये कांग्रेस और कांग्रेस के बाहर निरन्तर प्रयत्न किया'। उन्होंने यह भी कहा कि कांग्रेस की नयी घोषणा को 'धोखा' कहना तथ्यों को मानने से इनकार करना है और 'इस प्रकार के शुतुरमुर्गी अन्वेषन से पार्टी को बड़ी हानि हुई है और अगर श्री मधुलिमये जैसे जिम्मेदार आदमी इस पर डटे रहे तो पार्टी तबाह हो जायेगी'। उन्होंने पार्टी के अध्यक्ष से अपील की कि सत्तारूढ़ दल द्वारा समाजवादी ढंग के समाज को अपना लक्ष्य मान लेने से जो परिस्थिति पैदा हुई है उस पर विचार करने के लिये वह शीघ्र ही पार्टी का नेशनल कन्वेन्शन बुलायें। उनका अनुरोध था कि प्रयाग के नीति-वक्तव्य पर फिर से विचार हो क्योंकि नयी तबदीलियों की वजह से वह पुराना पड़ गया है।

इस वक्तव्य के प्रत्युत्तर में १५ फरवरी को श्री मधुलिमये का दूसरा वक्तव्य फ्रीप्रेस जनरल में प्रकाशित हुआ। इस वक्तव्य में उन्होंने कहा कि पार्टी को या तो सहयोग की नीति को साफ तौर पर खत्म करना चाहिए या उन लोगों को जो इस नीति के विरोधी हैं पार्टी से निकाल देना चाहिए। उन्होंने कहा कि पार्टी को निश्चय करना है कि वह क्रान्तिकारी विरोध करते रहना चाहती है या कांग्रेस की दुम बनना चाहती है। जो व्यक्ति कांग्रेस से सहयोग करने के पक्ष में हैं वे हिम्मत करके कांग्रेस में फिर से शरीक क्यों नहीं हो जाते। उन्होंने यह भी कहा कि वह नौ सदस्यों के वक्तव्य की उपेक्षा करते यदि उन्हें यह पता नहीं होता कि वह एक बड़े व्यक्ति द्वारा प्रेरित है।

अध्यक्ष का परिपत्र

इस निरर्थक वाद-विवाद से परिस्थिति बिगड़ने न पाये इस उद्देश्य

से २१ फरवरी सन् १९५५ को पार्टी के अध्यक्ष की हैसियत से आचार्यजी ने एक लम्बा परिपत्र प्रसारित किया। इस परिपत्र में आचार्यजी ने बम्बई में चल रहे विवाद की आलोचना करते हुए कहा कि 'हमारे बम्बई के कुछ साथियों की आदत बातों को बढ़ा चढ़ा कर कहने की हो गयी है। संकट की थोड़ी सी सम्भावना न होने पर भी वे संकट का अनुभव करने लग जाते हैं। वे ऐसा अनुभव करते हैं कि जो कुछ घटना बम्बई में घट रही है वही सारे देश में भी घट रही है। लेकिन बम्बई सारे देश का सूचनाकेन्द्र नहीं हो सकता। इन मित्रों को यह जानकर निराशा होगी कि ऐसी कोई घटना पार्टी में घटित नहीं होने जा रही है, ऐसा कोई संघर्ष नहीं है कि जिसकी कल्पना कर ली गयी है। हो सकता है कि पार्टी के वार्षिक सम्मेलन के समय थोड़ी गर्म बहस हो, लेकिन इसके बिना तो राजनीतिक जीवन सरस नहीं रह जाता। कुछ साथी इतने अधिक उत्तेजित हो गये हैं कि वे सोचते हैं कि पार्टी के साथ विश्वासघात करने के लिये कोई षड्यन्त्र चल रहा है'।

उन्होंने कहा कि 'उत्तेजना की स्थिति में व्यक्ति अपना सन्तुलन खो बैठता है और अनुचित कार्य कर बैठता है। श्री मधुलिमये के उस वक्तव्य को जिसमें उन्होंने श्री अशोक मेहता की भद्दी आलोचना की है, पढ़कर मुझे दुःख हुआ है। पार्टी के एक साथी की हैसियत से उनका कर्तव्य था कि वे वक्तव्य देने के पहले पूछताछ कर लेते। मुझे विश्वास है कि पार्टी के एक सम्मानित सदस्य के प्रति इस प्रकार का व्यवहार करने के लिये वे पश्चाताप करते होंगे। एक भले आदमी के रूप में उन्हें चाहिए कि वे अपनी इस गलती का सुधार करें। अगर हम अपने प्रतिदिन के व्यवहार में साधारण शिष्टता का भी व्यवहार नहीं बरतते तो शीघ्र ही हम जनता का आदर खो देंगे। हमें पार्टी के प्रश्नों पर विचार करते समय एक दूसरे पर आक्षेप न करने की कला सीखनी है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कभी कभी कड़े शब्द बहुत हानिकारक हो जाते हैं'।

अवाड़ी कांग्रेस के प्रस्ताव की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा कि मैं नहीं समझता कि अवाड़ी कांग्रेस को लेकर हमारे कुछ साथी क्यों इतने अधिक उत्तेजित हो गये हैं। यदि कांग्रेस की नयी नीति धोखा

है तो इससे परेशानी की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन यदि यह सही है तो हमारे लिये यह दुःख के बजाय खुशी की बात होनी चाहिए। इससे हमें और अधिक सक्रिय होने में सहायता मिलेगी। जहाँ तक मेरी अपनी राय है अवाड़ी कांग्रेस से कुछ भी स्पष्ट नहीं हुआ है। लेकिन मैं इस नयी घोषणा को धोखा भी नहीं मानता। मैंने इसपर अपना निर्णय स्थगित रखा है, यह भविष्य ही बतायेगा कि क्या कांग्रेस अपने नये मार्ग पर चलेगी। यदि इस बात की पुष्टि अच्छी तरह हो जाती है कि कांग्रेस पार्टी समाजवादी सिद्धान्त के प्रति आस्थावान है तो भी प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को विघटित करने की कोई जरूरत नहीं होगी। समाजवाद की विभिन्न किस्में हैं। अतः लोग यह जानना चाहेंगे कि कांग्रेस इनमें से किसे चुनती है। यद्यपि मैं कट्टर मतवादी नहीं हूँ, पर इतना रूढ़ि-विरोधी भी नहीं हूँ कि सच्चे समाजवाद का लेबल लगी हर चीज को मान लूँ'।

समाजवादी समाज में भी एक विरोधी समाजवादी दल के औचित्य पर जोर देते हुए आचार्यजी ने ट्राटस्की के इस वाक्य को उद्धृत किया जिसमें ट्राटस्की ने कहा था कि 'यह हलका तर्क है कि समाज में एक वर्ग होने पर एक ही पार्टी होनी चाहिए, गोया एक सामाजिक वर्ग इतना समरस होता है कि उसमें हितों का महत्त्वपूर्ण विभाजन हो ही नहीं सकता और उसका कोई भाग अपना राजनीतिक संगठन बनाने की आवश्यकता अनुभव ही नहीं कर सकता'।

बम्बई के इन साथियों के वक्तव्य पर जिसे लेकर मधुलिमये की तीखी प्रतिक्रिया हुई आचार्यजी ने कहा कि उन लोगों को अपनी राय व्यक्त करने का अधिकार है, पर मेरी विनम्र राय में बिना माँगे कांग्रेस से सहयोग का प्रस्ताव करना पार्टी के सम्मान के विरुद्ध है। हो सकता है कि यह प्रस्ताव बहुत अच्छी भावना से किया गया हो, पर इसे बराबर संदिग्ध दृष्टि से देखा जायगा। स्वयं पार्टी सदस्य ही पार्टी के साथ विश्वासघात की शंका करके इसकी आलोचना करेंगे और जनता इसके पीछे किसी दूरगामी भावना का एहसास करेगी। स्वयं कांग्रेस भी इस पर मूकदर्शक रहेगी और पहल नहीं करेगी। इस सौदेबाजी में हम अपना आत्मसम्मान भी खो बैठेंगे। राजनीति में उदारता कम पायी जाती है और जब कभी एक छोटी तथा निर्बल पार्टी

इस प्रकार का कोई प्रस्ताव करती है तो इसे संदिग्ध दृष्टि से देखा जाने लगता है। अगर हमारे ये साथी यह समझते हों कि कांग्रेस पुनर्निर्माण के कार्य में अन्य राजनीतिक दलों का सहयोग लेने को उत्सुक है तो वे अवश्य ही भारी भ्रम में हैं। काँग्रेसजन अन्य राजनीतिक दलों का सहयोग नहीं चाहते, क्योंकि उन्हें भय है कि यह पार्टियाँ इस काम से अपना प्रभाव बढ़ा लेंगी। ऐसे सहयोग के लिये समय समय पर की गयी सामान्य अपीलें कोई अर्थ नहीं रखतीं'।

कांग्रेस से सहयोग के सम्बन्ध में अपने दुःखद अनुभवों का जिक्र करते हुए आचार्यजी ने लिखा कि "मैं कांग्रेस के प्रति किसी प्रकार के सहयोग का प्रस्ताव करना अपमानजनक समझने लगा हूँ"। इस सम्बन्ध में उन्होंने गान्धीजी की इस राय को दोहराया कि 'जो अपनी नजरों में गिर जाता है वह जनता की सेवा करने की शक्ति खो बैठता है'।

कांग्रेस की आलोचना

बहुत से साथियों के आग्रह पर 'इंडियन नेशनल कांग्रेस और समाजवाद' के शीर्षक से आचार्य नरेन्द्रदेव ने एक लेख भी लिखा जो २६ फरवरी सन् १९५५ के अंग्रेजी साप्ताहिक 'जनता' में छपा। इस लेख में आचार्यजी ने कहा कि अवाड़ी कांग्रेस के अवसर पर मैंने कांग्रेस सरकार की नयी नीति का स्वागत करते हुए कुछ सुझाव दिये थे जिन पर अमल करके कांग्रेस के लिये समाजवाद के मार्ग पर चलना सम्भव हो सकता था। पर अवाड़ी कांग्रेस में कोई उत्साहजनक बात नहीं हुई। अवाड़ी प्रस्ताव के मूल भाग में जो कुछ था भी उस पर उसके समर्थन में किये गये भाषणों ने पानी फेर दिया। इन भाषणों में तो यही कहा गया कि अवाड़ी प्रस्ताव में कोई नयी बात नहीं है। आचार्यजी ने लिखा कि कहने से क्या लाभ कि कांग्रेस करांची अधिवेशन से ही समाजवाद के पक्ष में है। उन्होंने कहा कि वे यह भी नहीं समझ पाते कि कांग्रेस पार्टी सोशलिज्म (समाजवाद) का नाम लेने से क्यों घबड़ाती हैं और बिना समाजवाद के 'सोशलिस्टिक पेटर्न आफ सोसायटी' कैसे प्रतिष्ठित किया जा सकता है। आचार्यजी ने लिखा कि अवाड़ी प्रस्ताव का सम्बन्ध केवल आर्थिक क्षेत्र से है, जबकि

समाजवाद का क्षेत्र बहुत व्यापक है। वह तो 'जीवन-दर्शन' है और 'मानव के सम्पूर्ण क्रियाकलापों से सम्बन्धित है। वह मानव आचार और मानव सम्बन्धों को शासित करने वाला व्यवहार सिद्धान्त है। आर्थिक क्षेत्र में भी प्रस्ताव यह साफ तौर पर नहीं बताता कि किन बुनियादी सिद्धान्तों पर आर्थिक योजना आधारित होगी। खेद है कि कांग्रेसी मित्र अपने सिद्धान्तों को स्पष्ट करने और दूसरों के सिद्धान्तों का ठीक तौर पर खण्डन करने के बजाय, उन्हें बुरा भला कहकर और अपनी डींग मार कर सन्तुष्ट हो जाते हैं। वे कम्यूनिज्म, मार्क्सवाद और समाजवाद को गये गुजरे जमाने की रूढ़ीवादी दकियानूसी सिद्धान्त पद्धतियां कह देना ही पर्याप्त समझते हैं। पर करोड़ों व्यक्तियों को अनुप्राणित करने वाले बृहद् समाजिक विचारों को इस तरह हँसी में उड़ाया नहीं जा सकता'। आचार्यजी की राय में 'समाजवादियों को रूढ़मतवादी (doctrinaire) कहना गलत है। उनके सम्बन्ध में यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे उस दिशा को भी नहीं जानते कि जिधर वे जाना चाहते हैं'।

आचार्यजी ने कहा कि कांग्रेस अब भी सारे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने के फेर में है और इसके लिये वह विभिन्न विरोधी विचारधाराओं के लोगों को अपने में मिला लेना चाहती है। उसकी इच्छा है कि 'दूसरी सब पार्टियां कांग्रेस में मिल जायं ताकि वे अपने व्यक्तित्व को खोकर कांग्रेस के रंग और स्वाद की हो जायं। यह मनोवृत्ति जनतन्त्र के विकास के लिये हानिकर है। अगर कांग्रेस वास्तव में अपने में जान डालना चाहती है तो उसे समझना चाहिए कि जनता ही शक्ति का वास्तविक स्रोत है और उससे सम्बन्ध जोड़ कर ही वह जानदार बन सकती है'।

आचार्यजी मानते थे कि 'किसी संगठन में जान डालने के लिये बार-बार जनता की शक्ति के महान् भंडार का प्रयोग करना होगा। नेता आते हैं और चले जाते हैं, लेकिन संगठन, यदि सही सन्देश को लेकर चल रहा है और सामाजिक उद्देश्य के लिये उपयोगी है, तो नेताओं के विलगाव के बाद भी अधिक शक्ति के साथ बना रहेगा। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन अपना नेता स्वयं चुन लिया करता है। इतिहास साक्षी है कि कोई भी महत्त्वपूर्ण आन्दोलन नेतृत्व के अभाव में असफल नहीं हुआ है'।

आचार्यजी ने कहा कि केवल घोषणा से और पण्डित नेहरू के गतिशील व्यक्तित्व से हमें पथ भ्रष्ट नहीं होना चाहिए। हमें समझना चाहिए कि जो चमकता है वह सोना नहीं होता। सबसे अधिक महत्त्व की बात तो उन लक्ष्यों और सिद्धान्तों का तथा उस कार्यक्रम और कार्यपद्धति का स्पष्ट प्रतिपादन है जिनके आधार पर कांग्रेस काम करना चाहती है। नरेन्द्रदेवजी यह जानना चाहते थे कि क्या योजना पूंजीवादी ढंग की होगी और क्या वह सर्वसत्तात्मक (totaletarian) होगी या जनतान्त्रिक, तथा आमदनियों के अन्तर को मिटाने के लिये क्या कदम उठाये जा रहे हैं।

अशोक मेहता की आलोचना

कांग्रेस पार्टी से सहयोग के प्रश्न पर नरेन्द्रदेवजी श्रीअशोक मेहता से सहमत नहीं थे। आचार्यजी की राय में साथी अशोक मेहता के विचार युक्तियुक्त तर्कसंगत (Convincing) नहीं हैं, अन्यथा वह विश्वास पर काम करने को नहीं कहते। 'हो सकता है कि साथी अशोक मेहता सही 'प्राफिट' साबित हों, पर मेरे जैसे व्यक्ति के लिये किसी चीज को विश्वास पर स्वीकार करना सम्भव नहीं है'।

श्री अशोक मेहता के विचारों की आलोचना करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि श्री अशोक मेहता उन दो विचार पद्धतियों को मिलाना चाहते हैं कि जिनका सामञ्जस्य सम्भव दिखाई नहीं देता। अच्छा हो कि हम अपनी शक्तियाँ उन कामों में लगाएँ कि जिन्हें हमारे ध्यान की तुरन्त जरूरत है। हमें अपने चिन्तन में अधिक स्पष्टता और संगति पैदा करना चाहिए और अपने विचारों में से उन तत्त्वों को निकाल देना चाहिए कि जो बिना ठीक तौर पर विचार किये घुस गये हैं या जो व्यक्तियों की सनक हैं।

आचार्यजी ने कहा कि वह अशोक मेहताजी के इस विचार का स्वागत करते हैं कि अपने चिन्तन और आलोचना में हमें अधिक रचनात्मक होना चाहिए। उनका यह कहना भी सही है कि कांग्रेस की सामान्य नीतियों की निन्दा से काम नहीं चलेगा। हमें उन नीतियों का सावधानी से अध्ययन कर उपयोगी सुझाव देना चाहिए। केवल इसी आधार पर संसदीय कार्य को उपयोगी बनाया जा सकता है। यदि

सम्भव हो तो हमें खोज परिषद का पुनर्गठन करना चाहिए। लेकिन वर्गसंघर्ष और रचनात्मक कार्य पर तो सदा अधिक जोर देना होगा।

संगठन

आचार्यजी ने कहा कि 'हमें अपने संगठन को सुधारना चाहिए और कार्यकर्ताओं के अन्दर सहिष्णुता तथा पारस्परिक आदर और सहयोग की भावना लानी चाहिए। हमें कुछ नेताओं पर बहुत अधिक आश्रित न रहकर सामूहिक नेतृत्व पैदा करने का प्रयास करना चाहिए। हमें यह न भूलना चाहिए कि जनतन्त्र की सफलता के लिये हमें बड़े लोगों के बजाय बहुत से सामान्य सूझ-बूझ, सभ्य तथा सच्चरित्र कार्य-कर्ताओं की जरूरत है। लेकिन इसके साथ ही हमें संख्या से अधिक गुणों पर ध्यान देना होगा। एक छोटी तसवीर भी जो जीवन के अनुरूप है और जनता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को प्रति-विम्बित करती है आगे चलकर क्रान्तिकारी शक्ति का रूप धारण कर सकती है।

उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति इस समय हर कीमत पर विजयी पक्ष के साथ जाने के लिये इच्छुक हैं वे अन्त में अपने काम पर पछतायेंगे, क्योंकि इस समय जो पक्ष विजयी होता दिखाई दे रहा है वह अन्त में पराजित होगा।

बम्बई की परिस्थिति

आचार्य जी के इस परिपत्र और लेख के बाद बम्बई की परिस्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती ही चली गयी। ६ मार्च सन् १९५५ को बम्बई नगर की कार्यसमिति में श्री एम० आर० दण्डवते ने प्रस्ताव रखा कि :—

'प्रजा सोशलिस्ट पार्टी (बम्बई) की कार्यसमिति कांग्रेस के अवाड़ी अधिवेशन के प्रस्ताव के सब पहलुओं पर पूरा विचार करने के बाद इस दृढ़ निश्चय पर पहुँचती है कि उसके द्वारा कांग्रेस की नीति में कोई मौलिक तबदीली नहीं होती और प्रयाग में निश्चित पार्टी की नीति और कार्यक्रम में किसी मौलिक परिवर्तन की जरूरत नहीं है।

'कार्यसमिति अपने इस विश्वास को फिर दोहराती है कि प्रजा

सोशलिस्ट पार्टी ही सामाजिक क्रान्ति का अस्त्र है और पार्टी के सदस्यों को आह्वाहन करती है कि वे कांग्रेस द्वारा घोषित समाजवादी ढाँचे के समाज के आदर्श से भ्रम में न पड़ें'।

श्री मधुलिमये ने इस प्रस्ताव में यह संशोधन पेश किया कि प्रस्ताव के पहले पैराग्राफ के बाद नीचे लिखे शब्द जोड़े जायँ :—

> 'कौंसिल यह कहना चाहती है कि कांग्रेस पार्टी के सहयोग की बात जिसे कुछ सदस्य करते रहते हैं पार्टी के आत्म-गौरव के विरुद्ध ही नहीं है बल्कि पार्टी के स्वतन्त्र अस्तित्व और शक्ति-धारण की जड़ पर कुठारघात है'।

सिटी कौंसिल ने श्री मधुलिमये के संशोधन को नामंजूर कर दिया और श्री दण्डवते के प्रस्ताव के पहले पैराग्राफ को भी नामंजूर कर दिया। और श्री दण्डवते के दूसरे पैराग्राफ को नीचे लिखे शब्दों को जोड़कर मंजूर किया :—

> 'क्योंकि जनतान्त्रिक समाजवाद की विजय के हित में एक जनतान्त्रिक विरोध और एक विकल्प शक्ति के रूप में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का काम जारी रहना जरूरी है, सिटी कौंसिल जनता में प्रभाव के सम्बन्ध में और अपने सदस्यों से पूरा सहयोग प्राप्त करने के बारे में पार्टी की गिरती हुई दशा पर क्षोभ प्रकट करती है। वह इसलिये पार्टी के अध्यक्ष और राष्ट्रीय कार्यसमिति से अनुरोध करती है कि वे राष्ट्रीय कार्यसमिति के देहली अधिवेशन के निर्णय के अनुसार शीघ्र ही पार्टी की नीति, कार्यक्रम और संगठन से सम्बन्धित समस्याओं पर पूरी तौर पर विचार करने के लिये एक विशेष कन्वेंशन या कैम्प आयोजित करें'।

कौंसिल के इस निर्णय से क्षुब्ध हो श्री दण्डवते ने मन्त्रिपद से और श्री वागाराम तुलपुले ने संयुक्त मन्त्रिपद से यह कहकर इस्तीफा दे दिया कि उनके लिये नगर कार्यसमिति के प्रवक्ता के रूप में ठीक तौर पर काम करना सम्भव नहीं होगा। पर दोनों ने वायदा किया कि वे पार्टी के संगठन को मजबूत बनाने के काम में पार्टी के नये मन्त्री श्री मुइनुद्दीन हारिस साहब को पूरा सहयोग देंगे।

साथी मधुलिमये इस निर्णय से बहुत ही क्षुब्ध और रुष्ट हुए और

उन्होंने १४ मार्च सन् १९५५ को एक प्रेस कान्फ्रेन्स में उसकी बड़ी आलोचना और भर्त्सना की। इस पर २६ मार्च को बम्बई नगर की कार्यसमिति ने श्री मधुलिमये को एक वर्ष के लिये प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से मुअत्तल कर दिया और राष्ट्रीय कार्यसमिति से शिफारिश की कि वह उनके विरुद्ध दूसरी मुनासिब कार्यवाही करे।

डाक्टर लोहिया की प्रतिक्रिया

बम्बई नगर कमेटी के इस निर्णय ने पार्टी में एक बड़ा बवंडर खड़ा कर दिया। डाक्टर राम मनोहर लोहिया ने इसकी घोर निन्दा करते हुए कहा कि 'अनुशासन की कार्यवाही, बहुत जरूरी होने पर, अनुशासनहीन कार्यों के विरुद्ध की जाना चाहिए, पर व्याख्यान देने की अनुशासन हीनता से उसका कभी कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए'। डाक्टर साहब ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को दो श्रेणियों में विभाजित करते हुए एक को जंगजू समाजवाद और दूसरे को लकवामार समाजवाद की संज्ञा दी। उन्होंने लकवामार समाजवाद के पक्षपातियों की भर्त्सना करते हुए जंगजू समाजवाद के समर्थकों को धैर्यपूर्ण निश्चय की नीति का अनुसरण करने का मशवरा दिया। उन्होंने अपने इस वक्तव्य में यह भी कहा कि जो कमेटियाँ और संस्थाएँ जंगजू समाजवाद के समर्थकों द्वारा चलायी जाती हैं उन सबको मधुलिमये को भाषण देने के लिये बुलाना चाहिए। डाक्टर लोहिया की इस सलाह ने साथी मधुलिमये के झगड़े को एक ऐसा भयंकर रूप दे दिया जिससे तीन-चार महीने के अन्दर ही पार्टी दो टुकड़ों में बट गयी।

समाजवादी युवक सभा

डाक्टर लोहिया साहब के इस वक्तव्य के तीन चार दिन बाद ही समाजवादी युवक सभा की कार्यसमिति ने निश्चय किया कि युवकसभा के आगामी सम्मेलन में श्री मधुलिमये को अध्यक्षता के लिये और आचार्य नरेन्द्रदेव को उद्‌घाटन के लिये निमन्त्रित किया जाय। डाक्टर राममनोहर लोहिया तथा सर्वश्री अशोक मेहता, सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी और पी० वी० जी० राजू भी भाषण के लिये निमन्त्रित किये गये। आचार्य नरेन्द्रदेव तथा सर्वश्री अशोक मेहता और सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी ने अधिवेशन में शरीक होने से इनकार कर दिया। इस पर समाजवादी

युवक सभा के मन्त्री श्री रंगनाथ शर्मा ने एक लम्बा वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने कहा कि समाजवादी युवक सभा समाजवादी आन्दोलन का अंग है, पर वह प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से सम्बन्धित नहीं है, उस पर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का अनुशासन लागू नहीं होता और इसलिये उसके सम्मेलन का बहिष्कार अनुचित था।

राष्ट्रीय कार्यसमिति

अप्रैल के दूसरे सप्ताह में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्य-समिति ने विवादास्पद प्रश्नों पर तीन प्रस्ताव पारित किये। अपने पहले प्रस्ताव में राष्ट्रीय कार्यसमिति ने निश्चय किया कि कांग्रेस पार्टी के अवाड़ी अधिवेशन में पारित प्रस्तावों के सब पहलुओं पर पूरी तौर पर विचार करने के बाद उसका दृढ़ निश्चय है कि इन प्रस्तावों द्वारा कांग्रेस की नीति में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है और वह जनता को आह्वान करती है कि वे कांग्रेस द्वारा घोषित 'सोशलिस्टिक पैटर्न आफ सोसायटी' के धूमिल आदर्श के भ्रम में न पड़ें। इसी प्रस्ताव में राष्ट्रीय कार्यसमिति ने प्रयाग में स्वीकृत नीतिवक्तव्य के मौलिक उपक्रम और संदर्श (approach and perspective) पर अपनी आस्था दोहराते हुए पार्टी के सदस्यों से प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को एक सामाजिक परि-वर्तन के अस्त्र के रूप में पुनर्संगठित करने के लिये सतत प्रयत्न करने का अनुरोध किया। राष्ट्रीय कार्य समिति की राय में पार्टी की नीतियों और कार्यक्रमों पर दृढ़ता से अमल करने से ही पार्टी के विशिष्ट अस्तित्व को प्रतिष्ठित किया जा सकता है और देश को समाजवाद के निर्माण की ओर बढ़ाया जा सकता है।

राष्ट्रीय कार्यसमिति ने एक दूसरे प्रस्ताव में पार्टी में बढ़ती हुई अनुशासन हीनता पर अपना क्षोभ प्रकट करते हुए पार्टी सदस्यों से आग्रह किया कि वे पार्टी द्वारा निश्चित आचार पद्धति की अवहेलना न करें।

एक तीसरे प्रस्ताव में राष्ट्रीय कार्यसमिति ने साथी मधुलिमये की मुअत्तली के निर्णय की स्वीकृति देते हुए बम्बई नगर कार्यसमिति से शिफारिश की कि साथी मधुलिमये के खेद प्रकट करने पर वह मुअत्तली के प्रस्ताव पर फिर से विचार करे।

पार्टी विघटन की ओर

साथी मधुलिमये ने खेद प्रकट करने से इनकार किया और उनके समर्थकों ने देशभर में हलचल मचा दी। जहाँ बहुत से नेताओं और कार्यकर्ताओं ने इलाहाबाद नीति घोषणा पर दृढ़ता से जमे रहने पर जोर देते हुए अनुशासनहीनता पर क्षोभ प्रकट किया, वहाँ कुछ साथियों ने श्री मधुलिमये की मुअत्तली तथा राष्ट्र कार्यसमिति के अनुशासन सम्बन्धी प्रस्ताव पर रोष प्रकट किया। उत्तरप्रदेश शाखा के अध्यक्ष साथी गोपालनारायण सक्सेना ने अपने १५ अप्रैल के एक प्रेस वक्तव्य में राष्ट्र कार्यसमिति के निर्णयों की कड़ी आलोचना करते हुए कहा कि राष्ट्रीय कार्यसमिति के अधिकांश सदस्य पार्टी के मेम्बरों को डरा धमका कर उनसे अगले सम्मेलन में अपनी नीति का समर्थन कराना चाहते हैं। दूसरे दिन उत्तरप्रदेश की प्रान्तीय कार्यसमिति ने साथी मधुलिमये की मुअत्तली को वापिस लिये जाने की माँग की। उत्तरप्रदेश की कार्यसमिति ने यह भी निश्चय किया कि गाजीपुर में होने वाली प्रान्तीय कान्फ्रेन्स में उद्घाटन के लिये साथी मधुलिमये को निमन्त्रित किया जाय।

कार्यकर्ताओं से बातचीत

उत्तर प्रदेश की प्रान्तीय कार्यसमिति के १६ अप्रैल के निर्णय ने पार्टी में काफी बेचैनी पैदा कर दी और आचार्यजी को परेशानी में डाल दिया। उनका स्वास्थ्य उन्हें कड़े परिश्रम की इजाजत नहीं देता था, दूसरी ओर उनके लिये अनुशासनहीनता भी बर्दाश्त करना नामुमकिन था। संकट के समय में कोई दूसरा नेता भी अध्यक्ष का उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिये तैयार नहीं दिखाई देता था। लाचार आचार्यजी ने अपनी बीमारी की चिन्ता को छोड़ अनुशासन हीनता के विरुद्ध उचित कार्यवाही करने का और पार्टी के अस्तित्व की रक्षा के लिये आवश्यक दौड़ धूप करने का निश्चय किया। उन्होंने काशी में उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों के तथा दिल्ली में पश्चिमी जिलों के कार्यकर्ताओं को एकत्र कर उनसे बातचीत की और उन्हें पार्टी के संगठन को मजबूत बनाने की तथा समाजवाद की प्रगति के लिये अनुशासन के पालन करने की आवश्यकता समझायी। काशी में एक व्यक्ति ने प्रान्तीय कार्यसमिति की अनुमति के बिना सीधे बैठक बुलाने

के औचित्य पर शंका प्रकट की। इस पर आचार्यजी ने जोश में भर कर कहा 'राष्ट्रीय कार्यसमिति के अध्यक्ष की हैसियत से मेरा यह कर्तव्य और अधिकार है कि देश के प्रत्येक कार्यकर्ता से जहाँ चाहूँ वहाँ मिलूँ। प्रत्येक कार्यकर्ता को यह अधिकार प्राप्त है कि वह मुझसे जहाँ चाहे वहाँ मिले। जो प्रान्तीय कार्यसमिति राष्ट्रीय कार्यसमिति के निर्णयों की अवहेलना कर उन्हें उलटती है उसे पार्टी के अध्यक्ष की हैसियत से मैं मान्यता देने को तैयार नहीं हूँ'। उन्होंने कहा कि 'मैं समाजवाद के प्रति उत्तरदायी हूँ। उसकी स्थापना मेरा कर्तव्य है। यदि मैं चुप हो जाऊँ तो आगे आने वाला जमाना कहेगा कि निकम्मा था वह चेयरमैन जिसने राष्ट्रीय कार्यसमिति की धज्जियाँ उड़ती देखीं और देखता रह गया। मुझे आज उपनिषद की उन रचनाओं का ध्यान आ रहा है जिसमें कहा है कि जब कर्तव्य सम्मुख उपस्थित हो जाता है तब मनस्वी अपनी विवशताओं और लाचारियों पर ध्यान नहीं देते'। एक दूसरी बात का जवाब देते हुए उन्होंने कहा कि उनका 'दमे का दौरा और राजनीतिक दौरा साथ-साथ चलेगा। पार्टी के साथ विद्रोह करने वालों को क्षमा नहीं किया जा सकता'।

उत्तरप्रदेश की कार्यसमिति की प्रतिक्रिया

आचार्यजी की बातचीत का उत्तर प्रदेश के कार्यकर्ताओं पर अच्छा प्रभाव पड़ा। आशा हो चली थी कि कार्यकर्ताओं के दबाव से प्रान्तीय कार्यसमिति अपने फैसले को बदल देगी। पर यह आशा अन्त में बेकार साबित हुई। साथी गोपालनारायण सक्सेना ने अपने पुराने मित्र श्री त्रिलोकी सिंह की सलाह को मानने से इनकार कर दिया और जब उनसे बाकायदा जवाब तलब किया गया तब उन्होंने लिखा कि मैंने जानबूझ कर अनुशासन भंग किया है और यदि राष्ट्रीय कार्य समिति चाहती है तो वह उनके विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही कर सकती है। अपने इस पत्र में सक्सेनाजी ने यह भी लिखा कि वे इस प्रकार समिति को उन प्रश्नों के समाधान करने पर मजबूर करना चाहते थे जिनको वह बराबर टालती रही है। उत्तर प्रदेश की प्रान्तीय कार्यसमिति ने भी पुराने प्रस्ताव को वापिस लेने के बजाय २३ मई को बहुमत से जो दूसरा प्रस्ताव स्वीकार किया वह पहले से

भी अधिक आपत्तिजनक था। केन्द्र के पत्र के जवाब में इस प्रस्ताव की प्रतिलिपि भेजते हुये कहा गया कि चूँकि मधुलिमये के मामले में पुनः विचार राष्ट्रीय कार्यसमिति ने नहीं किया, इसलिये गाजीपुर के सम्मेलन में वह उद्घाटन के लिये बुलाये जायेंगे।

उत्तर प्रदेश की कार्यसमिति के इस निर्णय का समाचार जब आचार्यजी को नाहन में जहाँ वह स्वास्थ्य लाभ के लिये विश्राम कर रहे थे श्री त्रिलोकीसिंहजी से मिला तब उन्होंने ४ और ५ जून को राष्ट्रीय कार्यसमिति की बैठक बुलाने का आदेश दिया। उन्होंने एक पत्र के जरिये राष्ट्रीय कार्यसमिति में आने के लिये डाक्टर लोहिया से भी अनुरोध किया। उन्होंने इस पत्र में डाक्टर लोहिया से ३ जून को ही दिल्ली पहुँचने की प्रार्थना की। आचार्यजी की इच्छा थी कि यदि डाक्टर लोहिया कार्यसमिति की बैठक में शामिल होने को तैयार नहीं हों तो वे उनसे ३ जून को ही अकेले में बात करें। पर डाक्टर साहब ने दिल्ली आने से इनकार कर दिया और ५ जून को हैदराबाद में एक भाषण में तीन-चार महीने के अन्दर ही एक नयी पार्टी के बनाने की बात करते हुए विद्यार्थियों और नवयुवकों को उसमें शामिल होने का मशवरा दिया।

अनुशासन की कार्यवाही

राष्ट्रीय कार्यसमिति की बैठकों के समय पार्टी के मन्त्री श्री त्रिलोकी-सिंह ने उत्तर प्रदेश के अध्यक्ष श्री गोपालनारायण सक्सेना से भी झगड़ा निपटाने की फिर बातचीत की। पर सक्सेना साहब ने अपने वक्तव्य पर खेद प्रकट करने से इनकार कर दिया और इस बात का भी कोई आश्वासन नहीं दिया कि प्रान्तीय समिति के दोनों प्रस्ताव रद्द कर दिये जायेंगे और गाजीपुर कान्फ्रेन्स में साथी मधुलिमये नहीं बुलाये जायेंगे। अतः राष्ट्रीय कार्यसमिति ने अनुशासन भंग करने के अपराध में सक्सेना साहब को एक वर्ष के लिये मुअत्तल कर दिया और उत्तर प्रदेश की प्रान्तीय समिति को भी यह कह कर मुअत्तल किया कि जानबूझ कर अनुशासन भंग करने के बाद उसे उत्तर प्रदेश में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की प्रतिनिधि संस्था के रूप में काम करने की इजाजत नहीं दी जा सकती। पार्टी के अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्रदेव को उत्तर प्रदेश में तदर्थ

समिति संगठित करने का अधिकार दिया गया और उन्होंने प्रोफेसर राजाराम शास्त्री की अध्यक्षता और साथी गेंदासिंह के मन्त्रित्व में एक तदर्थ समिति की घोषणा की। सर्वश्री चन्द्रशेखर सिंह और बेनीप्रसाद माधव संयुक्त मन्त्री नियुक्त किये गये। राष्ट्रीय कार्यसमिति ने यह भी निश्चय किया कि यदि मुअत्तल कमेटी गाजीपुर या अन्यत्र सम्मेलन करे तो यह अवैधानिक होगा और इसलिये पार्टी के सदस्य इसमें शामिल न हों।

अनुशासन की अवहेलना

मुअत्तल कार्यसमिति ने राष्ट्रीय कार्यसमिति के इन निर्णयों की अवहेलना करते हुए गाजीपुर में प्रान्तीय कान्फ्रेन्स का आयोजन जारी रखा और निश्चित तिथियों पर अर्थात् ११, १२, १३ जून को कान्फ्रेन्स कर डाला। कान्फ्रेन्स का उद्‌घाटन श्री मधुलिमये ने किया और उसका मुख्य प्रस्ताव जिसमें प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों को राष्ट्रीय कार्यसमिति का विरोध करने का और उसे हटाने की माँग करने का मशवरा दिया गया था, डाक्टर राममनोहर लोहिया ने स्वयम् पेश किया। कान्फ्रेन्स में भाषण देते हुए उन्होंने कहा कि इस समय देश में कोई सच्चा विरोधी दल नहीं है और जनता यह जानना चाहती है कि 'क्या प्रजा सोशलिस्ट पार्टी जंगजू समाजवाद की पार्टी बनने जा रही है या इस काम को करने की क्षमता रखनेवाली कोई नयी पार्टी कायम होगी'। गाजीपुर कान्फ्रेन्स के बाद डाक्टर लोहिया ने बिहार का दौरा किया और पटने में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की भर्त्सना करते हुए कहा कि 'अगर लकवामार और नपुंसक प्रजा सोशलिस्ट पार्टी चार छः महीने के अन्दर अपने को नहीं सुधारती तो देश को बर्बादी से बचाने के लिये एक नयी सशक्त और उत्साहपूर्ण पार्टी बनानी होगी'। यही बात उन्होंने २४ जून को कलकत्ते में, १४ जुलाई को बम्बई में और १८ जुलाई को कांचीपुरम् में कही। डाक्टर साहब प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के जिस कार्यकर्ता से मिलते उससे यही बातें करते और इस तरह अनुशासन हीनता और विघटनकारी शक्तियों को प्रोत्साहित करते।

आचार्यजी का परिपत्र

२२ जून को आचार्य नरेन्द्रदेव ने उत्तर प्रदेश के साथियों के

पास एक परिपत्र भेजा जिसमें प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की उत्तर प्रदेशीय कार्यसमिति की मुअत्तली पर विस्तार के साथ प्रकाश डाला और कई सवालों का जवाब दिया। इस परिपत्र में उन्होंने बताया कि वे तथा पार्टी के सभी मन्त्री एवं राष्ट्रीय कार्यसमिति के अधिकांश सदस्य इलाहाबाद में निश्चित नीति को मानते हैं। कार्यसमिति ने इसकी कई बार घोषणा भी कर दी है। ऐसी हालत में अनुशासित व्यक्तियों का यह कहना कि मुख्य प्रश्न सैद्धान्तिक है बिलकुल ही गलत है। उन्होंने लिखा कि जब राष्ट्रीय कार्यसमिति अपने सब निर्णय इलाहाबाद नीति के पक्ष में करती है, तब 'सैद्धान्तिक झगड़ों का नाम लेना अपने अपराध को ढकने का प्रयत्न करना नहीं है, तो क्या है'। उन्होंने लिखा कि 'जहाँ मेरा यह कर्तव्य है कि पार्टी की स्वीकृत नीति का पालन करूँ वहाँ मेरा यह भी कर्तव्य है कि पार्टी के अनुशासन और मर्यादा की रक्षा करूँ'।

गाजीपुर में कार्यकर्ता सम्मेलन

२६ जून को गाजीपुर, बलिया और आजमगढ़ जिले के कार्यकर्ताओं के सम्मेलन में शामिल होने आचार्य नरेन्द्रदेव गाजीपुर गये। स्टेशन पर करीब ५०० कार्यकर्ताओं और जनता की भीड़ ने पचासों पार्टी झंडों के साथ उनका स्वागत किया। सम्मेलन में २६२ कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। आचार्यजी ने एक लम्बे भाषण में उन तमाम परिस्थितियों पर रोशनी डाली जिसके कारण उत्तर प्रदेश की प्रान्तीय कार्यसमिति और उसके अध्यक्ष के विरुद्ध अनुशासन की कार्यवाही करनी पड़ी और एक नयी तदर्थ समिति संगठित करनी पड़ी। सम्मेलन ने एक प्रस्ताव के जरिये राष्ट्रीय कार्यसमिति और प्रादेशिक एडहाक कमेटी के प्रति पूर्ण विश्वास प्रकट किया।

सम्मेलन के बाद गाजीपुर के टाउन हाल के मैदान में कई हजार की जनता में भाषण करते हुए आचार्यजी ने कहा कि कांग्रेस के नेतृत्व के पास समाजवाद के दर्शन की दृष्टि नहीं है और उनके कार्यकर्ताओं में समाजवाद कायम करने की मनोवृत्ति भी नहीं है। कांग्रेस संगठन की बनावट एक मेले जैसी है। कांग्रेस के जरिए समाज की स्थापना सम्भव नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि समाजवाद केवल आर्थिक

समस्याओं का समाधान ही नहीं है और न केवल राजनीतिक व्यवस्था का विधान है। वह तो जीवन के सभी पहलुओं का पुनर्निर्माण है।

वाराणसी

गाजीपुर के कार्यक्रम से आचार्यजी का स्वास्थ्य काफी बिगड़ गया। दमे ने काफी जोर पकड़ लिया। वहां से लौट कर वह काशी में कई दिन तक रहे और बीमारी की हालत ही में बनारस तथा दूसरे पूर्वी जिलों के कार्यकर्ताओं से पार्टी को मजबूत बनाने के प्रश्न पर बातचीत करते रहे। यहीं पर उन्होंने एक प्रेस कान्फ्रेन्स भी की जिसमें उन्होंने पार्टी की नीति-रीति पर प्रकाश डाला। एक प्रेस प्रतिनिधि के एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा कि मौजूदा समाज में व्यक्ति के नैतिक विकास के लिये अन्याय के विरुद्ध संघर्ष नितान्त आवश्यक है। वे डाक्टर लोहिया और श्री अशोक मेहता दोनों के व्यवहार से असन्तुष्ट दिखाई पड़ते थे। जब लेखक ने अशोकजी के एक भाषण की रिपोर्ट की ओर उनका ध्यान दिलाते हुए कहा कि इस प्रकार के बयानों से तो पार्टी की कठिनाइयां घटने के बजाय बढ़ती हैं तो उन्होंने कहा कि 'वे सहयोग नहीं दे रहे हैं। पर क्या किया जाय, जैसी भी परिस्थिति हो उसी में काम करना पड़ता है'। पार्टी की दशा को सुधारने के लिये वे सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण जरूरी समझते थे। वे चाहते थे कि पार्टी के अगले अधिवेशन में एक नयी विस्तृत नीति-घोषणा पेश की जाय जिसमें समाजवाद के सब बुनियादी सिद्धान्तों और सब विवादग्रस्त प्रश्नों की सफाई हो और जिसे कान्फ्रेन्स उचित बहस के बाद आवश्यक संशोधनों के साथ मंजूर करे। उनके विचार में पार्टी के अन्दर सिद्धान्तों के सम्बन्ध में जो भ्रान्ति पैदा कर दी गयी है उसे दूर करने का यही एक उपाय है। वह इस काम के लिये एक उच्चस्तरीय कैम्प भी करना चाहते थे।

अनुशासन की माँग

इधर डाक्टर लोहिया के व्याख्यानों और प्रेस कान्फ्रेन्स के वक्तव्यों से तंग आकर बिहार की प्रान्तीय कार्यसमिति ने राष्ट्रीय कार्यसमिति से अनुरोध किया कि वह पार्टी और देश में समाजवादी आन्दोलन की रक्षा के लिये डाक्टर राममनोहर लोहिया के विरुद्ध बिना विलम्ब

उचित अनुशासन की कार्यवाही करे। बिहार समिति की धारणा थी कि पार्टी की नीतियों और तौर तरीके पर लोहिया साहब के बेबुनियादी आरोपों से पार्टी की शक्ति कमजोर और प्रतिक्रियावादी शक्तियां मजबूत होती हैं और अनुशासन हीनता को प्रोत्साहन मिलता है।

जयपुर शिविर

जुलाई के तीसरे सप्ताह में अर्थात् १५ जुलाई से २२ जुलाई तक जयपुर में एक उच्चस्तरीय अध्ययन शिविर हुआ। इस कैम्प में राष्ट्रीय कार्यसमिति के सदस्यों और कतिपय प्रतिष्ठित निमन्त्रित सज्जनों के अलावा प्रान्तीय कार्यसमितियों के मन्त्री शामिल थे। डाक्टर लोहिया भी कैम्प में विशेष रूप से निमन्त्रित किये गये थे। पर वे नहीं आये। आचार्य नरेन्द्रदेव भी कैम्प में भाग लेने को जयपुर गये। पर वे वहां ऐसे बीमार पड़े कि शिविर में भाग नहीं ले पाये, गो शिविर में और राष्ट्रीय कार्यसमिति में किसी फैसले के पहले उनसे सलाह मशवरा कर लिया जाता था।

राष्ट्रीय कार्यसमिति के निर्णय

जयपुर में राष्ट्रीय कार्यसमिति ने इलाहाबाद की नीति-घोषणा पर अपना विश्वास प्रकट करते हुये, बदलती हुई दुनिया में स्पष्टीकरण की खोज को आवश्यक समझ आचार्य नरेन्द्रदेव को राष्ट्रीय कार्यसमिति के दूसरे सदस्यों के विचारों को ध्यान में रखते हुये नीति घोषणा को फिर से तैयार करने का अधिकार दिया। उसने फिर उस बात को दोहराया कि कांग्रेस के अवाड़ी प्रस्ताव से उसकी नीति में कोई बुनियादी तबदीली नहीं हुई है और प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के सदस्यों को कांग्रेस के साथ सहयोग और चुनाव-समझौते के वाद-विवाद में पड़े बगैर अपनी पार्टी की नीति और कार्यक्रम की पूर्ति में संलग्न रहना है। उसकी राय थी कि बड़ी-बड़ी योजनाओं द्वारा देश की समाजवादी आकांक्षाओं की पूर्ति उस समय तक नहीं हो सकती जब तक राजनीतिक शक्ति तथा प्रबन्ध के साथ-साथ प्राविधिक विकेन्द्रीकरण के लिये, उद्योगों के प्रबन्ध में मजदूरों के हिस्सेदारी के लिये तथा आर्थिक समता के लिये प्रभावशाली काम न किया जाय। कार्यसमिति की धारणा थी कि प्रजा

सोशलिस्ट पार्टी को ही विधान सभाओं के अन्दर और बाहर प्रमुख विरोधी दल का काम करना है और उसके कार्यकर्ताओं का कर्तव्य है कि वे हर प्रकार के अन्याय के प्रति शान्तिपूर्ण प्रतिरोध तथा जनसाधारण के दुःखों और कष्टों के निवारण के लिये सतत प्रयत्न करते रहें। कार्यसमिति ने कहा कि इस देश में समाजवादी आन्दोलन संसदीय कार्य और शान्तिमय प्रतिरोध के साथ-साथ रचनात्मक कार्य को समाजवाद का एक प्रभावशाली अस्त्र मानता रहा है और पार्टी के कार्यकर्ताओं का कर्तव्य है कि वे रचनात्मक कार्य की ओर भी समुचित ध्यान दें। इस प्रस्ताव के अन्त में कार्यसमिति ने पार्टी के सदस्यों से अनुशासन को पूरी तौर पर पालन करने तथा पार्टी के कार्यक्रम को दिल लगा कर करने का अनुरोध किया।

दूसरे प्रस्ताव में राष्ट्रीय कार्यसमिति ने डाक्टर राममनोहर लोहिया के पार्टी विरोधी तौर तरीके पर क्षोभ प्रकट करते हुये प्रधान मन्त्री को आदेश दिया कि वे अनुशासन विरोधी और विघटनकारी कामों के लिये डाक्टर राममनोहर लोहिया से जवाबतलब करें। कार्यसमिति ने उस जवाब पर अन्तिम निर्णय करने तक डाक्टर लोहिया को पार्टी की सदस्यता से मुअत्तल भी किया। कार्यसमिति की निश्चित धारणा थी कि पार्टी के कार्यकर्ताओं को अनुशासन भंग करने को प्रोत्साहित करके तथा नयी पार्टी बनाने की धमकी देकर डाक्टर लोहिया प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के अस्तित्व और मान को जैसी हानि पहुंचा रहे हैं उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

डाक्टर लोहिया की प्रतिक्रिया

जयपुर शिविर के बाद डाक्टर लोहिया ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी को नष्ट भ्रष्ट करके एक नयी समाजवादी पार्टी को बनाने के लिये जोर-शोर से काम शुरू कर दिया और शीघ्र ही सोशलिस्ट पार्टी के नाम से नयी पार्टी का संगठन कर डाला। उधर आचार्य नरेन्द्रदेव ऐसे बीमार पड़े कि कई महीने तक कुछ भी काम नहीं कर सके। लगभग तीन महीने तक जयपुर में ही इलाज होता रहा। जब वहां हालत बिगड़ती ही चली गयी, तब लखनऊ चले आये। लखनऊ में अस्पताल में पड़े-पड़े ही उन्होंने नवम्बर महीने में पार्टी की नयी नीति-घोषणा

को ठीक कर उसे राष्ट्रीय कार्यसमिति के पास भेज दिया। प्रस्तावित घोषणा की प्रतिलिपियां विचारार्थ प्रान्तीय कार्यसमितियों के पास भी भेज दी गयीं। लखनऊ में १२ और १३ दिसम्बर को राष्ट्रीय कार्यसमिति की बैठकें हुईं। उस समय तक आचार्यजी अपने घर चले आये थे। पर फिर भी इतने अस्वस्थ और कमजोर थे कि वह कार्यसमिति की बैठकों में उपस्थित नहीं हो सकते थे। उसकी अनुपस्थिति में ही राष्ट्रीय कार्यसमिति ने प्रस्तावित नीति-घोषणा पर विचार किया। आचार्यजी की राय लेकर उसमें कुछ संशोधन कर उसने घोषणा पत्र को पार्टी की कान्फ्रेन्स के पास विचारार्थ भेज दिया।

लखनऊ में लोकसभा का उपचुनाव

जिस समय कांग्रेस के एक प्रस्ताव को लेकर बम्बई में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं में विघटनकारी विवाद चल रहा था, लखनऊ में पार्टी के प्रधान मन्त्री श्री त्रिलोकीसिंह लोक सभा के उप-चुनाव में संलग्न थे। वोटों की गिनती के समय ऐसा प्रतीत होता था कि त्रिलोकीसिंहजी ही विजयी होंगे, पर अन्त में कांग्रेस पार्टी की उम्मीदवार श्रीमती सुराजवती नेहरू विजयी घोषित की गयीं। जनता को इस घोषणा की सचाई पर विश्वास नहीं होता था। इस पर नरेन्द्रदेवजी ने जो उस समय लखनऊ मेडिकल कालेज के अस्पताल में इलाज करा रहे थे एक वक्तव्य समाचार पत्रों में प्रकाशित कराया, जिसमें उन्होंने कहा कि कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को जिन्होंने इस भ्रम को जनता में फैलाया है इसको दूर कराने का प्रयत्न करना चाहिए। उन्होंने लिखा कि इस चुनाव के परिणाम ने मुझे उलझन में डाल दिया है। आवश्यक तथ्यों की पूरी जानकारी के बगैर किसी निर्णय पर पहुँचना तो कठिन है। पर रिटर्निंग आफिसर के अवैधानिक तरीके से जनता में जो शंका पैदा हो गयी है उसे दूर करना जरूरी है। उन्होंने कहा कि 'भारतीय जनतन्त्र के लिये वह दिन बड़ा ही दुःखद होगा जब जनता यह सोचने लगे कि चुनाव का अन्तिम परिणाम उनके वोटों के बजाय कुछ छोटे अधिकारियों की चालों द्वारा निश्चित होता है। इस वक्तव्य के जवाब में श्री चन्द्रभानुगुप्त ने एक वक्तव्य प्रकाशित कराया जिसमें उन्होंने नरेन्द्रदेवजी के वक्तव्य की आलोचना करते हुए अपील की कि ऐसी परम्पराएँ प्रतिष्ठित की जायँ कि जिससे जनतन्त्र

के आधार पर जिस नई व्यवस्था को कायम करने का प्रयत्न किया जाता है वह आरम्भ में ही नष्ट न हो जाय। इस वक्तव्य के उत्तर में ११ मार्च सन् १९५५ को नरेन्द्रदेवजी ने एक दूसरा वक्तव्य प्रकाशित कराया जिसमें उन्होंने जनतन्त्र की रक्षा के सम्बन्ध में गुप्ता साहब की अपील का समर्थन करते हुए कहा कि जनतन्त्र की रक्षा करना और उसे सुदृढ़ बनाना सत्तारूढ़ पार्टी से भी अधिक विरोधी दल के हित में है। जनतन्त्र के प्रति अपनी दृढ़ निष्ठा को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा कि सन् १९४८ के उपचुनावों में जिस प्रकार सत्तारूढ़ दल के नेताओं ने व्यवहार किया उससे साफ सिद्ध है कि कांग्रेस पार्टी सार्वजनिक जीवन में गलत आदर्शों को प्रतिष्ठित कर जनतन्त्र को नष्ट करना चाहती है। प्रान्त के प्रधान मन्त्री पण्डित गोविन्द बल्लभ पन्त और राज्यपाल श्री के० एम० मुन्शी के जनतन्त्र विरोधी दूसरे कार्यों की समीक्षा करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि 'यदि संसदीय ढंग का जनतन्त्र स्वीकार नहीं है, तो ईश्वर के लिये ईमानदार बनिये और संविधान को बदलकर कानून द्वारा अगले बीस वर्ष के लिये दूसरी राजनीतिक पार्टियों को गैरकानूनी घोषित कर दीजिये। नरेन्द्रदेवजी के इस वक्तव्य ने कांग्रेस के नेताओं में हलचल मचा दी। वे इसका उत्तर देना चाहते थे, पर जब उन्हें पता चला कि आचार्यजी अगले वक्तव्य में कुछ और बातें जनता के सामने पेश करनेवाले हैं तब चुप रह गये।

१८. गया अधिवेशन

सम्मेलन

दिसम्बर सन् १९५५ के अन्तिम सप्ताह में बिहार राज्य के प्रसिद्ध नगर गया में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का द्वितीय सम्मेलन हुआ। इसमें लगभग ६०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इनके अलावा लगभग ९०० पार्टी के दूसरे सदस्य दर्शक के रूप में अधिवेशन में उपस्थित थे। अधिवेशन में उपस्थित सदस्यों में बड़ा जोश था। उनके जोश से ऐसा पता चलता था कि डाक्टर लोहिया ने अपनी तोड़फोड़ की नीति से सदस्यों के जोश को ठंडा करने के बजाय उनमें एक नया जोश भर दिया है, पार्टी के प्रति उनकी आस्था को जगा दिया है। बीमारी के कारण आचार्य नरेन्द्रदेव सम्मेलन में नहीं जा सके। उनके स्थान पर मंगलोर के प्रसिद्ध वकील और कर्मठ राजनीतज्ञ तथा पार्टी की दक्षिण केनारा शाखा के अध्यक्ष श्री कारन्थ ने बड़ी योग्तता से अध्यक्ष का काम किया। नीतिघोषणा पर विचार ही इस सम्मेलन का मुख्य काम समझा जा सकता था। पर आचार्य कृपालानी तथा सर्वश्री जयप्रकाश नारायण, अशोक मेहता, पुरुषोत्तम त्रिकमदास आदि कई प्रमुख नेता चाहते थे कि इस सम्मेलन में नीति घोषणा पर विचार ही न किया जाय। दूसरी ओर सर्वश्री सुरेन्द्रनाथ द्विवेदी, एस० एम० जोशी, राजाराम शास्त्री, सारंगधर दास आदि की राय थी कि सम्मेलन में नीतिघोषणा पर विचार होना और उसे पारित करना पार्टी की उन्नति के लिये परम आवश्यक है। प्रतिनिधियों की भारी संख्या भी इस विचार के पक्ष में थी। अतः कारन्थ साहब ने नीतिघोषणा पर विचार करने के लिये उचित समय देना ही ठीक समझा।

अध्यक्षीय भाषण

नरेन्द्रदेवजी की अनुपस्थिति में पार्टी के प्रधान मन्त्री श्री त्रिलोकी सिंह ने सम्मेलन में उनका अध्यक्षीय भाषण पढ़ा। इस भाषण में आचार्यजी ने पार्टी की फूट पर दुःख प्रकट करते हुए कहा कि 'यदि कोई कार्रवाई न की गई होती तो अनुशासन-हीनता जंगल की आग की

तरह फैल जाती और पार्टी की प्रतिष्ठा को बहुत बड़ी क्षति पहुँचती'। उन्होंने कहा कि 'अनुशासन का प्रश्न बुनियादी प्रश्न है'। सदस्यों के आचरण को नियन्त्रित करने के लिये जो आचरण-सम्बन्धी नियम राजनीतिक पार्टी द्वारा बनाए जाते हैं उनको 'उन नैतिक उपदेशों की तरह नहीं समझा जा सकता, जिसके पालन से सुफल प्राप्त होता है, किन्तु पालन न करने पर दण्ड नहीं मिलता'। सबकी राय से बनाए गये आचरण सम्बन्धी नियमों का पालन पार्टी के सदस्यों का कर्तव्य है। 'यही एक रास्ता है जिससे कोई संगठन अपने को कायम रख सकता है'।

दो युगों का कर्तव्य

फूट के कारण पार्टी को जो क्षति हुई है उस पर विलाप करते रहना 'व्यर्थ' बताते हुए नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि निराशा का परित्याग कर 'हमें गम्भीरतापूर्वक काम में लग जाना चाहिए और दुगने उत्साह से काम करके अपनी क्षति की पूर्ति कर लेनी चाहिए'। उन्होंने कहा कि 'हमारे ऊपर दो युगों के कर्तव्य का भार आ पड़ा है'। हमें राष्ट्रीयता और समाजवाद दोनों को प्रतिष्ठित और पुष्ट करना है। एक ओर कालविपरीत जातिप्रथा और संकीर्ण साम्प्रदायिकता का परित्याग कर 'एक सामान्य चिन्ह और सामान्य लक्ष्य' के आधार पर हमें 'राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़' करना है और दूसरी ओर हमें 'समाजवादी समाज' का निर्माण करना है। 'हमें केवल वर्ग-विहीन ही नहीं जाति-विहीन समाज के लिये भी प्रयत्नशील होना है'।

राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने पर जोर देते हुए नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि 'एक भाषा, एक कानून, एक पोशाक और कुछ सामान्य व्यवहार राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ बनाने में बहुत बड़े सहायक बन सकते हैं। इन सबके ऊपर कुछ ऐसे समान उद्देश्य जनता के सामने रखे जाना चाहिए जिनमें सभी सम्प्रदायों की समान रुचि हो और जिनकी सिद्धि के लिये वे घनिष्ट सहयोग के साथ प्रयत्न करें'। उन्होंने कहा 'कि इसका यह अर्थ नहीं और न यह आवश्यक और वाञ्छनीय ही है कि सारी अनेकता या विविधता समाप्त कर दी जाय। लोग अपने

धार्मिक विश्वास और सांस्कृतिक शैलियों के प्रति बड़ा आग्रह रखते हैं। हम उनमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते सिवाय इसके कि धर्म के नाम पर भी असभ्य और अनैतिक प्रथाओं और आचारों को सहन नहीं किया जा सकता'। पुरानी संस्कृति के जीर्ण और सजीव तत्त्वों में विवेकपूर्ण भेद करते हुए उन्होंने कहा कि 'अपनी संस्कृति का सतर्क और वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करना, उसके सजीव तत्त्वों को सुरक्षित रखना और आधुनिक विचार से उनका सामञ्जस्य स्थापित करना हमारा कर्तव्य है'।

जन-उत्साह

आर्थिक और सामाजिक विकास पर अपनी राय प्रकट करते हुए उन्होंने योजनाओं के लिये 'जन-उत्साह जागृत' करने पर जोर दिया और कहा कि जब तक जनता राष्ट्र निर्माण के काम में भाग लेने में गौरव का अनुभव नहीं करती, तब तक योजनाएँ चाहे वे कितनी ही शब्दाडम्बरपूर्ण क्यों न हों, सफल नहीं होंगी'। 'हमारा देश अविकसित है और अपनी आर्थिक योजनाओं की वित्त-व्यवस्था के लिये हमारे पास आवश्यक साधन नहीं हैं। इसलिये हमें स्वयं त्याग का नियम लागू करना होगा, परन्तु यह तभी सम्भव है जब लोगों को यह विश्वास हो जाय कि श्रेष्ठतर भविष्य के लिये आज का त्याग आवश्यक है'।

महात्मा गान्धी

गान्धीजी का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा कि 'हिन्दुस्तान में गान्धीजी पहले व्यक्ति थे कि जिन्होंने राष्ट्रीय संघर्ष में जनता के महत्त्व को समझा और जिन्होंने जनता से अपनी पूरी तरह एक रूपता स्थापित की'। गान्धीजी के नेतृत्व की प्रशंसा करते हुए आचार्यजी ने स्वीकार किया कि बहुत 'अवसरों पर उनका अन्तर्ज्ञान सही प्रमाणित हुआ और प्रारम्भ में जिन लोगों ने उन्हें स्वप्नद्रष्टा कहा बाद में वही यह मानने लगे कि गान्धीजी अतिशय व्यवहारिक थे'। गान्धीजी न तो किसी विशेष सिद्धान्त के अनुयायी थे और न ही उन्होंने हमें दर्शन की कोई विशेष प्रणाली दी। परन्तु उनका मस्तिष्क उर्वर तथा सर्जनात्मक था और अपने अन्तिम दिनों तक वे हमें नये विचार देते रहे'। महात्मा गान्धी के सब विचारों को स्वीकार करना हमारे लिये कठिन था, पर 'हमारा

अस्तित्व व्यर्थ होता यदि हम उनके गतिशील व्यक्तित्व और विचारों के प्रभाव में न आये होते'। आचार्यजी को इस बात की खुशी थी कि जब हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हुआ, तब गान्धीजी ने एक ऐसे वर्गहीन और जातिविहीन समाज को स्थापित करने का समर्थन किया जो शोषणमुक्त होगा और जिसमें जनता प्रमुख सत्ताधारी होगी।

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

आचार्य नरेन्द्रदेव की धारणा थी कि 'जब तक छोटे बड़े सभी राष्ट्रों के साथ समानता के आधार पर व्यवहार नहीं किया जाता और वर्तमान विषमताएं दूर नहीं की जातीं, धनी राष्ट्र गरीब राष्ट्रों के कल्याण को अपना प्रश्न नहीं समझते, राष्ट्रीय संघर्षों को मिटाया नहीं जा सकता'। अपने अभिभाषण में आचार्यजी ने यह साफ तौर पर कहा कि इस परमाणुयुग में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही क्षेत्रों में हिंसा को अस्वीकार करना है। उनकी राय में युद्ध किसी भी समस्या को हल नहीं करता और इसलिये इसे गैरकानूनी बना देना चाहिए। उनकी यह भी राय थी कि राष्ट्रीय क्षेत्र में भी हिंसा का प्रयोग उपयोगी नहीं होगा। वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण शासक दल की सैनिक शक्ति बहुत बढ़ गई है, जो जनता द्वारा अपनाये गये युद्ध मार्ग को जब कि वह स्थापित सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करती है, अर्थहीन बना देती है। दूसरी तरफ विश्व घटनाओं के दबाव तथा मजदूर और अन्य आन्दोलनों के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण शासक वर्ग प्रत्येक स्थान पर जनता को अधिक सुविधाएं प्रदान करने के लिये विवश हो रहा है, और 'स्वतन्त्र देशों में बालिग मताधिकार के आधार पर जनतान्त्रिक संविधान अपनाये जा रहे हैं'।

जनतान्त्रिक समाजवाद के लिये प्रयत्न

नरेन्द्रदेवजी स्वीकार करते थे कि जनतान्त्रिक समाजवाद के बुनियादी सिद्धान्तों के आधार पर एक नयी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना सरल काम नहीं है। उसके लिये हमें 'ज्ञान द्वारा समर्थित लक्ष्य पर दृढ़ और स्थायी विश्वास रखना होगा', 'सक्रिय और सतर्क रहना पड़ेगा, तथा 'निरन्तर अपने कार्य को नये क्षेत्रों में विस्तृत करना पड़ेगा'। उन्होंने 'संसदीय कार्य, संघर्ष और रचनात्मक कार्य' सभी

को 'महत्त्वपूर्ण' बताते हुए कहा कि 'सभी को हमारे कार्यक्रम में उचित स्थान मिलना चाहिए। हम किसी की भी उपेक्षा नहीं कर सकते'।

सिद्धान्त और व्यवहारिकता

आचार्य नरेन्द्रदेव प्रोफेसर लास्की के इन विचारों से सहमत थे कि 'वर्तमान जटिल संसार में जिस सरकार के मार्ग दर्शन के लिये कोई सामाजिक दर्शन नहीं वह बिना जाने बूझे पूँजीवाद के दर्शन के प्रभाव में आ जाती है'। पर सिद्धान्तों के महत्त्व को तसलीम करते हुए भी आचार्यजी ने 'कठोर रूढिवादिता और अन्धसिद्धान्तवादिता' का विरोध किया। उन्होंने कहा कि 'आज के युग में ज्ञान की सीमाएँ नित्य प्रति विस्तृत होती जा रही हैं। अतः परिस्थिति के अनुरूप मस्तिष्क रचना एक निरन्तर प्रक्रिया है""सभी सिद्धान्त और सामाजिक दर्शन अपर्याप्त और अधूरे होते हैं' तथा 'तेजी से बदलने वाले जगत में ऐसी नवीन परिस्थितियों का उत्पन्न होना निश्चित है जिनके लिये कोई पूर्व निश्चित सिद्धान्त नहीं है'। अपने भाषण में उन्होंने यह भी कहा कि एक सिद्धान्त को जान लेना सुगम है, किन्तु एक निश्चित स्थिति में उसे लागू करना अत्यन्त कठिन है। सिद्धान्त हमको एक सीमा तक ले जा सकते हैं। जब तक आप अपने देशवासियों को निकट से नहीं जानते, मानव व्यवहार का प्रचुर अनुभव नहीं रखते, और अपने देश की सामाजिक आर्थिक अवस्थाओं का भलीभाँति अध्ययन नहीं करते, तब तक आप जनता को कर्मपथ का दिग्दर्शन भी नहीं करा सकते।

निःस्वार्थ सेवा

समाजवादी समाज के निर्माण कार्य में निःस्वार्थ भाव से जुट जाने की समाजवादी नवयुवकों से अपील करते हुए उन्होंने कहा कि 'निःस्वार्थ सेवा में जो उन्नयन और आनन्द प्राप्त होता है वही कार्यकर्ताओं का पर्याप्त पुरस्कार है। निःस्वार्थ सेवियों का ऊँचा आदर्श संचारक सिद्ध होगा और जो लोग उनके प्रभाव में आयेंगे वे नव जीवन का अनुभव करेंगे। यदि वे एक ऐसे सामाजिक उद्देश्य की साधना में निरत होंगे जो जनता की वास्तविक इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति करे और अपने जीवन को जनजीवन से तन्मय कर देंगे तो वे एक अजेय शक्ति बन जायेंगे। जनता उनकी पुकार को सुनेगी और सब

नवयुवक, वे चाहे जहाँ हों, उनकी ओर आकृष्ट होंगे। उनका आन्दोलन शक्ति का संचय करेगा और उनका संघटन उनके नेतृत्व में जन आन्दोलन का रूप ले लेगा। वे किसानों, मजदूरों, भूमिहीन खेतिहरों, छोटे व्यापारियों और पार्टी कार्यकर्ताओं को अपने साथ ला सकेंगे। नरेन्द्रदेवजी ने आशा की कि समाजवादी नवयुवक सदा अपने को शिक्षित करते रहेंगे और सामाजिक परिवर्तन के साधन तथा जनता के दुःखसुख के साथी बनेंगे। वे प्रसिद्धि की चमक दमक से अलग रहकर अज्ञात योद्धाओं के रूप में काम करना पसन्द करेंगे।

रूसी क्रान्ति

रूसी क्रान्ति पर अपने विचार प्रकट करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने कहा कि 'नवयुग सन् १९१७ की रूसी क्रान्ति से' ही प्रारम्भ होता है, इस क्रान्ति के समय 'इतिहास में प्रथम बार विश्व के रंगमंच पर जनता ने सहकारी नहीं बल्कि प्रमुख रूप में भाग लिया और इसने विश्वभर में जनता की मनोदशा को बदल दिया'। दुःख है कि रूसी क्रान्ति के नेताओं ने 'अपने सम्मुख सदा जीवन के उन उद्देश्यों को नहीं रक्खा जिनके लिये क्रान्ति हुई थी'। फिर भी सोवियत रूस की बहुत सी उपलब्धियाँ हैं। सोवियत प्रयोग हमें बहुत सी बातों की शिक्षा दे सकता है। हम उनकी सफलता और असफलता दोनों से सीख ले सकते हैं। परन्तु यह तभी सम्भव है कि जब हम उनके कार्यों का बिना किसी पूर्व-धारण के ठीक-ठीक मूल्यांकन करें। उन्होंने कहा कि 'मेरा उन्मान सदा ही आलोचनात्मक रहा है परन्तु मेरी सहानुभूति सदैव सोवियत रूस के साथ रही है' और इस आलोचना का मूल कारण उसको बदनाम करने की इच्छा के बजाय इस बात का दुःख है कि 'उसने एक ऐसी दुर्दमनीय शक्ति होने का महान् अवसर खो दिया' जिसने 'न केवल शत्रुओं से उसकी रक्षा की होती बल्कि वह उन विचारों को बढ़ाने में बहुत सहायक हुई होती जिनका प्रारम्भ में उसने पक्ष लिया था'।

जनतान्त्रिक समाजवाद का भविष्य

अन्त में यह स्वीकार करते हुए कि 'आज जो दो शक्तियाँ संसार पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिये प्रयत्नशील हैं वे कम्यूनिज्म और पूँजीवाद

हैं' तथा 'जनतान्त्रिक शक्तियाँ कमजोर हैं', नरेन्द्रदेवजी ने बहुत विश्वास के साथ कहा कि 'भविष्य जनतान्त्रिक समाजवाद के साथ है'। उनको विश्वास था कि 'जैसे-जैसे सोवियत नागरिकों का सांस्कृतिक स्तर ऊँचा होगा और लोह आवरण उठेगा, सोवियत कम्यूनिज्म अधिकाधिक उदार होगा और जब अपनी प्राचीन सभ्यता का अभिभावी चीन अपने जीवन को अपने ढंग पर सञ्चालित करने की स्थिति में होगा, जो कि अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में परिवर्तित होने में अवश्यम्भावी है, तब नयी परिस्थितियाँ अवश्य ही उत्पन्न होंगी जो जनतान्त्रिक समाजवाद के अधिकाधिक समीप आती जायँगी। यह इसलिए होगा कि मनुष्य अन्ततोगत्वा अपने स्वरूप की स्थापना करेगा और यदि स्वतन्त्रता और जनतान्त्रिक भावना उसका स्वरूप नहीं है तो फिर क्या है ? वह सदा निरंकुश शासन को सहन नहीं करेगा और न वह उन व्यवस्थाओं को सहन करेगा जो उसे दबाने के लिए बनी हैं। आत्मविस्तार द्वारा अपने स्वरूप को प्राप्त करना ही मनुष्य का स्वभाव है। परिवार और जन राज से चलकर हम क्रमशः राष्ट्रीय राज्य तक पहुँचे हैं और धीरे-धीरे विश्वसमुदाय की ओर अग्रसर हो रहे हैं'।

नीतिघोषणा का विरोध

नीतिघोषणा पर तीन दिन तक जोर शोर से बहस हुई। दो दिन तक जनरल बहस हुई। इसमें पचीस प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सोलह पक्ष में थे, नौ विपक्ष में। विपक्ष में बोलने वालों में से चार ने केवल यह कहा कि नीतिघोषणा को जल्दी में स्वीकार नहीं करना चाहिए। साधारण सदस्यों को भी इस पर सोचने विचारने का और अपनी राय देने का मौका मिलना चाहिए। पर सर्वश्री अशोक मेहता, बी० सी० बरगीश, पुरुषोत्तम त्रिकमदास तथा मुन्शी अहमददीन और आचार्य कृपालानी ने नीति घोषणा की त्रुटियों पर भी ध्यान दिलाया। साथी पुरुषोत्तम त्रिकमदास का कहना था कि प्रस्तुत घोषणा को नीतिघोषणा नहीं कहा जा सकता, यह तो वास्तव में लक्ष्यों की घोषणा है। इसमें बहुत से आवश्यक प्रश्नों की कोई चर्चा ही नहीं है। यह तो गीता या बाइबल सरीखी चीज है और इसको स्वीकार कर लेने पर स्वतन्त्र, निष्पक्ष चिन्तन में बाधा पड़ेगी। साथी बरगीश साथी पुरुषोत्तम त्रिकमदासजी के इस विचार से सहमत नहीं थे कि नीति घोषणा का

सिद्धान्तों से कोई सम्बन्ध नहीं। वह नीति घोषणा में सिद्धान्तों की चर्चा भी जरूरी समझते थे। पर उनकी निश्चित धारणा थी कि अगर बहुमत के बल पर नीति-घोषणा स्वीकार की गयी तो इससे गड़बड़ी घटने के बजाय बढ़ जायेगी और हमें आगे चल कर पछताना पड़ेगा। साथी मुन्शी अहमददीन ने कहा कि गान्धीवाद और मार्क्सवाद का तथा कम्यूनिज्म और जनतान्त्रिक समाजवाद का समन्वय नामुमकिन है। सोवियत रूस में प्रचलित व्यवस्था और उस जनतान्त्रिक समाजवाद में जिसे प्रजा सोशलिस्ट पार्टी हिन्दुस्तान में कायम करना चाहती है कुछ साम्य नहीं है। कम्यूनिज्म और जनतान्त्रिक समाजवाद के बुनियादी भेद को हमें साफ तौर पर बताना चाहिए। उन्हें दुःख था कि पार्टी के अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्रदेव ने अपने भाषण में सोवियत रूस और चीन के प्रति सहानुभूति जाहिर की है। उनके विचार में नीति घोषणा में सरकार की वैदेशिक नीति और काश्मीर के प्रश्न पर भी लिखा जाना चाहिए था। उनकी राय में कांग्रेस पार्टी तथा कम्यूनिस्ट पार्टी और साम्प्रदायिक पार्टियों के साथ सहयोग का प्रश्न राजनीतिक चालों का प्रश्न है, उसका जिक्र नीति घोषणा में नहीं होना चाहिए था। आचार्य कृपालानीजी का कहना था कि एक सौ पृष्ठ की नीति घोषणा पर थोड़े समय में विचार नहीं हो सकता, उसके लिये बहुत समय चाहिए। उन्होंने वर्गसंघर्ष के सिद्धान्तों का विरोध करते हुए कहा कि यदि वर्गसंघर्ष गांवों में ले जाया गया तब सारा देश छिन्न भिन्न हो जायेगा। उन्होंने यह भी कहा कि राजनीति एक व्यवहारिक खेल है वह सिद्धान्त का प्रश्न नहीं है। उनके विचार में देश के राजनीतिक और सामाजिक जीवन में जो सब कुछ होता है उसे किसी सिद्धान्त से सिद्ध नहीं किया जा सकता। इसलिये कोई राजनीतिज्ञ सिद्धान्तों के जटिल बन्धन में अपने को नहीं बांध सकता। साथी अशोक मेहता ने कहा कि संसार के इतिहास में पहली बार हमारे देश में जनतन्त्र और आर्थिक विकास दोनों के लिये एक साथ सतत प्रयत्न हो रहा है। उन्होंने यह भी कहा कि किसी जमाने में समाजवाद एक विचार था, अब तो वह बहुत से देशों में कार्यान्वित और व्यवहृत हो रहा है। उनका निश्चित मत था कि आज संसार की किसी जनतान्त्रिक समाजवादी पार्टी के लिये मार्क्सवादी ढांचा कबूल करना जरूरी नहीं समझा जाता और पुरानी मार्क्सवादी विचार पद्धति में

संसार की बहुत सी समस्याओं का कोई हल भी नहीं है। मिसाल के तौर पर विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों के संघर्ष को ही ले लीजिये। उनका कहना था कि हिन्दुस्तान में समाजवादी आन्दोलन के सामने जो बुनियादी सवाल है वह वर्गसंघर्ष का नहीं है, बल्कि क्षेत्रों के संघर्ष का है और विभिन्न क्षेत्रों के बीच जरूरी सामञ्जस्य ही सबसे बड़ी समस्या है। उन्होंने यह भी कहा कि प्रस्तुत नीति घोषणा में खेती और आर्थिक विकास के पारस्परिक सम्बन्धों तथा मुद्रा स्फीति के बारे में भी कुछ नहीं कहा गया है। इस नीति घोषणा में बेकारी का भी कोई हल नहीं है। उन्होंने कहा कि यह मेरा निश्चित मत है कि समाजवादी शक्तियां विकास के संदर्भ में ही बढ़ती हैं और इस ऐतिहासिक अवसर पर जब हमें विकास और जनतन्त्र के दावों में सामाञ्जस्य करना है, पार्टी को अपनी बजाय जनता का अधिक ध्यान रखना है। ऐसी हालत में सिद्धान्तों पर अधिक जोर देना ठीक नहीं होगा।

समर्थन

इन कटाक्षों के जवाब में नीति घोषणा के समर्थकों का कहना था कि मौजूदा परिस्थिति में इलाहाबाद नीति घोषणा को चालू रखने से काम नहीं चल सकता, पार्टी में जान डालने के लिये, फैले हुए भ्रमों को दूर करने के लिये, पार्टी की नीति स्पष्ट करने के लिये सिद्धान्तों पर आश्रित नीति-घोषणा का पारित किया जाना जरूरी है। श्री अजीत राय की राय थी कि इलाहाबाद नीतिघोषणा तो केवल सरकारी कार्यक्रम है, उसकी तुलना प्रस्तुत नीतिघोषणा से नहीं हो सकती। समर्थकों का यह भी निश्चित मत था कि हमारी पार्टी केवल सत्ता प्राप्त करने में संलग्न राजनीतिक पार्टी नहीं है, वह तो समाजवादी आन्दोलन है। समाजवाद का प्रचार करना, उसके लिये जनमत तैयार करना, जनसमूह को समाजवादी आन्दोलन की ओर आकर्षित करना इसका मुख्य काम है। इस काम के लिये सिद्धान्तों की समुचित व्याख्या जरूरी है। बुनियादी सैद्धान्तिक एकता के बिना पार्टी आगे बढ़ नहीं सकती। इस पार्टी का अस्तित्व भी ज्यादा दिन रह नहीं सकता। इसके बगैर तो देश में पहले संकट के धक्के से ही यह पार्टी टुकड़े-टुकड़े हो जायगी। समर्थकों का यह भी कहना था कि जो लोग सिद्धान्तों की उपेक्षा करने की बात करते हैं, वे भी किन्हीं न किन्हीं

सिद्धान्तों से बंधे हैं। समर्थकों की राय में प्रस्तुत नीति घोषणा की तुलना बाइबिल या गीता से करना अनुचित है। नीति घोषणा हम बनाते हैं, बनाते समय और उसके बाद हम जो चाहें उसमें तबदीली कर सकते हैं। नीति घोषणा के सब विचारों में सामञ्जस्य है, उसके सिद्धान्त जटिल मार्क्सवादी नहीं हैं, पिछले बीस वर्ष के अनुभवों का उसमें समावेश है और बदलती हुई दुनिया में नये ज्ञान, अनुभव और परिस्थितियों के आधार पर आगे भी पार्टी कान्फ्रेन्स और कन्वेशन के निर्णय के जरिए उनमें आवश्यक परिवर्तन किये जा सकते हैं। इसमें जो त्रुटियां दिखाई पड़ती हों उन्हें संशोधनों के जरिए सुधारा जा सकता है। समर्थकों का कहना था कि नीति घोषणा चुनाव घोषणा नहीं है, जिन तात्कालिक समस्याओं की ओर बहस में ध्यान दिलाया गया है उन समस्याओं की सविस्तार व्याख्या और उनके सम्बन्ध में पार्टी का कार्यक्रम चुनाव घोषणा में दिया जाना ही ठीक होगा पर यदि किसी छुटी हुई समस्या के सम्बन्ध में इस नीति घोषणा में कुछ कहना जरूरी समझा जाता हो तो उसे भी संशोधन के रूप में इस कान्फ्रेन्स में पेश किया जा सकता है।

प्रोफेसर राजाराम शास्त्री ने कहा कि जब हम नीति घोषणा पर विचार करते हैं, उस समय अध्यक्षीय भाषण के विचारों की टीका टिप्पणी निरर्थक है। अगर मुन्शी अहमददीनजी नीति घोषणा को ध्यान से पढ़े तो उनके सब शक दूर हो जायेंगे, नीति घोषणा में कोई ऐसा वाक्य नहीं है जिसे सोवियत प्रथा की प्रशंसा कहा जा सके। इसमें तो बहुत प्रभावशाली ढंग से उस प्रथा की खराबियाँ बतायी गयी हैं। शास्त्रीजी ने यह भी कहा कि वर्ग-संघर्ष तो ऐतिहासिक सत्य है, विभिन्न आर्थिक क्षेत्रों का संघर्ष भी वृहद् वर्ग-संघर्ष का एक अंग है। उन्होंने कहा कि जब तक समाज वर्गों में बँटा है, तब तक वर्ग संघर्ष टाला नहीं जा सकता, गो उसके नये तरीके निकाले जा सकते हैं और जब तक वर्गसंघर्ष है, तब तक एक समाजवादी को शोषण के खिलाफ शोषित के पक्ष में संघर्ष करना होगा, अन्याय और शोषण के विरुद्ध संघर्ष को नगरों तक सीमित नहीं रखा जा सकता, जहाँ कहीं भी अन्याय, शोषण और दमन है वहाँ संघर्ष को जारी रखना होगा। वर्ग संघर्ष जमींदारों और पूँजीपतियों के विरुद्ध ही नहीं है, बल्कि पूँजीवाद

और समाजवाद दो सामाजिक व्यवस्थाओं के बीच भी संघर्ष है। वह तब तक चलाता रहेगा जब तक पूँजीवाद है। लेकिन वर्ग-संघर्ष लक्ष्य नहीं है, वह तो अन्तिम ध्येय का साधन है। ध्येय तो वर्गहीन समाज है। केवल वर्ग-संघर्ष या संसदीय कार्यवाहियों के द्वारा समाजवाद के लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव नहीं है। उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये तो संघर्ष को समता और जनतन्त्र के मूल्यों से संचारित करना होगा। प्रस्तावित नीति घोषणा नैतिक मूल्यों और साधनों की सुचिता पर जोर देती है। नैतिक मूल्य निस्सन्देह संघर्ष के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाते हैं। संघर्ष में नैतिक अपीलों का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन नैतिक अपीलें न वर्ग संघर्ष और शोषण को खत्म कर सकती हैं और न सामाजिक ढाँचे में तबदीली ला सकती हैं। प्रोफेसर राजाराम शास्त्री ने कहा कि पूँजीपतियों और शोषकों के कारण नैतिक मूल्य नीचे गिरे हैं। वर्ग समाज और शोषण को खत्म करके ही नैतिक मूल्यों को उचित स्थान पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

संशोधनों पर विचार

दो दिन की लम्बी बहस के बाद कांग्रेस ने साधारणत नीति घोषणा को मंजूर किया। उसके बाद तीसरे दिन संशोधनों पर बहस शुरु हुई। प्रोफेसर के० के० भट्टाचार्य ने प्रस्ताव किया कि नीति घोषणा के सातवें अध्याय में से निम्नलिखित शब्द निकाल दिये जायँ.—

> 'प्रजा सोशलिस्ट पार्टी कांग्रेस, कम्यूनिस्ट पार्टी या किसी साम्प्रदायिक पार्टी के साथ चुनाव सम्बन्धी समझौता नहीं करेगी।'

इस प्रस्ताव पर बारह प्रतिनिधियों ने अपने विचार व्यक्त किये। प्रस्ताव के समर्थकों का कहना था कि इस प्रश्न को राष्ट्रीय कार्यसमिति पर ही छोड़ना चाहिए। किस समय किस क्षेत्र में किस पार्टी से चुनाव के मौके पर किस प्रकार का व्यवहार किया जाय यह ऐसा प्रश्न है कि जिसका निर्णय नीतिघोषणा के जरिये नीति के रूप में नहीं किया जा सकता। कुछ राज्यों में पार्टी की ऐसी स्थिति है कि दूसरी किसी पार्टी से समझौते के बगैर पार्टी को चुनाव में अपनी पोजीशन बनाये रखना सम्भव नहीं होगा। प्रस्तावित संशोधन के विरोधियों का कहना था कि पार्टी का हित इसमें ही है कि किसी परिस्थिति में किसी दूसरी पार्टी से किसी प्रकार का चुनाव सम्बन्धी समझौता न किया

जाय। यदि इसकी व्यवस्था नीतिघोषणा में नहीं की गयी तो इस विषय पर पार्टी में झगड़ा बना रहेगा, हर प्रकार के समझौते होते रहेंगे, समझौतों के झमेलों में पड़कर पार्टी जनता के सामने अपनी सही तसवीर पेश नहीं कर पायेगी। इस संशोधन पर बहस के समय सदन में काफी गरमी थी। दोनों पक्षों में प्रतिनिधि काफी उत्तेजित दिखाई पड़ते थे। वोट लेने पर संशोधन के पक्ष में १८२ और विपक्ष में २६९ वोट आये। अतः संशोधन नामंजूर हुआ।

उसके बाद साथी समर गुहा ने प्रस्ताव किया कि नीति घोषणा के सातवें अध्याय में से यह शब्द निकाले जायें कि पार्टी 'कम्युनिस्ट या किसी साम्प्रदायिक पार्टी से समझौता नहीं करेगी'। इस संशोधन का समर्थन साथी एच० वी० कामथ ने किया और विरोध साथी पुरुषोत्तम त्रिकमदास ने किया। इस संशोधन के पक्ष में १८९ वोट और विपक्ष में २६० वोट आये। और यह संशोधन भी नामंजूर हो गया।

इसके बाद साथी कर्पूरी ठाकुर और साथी शिवनाथजी ने दो संशोधन पेश किये। वे भी नामंजूर हुए। इसके बाद बाकी सब संशोधन आचार्य नरेन्द्रदेव के पास उनके विचार के लिये भेजने का प्रस्ताव स्वीकार हुआ। एवं आचार्यजी द्वारा संशोधित नीति घोषणा को प्रकाशित करने का अधिकार राष्ट्रीय कार्यसमिति को दिया गया।

१ जनवरी सन् १९५६ को सब संशोधन आचार्यजी के सामने रखे गये। उनमें से कुछ प्रस्तावित संशोधनों को आचार्यजी ने मंजूर किया और ३ जनवरी को साथी कर्पूरी ठाकुर के प्रस्ताव के अनुसार शिक्षा के सम्बन्ध में पार्टी की नीति को भी नीति घोषणा के नवें अध्याय में जोड़ दिया गया और इस तरह ३ जनवरी सन् १९५६ को नयी नीति घोषणा तैयार हो गयी।

समीक्षा

चुनाव के सम्बन्ध में दूसरी पार्टियों से समझौता किया जाय अथवा नहीं इस बात में कान्फ्रेंन्स में गहरा मतभेद था और इस प्रश्न पर नीतिघोषणा की धारणा साठ प्रतिशत वोट से ही स्वीकृत हुई। पर बहुत से नेताओं के विरोध करने के बावजूद बाकी नीतिघोषणा को

कान्फ्रेन्स का पूरा समर्थन प्राप्त था, अस्सी नब्बे प्रतिशत प्रतिनिधि इसके पक्ष में थे। पार्टी को अपने अध्यक्ष पर इतना विश्वास था कि प्रतिनिधियों ने सब प्रस्तावित संशोधन उनके विचार और निर्णय के लिये उन्हें भेज दिये गये। कान्फ्रेन्स के पहले वे कभी कभी कहते थे कि बीमारी के कारण कार्यकर्ताओं से उन्हें जितना मिलना चाहिए उतना वे नहीं मिल पाते, इसलिये पता नहीं कि उनकी विचारधारा से पार्टी के कार्यकर्ता कहाँ तक सहमत हैं। कान्फ्रेन्स में पार्टी के प्रतिनिधियों और कार्यकर्ताओं ने जिस उत्साह के साथ नीतिघोषणा का स्वागत किया उससे साफ जाहिर था कि आचार्यजी का चिन्तन और उनकी समाजवाद की व्याख्या पार्टी के कार्यकर्ताओं को पूरे तौर पर स्वीकार थी, आचार्यजी की आकांक्षाएँ और उद्देश्य ही उनकी आकांक्षाएँ और उद्देश्य हैं। वही उनकी भावनाओं के सर्वोत्तम प्रतीक और उनके सच्चे नेता हैं। नीति घोषणा के पुरजोश स्वागत से आचार्यजी को भी ऐसा प्रतीत हुआ कि उनके विचार पार्टी का बहुद हद तक प्रतिनिधित्व करते हैं, उनमें और पार्टी में काफी साम्य है। कान्फ्रेन्स के बाद उन्हें इस बात की भी खुशी थी कि पार्टी एक बड़े संकट से बचा ली गयी।

नीति घोषणा के कुछ समर्थकों ने कान्फ्रेन्स में उसका समर्थन करते हुए कहा कि उसमें बहुत से प्रगतिशील विचारों का विरोध रहित क्रियात्मक समन्वय है। आचार्यजी को स्वयम् इस बात का सन्तोष था कि इसमें मार्क्सवाद से असंगत कोई बात नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी संघ के मुख्यपत्र के सम्पादक ने इस घोषणा के 'नैतिकता की समाजवादी व्याख्या' शीर्षक अध्याय को अपने पत्र में प्रकाशित करते हुए लिखा कि नीति सम्बन्धी यह व्याख्या संसार की समाजवादी विचारधारा को आचार्यजी की बड़ी देन है। फिर भी शायद आचार्यजी ऐसा समझते थे कि यदि वे स्वस्थ होते तो बहुत सी बातों की इससे भी अधिक अच्छी व्याख्या कर पाते। आचार्यजी ने 'नेशनल हेरल्ड' के सम्पादक श्री चेलापति राव को लिखा था कि 'मुझे इस बात का एहसास है कि नीतिघोषणा में बहुत सी कमियां हैं। किन्तु मैं इस आलोचना को स्वीकार नहीं करता कि वह मार्क्सवाद, गान्धीवाद और भूदान की खिचड़ी है। इसके प्रतिकूल मेरा तो यह दावा है कि पूरी की पूरी घोषणा में विचार-सामञ्जस्य है। आप देखेंगे कि वह भूदान

दर्शन को स्वीकार नहीं करती और भूदान के इस दावे को भी तसलीम नहीं करती कि उसे औद्योगिक क्षेत्र में सफलतापूर्वक लागू किया जा सकता है। केवल भूमि के वितरण के क्षेत्र में घोषणा उसकी उपादेयता स्वीकार करती है। आप देखेंगे कि घोषणा में कहीं भी सर्वोदय का जिक्र नहीं किया गया है। चूंकि यह एक राजनीतिक दल नहीं है, इसलिये हमने इसकी आलोचना करना जरूरी नहीं समझा। किन्तु कोई देख सकता है कि घोषणा में स्थान-स्थान पर उसके विरुद्ध तर्क दिये गये हैं। हमने अहिंसा का समर्थन किया है, किन्तु एक धर्म की तौर पर नहीं। विकेन्द्रीकरण तथा साधन की सुचिता का भी समर्थन किया गया है। इन विचारों के लिये हम गान्धीजी के ऋणी हैं, किन्तु हमने धीरे-धीरे उन्हें ग्रहण किया है, क्योंकि हमने महसूस किया कि विश्व की परिवर्तित परिस्थिति में उनको स्वीकार कर लेना चाहिए। किन्तु हम विकेन्द्रीकरण को उसकी उचित सीमा को निर्धारित किये बिना स्वीकार नहीं करते'।

जैसा कि साथी गंगाशरण सिंहजी ने नीति घोषणा के प्राक्कथन में लिखा है, यह नीति घोषणा जनतान्त्रिक समाजवाद के मौलिक सिद्धान्तों और पार्टी की बुनियादी नीति को प्रतिपादित करती है और समाजवादी समाज और संस्कृति की रूपरेखा प्रस्तुत करती है। यह व्यक्तिवाद और कम्यूनिज्म से पार्टी के सैद्धान्तिक भेदों की विवेचना, कांग्रेस और कम्यूनिस्ट पार्टी के सिद्धान्तों और नीतियों की आलोचना और कांग्रेसी सरकारों के लक्ष्यों और दावों की संक्षेप में समीक्षा करती है'।



परेम्बुराई जाते समय मद्रास में जनवरी १६

२०. अन्तिम यात्रा

नीति घोषणा को ठीक करने के बाद ही ३ जनवरी सन् १९५६ को नरेन्द्रदेवजी स्वास्थ्य को ठीक करने के उद्देश्य से हवाई जहाज के जरिये परेन्दुराई के लिये चल दिये। उनके साथ उनकी धर्म पत्नी और उनके स्नेही, राष्ट्रसेवी, गणित-शास्त्र के विद्वान् तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के गणित विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डाक्टर रामधर मिश्र थे। यह स्थान मद्रास राज्य के कोयम्बटूर जिले में था और इसे उनके मित्र श्री श्रीप्रकाशजी ने, जो उस समय मद्रास के राज्यपाल थे, मद्रास सरकार के मन्त्री श्री सी० सुब्राह्मण्यम् की सलाह से उनके लिये चुना था। श्रीप्रकाशजी ने ही वहाँ पर आचार्यजी के रहने का समुचित प्रबन्ध किया था। आचार्य जी वहाँ डेढ़ महीने रहे। वह स्थान उन्हें पसन्द था और वहाँ विश्राम करके उनके स्वास्थ्य में कुछ सुधार अवश्य हुआ, पर यह सुधार स्थायी साबित नहीं हुआ। दमे के छोटे-मोटे दौरे होते ही रहते थे। आन्तरिक जीवन-शक्ति ठीक तौर पर साथ नहीं देती थी।

बौद्ध धर्म दर्शन

यूं तो परेन्दुराई जाने से पहले ही आचार्यजी ने अपनी पुस्तक 'बौद्ध धर्म-दर्शन' की प्रस्तावना लिख दी थी। फिर भी परेन्दुराई जाते समय वे अपने साथ बौद्ध दर्शन की पुस्तकें लेते गये थे और उनकी पुस्तक 'बौद्ध धर्म-दर्शन' में जो बच रहा था उसे समाप्त करने की वे वहाँ कोशिश करते रहे। इस ग्रन्थ को लिखने का उद्देश्य 'बौद्ध दर्शन की जानकारी' कराना ही था। इसमें नरेन्द्रदेवजी ने 'यत्र तत्र भारत के अन्य दर्शनों की तुलना' जरूर की थी, पर 'अपना कोई विवेचन नहीं दिया' था। वे कतिपय 'स्वतन्त्र लेखों में इनकी आलोचना' करना चाहते थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने कुछ लिखा भी था। पर बीमारी के कारण वे इस काम को पूरा नहीं कर सके।

'बौद्ध धर्म-दर्शन' ग्रन्थ में भगवान् बुद्ध का जीवन चरित्र, उनकी शिक्षा, उनका विस्तार, विभिन्न निकायों की उत्पत्ति तथा विकास, महायान की उत्पत्ति, विकास, साहित्य तथा साधना, स्थविरवाद का समाधि मार्ग,

कर्मवाद, निर्वाण, अनात्मवाद, अनीश्वरवाद, क्षणभंगुरवाद, बौद्ध साहित्य (पालि तथा संस्कृत) के विविध दर्शन-सर्वास्तिवाद, सौत्रान्तिक वाद, विज्ञानवाद तथा माध्यमिक—एवं बौद्ध न्याय आदि का सविस्तार वर्णन है।

इस पुस्तक में तन्त्र के क्षेत्र में बौद्ध विद्वानों के योग की चर्चा नहीं थी। पुस्तक की इस कमी की पूर्ति में आचार्यजी के अनुरोध पर उनके स्नेही महामहोपाध्याय डाक्टर गोपीनाथ कविराज ने पुस्तक की भूमिका में बौद्ध तन्त्र का ज्ञान समाविष्ट कर इस कमी को पूरा कर दिया।

इस ग्रन्थ की भूमिका में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज जी लिखते हैं कि 'यह कहना ही चाहिए कि ऐसा ग्रन्थ हिन्दी भाषा में तो नहीं है, किसी भारतीय भाषा में भी नहीं है। बौद्ध दर्शन के मूल दार्शनिक ग्रन्थ अत्यन्त कठिन एवं दुरूह हैं। आचार्यजी ने घोर परिश्रम करके उसकी विभिन्न शाखाओं के ग्रन्थों का आद्योपान्त अध्ययन कर इस ग्रन्थ में मुख्य-मुख्य विषयों का आक्षेप-समाधान पूर्वक विस्तृत विवेचन किया है। किसी टीकाकार की प्रसिद्ध उक्ति के अनुसार आचार्य जी ने कुछ भी अनपेक्षित एवं अमूल नहीं लिखा है। उन्होंने ग्रन्थ की प्रामाणिकता के रक्षार्थ मूल ग्रन्थों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखा है। पाठक को बौद्ध धर्म और दर्शन की भावनाओं एवं वातावरण से परिचित करने के लिये उन्होंने बौद्धों के शब्द तथा शैली को भी इस ग्रन्थ में सुरक्षित रखा है। विभिन्न प्रस्थानों के कुछ विशिष्टमूल ग्रन्थों का संक्षेप दे देने से इस ग्रन्थ की उपादेयता और बढ़ गयी है। दर्शन के प्रामाणिक अध्ययन के लिये इस प्रणाली को मैं सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ। इस प्रकार यह ग्रन्थ इस विषय की उच्च कक्षा के विद्यार्थियों के लिये ही उपादेय नहीं हैं, प्रत्युत इससे इतर भारतीय दर्शन के विद्वानों को भी प्रचुर सहायता मिलेगी। बौद्ध दर्शन के उपलब्ध संस्कृत ग्रन्थों में भी कोई एक ऐसा ग्रन्थ नहीं है, जिसके द्वारा बौद्धों की समस्त शाखाओं के सिद्धान्त का ज्ञान हो। ऐसे ग्रन्थ की अत्यन्त अपेक्षा थी। आचार्य जी ने यह ग्रन्थ लिखकर इस अभाव की उचित पूर्ति की है'।

पार्टी की चिन्ता

परेन्दुराई चले जाने पर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं की भीड़ से तो नरेन्द्रदेवजी को छुट्टी जरूर मिल गयी, पर फिर भी पार्टी के भविष्य की चिन्ता उन्हें सदा परेशान करती रही। सन् १९५५ की दुःखद घटनाएँ उन्हें बार-बार याद आतीं और उनकी याद उन्हें परेशान करती थी। जो साथी अलग हो गये थे वे कैसे फिर मिलें यह वे सोचते रहते थे। कुछ पुराने साथियों की बेवफाई की याद उन्हें व्यथित कर देती थी। आचार्य नरेन्द्रदेव के निधन के कुछ दिन बाद उनके कहने पर उनके मित्र श्री श्रीप्रकाशजी ने डाक्टर लोहिया से फिर से प्रजा सोशलिस्ट पार्टी में शामिल होने के सम्बन्ध में बात-चीत भी की। पर डाक्टर लोहिया ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया।

आचार्य नरेन्द्रदेव को पार्टी के कार्यकर्ताओं और विधायकों के बौद्धिक और सैद्धान्तिक स्तर को ऊँचा करने का ध्यान रहता था। इस काम के लिये वे प्रत्येक राज्य में शिक्षण शिवरों का आयोजन जरूरी समझते थे। वे चाहते थे कि नीति घोषणा की बातों को समझाने के लिये प्रत्येक जिले में कार्यकर्ताओं के सात-आठ दिन के शिविर हों। उन्होंने निश्चय किया कि उत्तर प्रदेश और बिहार के समाजवादी विधायकों का एक महीने का शिविर सारनाथ-वाराणसी में किया जाय उसका पाठ्यक्रम तैयार करने के लिये उन्होंने इस पुस्तक के लेखक को लिखा। लेखक ने एक बड़ा लम्बा चौड़ा पाठ्यक्रम बनाकर उनके पास भेज दिया। उसमें दो चार बातें और जोड़कर आचार्य जी ने उसे स्वीकार किया। उसी पाठ्यक्रम की प्रतिलिपि में उन्होंने संकेत किया कि किन-किन विषयों पर किन-किन साथियों को बोलने के लिये निमन्त्रित किया जाय। एक सप्ताह शिविर में रहकर (२) भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, (२) भारतीय समाजवादी आन्दोलन की ऐतिहासिक रूपरेखा, (३) कांग्रेस और कम्यूनिस्ट पार्टियों के लक्ष्यों, नीतियों और कार्यक्रम की समीक्षा, (४) कम्यूनिस्ट चीन तथा (५) संसार में नैतिक मूल्यों के विकास के इतिहास पर वे स्वयं भाषण देना चाहते थे।

सागरसिंह को पत्र

परेन्दुराई पहुँचने के तीन चार दिन बाद उन्होंने साथी सागर सिंह

को एक पत्र लिखा। इस पत्र में उन्होंने लिखा कि 'डाक्टर लोहिया ने काँग्रेस के विरुद्ध एक obsession (आवेश) पार्टी में पैदा कर दिया है जो हितकर नहीं है। obsession होने से नीति के बनाने में औचित्य का ध्यान नहीं रहता। फिर तो यही होता है कि काँग्रेस को किसी तरह नष्ट किया जावे, चाहे उसका परिणाम कुछ भी क्यों न हो। उदाहरण के लिये काँग्रेस का विरोध करना एक बात है और उसको समाप्त करने के लिये कम्यूनिस्टों और सम्प्रदायवादियों की सहायता लेना दूसरी बात है। जब obsession हो जाता है तब अन्य सब बातें गौड़ पड़ जाती हैं। योरुप की कई सोशलिस्ट पार्टियों को कम्युनिस्टों का obsession हो गया है, जिसकी वजह से वे कभी कभी पूँजीवादियों का भी साथ देने लगती हैं। obsession बुरी चीज है। काँग्रेस के साथ सहयोग करने में हमारी जो आपत्ति है उसका स्पष्टीकरण (जनता) अंग्रेजी के हाल के एक अंक में किया गया है। किन्तु हमारे असहयोग का यह अर्थ नहीं है कि हम Public level (सार्वजनिक स्तर) पर भी जनता के कार्यों में सहयोग नहीं कर सकते'। इस पत्र में वर्ग संघर्ष की चर्चा करते हुए भी उन्होंने लिखा कि वर्ग-संघर्ष का यह 'अर्थ नहीं है कि किसी बात में वर्ग-सहयोग (class collaboration) नहीं होना चाहिए, तब तो समाज छिन्न-भिन्न हो जायगा। पूँजीपति और मजदूर मिलकर ही कारखाना चलाते हैं। यह रोज की घटना है। यद्यपि उनके स्वार्थ परस्पर विरोधी हैं। वर्ग-संघर्ष (class struggle) पर जोर इसलिये देना पड़ता है क्योंकि पूँजीपति और उनके समर्थक विद्वान् यह कहते नहीं अघाते कि दोनों का हित पूर्ण सहयोग में ही है। पुनः आज के युग में विषमता इतनी बढ़ गयी है कि संघर्ष तीव्र हो गया है'।

बम्बई की समस्या

आचार्य नरेन्द्रदेव बम्बई को मराठा भाषा-भाषी बृहद् महाराष्ट्र का भौगोलिक अंग समझते थे। उसके लिये संयुक्त महाराष्ट्र आन्दोलन की माँग उन्हें ठीक जंचती थी। पर उसके लिये विभिन्न भाषा-भाषी समूहों में कटुता और वैमनस्य और उसके फलस्वरूप उपद्रव और मारकाट उन्हें बुरे लगते थे। उनके समाचार उन्हें व्यथित करते थे। ५ फरवरी को प्रेस ट्रस्ट आफ इण्डिया के प्रतिनिधि द्वारा जब बम्बई की घटनाओं के समाचार नरेन्द्रदेवजी ने विस्तार से सुने



तब वे विह्वल हो गये। धैर्य के साथ सदमे को सहन करना उनके लिये नामुमकिन हो गया। उनके स्नेही डाक्टर रामधर मिश्र को तो आचार्यजी का जीवन-दीप बुझता दिखाई देने लगा।

राष्ट्रीय कार्यसमिति की बैठक

११, १२ और १३ फरवरी को कोयम्बटोर में प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्यसमिति की बैठक बुलायी गयी। आचार्यजी का स्वास्थ्य ऐसा नहीं था कि वे कार्य-समिति के काम में भाग ले सकें। इसलिये कार्य समिति की ११ और १२ फरवरी की बैठकें परेन्दुराई से दूर कोयम्बटोर नगर में ही की गयीं। पार्टी के संविधान के अनुसार आचार्यजी ने शिफारिश की कि साथी गंगाशरण सिंहजी को उपाध्यक्ष (डिप्टी चेयरमैन) नियुक्त किया जाय। सन् १९५६ की परिस्थिति में आचार्यजी की बीमारी में साथी गंगाशरण सिंहजी से अधिक कोई व्यक्ति आचार्यजी का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता था, आचार्यजी की इच्छा के अनुकूल प्रजा प्रजासोशलिस्ट पार्टी का कार्यभार संभाल सकता था। इस ही लिये उन्होंने श्री गंगाशरण सिंहजी को डिप्टी चेयरमैन बनाने की शिफारिश की थी। कार्यसमिति ने नियमानुसार उन्हें नियुक्त किया।

तीसरे दिन अर्थात् १३ फरवरी को आचार्यजी के निवास स्थान परेन्दुराई में कार्यसमिति की बैठक हुई। इस बैठक में संयुक्त महाराष्ट्र के प्रश्न तथा बम्बई की परिस्थिति पर विस्तार के साथ विचार हुआ। साथी प्रेम भसीन ने जिन्हें आचार्यजी ने बम्बई के दंगों की जाँच के लिये भेजा था अपनी रिपोर्ट पेश की। आचार्यजी ने भी पार्टी की नीति के संदर्भ में लगभग पचास मिनट तक बम्बई की समस्या और भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्घटन पर अपने विचार व्यक्त किये। वे उस समय इतने कमजोर थे कि हर पन्द्रह मिनट बाद उन्हें दस मिनट तक दवा सूँघना पड़ती थी। आचार्यजी के भाषण के बाद उन की अनुमति से भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्विभाजन पर राष्ट्रीय कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया। इस प्रस्ताव में जहाँ एक ओर भाषा के आधार पर राज्यों के पुनर्विभाजन को जनता की उचित और जानतान्त्रिक मांग तसलीम किया गया, वहाँ दूसरी ओर अपनी

भाषा और संस्कृति की वफादारी की तुलना में राष्ट्र की वफादारी को प्राथमिकता देने पर आग्रह किया गया। इस प्रस्ताव में यह भी कहा गया कि जब भाषा का आन्दोलन हिंसात्मक स्वरूप धारण कर लेता है और विभिन्न भाषा-भाषी समूहों के पारस्परिक सम्बन्धों में तनाव पैदा कर देता है, तब राष्ट्र की एकता को खतरा पैदा हो जाता है। इसलिये भाषा-भाषी प्रान्तों के आन्दोलन को किसी निश्चित सीमा के अन्दर और किसी विशेष ढंग से चलाना पड़ता है। अगर आन्दोलन के कारण विभिन्न भाषा-भाषी समूहों में तनाव पैदा हो जाता है, जैसा कि दुर्भाग्य से बम्बई में हुआ, तब जो कदम राष्ट्रीय एके को बढ़ाने में सहायक हो सकते थे वे उसे नुकसान पहुँचाने लगते हैं। प्रस्ताव में राष्ट्रीय कार्यसमिति ने बम्बई, उड़ीसा और दूसरे स्थानों पर भाषा-भाषी अल्प संख्यकों के सदस्यों पर लूट, अग्निज़नी और हमले के निन्दित कार्यों की भर्त्सना की और कहा कि जबकि राष्ट्रीय कार्यसमिति बम्बई नगर को संयुक्त महाराष्ट्र के एक भाषा-भाषी राज्य में शामिल किये जाने की माँग को फिर दोहराती है, कार्यसमिति की धारणा है कि समय की पुकार यही है कि भाषा-भाषी अल्पसंख्यकों के जख्मों को ठीक करने की प्रक्रिया को बढ़ाया जाय और नगर के दो भाषा-भाषी समूहों के बीच सद्भावना और सौहर्द के वातावरण को फिर से प्रतिष्ठित किया जाय। राष्ट्रीय कार्यसमिति ने निर्णय किया कि भाषा-भाषी अल्प संख्यकों में सद्भावना का वातावरण पैदा करने के लिये बम्बई नगर को पार्टी के कार्यकर्ताओं और दूसरों का सहयोग प्राप्त करने को वह अपने प्रतिनिधि भेजे। राष्ट्रीय कार्यसमिति ने यह भी निश्चय किया कि दोनों प्रान्तों के बीच के सरहदी क्षेत्रों के सम्बन्ध के झगड़े जनतान्त्रिक ढंग से इन क्षेत्रों में मतगणना के द्वारा किये जा सकते हैं। राष्ट्रीय कार्यसमिति ने कहा कि राज्यों के पुनर्संघटन की पेचीदा समस्या का शान्तिमय और जनतान्त्रिक समाधान सब राजनीतिक दलों के सामूहिक प्रयास के द्वारा ही हो सकता है। इसलिये कार्यसमिति सरकार से आग्रह करती है कि वह सब के अत्याधिक सहयोग से सर्वदलीय कान्फ्रेन्स को निमन्त्रित करे। इस बीच में राष्ट्रीय कार्यसमिति उन तमाम संगठनों से, जिन्होंने अपनी माँगों को मनवाने के लिये सीधे संघर्ष का निश्चय किया है या करने की सोचते हैं, अनुरोध करती है कि वे ऐसा न करके सर्वदलीय कान्फ्रेन्स की माँग करें। राष्ट्रीय

कार्यसमिति ने कहा कि यदि इस काम में सफलता न मिली, तब राष्ट्रीय कार्यसमिति फिर बैठ कर निर्णय करेगी कि अब क्या किया जाय। सर्वश्री एस० एम० जोशी, एम० आर० दण्डवते और पीटर अलवारेस ने इस प्रस्ताव को स्वीकार करने से इनकार किया।

दूसरे प्रस्ताव में राष्ट्रीय कार्यसमिति ने इस बात पर चिन्ता प्रकट की कि हिन्दुस्तान में राज्य सरकारें उपद्रवी भीड़ को हटाने के लिये गोली को ही एक मात्र अस्त्र समझती हैं। उसने बम्बई और उड़ीसा में पुलिस द्वारा चलायी गयी गोली की निन्दा की और माँग की कि गोली काण्ड की जाँच के लिये बम्बई और उड़ीसा की सरकारें हाईकोर्ट के जजों को नियुक्त करें और जो आफिसर आवश्यकता से अधिक या निर्दयता से बल प्रयोग करने के दोषी पाये जाएँ उन्हें दण्ड दें। राष्ट्रीय कार्यसमिति का निश्चित मत था कि प्रत्येक गोली काण्ड के बाद यह निश्चय करने को कि गोली काण्ड किन परिस्थितियों में किया गया एक जुडीशल जाँच होनी चाहिए।

अन्त में आचार्य नरेन्द्रदेव ने तीन मास के लिये अध्यक्ष के उत्तरदायित्व से मुक्त किये जाने की इच्छा प्रकट की। कार्यसमिति ने इस बात को स्वीकार कर डिप्टी चेयरमैन श्री गंगाशरण सिंहजी को स्थानापन्न चेयरमैन का काम करने का आदेश दिया।

इस प्रस्तावों के स्वीकृत हो जाने पर राष्ट्रीय कार्यसमिति का कार्य समाप्त हुआ। पर इसके बाद सायंकाल को साथी गंगाशरण सिंहजी से आचार्यजी की काफी देर तक बातचीत होती रही। बातचीत में आचार्यजी ने कहा कि वे उत्तरदायित्व से भागने वाले व्यक्ति नहीं हैं, उन्होंने चिन्तारहित हो स्वास्थ्य को ठीक करने के लिये छुट्टी ली है। पर जब वे यह बात करते थे उन्हें पता नहीं था कि उनकी यह छुट्टी पार्टी से आखरी विदाई है।

दमे का दौरा और निधन

गंगा बाबू के चले जाने के बाद आचार्य जी को दमें का दौरा हुआ। इस दौरे में ही आचार्यजी ने श्री जयप्रकाश नारायण को लिखा कि राज्यों के पुनर्संघटन के सम्बन्ध में वे प्रधान मन्त्री नेहरू से मिलें। इसी समय उन्होंने उत्तर प्रदेश की विधान सभा

के पार्टी सदस्यों को मशवरा दिया कि वे राज्यसभा की सदस्यता के लिये स्वतन्त्र उम्मीदवार पण्डित हृदयनाथ कुंजरू का समर्थन करें।

इस बार आचार्यजी का स्वास्थ्य बिगड़ता ही चला गया। जब पाँच दिन तक स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं हुआ और आचार्यजी अपने जीवन से बहुत कुछ निराश हो गये, तब डाक्टर रामधर मिश्र ने श्री श्रीप्रकाशजी को सूचना दी और वे अपने दूसरे कार्यक्रम को स्थगित कर परन्दुराई आये। उनके आने पर आचार्यजी ने श्री प्रकाश जी से अकेले में बातें कीं। उन्होंने श्री श्रीप्रकाशजी से अपनी पारिवारिक समस्याओं पर बात करते हुए, पार्टी की परिस्थिति पर भी अपनी समवेदना प्रकट की। फिर इसके बाद डाक्टरों के मशवरे पर वे इरोड लाये गये। पर यहाँ ऐसा दौरा पड़ा कि थोड़ी देर में ही उनका देहावसान हो गया। इस तरह १९ फरवरी सन् १९५६ को सायंकाल पाँच बजकर दस मिनट पर आचार्यजी इस संसार से चल बसे।

शोक

आचार्यजी के निधन से सारे देश में शोक छा गया। उत्तर प्रदेश के लोग तो बेहाल हो गये। २० फरवरी को प्रातः काल शव को कोयम्बटोर लाया गया। वहाँ हवाई अड्डे पर कोयम्बटोर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के कार्यकर्ताओं तथा सूती मिल मजदूरों के प्रतिनिधियों की एक काफी बड़ी भीड़ ने शव पर फूल माला चढ़ाई। तदुपरान्त पण्डित जवाहरलाल नेहरू द्वारा भेजे जहाज पर उनके शव को रखा गया। सायंकाल को चार बजकर अड़तालीस मिनट पर हवाई जहाज लखनऊ के अमौसी हवाई अड्डे पर पहुँचा। वहाँ राज्यपाल के० एम० मुन्शी, मुख्य मन्त्री सम्पूर्णानन्द, रेल मन्त्री लालबहादुर शास्त्री तथा बहुत से अन्य मन्त्री, विधायक, संसद सदस्य कई हजार जनता के साथ उपस्थित थे। वहाँ राज्यपाल आदि ने राज्य की ओर से रीथ चढ़ाये। हवाई अड्डे से शव उनके मकान पर लाया गया। रास्ते में सड़क के दोनों ओर हजारों की संख्या में जनता खड़ी थी और आचार्य जी के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रही थी। उनके निवास स्थान से अर्थी मोतीमहल लायी गयी। रास्ते में क्रिश्चियन कालिज के पास

और लखनऊ विश्वविद्यालय के मालवीय हाल के सामने अर्थी रुकी और वहाँ कालिज और विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने शव पर रीथ (wreath) चढ़ाकर अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। रात्रि के सात बजे अर्थी मोतीमहल पहुँची और वहाँ गोमती के तटपर अपार भीड़ के समक्ष राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री नेहरू, गृह मन्त्री पन्त तथा विभिन्न संस्थाओं की ओर से रीथ चढ़ाये जाने तथा श्री चन्द्रभानु गुप्त के छोटे से भाषण के बाद दाह संस्कार हुआ।

श्रद्धाञ्जलियां

देश भर में शोक सभाएँ हुईं और करीब-करीब सभी प्रतिष्ठित महानुभावों ने इन शोक सभाओं में या अपने वक्तव्यों द्वारा आचार्य जी के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की और उनके व्यक्तित्व, विद्वत्ता और राष्ट्रसेवा की प्रसंशा की। राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसादजी ने आचार्य के निधन पर अपनी संवेदना प्रकट करते हुए कहा कि 'उनकी मृत्यु से देश ने ज्ञान, ईमानदारी कुरबानी, उच्चतम देशभक्ति तथा कर्तव्यपरायणता से सम्पन्न व्यक्ति खो दिया'। उपराष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णनन ने कहा कि 'हमने एक बड़े देशभक्त, एक बड़े नेता और बहुत ही प्यारी हस्ती को खो दिया है। वे अपने आदर्शों, ईमानदारी और निर्णय की स्वतन्त्रता के लिये प्रसिद्ध थे'। प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने राज्य सभा में कहा कि 'नरेन्द्रदेवजी दुर्लभ गुणों की खान थे। उनके समान आत्मबल, मस्तिष्क, बौद्धिक विकास तथा मानसिक ईमानदारी दुर्लभ है'। बंगाल के मुख्यमन्त्री डाक्टर विधान चन्द्र राय ने कहा कि 'उनसे अधिक ईमानदार आदमी मिलना कठिन है'। श्री जयप्रकाश नारायण ने कहा कि 'विश्वव्यापी समाजवाद ने एक बड़ा विचारक नेता खो दिया है'। गृह मन्त्री पण्डित गोविन्द बल्लभ पन्त ने लोक सभा में संवेदना प्रकट करते हुए कहा कि 'आचार्य नरेन्द्र देव हमारी चोटी के नेताओं में से एक थे। वे गुजरती पीढ़ी के प्रतिभा सम्पन्न प्रतिनिधि थे। वे एक सुयोग्य शिक्षाशास्त्री थे, और उनके विभिन्न कार्यक्षेत्र होते हुए भी उनकी प्रमुख कामना देशसेवा तथा जनता का उत्थान ही रही। उन्होंने देश के लिये जीवनभर अपना सर्वस्व दिया। वे सहृदय, साधु तथा महामना थे, जिन्होंने दूसरों

के लिये निःस्वार्थ कार्य किया और कभी भी किसी को कष्ट नहीं पहुँचाया। वे बहुत बड़े व्यक्ति थे। उन्होंने जो कुछ भी किया है वह इतिहास में उन लोगों की प्रेरणा के लिये सदा सुरक्षित रहेगा जो एक आदर्श जीवन बिताते हुए हर अच्छे उद्देश्य के लिये कार्य करना चाहते हैं और अपने को दूसरों की सेवा व उत्थान के लिये तथा जीवन को अच्छा बनाने व सँवारने के लिये अर्पित करना चाहते हैं' कम्यूनिस्ट नेता श्री हीरेन मुकर्जी ने कहा कि 'आचार्यजी निस्पृही थे। आज के संदर्भ में उनके स्थान को भरना किसी दूसरे व्यक्ति के लिये कठिन है'। आचार्य कृपालानीजी ने कहा कि 'वे हमारी पार्टी के शक्तिस्तम्भ थे। उनमें उच्च विद्वत्ता के साथ विनय था। वे सबके मित्र थे। जब उनकी राय दूसरों से नहीं मिलती थी, तब भी वे सबके साथ शिष्टाचार और मैत्री का व्यवहार रखते थे'। अपनी पीढ़ी के 'इस गौरवशाली सुपुत्र की स्मृति' का अभिनन्दन करते हुए प्रजा-सोशलिस्ट पार्टी के प्रसिद्ध नेता श्री सारंगधर दास ने कहा कि 'विभिन्न प्रकार के संघर्षों के इस युग में ऐसा मनुष्य मिलना अत्यन्त दुर्लभ है जो जीवन पर्यन्त वर्गयुद्ध के सिद्धान्त में आस्था रखते हुए भी मानवता की प्रतिमूर्ति हो'। आचार्य विनोबा भावे ने आचार्य नरेन्द्रदेव को परम शान्ति मिले इसकी प्रार्थना करते हुए कहा कि 'उनका जीवन सत्कार्यों से भरा था। वे एक निर्वैर पुरुष थे। उनके हृदय में किसी मनुष्य के लिये कोई दुर्भाव नहीं था। उनके कुछ विचार निश्चित थे, लेकिन साथ साथ प्रतिपक्षियों के लिये भी उनके मन में बड़ा आदर रहता था'।

उत्तर प्रदेश की विधान सभा में मुख्यमन्त्री सम्पूर्णानन्दजी ने उनकी विद्वत्ता और नेतृत्व की सराहना करते हुए कहा कि 'उनसे स्फूर्ति पाकर कितने ही लोग स्वतन्त्रता संग्राम के सैनिक और सेनापति बने'। शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में आचार्यजी की सेवाओं का जिक्र करते हुए सम्पूर्णानन्दजी ने कहा कि 'वे उन इने गिने लोगों में से थे जिन्होंने काशी विद्यापीठ को इस देश की शिक्षा-संस्थाओं में एक अद्वितीय स्थान दिलाया'। उन्होंने यह भी कहा कि 'जिन लोगों ने भारत में समाजवाद को एक विशेष स्थान दिया, भारतीय समाजवाद की क्या रूप-रेखा होना चाहिए, इस चीज को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया,

उन लोगों में नरेन्द्रदेवजी का स्थान सर्वश्रेष्ठ है'। उत्तर प्रदेश की विधान सभा के अध्यक्ष श्री ए० जी० खेर ने कहा कि 'मैं जानता हूँ कि कांग्रेस के सिद्धान्तों में और कार्यशैली में क्रान्तिकारी परिवर्तन उन्होंने ही कराया और उसी का फल मैं समझता हूँ यह हुआ कि बहुजन समाज के बीच में कांग्रेस की प्रतिष्ठा बढ़ी और स्वराज्य प्राप्ति में हमें आसानी हुई। यह उनका ही कार्य था कि कांग्रेस के अन्दर सोशलिस्ट पार्टी बनाकर, उसके अन्दर रहकर कांग्रेस की विचारधारा में उन्होंने परिवर्तन कराया'। खेर साहब ने यह भी कहा कि 'वह मूर्त्ति सदैव हमारे लिये प्रेरणा देती रहेगी और उनके पदचिन्हों पर जो कोई भी हममें से चल सकेंगे वे अपने जीवन का भी कल्याण करेंगे और मैं समझता हूँ कि भारतवर्ष का भी कल्याण कर सकेंगे'।

मद्रास के राज्यपाल तथा नरेन्द्रदेवजी के मित्र श्री श्रीप्रकाशजी ने अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए कहा कि 'आचार्य नरेन्द्रदेव बड़े स्निग्ध और अभिभावी व्यक्ति थे। उनके स्वभाव में अद्वितीय सन्तुलन और स्थिरता थी······वह बड़े विनोदी थे और वाग्विदग्ध भी······मित्र के रूप में वह पर्वत के समान अडिग थे······शिक्षक के रूप में वह अद्वितीय थे······एक विद्वान् के रूप में देखा जाय तो उनका पाण्डित्य अगाध था और जिन विभिन्न विषयों पर उनका अधिकार था, वे अत्यन्त व्यवस्थित और अपरिमित ज्ञान के विषय थे। प्रत्येक विषय में उनकी समान गति थी। राजनीतिज्ञ के रूप में उनमें सचाई और ईमानदारी की पराकाष्ठा देखने को मिलती थी। दूसरे के मत के प्रति वह सहिष्णु थे। वह उसे भी माफ कर देते थे, जिसके बारे में वह जानते थे कि उसने उन्हें और उनके ध्येय को आघात पहुँचाया है। परन्तु वह अपना कर्मपथ सदा निर्धारित कर लेते थे और भय, पक्षपात, स्नेह एवं मनोमालिन्य से ऊपर उठकर जिस राह को ठीक समझते उसी पर निर्द्वन्द्व होकर चलते थे। उनके देहावसान से देश ने एक महान् देशभक्त, संसार ने एक प्रकाण्ड विद्वान् और उनके साथियों तथा मित्रों ने उदारता, सरलता और स्नेह की जीवन्त प्रतिमा को खो दिया है। दूसरों की सेवा में अपना जीवन होम देने वाले महात्मा के रूप में उनकी स्मृति और दृष्टान्त सदा जीवित रहेंगे। जिसके हम हजारों लाखों लोग ऋणी हैं, पर जो

किसी का ऋणी न था; जिसने सदा देना ही जाना, लेना कभी नहीं। मुझे तो आशा नहीं कि मैं कभी फिर वैसे व्यक्ति के दर्शन कर पाऊँगा'।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी की उत्तर प्रदेश शाखा के अध्यक्ष प्रोफेसर राजाराम शास्त्री ने अपने वक्तव्य में कहा कि 'आचार्यजी की मृत्यु से देश ने अपनी एकता के प्रतीक को, जनतन्त्र के सन्तरी को और भारतीय समाजवाद के जनक को खो दिया है। प्रगतिशील ज्ञान के वे मूर्त्तिमान् थे। भारतीय संस्कृति के संरक्षण और विकास के नेतृत्व को जो क्षति पहुँची है उसकी पूर्ति कठिन ही दिखाई देती है। कर्म के क्षेत्र में वे एक शहीद हैं। कुछ ही दिन हुए जब उन्होंने राज्य पुनर्निर्माण कमेटी की रिपोर्ट के परिणामों के संदर्भ में देश की एकता को बनाये रखने के लिये एक बहुमूल्य नेतृत्व दिया था। भारतीय नवयुवकों ने वास्तव में अपना सबसे अच्छा मित्र, दार्शनिक और नेता खो दिया है। इस सर्वतोमुखी विद्वान् ने विभिन्न क्षेत्रों में जो बहुमूल्य योगदान दिया है उसका मूल्यांकन कठिन है। बहुत-सी कठिनाइयों के बीच बौद्ध धर्म दर्शन की रूप-रेखा पर हिन्दी में अपनी पुस्तक को हाल में ही वे समाप्त कर पाये थे। उन्होंने समाजवादी संगठन को एक संकट की परिस्थिति में लेकिन उसके उद्गम और विकास का मार्ग बताकर छोड़ा है। समाजवाद से सम्बन्धित सभी लोग उनके निधन से क्षुब्ध होंगे। इस देश में करोड़ों किसान, मजदूर और गरीब अपने को दीन अनुभव करेंगे। इस शोक के अवसर पर हमें उनके परिवार की याद आती है और हम आशा करते हैं कि उनके दुःख में इतने लोग दुःखी हैं यह उन्हें दुःख में ढाढ़स देगा। मैं मृतात्मा को अपनी अन्तिम श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ'।

२१. आचार्य जी का व्यक्तित्व

युगपुरुष

आचार्य नरेन्द्रदेव युगपुरुष थे। संसार के दूसरे युगपुरुषों की तरह वे भी अपनी पीढ़ी के प्रतिनिधि थे, अपने में अपनी पीढ़ी की आकाँक्षाओं को प्रतिबिम्बित करते थे। उनका जीवन और व्यक्तित्व आस पास के समाज से इतना समरस था कि सामाजिक इतिहास से अलग क्या था यह बताना कठिन है। उन पर समाज की अवस्था की, युग की प्रेरणाओं और चिन्तन की, छाप थी। उनके जीवन में जो ओज, जो गतिशीलता, जो विभूतिमत्ता थी वह सामाजिक पार्श्वभूमि में ही प्रकट होती थी। इस पार्श्वभूमि में ही उनके व्यक्तित्व को समझा और आँका जा सकता है। पर उनके जीवन पर ज्ञान और परिस्थिति के स्थिर तत्त्वों से कहीं अधिक उनके प्रगतिशील-तत्त्वों और क्रान्तिकारी सम्भावनाओं का प्रभाव था। बहुजन समाज की आकाँक्षाओं की पूर्ति के लिये इन प्रगतिशील तत्त्वों का समुचित प्रयोग ही उनके अध्ययन, चिन्तन और मनन का विषय और उनके सार्वजनिक जीवन का उद्देश्य था। शक्तिशाली क्रान्तिकारी प्रेरणाओं से अनुप्राणित विद्याचरणसम्पन्न तपस्वी जीवन अन्याय, अत्याचार, अनाचार तथा विघ्नबाधाओं से निरन्तर संघर्ष करते हुए युगद्रष्टा के रूप में विकसित होता है। वह नवयुग का संदेश सुनाता, नवयुग की रूपरेखा उपस्थित करता, नवसंस्कृति का चित्रण करता और नवयुग के पथिकों का मार्गदर्शन करता है।

आचार्यजी राष्ट्र की महान् विभूति थे। उन्होंने अपने स्वास्थ्य और स्वार्थ की चिन्ता छोड़ निष्काम भाव से चालीस वर्ष तक राष्ट्र तथा शोषित जनता की सेवा की। वे अन्याय के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने सारा जीवन अन्याय का विरोध किया। तीस वर्ष से अधिक साम्राज्यशाही से संघर्ष किया और बीस वर्ष से अधिक जनता के शोषण का विरोध किया। अन्याय करना और अन्याय को सहन करना दोनों ही उन्हें अखरते थे। अन्याय के विरुद्ध क्रान्तिकारी विद्रोह की भावना ही उनके नैतिक जीवन का आधार था।

आचार्यजी का जीवन बहुत से सद्‌गुणों का समन्वय था। क्रान्तिकारी भावना और मानवता, शौर्य और करुणा, दृढ़ता और कोमलता, महावाकाँक्षा और निस्पृहता, तत्परता और निर्लिप्तता, राष्ट्रीय भावना और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण, विद्वत्ता और सरलता, निर्भीकता और मृदुता, आदर्शनिष्ठा और व्यावहारिकता जैसे सद्‌गुणों के अतुलनीय समन्वय से उनका जीवन विभूषित था। उत्साह, साहस और कर्तव्यपरायणता के साथ साथ सादगी, सहृदयता और मैत्री तथा गम्भीरता के साथ साथ बच्चों जैसी चुलबुलाहट उनके जीवन की शोभा थी। उनके शील, शिष्टता और सौजन्य में बहुत आकर्षण था। सभी उन पर मुग्ध थे। कट्टर विरोधी भी उनके प्रशंसक थे, अपरिचित भी सम्पर्क में आने पर उनसे गद्‌गद्‌ हो जाते थे।

विनय और निस्पृहता

आचार्यजी का विनय और निस्पृहता बेमिसाल थी। बड़े बड़े राजनीतिक पुरुषों में भी इस प्रकार की निस्पृहता विरले ही पायी जाती है। बड़ी बड़ी कुर्बानी करने वाले नेता भी अपने अहम्‌ की आहुति नहीं दे पाते। जैसे-जैसे वे ऊंचे उठते जाते हैं उनका अहम्‌ भी बढ़ता जाता है, सारे समाज पर छा जाने का प्रयास करता है। राजनीतिक नेता साधारणतः दल और समाज दोनों पर अपना प्रभुत्व बनाये रखना देशहित के निमित्त अपना धर्म और अधिकार समझते हैं तथा उनके लिये सदा सचेष्ट रहते हैं। नाटकीय और विज्ञापनीय ढ़ंगों का भी प्रयोग करते हैं। वे आगे चलकर अपने को सारे समाज से भी बड़ा समझने लगते हैं, केवल अपने को ही शानदार और समाज के लिये अपरिहार्य (indispensible) मानने लगते हैं और साथियों के साथ बराबरी का व्यवहार अनावश्यक समझते हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव इन बातों से बहुत दूर थे। उनमें विनय और नेतृत्व का अद्‌भुत समन्वय था। वे साथियों का नेतृत्व भी करते, उनसे विनती भी करते और कभी कभी तो हाथ जोड़कर जनसेवा की प्रार्थना करते। उनमें आत्माभिमान जरूर था, पर उनके विनय का उनके अहम्‌ पर पूरा अधिकार था। उन्होंने कभी भी अपने को समाज से ऊंचा नहीं समझा, सदा अपने साथियों की मानमर्यादा का ध्यान रखा, अपने को आगे बढ़ाने के बजाय अपने साथियों को

आगे बढ़ाने की कोशिश की, उनकी शान प्रतिष्ठा को ही अपनी शान और प्रतिष्ठा समझा। ऐसा नहीं कि उन्हें कभी क्रोध आता ही न हो, पर दूसरों का क्रोध जितना उन्होंने बर्दाश्त किया, उतना क्रोध उन्होंने स्वयं दूसरों पर नहीं किया और जैसा वे स्वयं कहते थे क्रोध आ जाने पर वे अपने क्रोध पर घन्टों सन्ताप करते रहते थे।

उनके आचार व्यवहार में नाटकीयता और विज्ञापन का अभाव था। प्रतिभाशाली वक्ता होते हुए भी वे लगभग बारह वर्ष तक राष्ट्रीय कांग्रेस और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशनों में यह समझकर चुप रहे कि किन्हीं दूसरे सदस्यों ने उनके विचारों को सभा के सामने रख दिया था। सन् १९३४ में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बन जाने पर उन्होंने अपने मित्रों के आग्रह पर देश की राजनीति में आगे बढ़कर हिस्सा लिया, देश के सामने अपने विचार रखे तथा अपने सिद्धान्तों को समाजव्यापी और कांग्रेस में वाम पक्षीय शक्तियों को सबल बनाने की कोशिश की। इस जमाने में सन् १९३६ में वे प्रान्तीय कांग्रेस के अध्यक्ष और कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य बने और उनकी प्रतिभा देश में फैली। उनके अपने प्रान्त में प्रगतिशील शक्तियों के संगठन ने गुटबन्दी और गुटसंघर्ष का रूप धारण किया। इस संघर्ष में कभी-कभी नरेन्द्रदेवजी की राजनीति उनकी निस्पृहता पर हावी होती दिखाई देती थी। पर इस जमाने में भी आचार्यजी निस्पृही ही बने रहे। यह इस बात से साफ हो जाता है कि जब सन् १९३७ में कांग्रेस ने प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल बनाने का निश्चय किया तब जहाँ उनके कई वामपक्षीय साथी और समाजवादी मित्रों ने राजसत्ता की ओर रुख किया, आचार्यजी ने मन्त्रिमण्डल में शामिल होने से इनकार कर दिया। इसमें संदेह नहीं कि यदि वे सत्ता को सिद्धान्तों पर प्राथमिकता देते, राजनीति को निस्पृहता पर हावी होने देते तो वे कांग्रेस के अध्यक्ष और अपने प्रदेश के मुख्यमन्त्री और केन्द्र के मन्त्री बन गये होते। पर पद और वैभव की लालसा से मुक्त आचार्यजी को राजसत्ता अपनी ओर नहीं खींच सकी। वे अपने सिद्धान्तों पर अडिग रहे।

जनतान्त्रिक व्यवहार

आचार्यजी का व्यवहार जनतान्त्रिक था। उनमें न तो विद्वत्ता का

दम्भ था और न नेतागीरी की अकड़। वे अपने व्यक्तित्व को समेट कर सब स्तर के कार्यकर्ताओं से मानवीय ढंग से सहयोगी की तरह मिलते, सबके मान और सेवा का आदर करते, सबके दुःख दर्द में शरीक होते, सबकी बात ध्यान से सुनते, अपने विचार उनके सामने रखते और अन्त में संस्था के निर्णय के आगे सिर झुकाते। वे संस्था की मानमर्यादा की रक्षा और वृद्धि अपना कर्तव्य समझते थे। उन्होंने कभी भी अपने को संस्था से ऊँचा नहीं समझा। उनके विचार में 'किसी संगठन का महत्त्व उसके उच्च नेताओं द्वारा नहीं, बल्कि उसके साधारण कार्यकर्ताओं द्वारा आँका जाता है'। उनका सहज स्वभाव उन्हें कार्यकर्ताओं की भूलों, कमियों और कमजोरियों की उपेक्षा करने को प्रेरित करता था, पर संस्था और आदर्शों के प्रति गद्दारी को देर तक सहन करना उनके लिये कठिन होता था और उनकी रक्षा के लिये वे कभी-कभी वज्र के समान कठोर हो जाते थे।

वे अपने उपदेशों से कार्यकर्ताओं को जीवन के उच्च आदर्शों और उनके कर्तव्यों का ज्ञान कराते थे। पर उपदेशों से कहीं अधिक वे अपने व्यवहार से उन्हें मानवीय जनतान्त्रिक व्यवहार की सीख देते थे और उनके जीवन को उच्च सामाजिक आदर्शों और भावनाओं से अनुप्राणित करते थे। साथी गंगाशरण सिंह के शब्दों में 'आचार्यजी का जीवन उस निर्धूम प्रकाशपुंज की तरह था जो आलोक के साथ-साथ दिल और दिमाग की पस्ती और अंधकार को दूर कर बौद्धिक और शारीरिक दोनों प्रकार की स्फूर्ति और गतिशीलता प्रदान करता था। जैसे एक जलते दीपक की दीपशिखा के सम्पर्क में आने से बिना जले हुये दीपक की बत्ती जल उठती है, उसी प्रकार उनके सम्पर्क में आने पर मनुष्य आलोकमय हो उठता था'।

बहुजन समाज के प्रति उनकी आस्था थी, सामान्यजन के प्रति उनका आदर था, जनहितवृद्धि उनके जीवन का लक्ष्य था। वे जनमत का सदा ध्यान रखते थे। जनजागृति पर तथा जनता की विधायक शक्ति पर उनका पूरा विश्वास था। उनका निश्चित मत था कि 'जनता को सुसंस्कृत बनाने का महान् उद्योग ही लोकतन्त्र की स्थापना में सच्चा सहायक हो सकता है'। इस काम में वे निरन्तर लगे रहते थे।

युवकों के मार्ग दर्शक

आचार्य नरेन्द्रदेव युवकों के शिक्षक और मार्ग दर्शक के साथ साथ उनके हृदय सम्राट् थे। उन्होंने अपने जीवन और भावनाओं को युवकों की आकाँक्षाओं और हितों से आत्मसात कर लिया था और उनकी सर्वतोमुखी अभिवृद्धि उनके जीवन का एक महान् व्रत था। वे युवकों के कष्टों में दुःखी, उनकी गलतियों से चिन्तित, उनके शुभ कामों से सुखी और उनके अदम्य साहस से स्वयं अनुप्राणित होते थे। आचार्यजी की सहानुभूति और सद्भावना हर परिस्थिति में नवयुवकों के साथ थी। उनका हितचिन्तन, उनका मार्गदर्शन आचार्यजी के नेतृत्व का एक विशिष्ट अंग था। अपने बहुधंधी सार्वजनिक जीवन के कारण आचार्यजी को अपने बच्चों के कष्टों और हितों की उपेक्षा करनी पड़ती थी, पर समाज के नवयुवकों के कष्टों और हितों की उपेक्षा वे एक महान् अपराध समझते थे और उनके कष्ट निवारण और हितवृद्धि के लिये वे सदा तैयार रहते थे। नवयुवकों की शिक्षा-दीक्षा तथा मार्गदर्शन में ही वे जीवन की अन्तिम घड़ियाँ लगाना चाहते थे। विद्यार्थियों से उनका विशेष स्नेह था, गरीब विद्यार्थियों की सहायता पहुँचाने में उन्हें विशेष सन्तोष होता था। राष्ट्र की महानाकाँक्षाओं से प्रेरित उनका नेतृत्व नवयुवकों को सदा सामाजिक आदर्शों और मानव मूल्यों की ओर संकेत करता, उन्हें समाजोपयोगी विद्याचरण सम्पन्न बनने की दीक्षा देता और उन्हें राष्ट्रसेवा के लिये प्रेरित करता था। उनका मार्गदर्शन नवयुवकों के लिये एक बड़ी देन थी। उनके व्यक्तित्व और नेतृत्व विशेषत उनकी सहानुभूति और सद्भावना से आकर्षित नवयुवक उन पर लट्टू थे। जो नवयुवक उनकी विचारधारा से सहमत नहीं थे, वे भी उनके आगे नतमस्तक थे। उनके प्रति विद्यार्थी अतुलनीय श्रद्धा और विश्वास रखते थे। इस युग में बहुत कम नेता और कुलपति हुए जो आचार्यजी की तरह विद्यार्थियों के हृदय में घर कर पाये हों। आचार्यजी को दुःख इतना जरूर था कि जब तक वे लखनऊ विश्वविद्यालय और बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के वाइसचान्सलर रहे विद्यार्थी ठीक रहे। पर उनके चले जाने पर उन विश्वविद्यालयों की दशा फिर बिगड़ने लगी और उनके कार्य का प्रभाव टिकाऊ साबित नहीं हुआ।

शिक्षक

आचार्य नरेन्द्रदेव का मत था कि एक शिक्षक में अपने विषय के समुचित ज्ञान के साथ साथ सदाचार, समाजहित प्रवृत्ति, विद्यार्थियों के प्रति सद्भावना, नवीन उद्देश्यों और आदर्शों पर विश्वास और आस्था तथा नये समाज की व्यवस्था में योगदान भी जरूरी है। आचार्यजी इन सभी गुणों से सम्पन्न और विभूषित थे। वे सच्चे मानों में शिक्षक थे। काशी विद्यापीठ में उन्होंने ज्ञान के साथ कर्म का भी पाठ पढ़ाया, विद्यार्थियों को समाज सेवा की दीक्षा दी और उनके साथ नये समाज को बनाने के लिये समय आने पर साम्राज्यशाही से संघर्ष किया। उनका और विद्यापीठ का आदर्श सम्बन्ध था। विद्यापीठ को आचार्यजी सरीखे अध्यापक पर गर्व था और वे भी एक बड़े नेता बन जाने पर भी विद्यापीठ को अपना मानते रहे और विद्यापीठ के अपने काम को 'स्थायी' समझते रहे।

विद्वान्

आचार्यजी उच्च कोटि के विद्वान, विचारक, शिक्षक, लेखक और वक्ता थे। ज्ञान के क्षेत्र में वह पूरब-पश्चिम के भेद को नहीं मानते थे। ऐसा करना वह ज्ञान को सीमाओं में बाँधने की तरह गर्हित समझते थे। बौद्ध दर्शन और शील के अध्ययन अध्यापन में उन्हें विशेष आनन्द आता था। बौद्ध दर्शन की व्याख्या और विश्लेषण में वे अन्त तक लगे रहे। इसके लिये उन्होंने अभिधर्म कोश का फ्रान्सीसी भाषा से हिन्दी में अनुवाद किया और बौद्ध दर्शन और धर्म पर एक प्रमाणिक पुस्तक लिखी। बौद्ध दर्शन में भी महायान धर्म के विश्वजनीन सिद्धान्तों ने उन्हें विशेष तौर पर आकर्षित किया था। निःसन्देह उनका जीवन उनसे अनुप्राणित था, उनके व्यक्तित्व पर उनकी छाप थी। बौद्ध और जैन साहित्य को वे संस्कृतवाङ्मय का और भारतीय संस्कृति का अंग समझते थे और उनका अध्ययन वे भारतीय संस्कृति के समुचित ज्ञान के लिये जरूरी समझते थे। भारतीय दर्शन के सभी अंगों का उन्होंने अध्ययन और मनन किया था। भारतीय नीतिशास्त्र और समाजशास्त्र का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था और उनके विश्वजनीन सिद्धान्तों और दीर्घकालीन मूल्यों का उन्होंने गहरा मनन और चिन्तन किया था

और उन्हें अपने जीवन में आत्मसात करने की भरसक चेष्टा की थी। भारतीय संस्कृति और शील को जाने बिना आचार्यजी के व्यक्तित्व का समझना नामुमकिन है।

आचार्यजी ने पुरातत्त्व तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति के साथ साथ यूरोप के अर्वाचीन इतिहास, संस्कृति, जन आन्दोलनों तथा विचारों का भी अध्ययन किया था। जब वह म्योर सन्ट्रेल कालिज के विद्यार्थी थे तभी उन्होंने इटली के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी नेता मेरसनी के सभी उपलब्ध लेखों और पुस्तकों को पढ़ा था और उनसे क्रान्तिकारिता और व्यापक राष्ट्रीयता की प्रेरणा और शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने यूरोप के दर्शन और नीतिशास्त्र का अध्ययन किया था और उससे किसी हद तक प्रभावित भी हुए थे। मिसाल के तौर पर काँट की तरह आचार्यजी भी ज्ञान को आन्तरिक चेतना और बाह्य परिस्थिति का सक्रिय संघात समझते थे, और दार्शनिक ग्रीन की तरह किसी कार्य की नैतिकता की परख परिणाम और प्रेरणा (motive) दोनों से करते थे। पाश्चात्य वाङ्मय में मार्क्सवाद का आचार्यजी ने गहरा अध्ययन, मनन, और चिन्तन किया था। बीस वर्ष से अधिक वे मार्क्सवाद के वैज्ञानिक मानवीय और जनतान्त्रिक तत्त्वों पर आश्रित जनतान्त्रिक समाजवाद का प्रसार करते रहे।

चिन्तन

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के वीर सेनानी नरेन्द्रदेव ने उसके इतिहास, गतिविधि का चिन्तन एशिया के स्वतन्त्रता आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में किया था। वह एशिया के विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलनों में एक धारा के प्रवाह का अनुभव करते थे और भारतीय आन्दोलन के समुचित ज्ञान के लिये एशिया के अन्य आन्दोलनों का ज्ञान भी जरूरी समझते थे। इस देश में शायद ही किसी दूसरे विद्वान् या नेता ने एशिया की गतिविधि की पार्श्वभूमि में भारत के अर्वाचीन इतिहास का ऐसा सुन्दर अध्ययन या अध्यापन किया हो। देश के अधिकांश विद्वान् राष्ट्रीय आन्दोलन को कतिपय नेताओं के नेतृत्व का परिणाम समझते हैं और इन नेताओं के आदेश और कार्यों के ज्ञान और विश्लेषण द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधि तथा प्रगति को समझने की कोशिश करते

हैं। आचार्यजी नेताओं के नेतृत्व के महत्त्व को तसलीम करते थे और जानते थे कि सही नेतृत्व के अभाव में राष्ट्रीय अन्दोलन शिथिल भी पड़ सकता है, गलत मार्ग पर भी चला जा सकता है। पर वह जन-आन्दोलन के रूप में राष्ट्रीय आन्दोलन का दर्शन करते थे। उनके विचार में राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधि, रूपरेखा बहुत हद तक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति की पार्श्वभूमि में जनजागृति, जन-प्रेरणाओं, जन-आकांक्षाओं और जनशक्ति पर निर्भर होती है और जनता की जागृति, प्रेरणा और आकाँक्षा पर आर्थिक और सामाजिक स्थिति का गहरा प्रभाव होता है। इस दृष्टिकोण से ही उन्होंने भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का अध्ययन अध्यापन किया, उस पर चिन्तन, मनन किया और उसे दिशा देने की कोशिश की। वे अपने विद्यार्थियों को राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास ही नहीं पढ़ाते थे उन्हें उसमें भाग लेना भी सिखाते थे। इस तरह उनके अध्यापन में गुरु और नेता दोनों का काम साथ-साथ चलता था।

दार्शनिक राजनीतिज्ञ

आचार्यजी की पीढ़ी के कई विद्वान् राष्ट्रीय आन्दोलन और मार्क्सवाद को छोड़कर बाकी विषयों में से किसी एक दो विषय में आचार्यजी से अधिक ज्ञान जरूर रखते थे। फिर भी प्राचीन भारत और अर्वाचीन यूरोप की इतनी विद्याओं का इतना व्यापक ज्ञान भारत में शायद ही किसी राजनीतिक नेता का हो, विद्वानों में भी बिरले ही मिलेगा। वह अवश्य ही दार्शनिक राजनीतिज्ञ (Philosopher Statesman) थे। उनके ज्ञान के सम्बन्ध में साथी रामवृक्ष बेनीपुरी जी ने ठीक ही कहा है कि "ज्ञान की विविध धाराएँ उनमें आकर इस तरह समाहित हुई थीं जिस प्रकार सागर में नदियाँ और ज्ञान की किसी धारा के सम्बन्ध में उनसे बातें की जाएँ लगता था आप किसी वायुयान चालक की बगल में बैठे हैं, जो आपको ऊँचे से ऊँचा ले जाकर अन्तरिक्ष के उन अनेक रहस्यों को प्रत्यक्ष दिखला रहा है, जिसकी कल्पना तक हमारे लिये सम्भव नहीं है। यदि विविध विद्याओं का उनका ज्ञान समुद्र के जल की तरह समरस था, तो उसका स्वाद और प्रभाव गंगा जल की तरह मीठा, शीतल, उत्पादक और जीवन वर्धक था। गो कभी कभी उनका ज्ञान समुद्र की गड़गड़ाहट का रूप धारण

कर लेता था, पर साधारणतः उसकी गति तेज, स्पष्ट और मधुर होती थी। जहाँ उनका ज्ञान श्रोता के विवेक को ऊँचा उठाकर उसे अन्तरिक्ष के रहस्यों की जानकारी कराता था, वहाँ वह श्रोता के अन्तःस्थल में घुसकर उनके अन्तःकरण को दीप्यमान कर देता था और उसकी सद्-प्रेरणाओं को जगा देता था'।

विशिष्टता

परिपक्वता, समाजोपयोगिता और प्रगतिशीलता उनके ज्ञान और चिन्तन की विशेषताएँ थीं। वे जब पढ़ते थे तब साथ साथ अपने विवेक से पाठ्य विषय की परख भी करते जाते थे और जरूरत पड़ने पर चिन्तन भी करते थे। इस तरह वे ग्राह्य विचार को ग्रहण कर उसे अपने ज्ञान भंडार में उचित स्थान देते थे, उसे अपने जीवन का अंग बना लेते थे। अच्छा पका भोजन खूब पच जाने पर एक रस, एक रूप, एक रंग हो जाता है। यही दशा आचार्य जी के ज्ञान की थी। विविध स्थानों से इकठ्ठा किये ज्ञान को उन्होंने अपने विवेक और अनुभव से मन्थन करके चिन्तन और मनन से पका कर एक रस कर लिया था। उनके विचारों में विरोधाभास बहुत कम, शायद बिरले ही, मिलता था। उनकी विचार धारा में सर्वतोमुखी प्रगतिशीलता और निरन्तर विकास था। यदि किसी विषय पर उनके पुराने और नये लेखों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो उनमें विचारों का विकास मिल सकता हैं, विरोध मिलना बहुत कठिन है।

नरेन्द्रदेवजी दो युगों के संक्रमण काल के विचारक थे। इस काल के बहुत से विचारकों के विचार भी बहुत हद तक संक्रमणात्मक हो जाते हैं, बदलती दुनिया के साथ साथ बदलते हैं, कभी एक बात का समर्थन करते हैं तो कभी दूसरी बात का समर्थन करते हैं, किसी एक विषय में प्रगतिशील तो किसी दूसरे विषय में प्रतिक्रियावादी होते हैं। इस संक्रमणकाल में शक्तियों का सन्तुलन भी बदलता रहता है, कभी एक शक्ति तो कभी दूसरी शक्ति समाज पर हावी हो जाती है, परिस्थितियों के वशीभूत विचारक बलवती शक्ति के साथ हो लेते हैं, उसका गुणगान करने लगते हैं। इस काल के कुछ विचारक बलवती शक्ति के दोषों से क्षुब्ध हो उनकी प्रतिक्रिया के प्रयास में अपना

सन्तुलन खो देते है, अपने पुराने विचारों को तिलाञ्जलि दे किन्हीं दूसरे विचारों या मार्ग की खोज में भटकने लगते हैं या मानव के भविष्य पर से ही विश्वास उठा लेते हैं। यह कोई बात भी आचार्यजी पर लागू नहीं होती। उन्होंने बड़े सोचकर विचारों को अपनाया, मार्ग को पकड़ा, परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अपने ज्ञान को समाजहित में लगाया, पर बदलती दुनिया को अपने ज्ञान पर हावी नहीं होने दिया, जिस मार्ग को पकड़ा उस पर आखिर दम तक चलते रहे, जिस सिद्धान्त को ठीक समझा उस पर अडिग रहे और देश के लिये विरोधी तत्त्वों से रहित जीवन-दर्शन छोड़ गये।

विचार और आचार का समन्वय

आचार्यजी कहा करते थे कि 'विचार के लिये आचार की कसौटी तथा भावना और समाजहित बुद्धि का आधार चाहिए'। यह उनका स्वयं सिद्ध सिद्धान्त था। उनके विचारों को आचार की कसौटी पर परखा जा सकता है, समाजहित की दृष्टि से उनकी जांच की जा सकती है और सद्भावना की उसमें खोज की जा सकती है। वे इन सभी परीक्षाओं में सफल सिद्ध होंगे। उनके विचार और आचार में मेल था। जिन बातों को वे ठीक समझते थे उन्हीं को प्रतिपादित करते थे, उन्हीं पर चलते थे। उनके करीब करीब सभी विचार उनके अपने आचार व्यवहार से पुष्ट थे। संसार के करीब करीब सभी मनोवैज्ञानिकों की तरह आचार्यजी भी विवेक और भावना के योग को जरूरी समझते थे और उनके विचारों में यह योग अवश्य पाया जाता है। उनका चिन्तन और मनन सद्भावनाओं से प्रेरित और अनुप्राणित था और उनके विचार जनहित की भावना से ओतप्रोत थे, विवेक के साथ साथ सद्भावना भी उनका आधार था। आचार्यजी का अध्ययन सोद्देश्य था। उनका निश्चित मत था कि ज्ञान जीवन के लिये है, जीवन के लक्ष्य की सिद्धि ही उसका उद्देश्य है। उनका यह भी विचार था कि जीवन के लक्ष्य की सिद्धि के लिये समाजहित की पुष्टि जरूरी है। वे जीवन के लिये आजीविका भी जरूरी समझते थे और अर्थकरी विद्या के महत्त्व को तसलीम करते थे, उसकी समुचित व्यवस्था पर जोर देते थे। पर अर्थकरी विद्या में उनकी कोई निजी दिलचस्पी नहीं थी समाज का हित ही उनके अपने जीवन का

उद्देश्य था और इस उद्देश्य पर ही उनके विचार, विवेक और ज्ञान आधारित थे। वे तो अर्थकरी विद्या को भी समाजहित पर आधारित करना चाहते थे, क्योंकि उनके विचार में समाजहित की पुष्टि ही जीविका के साधनों का सही आधार है। विवेक, चिन्तन और मनन के साथ साथ आचरण, सद्भावना और समाजहित का योग ही आचार्यजी के विचारों का बल था।

लेखक और वक्ता

आचार्य जी की वाणी और लेखनी में बड़ी शक्ति थी। उनकी प्रतिभा में बड़ा आकर्षण और प्रभाव था। वाणी और लेखनी की यह शक्ति उनके प्रवाह और लालित्य के साथ-साथ आचार्यजी के व्यक्तित्व में थी। उनके लेख और भाषण उनकी सद्भावना से अनुप्राणित होते थे, युग के सामाजिक आदर्शों के प्रतीक होते थे। उनमें उनकी विद्वत्ता के साथ साथ उनकी भावनाओं की अभिव्यक्ति होती थी। उनके जीवन में आचार, व्यवहार और विचार का जो अद्भुत समन्वय था वही उनकी वाणी और लेखनी की प्रतिभा का मूल स्रोत था। प्रचार उनका व्यापार नहीं, बल्कि उनके जीवन के लक्ष्य का एक साधन था। उन्हें नयी बात कहने में आनन्द आता था, उनके प्रत्येक भाषण में कोई न कोई नयी बात जरूर होती थी। पर वे मौलिकता के फेर में नहीं थे, मौलिकता को अपने जीवन का लक्ष्य नहीं समझते थे। वे जानते थे कि सजीव विचारों और अनुभवों का व्यावहारिक समन्वय ही रचनात्मक विचारों के विकास की प्रक्रिया है। उनका प्रत्येक लेख और भाषण प्रामणिक विचारों और सुनिश्चित अनुभवों का समन्वय होता था। उनके विचार परिपक्व, गतिशील, प्रगतिशील और क्रियात्मक होते थे। आचार्यजी को भाषा के लालित्य और प्रवाह में आनन्द आता था। उन्हें भाषा की खिचड़ी पसन्द नहीं थी। वे जिस भाषा में बोलना या लिखना शुरू करते थे, उस भाषा के शब्दों का ही प्रयोग करते थे। उनके भाषण का ढंग बड़ा रोचक होता था। गो उनकी शैली और उनका शब्द विन्यास जनसाधारण के लिये जटिल होता था, पर उनमें शब्दों के मायाजाल का अभाव होता था। वे शब्द पाण्डित्य के विरोधी थे, वाक्यों के चक्र को विद्वत्ता और मौलिकता नहीं समझते थे। विचारों को प्रतिपादित करने के बजाय फिक़्रेबाजी के जरिए

जनता को अनुप्राणित करना वे बेकार समझते थे। वे कहा करते थे कि फिक्रे गढ़ना कोई मौलिकता नहीं है।

साहित्यिक

'जीवन के केन्द्र में मानव को प्रतिष्ठित करके चलने वाला साहित्य' ही आचार्यजी की दृष्टि में प्रगतिशील साहित्य था। वे उसके सृजन के लिये विश्वव्यापी जीवन दृष्टिकोण जरूरी समझते थे। वे प्रगतिशील साहित्यिक का कर्तव्य समझते थे कि वह अतीत के 'साधक तत्त्वों' को ग्रहण करे, 'बाधक तत्त्वों का परित्याग करे', 'जीवन शक्तियों और समस्याओं का गहराई से अध्ययन करे, समाज के वर्तमान रूप का चित्रण करे, जनता की मूक अभिलाषाओं को वाणी दे, इतिहास की जीवन दायनी शक्तियों का समर्थन करते हुए जनता का मार्ग दर्शन करे'। आचार्यजी में यह सभी गुण मौजूद थे। उनमें अवश्य ही उच्चकोटि के प्रगतिशील साहित्यिक की क्षमता थी। आचार्यजी का विचार था कि 'जीवन संघर्ष से प्रथक् रहकर सच्चे और प्रगतिशील साहित्य की सृष्टि सम्भव नहीं है। परन्तु संघर्ष के सम्बन्ध में निष्पक्ष सम्मति बना सकने और साहित्य सृजन के लिये अवकाश प्राप्त करने के लिये संघर्ष में सक्रिय भाग लेने से कलाकार को बचना पड़ता है'। राजनीति ही आचार्य जी की मूल प्रेरणा थी। वे अपने को राजनीतिक संघर्ष से अलग नहीं रख सकते थे। इसलिये वे स्वयं प्रगतिशील साहित्य का सृजन नहीं कर सके थे। वे यह भी मानते थे कि जनशिक्षा के लिये ऐसे साहित्य की जरूरत है जिसे जनसाधारण आसानी से समझ सके। वे स्वयं यह नहीं कर पाये। शायद उन्होंने इसकी कोशिश ही नहीं की। उनके विचार स्पष्ट होते थे, पर भाषा अवश्य कठिन होती थी।

मानव

आचार्यजी ने बहुत से क्षेत्रों में काम किया और सभी क्षेत्रों में ख्याति प्राप्त की। पर उनके मानव की प्रतिष्ठा उनकी सब ख्यातियों से अधिक व्यापक थी। मानव नरेन्द्रदेव सबको प्रिय था, उनके विरोधी उनके व्यक्तिगत व्यवहार के प्रशंसक थे। आचार्यजी मानव व्यक्तित्व का आदर करते, हरेक में मानव का दर्शन करते, छोटे से छोटे से भी मान-

योचित ढंग से मिलते थे, जो जितना छोटा होता था उससे उतना ही अधिक स्नेह करते थे, अपने नौकरों से बच्चों जैसा प्रेम करते थे। उनके पास सब कोटि के लोग आते थे, एक दरबार सा लगा रहता था। वे घन्टों उन्हें अपनी कथा व्यथा सुनाते रहते। नरेन्द्रदेवजी सबका स्वागत करते, सबकी कुशल क्षेम पूछते, सबसे प्रेम से मिलते, सबकी बात शान्ति से सुनते और जरूरत पड़ने पर थोड़े से शब्दों में नेक सलाह भी दे देते। उनके कई घनिष्ट मित्र समझते थे कि वे अपना समय बरबाद करते हैं। पर उनका विचार था कि सबके कष्टों को दूर करना किसी के लिये सम्भव नहीं, अगर काम न भी कर सको तो भी बात सुनना उचित ही है, उससे दुःख पाने वाले को कुछ संतोष होता ही है। संकोच बस उन्हें अनर्गल और बेतुकी बातें भी सुननी पड़ती थीं। यह पूछने पर कि आप इन्हें कैसे सहन करते हैं, वे कहते कि बहुत कष्ट होता है, पर क्रोध करने से भी क्या लाभ। कष्ट सहकर भी बेकार आदमी के साथ सौजन्य का पालन करना वे अपना धर्म समझते थे। उन्हें जब यह सलाह दी गयी कि वे प्रत्येक दिन कुछ देर के लिये मौन रहें तो उन्होंने कहा कि यह 'स्टंटबाजी' मुझे पसन्द नहीं। उनका प्रेम, उनका सौजन्य, उनकी मुस्कराहट, उनकी नेक सलाह सबके लिये थी। उनकी सहृदयता और हंसी मजाक पर भी सभी साथियों और मित्रों का थोड़ा बहुत अधिकार था। उनकी चुलबुलाहट, विनोद और मजाक सभी साथियों और मित्रों का दिल बाग-बाग कर देता था। उनके कमरे में उनके साथ सोने का अवसर ही उनके कुछ अनन्य मित्रों का विशेष अधिकार समझा जा सकता था।

गो वे जानते थे कि 'सियासत की दोस्ती पायदार नहीं होती', फिर भी वे अपनी तरफ से मैत्री को राजनीतिक दलबन्दी से अलग रखते हुए राजनीतिक मतभेद हो जाने पर भी पुराने मित्रों से मैत्री और स्नेह बनाये रखना चाहते थे। इस काम में उन्हें काफी सफलता भी मिली। जब सन् १९४८ में उन्होंने कांग्रेस छोड़ी तब उनका बहुत से पुराने मित्रों और साथियों से राजनीतिक विछोह हुआ, पर उनमें से बहुतों से उनका पुराना पारस्परिक स्नेह बना रहा। पर इस सम्बन्ध में अपने जीवन की अन्तिम घड़ियों में उन्हें कुछ कड़वी घूँट भी पीनी पड़ीं, जिनकी कड़वाहट आचार्यजी जैसे सहनशील के लिये भी बर्दाश्त करना कठिन हो जाता था।

कार्यकर्ताओं से सम्बन्ध

अपनी पार्टी के अधिकांश कार्यकर्ताओं के साथ नरेन्द्रदेवजी के सम्बन्ध बहुत ही मधुर थे। उनका स्नेह कार्यकर्ताओं को मुग्ध कर देता था। जब कार्यकर्ता उनके घर जाते और वे स्वस्थ होते तो नरेन्द्रदेवजी स्वयं उनका आतिथ्य करते और उनसे बात-चीत करके उनकी निजी कठिनाइयों तक को दूर करने की कोशिश करते। श्री उमाशंकर मिश्र तो उनकी विद्वत्ता और स्नेह से इतने प्रभावित हैं कि वे जहाँ आचर्यजी को आदि शंकराचार्य के बाद सबसे बड़ा विद्वान् मानते हैं, वहाँ उनकी चर्चा करते समय मिश्रजी का गला रुँध जाता है, आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगती है और उनके लिये आचार्यजी के सम्बन्ध में कुछ कहना असम्भव हो जाता है।

पर संसार शुभ-अशुभ का ताना-बाना है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में दोनों प्रकार की घटनाओं का सामना करना ही पड़ता है। नरेन्द्रदेवजी को भी अपने सार्वजनिक जीवन में अक्सर अशुभ घटनाओं और व्यवहार का सामना करना पड़ा। वे इन्हें काफी धैर्य से सहन करते थे। पर जब कोई साथी या कार्यकर्ता उनकी सचाई या नेकनियती पर आघात करता, तब उन्हें काफी क्षोभ होता था और कभी-कभी ये विह्वल और उत्तेजित भी हो जाते थे।

उदारता

अपने पिता की तरह नरेन्द्रदेवजी भी बहुत उदार थे। पर जहाँ उनके पिता साधु संन्यासियों की सेवा में बहुत-सा धन लगा देने के बाद भी अपनी आमदनी का एक बड़ा अंश परिवार के लिये बचा रखते थे, वहाँ नरेन्द्रदेवजी अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व पर विशेष ध्यान दिये बगैर अपनी छोटी-सी आमदनी का एक बड़ा अंश समाजसेवा में खर्च कर देते थे। इसके कारण नरेन्द्रदेवजी को आर्थिक संकट का सामना करना पड़ता था। इस संकट के निवारण के लिये उन्हें एक बार मुगलकाल की रागरागिनियों की एक सुन्दर चित्रावलि जो उनकी पैतृक सम्पत्ति थी बेंचनी पड़ी। इस चित्रावलि में एक सौ चित्र थे जिनमें विभिन्न रागिनियाँ चित्रित थीं और प्रत्येक चित्र के नीचे दोहों में रागिनी का वर्णन था चित्रों पर सुनहरी

काम था, और ये चित्र उस समय भी नये दिखाई देते थे। लंका के प्रसिद्ध कलाविशेषज्ञ श्री कुमारस्वामी इस चित्रावलि के लिये पच्चीस हजार रुपये देने को तैयार थे। पर आचार्य नरेन्द्रदेव राष्ट्र की इस सम्पत्ति को देश से बाहर भेजना ठीक नहीं समझते थे। अत: उन्होंने केवल ढाई हजार रुपये में उस चित्रावलि को इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के हाथ बेंच दिया। आचार्य नरेन्द्रदेव के मित्र ठाकुर जयदेव सिंह, जिनके माध्यम से इस चित्रावलि की बिक्री हुई, इसकी चर्चा करते हुए रो पड़ते हैं।

शौक

नरेन्द्रदेवजी खाने के बहुत शौकीन थे। नौजवानी में मीठे तथा चटपटे सभी प्रकार के अच्छे खाने उन्हें पसन्द थे। फैजाबाद में गरीबा हलवाई की रबड़ी, पांडेपुर की गुलाब जामुन आदि वे बहुत चाव से खाते थे। कुल्फी का बर्फ और दही की चाट भी उन्हें बहुत ही प्रिय थीं। जब वे किसी शहर में जाते उन्हें याद आ जाता कि यहाँ कौन-सी मिठाई अच्छी बनती है। फिर क्या था वह चीज मेजवान द्वारा उन्हें पेश हो जाती। पर बीमारी के कारण उन्हें खाने पर काफी रोकथाम रखनी पड़ती थी। आगे चलकर तो काफी, दही और चावल ही उनकी खुराक बन गये थे। कभी-कभी तो काफी के दो चार प्याले पर ही उन्हें गुजर करनी पड़ती थी। फिर भी खाने का शौक उन्हें दूसरी अच्छी चीजें खाने को प्रेरित करता और जरूरी परहेज की अवहेलना करते हुए वे मीठी तथा चटपटी चीजें खा लेते थे जिससे कभी-कभी नुकसान भी हो जाता था। वे बहुत जल्दी-जल्दी खाते थे। इसीलिए काशी विद्यापीठ में उनके मित्रों ने उनके खाने के ढंग को पंजाब मेल की संज्ञा दे दी थी। डाक्टर भगवान्‌दासजी ने कई बार धीरे-धीरे खूब चबाकर भोजन करने की उन्हें सलाह दी। पर उनके परामर्श का भी नरेन्द्रदेवजी पर कोई असर नहीं हुआ।

बातचीत

नरेन्द्रदेवजी बातचीत भी बहुत जोर से करते थे। छोटे-से क्लास में भी वे ऊँची आवाज से लेक्चर देते थे। सार्वजनिक सभाओं में तो वे विशेषतौर पर बहुत भावावेश में भरकर बहुत तेज गति से ऊँची आवाज में भाषण देते थे। इसका उनके स्वास्थ्य पर बुरा

असर पड़ता था। पर बातचीत करते और भाषण देते समय उन्हें इसका ध्यान ही नहीं रहता था। बहुत कमजोर हो जाने पर उन्होंने अपनी भाषण शैली में कुछ तबदीली जरूर की थी। उस नयी शैली में भी प्रवाह, गति और ओज था, पर उसमें तेजी कुछ कम थी। पर उनके स्वास्थ्य के लिये इस तेजी को भी सहन करना कठिन होता था।

बीमारी

तन्दुरस्ती आचार्यजी की सबसे बड़ी कमजोरी थी। वे अपनी बीमारी से मजबूर थे, जितना करना चाहते थे नहीं कर पाते थे, दिल मसोस कर उन्हें रह जाना पड़ता था। जिस काम को वही अच्छी तौर पर कर सकते थे, उसके लिये भी उन्हें दूसरों का सहारा लेना पड़ता था, जो अक्सर काम सम्भालने के बजाय बिगाड़ देते थे, तरह तरह की उलझनें पैदा कर देते थे। गो वे बीमारी में भी बहुत हिम्मत से अपने कर्तव्य का पालन करते थे, बहुत ही ओजस्वी भाषण देते थे, जनता में और कार्यकर्ताओं में नया जोश फूंक देते थे, पर फिर भी आखिर इन्सान ही थे। अक्सर उन्हें ऐनवक्त पर अपना कार्यक्रम स्थगित करके साथियों को निराश करना पड़ता था। इस सबका उनके मन पर भी असर होता था, उनको यह दुःख सताने लगता था कि वे अपने जीवन में जो करना चाहते हैं नहीं कर पाते। पर जब वे जरा अच्छे हुए फिर हिम्मत, उत्साह और लगन से काम में लग जाते और अपनी चुलबुलाहट, हंसी मजाक से सबको खुश और प्रोत्साहित करने लगते। अपनी सख्त बीमारी में भी उन्होंने जिस तरह सन् १९३० से लेकर सन् १९४६ तक कई बार जेल की यातनाएँ सहीं, वह उनके साहस और राष्ट्र-प्रेम का उच्चतम प्रमाण है।

अव्यवस्था

बीमारी और संकोच के कारण उनके रहन सहन में अव्यवस्था पैदा हो गयी थी। पर उनकी लाजवाब सादगी में यह अव्यवस्था भी खप जाती थी और कभी कभी उनकी सादगी को अधिक प्यारा और उनके सौजन्य को अधिक आकर्षक बना देती थी। यह
भी केवल भौतिक ही थी उनके मन और बुद्धि से

इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। वे मानसिक सन्तुलन, बौद्धिक सुव्यवस्था और विचारों की स्पष्टता के लिये प्रसिद्ध थे। अपने उत्तरदायित्व की उचित व्यवस्था का भी वे सदा ध्यान रखते थे।

विनोद

आचार्य नरेन्द्रदेवजी बहुत ही विनोदप्रिय व्यक्ति थे। उनके गम्भीर भाषणों में बहुधा हास्य और व्यंग का पुट रहता था। कभी कभी तो वह मजाक में ही दूसरों की बातों का विश्लेषण करते। इसके सबसे उत्तम उदाहरण आचार्यजी के वे भाषण हैं जो उन्होंने सन् १९३७-३९ में यू०पी० विधान सभा में जमींदार सदस्यों के उत्तर में दिये थे।

आचार्यजी की मीठी चुटकी भी दूसरों की नुकताचीनी में बहुत कारगर साबित होती थी। साथी मेहरअलीजी लिखते हैं कि 'एक अवसर पर कांग्रेस वर्किंग कमेटी के प्रस्ताव में कोई संशोधन प्रस्तुत किया जाय अथवा नहीं इस विषय पर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की राष्ट्रीय कार्य समिति की सर्वमान्य राय थी कि वर्किंग कमेटी के प्रस्ताव का ही समर्थन किया जाय। पर एक प्रभावशाली सदस्य बार बार कहते थे कि अपनी वामपक्षीय स्थिति को बनाये रखने के लिये कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को संशोधन जरूर पेश करना चाहिए। इस पर आचार्यजी ने बड़ी गम्भीर मुद्रा मे कहा कि 'हां, मैं अपने मित्र से बिलकुल सहमत हूं। यह पार्टी वर्किंग कमेटी के प्रस्तावों में संशोधन प्रस्तुत करने के लिये ही तो विशेषरूप से बनायी गयी है। अगर हमने संशोधन पेश नहीं किया तो हम बिलकुल खत्म हो जायेंगे, यह सुनकर सब हंस पड़े और वह सज्जन भी चुप हो गये'।

उनकी हंसी मजाक भी विभिन्न कोटि के लोगों के साथ विभिन्न प्रकार की होती थी। जहां वे अपने से बड़ों से मजाक करने में संकोच करते थे, वहां अपने से जो बहुत छोटे होते उनसे बहुत मीठा और बहुधा शिक्षाप्रद विनोद ही करते थे, कुछ व्यक्तियों से तो वे केवल हँसी मजाक ही करते, उनसे कभी कोई गम्भीर बात नहीं करते। पण्डित बनारसीप्रसाद चतुर्वेदीजी उनमें से एक हैं। इनका कहना है कि आचार्यजी से उनकी कभी कोई गम्भीर बात

नहीं हो पायी और जब एक बार उन्होंने आचार्यजी से गम्भीर बात करने को कहा तो आचार्यजी ने हँसकर कहा कि वे आदमी की सूरत देखकर बात करते हैं। एक दूसरी बार आचार्य नरेन्द्रदेव ने चतुर्वेदीजी से मजाक में कहा 'हसूले आर्जू की है तवक्को ऐसे गाफिल से। जो दिल में रहके भी वाकिफ न हो बेताबिये दिल से'। कुछ ऐसे व्यक्ति भी थे जिनसे आचार्यजी गम्भीर विषयों पर बातें भी करते और उनके साथ हँसी मज़ाक भी करते। इनमें से कुछ तो ऐसे थे जो हँसी का कोई उत्तर नहीं देते, या तो चुप रहते या उनके साथ स्वयं भी हँस देते, और कुछ ऐसे थे जो हँसी का जवाब हँसी में देते। इस पुस्तक का लेखक उन व्यक्तियों में से है जो आचार्य जी की गम्भीर गोष्ठी और विनोद दोनों का पात्र था, पर जो उनकी हँसी का कभी जवाब नहीं देता था और जिसने अपने २४ वर्ष के सम्पर्क में शायद ही चार पाँच बार उनसे स्वयं मजाक करने की चेष्टा की हो। दूसरी ओर स्वर्गीय श्री फूलनप्रसाद जी वर्मा उन व्यक्तियों में से थे जो आचार्यजी से मज़ाक के जवाब में मज़ाक भी करते और सम्भवतः उनके मित्रों में श्री जयप्रकाश नारायण उन व्यक्तियों में से हैं जिनसे उन्होंने कभी मज़ाक किया हो।

मज़ाक में भी वह सदा मर्यादा और शिष्टता का ध्यान रखना जरूरी समझते थे। नीचे स्तर की नारेबाजी, भद्दे मजाक और नैतिक उच्छृंखलता को—वे 'वाहियात' बात समझते थे। शील और शिष्टता का पालन वे हर हालत में आवश्यक समझते थे, उनका उल्लंघन उन्हें अखरता था। वे उसे रोकने की कोशिश करते थे। जहाँ सन् १९४९ में किसान प्रदर्शन के अवसर पर उन्होंने 'किसान जागा पन्त भागा' का नारा लगाने को मना किया, वहाँ उन्होंने लखनऊ की एक सार्वजनिक सभा में एक नवयुवक को एक ऐसी गजल पढ़ने से रोका कि जिसमें पूँजीवादी व्यवस्था में शोषित जनता की दशा का वर्णन करते हुए कुछ नीचे स्तर की भद्दी बातों का जिक्र था। मजाक में भी मर्यादा का उन्हें कितना ध्यान रहता था इसका पता इस बात से भी लग सकता है कि जब एकबार वे देश के कतिपय नेताओं और मन्त्रियों की निजी फजूल खर्ची पर निजी बातचीत में मजाक उड़ा रहे थे, तब किसी ने कहा कि गान्धीजी पर भी आठ रुपये प्रतिदिन खर्च होते हैं।

यह सुनकर आचार्यजी एकदम गम्भीर हो गये और बहुत आवेग में उन्होंने कहा कि 'यदि गान्धी जी पर आठ रुपये रोज खर्च होते हैं तो वे आठ सौ रुपये रोज का काम भी तो करते हैं'।

मित्रों और साथियों के साथ एक तरफा विनोद भी दिलबस्तगी का एक अच्छा साधन है। छोटों के साथ मीठा विनोद सहृदयता और वात्सल्य प्रेम का द्योतक और शिक्षा का मधुर उपाय है। पर मजाक का मजा तो मजाक के जवाब में ही है। इस हाजिर जवाबी में भी आचार्यजी किसी से कम नहीं थे। मशहूर है कि जब एकबार आचार्यजी के बहुत अस्वस्थ हो जाने पर पण्डित गोविन्द बल्लभ पन्त उन्हें देखने गये तब उनकी मौजूदगी में एक गधे ने रेंकना शुरू किया। पन्तजी ने विनोद में कहा कि क्या यहाँ गधे रहते हैं। इस पर आचार्यजी ने कहा कि रहते तो नहीं कभी कभी चले आते हैं।

आचार्यजी की हँसी मजाक किसी हद तक उनके दिल बहलाने का एक साधन था, उनकी आन्तरिक वेदना को कम करने का उपाय था। पर यह उपाय इस काम में सदा सफल नहीं हो पाता था। एकबार पाकिस्तान में कुछ फौजी अफसरों के षड्यन्त्र का समाचार पढ़कर आचार्यजी बहुत व्यग्र हो गये। वेदना का कारण पूछने पर उन्होंने बताया कि मध्य एशिया का यह रोग खिसकते खिसकते पाकिस्तान आ गया है, कहीं हमारे देश में भी इसका प्रभाव न पड़ जाय। उनकी इस व्यग्रता को हँसी के जरिये दूर करने के लिये इस पुस्तक के लेखक ने उनसे हँसते हुए कहा 'काजी काजी तुम क्यों दुबले, शहर का अंदेशा। जब कोई आपसे कुछ पूछता ही नहीं कि देश का प्रबन्ध कैसे हो तो फिर आप बेकार परेशान हैं'। इसके जवाब में आचार्यजी ने कहा 'प्रोफेसर साहब, उम्र भर की कमाई है'। ठीक ही है जिसने स्वतन्त्रता के लिये जीवन भर तपस्या की हो उसकी संकटवेदना बातों से कैसे टाली जा सकती थी।

चिन्ता

विभिन्न गुणों से सम्पन्न होते हुए भी आचार्यजी चिन्तारहित नहीं थे। बीमारी, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ, देश की दशा और समाजवादी आन्दोलन की अवस्था उनकी चिन्ता के कारण थे। कांग्रेसी

सरकारों के भ्रष्टाचार और निकम्मेपन के कारण जनता का 'आशादीप' बुझता देखना उन्हें बड़ा कष्टदायी था। उन्हें इस बात का भी सन्ताप था कि जनता के आशादीप को जगाने वाली समाजवादी शक्तियाँ भी कमजोर हैं और वे अपनी बीमारी के कारण उन्हें सबल बनाने के लिये समुचित प्रयत्न नहीं कर पाते। उन्हें अपने कतिपय साथियों की अकर्मण्यता और उनके इधर उधर भटकने पर और बीमारी के कारण अपनी बेबसी पर बहुत दुख था। इन कष्टों से तप्त आचार्य अपने साथियों से आग्रह और विनती करते कि इधर उधर भटकने के बजाय वे समाजवादी आन्दोलन की एकता को दृढ़ करें और समाजवादी शक्तियों को मजबूत बनाएँ। उनके उत्तर और व्यवहार से उन्हें बड़ी वेदना होती और वे बहुत निराश होते।

आचार्य नरेन्द्रदेव की इस भारी निराशा और वेदना का मूल कारण उनका महान् लक्ष्य था। देश आजाद हुआ और उसके लिये उन्होंने भी भरसक प्रयत्न किया और कष्ट सहे इससे उन्हें सन्तोष नहीं था। वे तो स्वतन्त्र भारत में समता और न्याय को प्रतिष्ठित करना चाहते थे, जनतान्त्रिक समाजवादी समाज स्थापित करना चाहते थे। उनका यह सपना उन्हें अनुप्राणित और उत्साहित भी करता, दुःखी और चिन्तित भी करता। जहाँ लक्ष्य की चर्चा उन्हें अच्छी लगती, उसके गुणगान में उन्हें बड़ा आनन्द आता, वहाँ उसकी याद उन्हें तड़पा भी देती। शीघ्रगामी संसार में लक्ष्य की ओर धीमी चाल उन्हें परेशान करती, फिर भी वे बीमारियों का लम्बा लबादा ओढ़े, जीर्णशीर्ण शरीर पर सब कष्टों और चिन्ताओं का बोझ लादे, सब साथियों को अनुप्राणित और प्रोत्साहित करते, लक्ष्य के गुण गाते, इधर उधर भटके बगैर सीधे लक्ष्य की ओर बढ़ते चलते। यही तपस्वी का तप था, यही उसकी इन्सानियत थी, यही उसकी मर्दानगी थी। लक्ष्य की लम्बी यात्रा वह पूरी नहीं कर पाये, शायद कोई भी युगपुरुष इसमें पूरी तौर पर सफल नहीं हुआ। वह लक्ष्य ही क्या जो आसानी से जिन्दगी में सिद्ध हो जाय। उन्हें इसकी याद और तड़प अपने साथ जरूर ले जानी पड़ी, पर इसमें उनके तप और साधना की कमी नहीं, बल्कि उनके लक्ष्य की महानता और उनके आदर्श का महत्त्व है।

२२. जनतान्त्रिक शिक्षा पद्धति

शिक्षा का उद्देश्य

आचार्यजी का विचार था कि 'राष्ट्र के नवयुवकों को जीवन के लिये तैयार करना ही शिक्षा का उद्देश्य है। लेकिन चूँकि जीवन-पथ में नयी स्थितियाँ पैदा होती रहती हैं, इसलिये जीवन का स्थिर विचार शिक्षा का आधार नहीं हो सकता। बदलने वाले संसार की जरूरतों को पूरा करने के लिये शिक्षा को गतिशील होना पड़ता है। उसे मौजूदा समाज की जरूरतों और प्रेरणाओं को ध्यान में रखना होता है, उसे अपनी विशिष्ट समस्याओं को बाकी संसार की पृष्ठभूमि में देखना पड़ता है और उसे आधुनिक संसार की उन्नति के लिये आवश्यक जीवन मूल्यों को अपनाना और विद्यार्थियों में प्रसार करना होता है'। आचार्यजी का कहना था कि 'अगर शिक्षा को अपना काम ठीक तौर पर करना है तो उसको हमें नये समाज का निर्माण करने और दूसरे राष्ट्रों के साथ सौहार्दपूर्वक रहने के योग्य बनाना है। योग्य पुरुष पैदा करना ही काफी नहीं है, हमें तो ऐसे ऐसे उत्तम नागरिक भी पैदा करना है जिनकी नागरिक भावना और सामाजिक आदर्श ऊँचे हों, जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और समझदारी में विश्वास करते हों और जो जीवन के लोकतान्त्रिक आदर्श पर पूरी आस्था रखते हों।'

लोकतान्त्रिक चरित्र और जीवन का पूर्ण विकास ही उनकी शिक्षा पद्धति का मूल सामाजिक आदर्श था। लोकतन्त्र, स्वतन्त्रता, उत्तर-दायित्व और सहकारिता की समुचित शिक्षा ही उनकी दृष्टि में भारतीय शिक्षा के प्रमुख सामाजिक आदर्श हो सकते हैं। उनकी धारणा थी कि नवयुवकों में लोकतान्त्रिक सिद्धान्तों और परम्पराओं के प्रति दृढ़ आस्था जागृत करके ही, उनके जीवन को लोकतान्त्रिक आदर्शों से अनुप्राणित करके ही, उनमें लोकतान्त्रिक उत्तरदायित्व को वहन करने की क्षमता पैदा करके ही भारतीय लोकतन्त्र को सबल और स्वस्थ बनाया

लोकतन्त्र के मूल आधार हैं। उनकी मजबूत बुनियादों पर ही भारतीय लोकतन्त्र का निर्माण सम्भव है। लोकतन्त्र की पुष्टि और प्रगति भारतीय शिक्षा का पुनीत कर्तव्य है।

नागरिकता की शिक्षा

उदार लोकतान्त्रिक शिक्षा के निमित्त नागरिकता की शिक्षा के समुचित प्रबन्ध को आचार्य नरेन्द्रदेव परम आवश्यक समझते थे। प्रत्येक बालक और बालिका को लोकतान्त्रिक नागरिकता की सैद्धान्तिक और व्यवहारिक शिक्षा देना वे नितान्त आवश्यक समझते थे। लोकतान्त्रिक नागरिकता की शिक्षा द्वारा वे विद्यार्थियों में उदार विश्व-भावना तथा व्यापक राष्ट्रीय भावना को जागृत तथा लोकतान्त्रिक मूल्यों और परम्पराओं के प्रति आस्था को दृढ़ करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि विद्यार्थियों को ऐसी नागरिक शिक्षा दी जाय कि जिससे उनमें 'न्याय, सहयोग और राष्ट्रीय एकता के आदर्शों' के प्रति आदरभाव पैदा हो, उनमें 'देशसेवा और देशप्रेम के भाव' जागृत हों, उन्हें देश की परिस्थिति का ज्ञान हो और उनमें लोकतान्त्रिक नेतृत्व और सहयोग की क्षमता का विकास हो। इस उद्देश्य से वे पाठ्येतर सामाजिक कार्यों को भी प्रोत्साहित करना चाहते थे।

अनुशासन

आचार्य नरेन्द्रदेव अनुशासन को शिक्षा का प्राण समझते थे। पर उनका विचार था कि प्राचीन अनुशासन पद्धति आधुनिक लोक-तान्त्रिक युग के लिये उपयुक्त नहीं है। दमन पर आश्रित पद्धति के स्थान पर एक ऐसे अनुशासन की आवश्यकता है जो भय के बजाय आत्मसंयम को प्रोत्साहित करे। विद्यार्थियों को अनुशासन की समस्याओं को स्वयं सुलझाने का अवसर प्रदान करे। वे यह मानते थे कि अनुशासन की समुचित व्यवस्था संस्था के अध्यक्ष का सामाजिक उत्तरदायित्व है और यह उत्तरदायित्व विद्यार्थियों को नहीं सौंपा जा सकता। पर उनकी धारणा थी कि इस सम्बन्ध में विद्यार्थियों का सहयोग अवश्य ही लाभदायक सिद्ध हो सकता है। नरेन्द्रदेवजी चाहते थे कि शिक्षक समुदाय अपने निष्पक्ष और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से विद्यार्थियों को अपनी ओर आकृष्ट कर उन्हें आत्मसंयम की शिक्षा दें, उनके

जीवन को सद्भावनाओं से अनुप्राणित करें और अध्यक्ष की समुचित देखरेख में स्कूल के प्रबन्ध में विद्यार्थियों के सहयोग को प्रोत्साहित करें। इस उद्देश्य से स्कूलों में विद्यार्थियों की स्वशासन संस्थाएँ कायम की जायँ जिनके जरिये विद्यार्थियों में स्वशासन की भावना को पुष्ट किया जाय, उनमें सामाजिक प्रबन्ध की क्षमता पैदा की जाय, स्कूल के अनुशासन और प्रबन्ध के स्तर को ऊँचा उठाया जाय।

विज्ञान और मानवता

लोकतन्त्र की सामाजिक शिक्षा के साथ-साथ विज्ञान की शिक्षा भी आचार्य नरेन्द्रदेव नितान्त आवश्यक समझते थे। उनका कहना था कि 'विज्ञान और मनोविज्ञान के नवीन सिद्धान्तों ने मानव, प्रकृति तथा जगत्सम्बन्धी हमारी धारणाओं को बदल डाला है। मनुष्य और प्रकृति के विषय में हमारे परम्परागत ज्ञान को अपना स्थान विज्ञान को देना होगा'। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये आवश्यक है कि 'प्रारम्भ से ही हमारे पाठ्यक्रम में विज्ञान का अनिवार्य स्थान रहे। हमें ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि 'शिष्यों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण की अभिवृद्धि हो', 'अधिक से अधिक वैज्ञानिक पैदा हों और प्रत्येक विश्वविद्यालय में सभी क्षेत्रों में वैज्ञानिक शोध का समुचित प्रबन्ध हो'। पर आचार्य जी विज्ञान की विनाशकारी शक्ति से भी पूरी तौर पर वाकिफ थे। इसलिये वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण और मानवीय भावना के सामञ्जस्य पर जोर देते थे। आचार्य नरेन्द्रदेव का कहना था कि 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण को मानव-मूल्यों में आस्था रखकर ही आगे बढ़ाना है, जिससे अश्रेयस्कर प्रयोजनों की सिद्धि के लिये विज्ञान का दुरुपयोग न हो'। वे अध्येताओं में 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' तथा 'सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों' के प्रति श्रद्धा दोनों ही पैदा करना चाहते थे। इसीलिये आचार्यजी के विचार में 'सार्वजनिक संस्कृति और सामान्य शिक्षा सब विशेष शिक्षा की पृष्ठभूमि होना ही चाहिये' ताकि अध्येता स्वतन्त्र लोकतान्त्रिक राज्य में नागरिक का कर्तव्य पालन कर सके तथा विज्ञान और प्राविधिक ज्ञान का समाज के हित में सदुपयोग कर सकें।

धर्मनिरपेक्ष शिक्षा

पर जहाँ आचार्य नरेन्द्रदेव लोकतन्त्र की सामाजिक शिक्षा द्वारा

विद्यार्थियों में सामाजिक नैतिकता का प्रसार करना चाहते थे, उनमें 'सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति आस्था पैदा करना तथा उन्हें आचरण सम्पन्न तथा समाजसेवी बनाना चाहते थे, वहाँ वे विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा दिये जाने के विरोधी थे। उनकी धारणा थी कि 'साम्प्रदायिक सामञ्जस्य और सद्भाव को चिरन्तर आधार पर प्रतिष्ठित करना राष्ट्रीय एकता और प्रगति के लिये परम आवश्यक है और यह महान् कार्य धार्मिक शिक्षा के बजाय लोकतन्त्र और अखण्ड मानवता के आदर्शों की दीक्षा देकर ही हो सकता है। उनके विचार में धार्मिक शिक्षा तो साम्प्रदायिक सामञ्जस्य की अभिवृद्धि करने के बजाय संकुचित साम्प्रदायिक मनोवृत्ति को ही पुष्ट करेगी' उससे तो 'लोग और भी अधिक हठधर्मी और साम्प्रदायिक बनेंगे'।

सर्वांगीण विकास

आचार्य नरेन्द्रदेव चाहते थे कि नयी शिक्षा पद्धति ऐसी हो कि जिससे विचारों और भावों की एकता परिपुष्ट हो ताकि मन, बुद्धि और हृदय की एकता साधित हो'। उनकी राय में शिक्षा का सच्चा ध्येय ऐसे व्यक्तित्व के निर्माण एवं विकास में सहायता पहुँचाना है जिसमें ज्ञान, सहज प्रवृत्तियाँ और भाव एकभूत होकर एक सम्पूर्ण जीवन बने'। उनके विचार में 'पाठ्यक्रम के अतिरिक्त ऐसे-ऐसे काम निकाले जायँ जिससे बच्चों को स्कूल के अन्दर की परिस्थिति से ही उन सामाजिक आदर्शों और चारित्रिक दृष्टान्तों की शिक्षा मिले जो राष्ट्र को उत्तम बनाने में साधक होते हों।

वे ज्ञान और कर्म के समन्वय पर भी विश्वास करते थे। उनके विचार में निष्क्रिय ज्ञान निरर्थक है, सक्रियता और व्यवहारिकता में ही ज्ञान की सफलता है। आचार्यजी की धारणा थी कि 'इन्द्रियों के द्वारा आकस्मिक रूप से प्राप्त विषयों और विचारों को बिना विवेक के निष्क्रिय रूप से ग्रहण कर लेने की मनोवृत्ति बुद्धि का लक्षण नहीं है। ज्ञान का मूल वस्तुत्व का निरीक्षण है जिसमें प्रयोग, निर्माण तथा विवेकपूर्ण परीक्षण की सक्रिय विधियां सम्मिलित हैं। इसलिये शिक्षा-क्रम में शिष्यों को किसी विचार विशेष को ग्रहण करने के लिये विवश करना अवाँछनीय है। सैद्धान्तिक शिक्षा के साथ-साथ शिष्यों द्वारा उत्पादक कार्य और वस्तुओं का निर्माण भी आवश्यक है'।

व्यापक जनशिक्षा

आचार्य नरेन्द्रदेव का विचार था कि 'जब तक जनता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना उत्पन्न नहीं होती तब तक लोकतान्त्रिक पद्धति की सफलता सम्भव नहीं है—इसलिये लोकतान्त्रिक व्यवस्था के लिये व्यापक शिक्षा सबसे आवश्यक है। जनता की सांस्कृतिक और शिक्षा-सम्बन्धी कमियों को सर्वप्रथम दूर करना पड़ेगा और सभी श्रेणियों में साक्षरता का व्यापक प्रसार करना होगा। सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ी श्रेणियों और क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देना होगा। उनको शीघ्राति-शीघ्र सुसंस्कृत समाज के समकक्ष लाने के लिये कोई भी कसर उठा नहीं रखना चाहिए। जब तक जनसंस्कृति का निर्माण नहीं हो जाता तब तक ऐसे स्वतन्त्र समाज की स्थापना भी नहीं हो सकती जिसमें प्रत्येक नागरिक सार्वजनिक कल्याण के लिये परस्पर सहयोग कर सके।

साक्षरता के अभियान को आवश्यक समझते हुए भी, वे जनता की साक्षरता से ही सन्तुष्ट नहीं थे। उनका कहना था कि साक्षरता तो व्यापक जनशिक्षा में केवल 'पहला कदम है'। इससे केवल बुद्धि का कपाट खुल जाता है। साक्षर हो जाने पर कोई व्यक्ति केवल साधारण किस्से-कहानियाँ पढ़ सकता है, किन्तु वह शिक्षित नहीं हो सकता और न अपने व्यवहारों को सामाजिक और विवेकयुक्त ही कर सकता है। 'वह राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का अध्ययन नहीं कर सकता जिनसे आज चारों ओर उथल-पुथल मची हुई है। ऐसी साक्षरता से व्यवसायिक वर्ग अनुचित लाभ उठाते हैं और केवल मुनाफा कमाने के लिये ढेर के ढेर ऐसे सस्ते और भद्दे साहित्य को प्रकाशित करते हैं जिनसे केवल मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियों को उत्तेजना मिलती है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए आचार्य नरेन्द्रदेव साक्षरता के अभियान को सामाजिक शिक्षा का रूप देना चाहते थे। उनका विचार था कि 'जनता को राजनीतिक विषयों की शिक्षा तभी समुचित रूप से प्राप्त हो सकती है जब उसे विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं को भलीभांति समझने और उनमें निर्णय करने का अवसर मिले। राज्य का कर्तव्य है कि वह जनता को ऐसी मौलिक शिक्षा

प्रदान करे जिससे उसके अन्दर विवेचनात्मक शक्ति का विकास हो और उसमें आत्म-निर्भरता की क्षमता आ सके। इसमें नागरिक शिक्षा का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है जिसमें न केवल राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्यों का पालन करने की भी शिक्षा देनी चाहिए। उनके विचार में हमारी जन-शिक्षा योजना इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे जीवन के प्रति स्वस्थ और असम्प्रदायिक दृष्टिकोण बन सके, उसमें लोकतान्त्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा हो और सामाजिक व्यवहार के नवीन संस्थाओं का निर्माण हो। व्यापक जन-शिक्षा की पूर्ति के लिये नरेन्द्रदेवजी चाहते थे कि 'श्रमिकों, किसानों तथा दूसरे उत्पादकों के लिये उनके घरों तथा कार्यस्थलों के करीब प्रौढ़ शैक्षिक संस्थाएँ खोली जाएँ और इन संस्थाओं में व्यवसायिक शिक्षा के साथ-साथ सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी कार्यों की भी व्यवस्था हो'।

ज्ञान का व्यापक प्रसार

आचार्य नरेन्द्रदेव का विचार था कि ज्ञान का व्यापक प्रसार सामाजिक न्याय और समता की माँग है। लोकतान्त्रिक समाज में संस्कृति और शिक्षा कतिपय सुविधाजनक वर्गों की इजारादारी नहीं रह सकती। शिक्षा तो प्रत्येक नागरिक का अधिकार है। भारतीय लोक-तन्त्र में सभी वर्गों और जातियों के बच्चों के लिये उनकी क्षमता और प्रवृत्ति के अनुसार शिक्षा का प्रबन्ध आवश्यक है। चूंकि भारतीय समाज में कतिपय ऐसी जातियाँ हैं जो दीर्घकाल से सांस्कृतिक शिक्षा से वंचित रही हैं, इसलिये इन पिछड़ी जातियों में शिक्षा के प्रसार के लिये विशेष प्रयास की जरूरत है। अतः सरकार का कर्तव्य है कि इन पिछड़ी जातियों के बच्चों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दे, उनके सांस्कृतिक उत्थान के लिये उन्हें विशेष सुविधाएँ प्रदान करे। इन जातियों के योग्य गरीब बच्चों को फीस के भार से ही मुक्त न किया जाय बल्कि अपने भरण पोषण के लिये भी उन्हें मासिक आर्थिक सहायता दी जाय। आचार्य नरेन्द्रदेव तो चाहते थे कि धीरे धीरे विश्वविद्यालय के स्तर तक की शिक्षा सभी विद्यार्थियों के लिये मुफ्त कर दी जाय। उनका विचार था कि 'चूँकि प्रतिभा समाज के सभी स्तरों में पायी जाती है और कोई ऐसी जाति और वर्ग नहीं कि जो

मानव समाज के सांस्कृतिक भण्डार से लाभ न उठा सके, इसलिये शिक्षा की व्यापकता राष्ट्र के सांस्कृतिक उत्कर्ष में बड़ी सहायक होगी बौद्धिक सम्पत्ति को बढ़ायेगी और उसे संसार के दूसरे सभ्य राष्ट्रों के समान योग्य बनने में मदद करेगी'।

स्त्री शिक्षा

आचार्य नरेन्द्रदेव स्त्री-पुरुषों की 'असमानता अमानवीय' और 'स्त्री-जाति का पिछड़ापन उन्नति के लिये बाधक समझते' थे। उनकी धारणा थी कि 'स्त्री-जाति की उत्साहपूर्ण क्रियाशीलता के बिना कोई भी महान् सामाजिक परिवर्तन सम्भव नहीं है'। इसलिये वे उन सब सांस्कृतिक विधियों और मानदण्डों के विरोधी थे जो स्त्रियों को समाज में परावलम्बी और गौण बनाते हैं, तथा उन्हें सांस्कृतिक उत्थान के लिये समुचित सुविधाएँ और अवसर नहीं देते। वे 'उन्हें सांस्कृतिक उत्थान' तथा 'शिक्षा और राष्ट्र के सांस्कृतिक कार्यों में भाग लेने की समान' सुविधाएँ दिये जाने का समर्थन करते थे।

सामान्य विद्यालय

आचार्य नरेन्द्रदेव सभी जातियों, वर्गों और सम्प्रदायों के बच्चों के लिये बिना किसी भेदभाव के सामान्य विद्यालयों द्वारा समान शिक्षा देने के पक्ष में थे। उनके विचार में जाति और सम्प्रदाय के नाम पर स्थापित शिक्षा संस्थाएँ जातिगत पक्षपात और साम्प्रदायिक वातावरण से दूषित होने के कारण लोकतान्त्रिक शिक्षा के केन्द्र नहीं बन सकते। इसी तरह विशिष्ट पिछड़ी जातियों के लिये पृथक् शिक्षा संस्थाओं का आयोजन भी उन जातियों के सांस्कृतिक पिछड़ेपन को या उनके पार्थक्य को दूर नहीं कर सकता। सामान्य शिक्षा संस्थाओं में समाज के दूसरे वर्गों के बच्चों के साथ साथ उनके सम्पर्क में समान शिक्षा प्राप्त करके ही पिछड़ी जातियों के बच्चों का पार्थक्य और सांस्कृतिक असमानता दूर हो सकती है और वे लोकतान्त्रिक समाज के समान नागरिक बन सकते हैं। आचार्य नरेन्द्रदेव इसी तरह सम्पन्न वर्गों द्वारा स्थापित विशिष्ट पब्लिक स्कूलों के पक्ष में भी नहीं थे। देहाती और शहरी क्षेत्रों के विद्यालयों के शिक्षा-स्तर के भारी भेद से भी नरेन्द्रदेव जी क्षुब्ध थे। वे ग्रामीण विद्यालयों के

स्तर को ऊँचा उठाकर, देहाती और शहरी स्कूलों के भेद को मिटाकर सब बच्चों के लिये समान शिक्षा का प्रबन्ध जरूरी समझते थे।

राज्य का कर्तव्य

नरेन्द्रदेवजी 'शिक्षा के प्रत्येक अंग को पुष्ट' करने के पक्ष में थे। उनका विचार था कि 'शिक्षा का निरन्तर क्रम चलता रहता है और सब अंग एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। अतः एक को दुर्बल कर हम दूसरे की पुष्टि नहीं कर सकते'। इसलिये प्रारम्भिक बुनियादी शिक्षा के साथ साथ माध्यमिक और उच्च शिक्षा एवं औद्योगिक और प्रौढ़ शिक्षा की समुचित व्यवस्था करना भी वे राज्य का कर्तव्य समझते थे।

अनिवार्य शिक्षा

आचार्यजी का विचार था कि प्रत्येक बच्चे के लिये कम से कम आठ वर्ष की अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध आवश्यक है। 'बच्चों के चरित्र का निर्माण और गठन, उनकी बुद्धि का विकास, उनमें सभ्य जीवन की मौलिक प्रेरणाओं को जागृत करना, उन्हें जीवन के क्रियाकलापों में सक्रिय भाग लेने के योग्य बनाना' एवं 'एक सामान्य नागरिकता का विकास करना तथा एक सामान्य सांस्कृतिक दायाद की शिक्षा को सर्वसाधारण को सुलभ करा देना' ही अनिवार्य शिक्षा का मूल उद्देश्य है। लोकतान्त्रिक समाज की अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था में नागरिक शिक्षा का स्वभावतः विशिष्ट अनिवार्य स्थान है, क्योंकि नागरिकता के उत्तरदायित्व को समुचित रूप से वहन करने के लिये नागरिक जीवन के सिद्धान्तों और स्थिति का ज्ञान परम आवश्यक है। इसलिये आचार्य नरेन्द्रदेव ने सन् १९३८ में संयुक्त प्रान्त की 'प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा संघटन कमेटी' के अध्यक्ष की हैसियत से अनिवार्य शिक्षा के अन्तिम वर्षों के लिये नागरिक शिक्षा का एक पाठ्यक्रम तैयार किया था, जो कुछ लम्बा जरूर था, पर जिसके द्वारा बच्चों को देश की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थिति के साथ साथ समाज, नागरिक जीवन, राष्ट्रीयता, जनतन्त्र के मूल सिद्धान्तों का परिचय और नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान प्राप्त हो सकता था वे इस शिक्षा

को बुनियादी शिक्षा के नाम से सम्बोधित करने को तैयार थे। वे इस बात से भी सहमत थे कि इस अनिवार्य शिक्षा के जमाने में प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी रुचि के अनुकूल अनिवार्यतः किसी न किसी कला-कौशल की शिक्षा दी जाय। वे यह जानते थे कि कला-कौशल को माध्यम बनाकर दूसरे विषयों की शिक्षा देना कठिन है, पर उनके विचार में सिद्धान्ततः इस प्रकार की शिक्षा पद्धति प्रचलित पद्धति से अधिक सही है और लाभप्रद भी सिद्ध हो सकती है।

माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य

आचार्य नरेन्द्रदेव माध्यमिक शिक्षा में भी मौलिक परिवर्तन आवश्यक समझते थे। उनके विचार में माध्यमिक शिक्षा स्वतः पूर्ण होनी चाहिए, वह ऐसी होनी चाहिए कि जिसे प्राप्त कर विद्यार्थी जीवनोपार्जन के लिये किसी पेशे को अपना सकें और ऐसी आदतें ग्रहण कर सकें जिनसे उनके नैतिक जीवन का विकास हो और जो राष्ट्रीय एकता स्थापित करने में सहायक हों। उनकी राय थी कि माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित विषयों का पाठ्यक्रम तैयार करते समय देश की स्थिति और आवश्यकताओं तथा ज्ञान की उपयोगिता पर विशेष ध्यान दिया जाय, अर्थात् अनावश्यक सैद्धान्तिक विस्तार के बजाय वास्तविकता से सम्बन्धित व्यवहारिक बातों का उसमें अधिक समावेश हो। वे यह भी चाहते थे कि ये पाठ्यक्रम ऐसे हों जिनको तैयार करने के निमित्त विद्यार्थियों को स्वतः अधिक काम करना पड़े ताकि उनकी अपनी क्षमता का विकास हो', वे आत्मनिर्भर हो सकें। आचार्य नरेन्द्रदेव यह भी चाहते थे कि माध्यमिक शिक्षा के जमाने में इस प्रकार के पाठ्येतर प्रयासों का भी आयोजन हो जिनके द्वारा विद्यार्थी लोकतान्त्रिक नेतृत्व की शिक्षा प्राप्त कर सके, उन्हें सामाजिक कार्यों में भाग लेने का तथा समूह के हित को प्राथमिकता देने का अभ्यास हो और उनमें सद्व्यवहार, आत्मसंयम और आत्मनिर्भरता आदि सद्गुणों का विकास हो।

विश्वविद्यालय

आचार्यजी का कहना था कि हम 'समाज कल्याण-राज्य स्थापित करने का दावा करते हैं, किन्तु इस ध्येय को प्राप्त करने के लिये

देश की सामाजिक सेवाओं का निरन्तर विस्तार आवश्यक है। इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये सरकार को काफी संख्या में अध्यापकों डाक्टरों, इन्जीनियरों, यंत्रचालकों, तथा छोटे बड़े कार्यों के लिये अन्य सुशिक्षित व्यक्तियों की सेवाओं की आवश्यकता पड़ेगी। इसका यह अर्थ होता है कि विश्वविद्यालय की तथा वैज्ञानिक और यान्त्रिक शिक्षा की सुविधाओं का निरन्तर विस्तार हो और अनुसन्धान के कार्य में प्रगति हो। जनहित की हमारी सभी योजनाएँ तथा कार्यक्रम तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक कि राष्ट्रीय जीवन से विभिन्न क्षेत्रों में सुशिक्षित और कुशल व्यक्तियों का एक बड़ा दल तैयार नहीं हो जाता। राष्ट्र की इस आवश्यकता की पूर्ति विश्वविद्यालय तथा टेकनोलाजिकल इन्स्टीट्यूट ही कर सकते हैं'। इस बात के साथ-साथ शिक्षा के सामाजिक प्रयोग की ओर ध्यान दिलाते हुये नरेन्द्रदेवजी मानवीय भावनाओं से अनुप्राणित, राष्ट्रीयता और लोकतन्त्र पर पूर्ण विश्वास रखने वाले उच्चस्तरीय नेतृत्व की देन भी विश्वविद्यालयों का कर्तव्य समझते थे। उन्हें आशा थी कि विश्वविद्यालय 'विचार और मानव-सम्बन्धों के क्षेत्र में नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों को' जन्मे देंगे, 'रचनात्मक विचारों के ऐसे केन्द्र' बनेंगे 'जिनके द्वारा ही आज के कष्ट और संघर्ष के युग में नवीन सामञ्जस्य की स्थापना में हमें सहायता मिल सकती है', उनके विचार में 'विश्वविद्यालयों का यह अन्तिम कर्तव्य सर्वोपरि महत्त्व का है, क्योंकि आज के तीव्र परिवर्तन और विच्छिन्नता के युग में नयी सामाजिक चेतना और गतिशील चिन्तन ही सामाजिक रोग का विश्लेषण करके उसका उचित निदान ढूँढ़ सकता है'। इस सम्बन्ध में उनका कहना था कि 'विश्वविद्यालयों में सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम की व्यवस्था होनी चाहिए जैसा कि संयुक्त राज्य अमरीका के कुछ कालेजों में हुआ है। विश्वविद्यालय के प्रत्येक विद्यार्थी को चाहे वह किसी विभाग का हो, अपने देश के विधान की रूप-रेखा, भूतकालीन इतिहास तथा आधुनिक विश्व के सम्बन्ध में कुछ जानकारी रखना चाहिए। उसे आधुनिक विचारधारा का भी कुछ ज्ञान होना चाहिए और अपने लिये एक सामाजिक दर्शन बनाने की कोशिश करना चाहिए। उसे वैज्ञानिक पद्धति का अभ्यास करना चाहिए और उसकी विचार प्रक्रिया तर्कपूर्ण होना चाहिए'।

इस तरह आचार्य नरेन्द्रदेवजी विश्वविद्यालयों में इस प्रकार की

उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना चाहते थे कि जिससे समाज को विभिन्न क्षेत्रों के लिये ऐसे विशेषज्ञ उपलब्ध हो सकें जो समाज का सर्वांगीण निर्माण कर सकें और साथ ही लोकतान्त्रिक उत्तरदायित्व को सुचारु रूप से पूरा करते हुए भारत में लोकतान्त्रिक व्यवस्था को प्रतिष्ठित और परिपुष्ट कर सकें।

शिक्षा का माध्यम

आचार्य नरेन्द्रदेव प्रादेशिक मातृभाषा को प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे। पर वे राष्ट्रभाषा हिन्दी को विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बनाये जाने के पक्ष में थे। वे यह मानते थे कि 'विदेशी भाषा की आवश्यकता बहुत दिनों तक बनी रहेगी' पर उनके विचार में 'वह शिक्षा का माध्यम नहीं होगी, और शिक्षा के कार्यक्रम में उसको गौण स्थान प्राप्त होगा'। उनकी धारणा थी कि 'जब तक हम विभिन्न प्रदेशों के सांस्कृतिक सम्बन्ध को दृढ़ नहीं बनाते और बड़ी संख्या में ऐसे लोगों को तैयार नहीं करते जो एक सामान्य भाषा में अपने सर्वोत्कृष्ट विचारों को व्यक्त कर सके तब तक हिन्दुस्तान में राष्ट्रीय एकता स्थापित नहीं होती'। अगर हम प्रत्येक विश्वविद्यालय में आधुनिक भारतीय भाषाओं की शिक्षा की व्यवस्था कर दें और विश्वविद्यालयों में राष्ट्रभाषा को शिक्षा का माध्यम बना दें तो यह उद्देश्य सफल हो सकता है'। राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने के लिये वे यह भी चाहते थे कि 'दक्षिण भारत की एक भाषा का अध्ययन उत्तर भारत के विश्वविद्यालयों में अनिवार्य कर दिया जाय'। वे कम-से-कम विश्वविद्यालय के स्तर पर एक विदेशी भाषा का ज्ञान भी आवश्यक समझते थे। इस सम्बन्ध में उनका कहना था कि 'अंग्रेजी द्वारा हमको यूरोपीय ज्ञान अब तक मिलता रहा है, पर स्वतन्त्र होने के पश्चात् हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध सब राष्ट्रों से हो गया है। ऐसी अवस्था में संसार की विविध भाषाओं की व्यवस्था हमको अपने देश में करनी चाहिए'।

संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन

आचार्य नरेन्द्रदेव संस्कृत वाङ्मय की व्यापकता, गरिमा और गाम्भीर्य के प्रशंसक थे और भारतीय नवयुवकों के लिये उसका समुचित

अध्ययन जरूरी समझते थे। उनका विचार था कि 'जो व्यक्ति अपनी ज्ञान परम्परा तथा अतीत के इतिहास का ज्ञान नहीं रखता वह सभ्य और शिष्ट नहीं कहला सकता, चूँकि वर्तमान का मूल अतीत में है और बिना उसको जाने वर्तमान के सामाजिक जीवन में बुद्धिपूर्वक सहयोग करना कठिन है'।

पर वे संस्कृत वाङ्मय के साथ साथ आधुनिक भाषाओं और विषयों का अध्ययन तथा अन्य देशों के संचित ज्ञानभण्डार से लाभ उठाना भी आवश्यक समझते थे। इसलिये जहाँ उनका यह सुझाव था कि आधुनिक शिक्षा पद्धति में संस्कृत के अध्ययन को प्रान्तीय भाषाओं के अध्ययन का अंग बनाया जाय, वहाँ दूसरी ओर उनका यह भी सुझाव था कि प्रान्तीय भाषाओं द्वारा संस्कृत की शिक्षा दी जाय, प्रान्तीय भाषाओं में संस्कृत वाङ्मय का अनुवाद हो और संस्कृत विद्यालयों के विद्यार्थी अपनी मातृभाषा के साहित्य का भी समुचित अध्ययन करें तथा संस्कृत विद्यालयों के पाठ्य-विधि में आधुनिक विषयों का अध्ययन भी शामिल हो। उनका विचार था कि 'माधुर्य और प्रसाद गुण मातृभाषा के साहित्य में ही सुगमता के साथ आ सकता है' और वे चाहते थे कि संस्कृत के विद्यार्थी मातृभाषा का समुचित ज्ञान प्राप्त कर मातृभाषा में साहित्य सृजन करने में भी गौरव का अनुभव करें।

उनकी धारणा थी कि जितना आधुनिक ज्ञान एक साधारण विद्यार्थी के लिये नितान्त आवश्यक है उतना तो संस्कृत पाठशालाओं के छात्रों को भी अर्जित करना ही चाहिए। उनके विचार में जब तक हम संस्कृत-शिक्षा-पद्धति में ऐसा सुधार नहीं करते कि शिक्षित राज्य के उपयोगी नागरिक बन सकें और ठीक प्रकार जीविका प्राप्त कर सकें तब तक संस्कृत-शिक्षा का उद्धार असम्भव ही है।

संस्कृत वाङ्मय की शिक्षा को अधिक गम्भीर और लाभप्रद बनाने के लिये वे यह भी चाहते थे कि विद्यार्थियों का अध्ययन तुलनात्मक हो, शास्त्रों के वैज्ञानिक अध्ययन और अनुसन्धान को प्रोत्साहित किया जाय तथा संस्कृत-शिक्षा के स्तर को उठाया जाय और उसका समीकरण किया जाय। उनका विचार था कि के कार्य में पुरातन और

नवीन शैली दोनों के विद्वानों का सहयोग प्राप्त किया जाय और इस सम्बन्ध में जिन भाषाओं और नवीन शास्त्रों की शिक्षा की आवश्यकता हो उसका भी संस्कृत विश्वविद्यालयों में समुचित प्रबन्ध हो। भारतीय संस्कृति और वाङ्मय के वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिये वे 'वैदिक तथा वैदिकेतर साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन तथा लोक-साहित्य, लोकव्यवहार और लोकश्रुति तथा ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक पुरातत्वविज्ञान, भाषा विज्ञान, मानवजाति विज्ञान, पुराणविज्ञान और अनेक नवीन विज्ञानों के अनुशीलन को आवश्यक समझते थे।

सहयोग

आचार्य नरेन्द्रदेव के विचार में 'शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालय के अध्यापक, विद्यार्थी और प्रबन्धक एक दूसरे के सहयोगी हैं'। इस भाव को जगा कर ही शिक्षा के क्षेत्र में समुचित सफलता प्राप्त की जा सकती है, विद्यालयों के प्रबन्ध तथा अनुशासन एवं शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाया जा सकता है।

अध्यापक

प्रबन्धकों को यह बात अच्छी तौर पर 'समझ' लेना है कि अध्यापक ही विद्यालय के प्राण हैं, उनकी योग्यता और क्षमता ही विद्यालय की प्रतिष्ठा और उपयोगिता के मूल आधार हैं, उनके उत्साहपूर्ण सहयोग के बिना शिक्षा के ध्येय की सिद्धि असम्भव ही है। शिक्षकों के गौरव की रक्षा, उनके व्यक्तित्व और विद्वत्ता का आदर, उनके साथ निष्पक्ष व्यवहार तथा उनकी आवश्यकताओं को पूरा करके ही शिक्षा कार्य में उनका समुचित सहयोग प्राप्त किया जा सकता है।

आचार्य नरेन्द्रदेव को विद्यालयों में योग्य शिक्षकों का अभाव खटकता था। वे शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने के लिये सुयोग्य शिक्षितों को शिक्षा कार्य में आकृष्ट करना आवश्यक समझते थे। उसके बिना तो, आचार्यजी के विचार में, 'शिक्षा के विस्तार की समुचित व्यवस्था नहीं की जा सकती'। उनकी धारणा थी 'अध्यापन के कार्य को आकर्षक बनाने का एक ही तरीका है और वह है उसके वेतन में

समुचित वृद्धि'। उनका कहना था कि 'यदि समान योग्यता के लोगों का समान वेतन हो तो असन्तोष नहीं होता। असमानता के कारण असन्तोष बढ़ता है। यह मनुष्य का स्वभाव है'। अतः शिक्षा विभाग के वेतन को दूसरे विभागों के वेतन के समान ऊंचा उठाना नितान्त आवश्यक है'। 'अध्यापक समाज की धुरी है, क्योंकि शिक्षा राष्ट्र के पुनरुज्जीवन की सभी योजनाओं का महत्त्वपूर्ण अंग है। अतएव सरकार और स्थानीय अधिकारी दोनों के लिये उचित है कि ऐसी व्यवस्था करें कि नयी योजना में अध्यापक वृन्द अपने उचित स्थान और स्तर पर आसीन हों...जिसमें अध्यापक अपनी अध्यापकवृत्ति त्याग कर अच्छे वेतन और जीवन के उत्तम उपकरणों की प्राप्ति के लिये अन्यत्र न चले जाएं'।

अध्यापक वृन्द की 'बौद्धिक और अध्ययनगत स्वतन्त्रता अक्षुण्ण' बनाये रखना भी आचार्य नरेन्द्रदेव प्रबन्धकों का पुनीत कर्तव्य समझते थे। उनके विचार में 'एक अध्यापक तभी उपयोगी हो सकता है जब कि उसके अन्तर्गत बौद्धिक ईमानदारी हो और यह तभी सम्भव है जबकि उसे वैचारिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो। यह स्वतन्त्रता ही अध्यापक की अमूल्य निधि है और किसी भी दशा में उसका परित्याग श्रेयस्कर नहीं हो सकता। उसे सभी विषयों पर सैद्धान्तिक तरीके से अपने विचार व्यक्त करने की अबाध स्वतन्त्रता होनी चाहिए। एक सच्चा अध्यापक अपने युग के विवादास्पद प्रश्नों के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। उदासीनता का भाव या उससे भी बुरी बात अधिकारियों के भय से अपने विचारों को छुपाने की इच्छा उसकी मर्यादा के विरुद्ध है। किन्तु यह स्मरण रहे कि चाहे उसका विचार कुछ भी हो, उसे एक प्रचारक या मंच वक्ता बनने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए'।

आचार्य नरेन्द्रदेव चाहते थे कि प्रबन्धक और अध्यापक दोनों विद्यार्थियों के प्रति अपने कर्तव्य का अनुभव करें और समुचित सहयोग के साथ विद्यार्थियों की शिक्षा-दीक्षा के महत्त्वपूर्ण कार्य का सञ्चालन करें। 'विद्यार्थियों के मानस का निर्माण करना, उनके चरित्र का विकास करना तथा उनमें जनतान्त्रिक भाव भरना अध्यापक का कर्तव्य है।......जो अध्यापक केवल ज्ञान-वाहन करता है, किन्तु

विद्यार्थियों के विचार और चरित्र का निर्माण नहीं करता, वह एक योग्य अध्यापक नहीं है'। चरित्र निर्माण का काम एक अध्यापक तभी कर सकता है जब वह स्वयं 'विद्याचरण सम्पन्न' हो, उसके आचरण और व्यवहार में भेद न हो, वे विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का आदर करे, विद्यार्थियों के सामने चरित्र का ऐसा आदर्श उपस्थित करे कि जिसे वह 'स्वतः अनुसरण करने की कोशिश करें'। नरेन्द्रदेवजी चाहते थे कि अध्यापक वृन्द 'अपने शिष्यों में लोकतान्त्रिक भावना, स्वतन्त्रता के प्रति अनुराग, न्याय की प्यास और प्रगति का संकल्प पैदा करें, और इस कर्तव्य की पूर्ति के लिये 'स्वयं इन गुणों से सम्पन्न' हों। आचार्यजी की धारणा थी कि 'शिक्षक को सुशिक्षित तथा प्रबल नैतिक एवं समाज सेवा की भावना से युक्त होना चाहिए। तभी वह स्कूल का मानवीकरण कर सकता है, और अनुशासन की रक्षा एवं लोकतान्त्रिक नागरिक कर्तव्यों की पूर्ति के लिये नवयुवकों को तैयार कर सकता है'। आचार्यजी समझते थे कि समाज में समुचित आदर प्राप्त करने के लिये अध्यापकों को अपनी सेवा द्वारा समाज में अपनी 'उपयोगिता सिद्ध' करनी होगी। उसे 'राष्ट्रीयजीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त होना' होगा। जनशिक्षा के कार्य को विशेष तौर पर अपने हाथ में लेना होगा। समाजसेवा द्वारा वे विद्यार्थियों में भी मान प्राप्त कर सकते हैं।

विद्यार्थी

आचार्य नरेन्द्रदेव के विचार में विद्यार्थियों को भी अच्छी तौर पर समझ लेना है कि विद्यालय के सुप्रबन्ध और प्रतिष्ठा में ही उनका भला है, शिक्षकों के मान की रक्षा करके ही वे अपने अध्ययन में उनका समुचित सहयोग प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षक और शिष्य की प्रतिष्ठा अवश्य भी अन्योन्याश्रित है। विद्यार्थियों को यह भी समझना है कि 'इस युग में सफलता की कुंजी आत्म-संयम, साहस और सद्‌बुद्धि हैं', 'आत्मसंयम के बिना कोई व्यक्ति किसी जिम्मेदारी के काम को निभा नहीं सकता'। उन्हें यह भी समझना है कि 'स्वाधीनता का अर्थ विशृंखलता नहीं है, उसका सही अर्थ तो आत्मनियन्त्रण ही है'। उन्हें यह भी अच्छी तौर पर समझना है कि 'उनको अपने राष्ट्र को सबल बनाना तथा एक नूतन समाज का निर्माण करना है' और इस

महान् कार्य के लिये जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में ऐसे विद्याचरणसम्पन्न नवयुवकों की आवश्यकता है जो सेवाभाव से प्रेरित होकर राष्ट्र के उत्थान कार्य के लिये अग्रसर हों। उन्हें याद रखना है कि उन्हें अपनी जीविका का उपार्जन करने के साथ-साथ 'अपने समाज का हितकारक भी बनना है और स्वतन्त्र तथा लोकतान्त्रिक राज्य के नागरिक का कर्तव्य भी पालन करना है। इसमें सन्देह नहीं कि आज की किसी भी समस्या का समाधान युवकों के सहयोग के बिना समुचित रूप से नहीं हो सकता और यदि हमारे नवयुवकों का, जिनके हाथ में नेतृत्व आने वाला है, जीवन के मूल्यों के प्रति आदर भाव नहीं होता तो देश का भविष्य आशाप्रद नहीं हो सकता। अतः देश की भावी उन्नति के लिये आवश्यक है कि विद्यार्थी 'जनतान्त्रिक आदर्शों के प्रति दृढ़ आस्था' रखें, उनसे उनका 'सारा जीवनक्रम और व्यवहार अनुप्राणित' हो, वे अपने में 'रचनात्मक क्षमता' पैदा करें और उनके आन्दोलनों में 'ऐसे सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलनों का समावेश हो कि जिससे सामाजिक न्याय और बौद्धिक उन्नति का राज्य प्रतिष्ठित हो सके'।

२३. संस्कृति

धर्म का विश्लेषण

संसार के विभिन्न धर्मों का वैज्ञानिक अध्ययन, उनके संकीर्ण अनुष्ठानों और व्यापक उदारतत्त्वों के मौलिक भेद का समुचित ज्ञान तथा इतिहास की पृष्ठभूमि में उनकी क्रिया प्रतिक्रिया की जानकारी नरेन्द्रदेवजी मानव की गतिविधि के समुचित ज्ञान के लिये आवश्यक समझते थे। बहुत से दूसरे कामों में व्यस्त रहने के कारण वे स्वयं इस काम को नहीं कर सके। पर इस सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ लिखा है उससे उनके ऐतिहासिक और मानवतावादी दृष्टिकोण का तथा हिन्दू धर्म, बौद्ध दर्शन एवं मध्यकालीन सूफी-सन्तों की विचार धारा के सम्यक् ज्ञान का पता जरूर मिलता है।

धर्म की देन

संस्कृत वाङ्मय के प्रसिद्ध विद्वान् तथा अनीश्वरवाद के पोषक पण्डित लक्ष्मण शास्त्री जोशी की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दू धर्म की समीक्षा' की भूमिका में नरेन्द्रदेवजी ने स्वीकार किया है कि 'प्राचीन काल में धर्म जीवन के सकल अंशों को व्याप्त करता था' और 'वह उन्नति का अच्छा उपकरण था'। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित एक वार्ता में उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि संकुचित साम्प्रदायिक भावनाओं और कृतियों से प्रभावित होते हुए भी विशाल हिन्दू धर्म कुछ विशिष्ट उदार धार्मिक भावनाओं और मान्यताओं से अनुप्राणित है जिसके कारण वह 'किसी एक व्यक्ति को पैगम्बर या गुरु नहीं समझता' और स्वीकार करता है कि 'लोगों की रुचि भिन्न भिन्न होती है और विभिन्न मार्गों पर चल कर वह एक लक्ष्य पर पहुँच सकता है'। आकाशवाणी द्वारा प्रसारित एक दूसरी वार्ता में नरेन्द्रदेवजी ने यह भी स्वीकार किया है कि हिन्दू धर्म की उदार भावना के कारण 'इतिहास के लम्बे काल में भारतीय समाज ने अनेकता में एकता का दर्शन किया है' और यह 'एकता रक्त, रंग, भाषा, वेशभूषा, आचार-विचार और सम्प्रदाय आदि

की अगणित भिन्नताओं के ऊपर है'। इसी वार्ता में उन्होंने यह भी कहा है कि धार्मिक असहिष्णुता और कट्टरता के विरोधी मुसलमान सूफी और फकीरों तथा हिन्दू साधु-सन्तों ने 'मध्ययुग में साम्प्रदायिक ऐक्य के लिये बड़ा काम' किया है। उन्होंने बताया कि इन्होंने 'नैतिक शुद्धता और सच्ची भक्ति' पर जोर दिया, पर 'एतत्सम्बन्धी प्रदर्शनों तथा विभिन्न आयोजनाओं को ढोंग की संज्ञा प्रदान की, दोनों धर्मों में निहित अन्ध विश्वासों का तथा जातपांत का खण्डन कर छोटी-बड़ी सभी जातियों के लिये मुक्ति का मार्ग खोल कर जनसाधारण के जीवन को ऊँचा उठाया' तथा 'धर्म के आधार पर दोनों सम्प्रदायों में एकता स्थापित करने के लिये समुचित मंच प्रदान किया'।

धर्म की कट्टरता

पर धर्म की इस ऐतिहासिक देन को स्वीकार करते हुए नरेन्द्रदेवजी उस के 'प्रतिगामी' प्रभाव की ओर भी हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। उनका कहना था कि जब धर्म में 'जड़ता' आ जाती है और उसका विकास रुक जाता है, तब धर्म पर आश्रित समाज भी 'जड़ और निश्चेष्ट' हो जाता है। उनका यह भी कहना था कि 'धर्म आज रूढ़ियों और स्थिर स्वार्थों का समर्थक है', वह वर्ग वैषम्य तथा शोषण से ग्रसित समाज को अपने प्रचलित रूप में अखण्ड रखना चाहता है', वह उस आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था का 'पोषक और समर्थक' है जिसमें 'मनुष्य अपनी पूरी ऊंचाई तक नहीं पहुँच सकता, अपना पूर्ण विकास नहीं कर सकता।

मानवतावादी नरेन्द्रदेव धर्म को मानव की परिपूर्णता में 'बाधक' समझते थे। उनके विचार में धर्म 'जीवन की ठोस हकीकत से उसे अलग कर ख्याल और वहम की काल्पनिक दुनिया में उसको नचाता है और उसकी आत्मचेतना को पूर्ण रूप से विकसित नहीं होने देता'।

यद्यपि नरेन्द्रदेवजी 'निष्काम कर्म' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावनाओं को एवं बौद्ध काल की 'अप्रतिष्ठित निर्वाण की कल्पना' को जो साधक को अपनी वैयक्तिक मोक्ष की उपेक्षा करते हुए दुःख से आहत जीवों की सेवा करने के लिये प्रेरित करती है, जनकल्याणकारी समझते थे; पर वे धर्म के उन अध्यात्मवादी विचारों और कल्पनाओं को मानव

जीवन के विकास में बाधक समझते थे जो बताते हैं कि 'जीवन एक स्वप्न है, वह मिथ्या है' और जो 'जीवनसागर के निवारण का मार्ग मुक्ति बताते हैं'। उनकी धारणा थी कि इस प्रकार के 'निराशावादी विचार दर्शन तथा अनुशासन हमारा भला नहीं कर सकते'।

वर्तमान युग के धार्मिक आन्दोलन की चर्चा करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने आकाशवाणी की वार्ता में कहा कि 'पश्चिमी संस्कृति के सम्पर्क में आ जाने के फलस्वरूप हिन्दू तथा इस्लाम धर्मों की शुद्धि के हेतु देश में अनेक सुधारवादी आन्दोलनों का जन्म हुआ जो धर्मों के बिगड़ते हुए रूप को पुन: मौलिक स्तर प्रदान करना चाहते थे, पर इसका परिणाम यह हुआ कि भारत के सभी वर्ग जो एक सूत्र में आबद्ध थे, छिन्न-भिन्न होने लगे''शनैः शनैः एक दूसरे का अन्तर बढ़ता गया और कुछ दिनों के पश्चात् एक दूसरे के उत्सवों में भाग लेना लोगों ने बन्द कर दिया'। इस तरह से धर्मों की शुद्धि की प्रक्रिया ने देश में साम्प्रदायिक पार्थक्य को अधिक गम्भीर बना दिया जिसका दुरुपयोग 'क्षुद्रमनोवृत्ति के राजनीतिज्ञों ने' अपनी उद्देश्य पूर्ति के लिये इस तरह किया कि उससे साम्प्रदायिक वैमनस्य बढ़ने लगा। इस वैमनस्य को शान्त करने के लिये कतिपय विचारकों और नेताओं ने धर्म के सर्वव्यापी महत्त्व को तसलीम करते हुए सर्वधर्म-समन्वय का कार्य प्रारम्भ किया। पर इस प्रक्रिया से भी देश की साम्प्रदायिक समस्या हल नहीं हो सकी। वैमनस्य और अशान्ति बढ़ती ही गयी। आचार्य नरेन्द्रदेव प्रभृति विचारक स्वभावत: इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि इस युग में सर्व-धर्म-समन्वय द्वारा साम्प्रदायिक समस्या का हल होना असम्भव है, यद्यपि 'शान्ति की रक्षा' के निमित्त वे धर्म पर निष्ठा रखने वाले व्यक्तियों का धर्म के उन उदार भाव और तत्त्वों की ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक समझते रहे जो 'सब प्राणियों में अपने को और अपने में सब प्राणियों को देखने के लिये विवश करता है', जो सिखाता है कि 'स्वर्ग और मोक्ष लाभ के अनेक मार्ग हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने धर्म में रह कर मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है', और जिसकी मान्यता है कि 'अनुष्ठान, संस्कार सम्प्रदाय विशेष के चिन्ह विशेष हैं' एवं 'चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वे नितान्त आवश्यक नहीं हैं'।

नये युग की माँग

आचार्य नरेन्द्रदेव का कहना था कि 'हमारा यह नवीन युग हमसे वह नया कार्य कराना चाहता है जो वर्तमान धर्म सम्प्रदायों द्वारा पूरा नहीं हो सकता। किसी धर्म-समन्वय-युक्त धर्म से काम नहीं चलेगा, चाहे वह कितना ही प्रबुद्ध और वैज्ञानिक क्यों न हो'। उन्हें तो 'धर्म और विज्ञान का कोई युक्तिसंगत मेल बैठाना भी असम्भव प्रतीत होता' था। वे धर्मनिरपेक्षता के आधार पर जीवनोत्कर्ष और सामाजिक विकास के लिये सतत् प्रयत्न आवश्यक समझते थे। उनके विचार में 'समाज के प्रश्न धर्म के दामन में छिपाने से हल नहीं हो सकते', राष्ट्रीय भावना तथा जनतन्त्र को सुदृढ़ बनाने के लिये 'राजनीति में धर्म का हस्तक्षेप रोकना ही होगा' तथा जीवनोत्कर्ष और सामाजिक विकास के लिये धर्मनिरपेक्ष संस्कृति और नैतिकता को विकसित करना ही होगा। आचार्य नरेन्द्रदेव स्वीकार करते थे कि 'मनुष्य केवल तर्क से नहीं जी सकता, उसे विश्वास की आवश्यकता होती है'। पर उनके विचार में 'यह विश्वास धर्म-निरपेक्ष होना चाहिए। ऐसा विश्वास ही साम्प्रदायिकता को दूर कर सबके लिये समान जीवन ध्येय और सहयोग युक्त प्रयास निर्माण कर सकेगा, भविष्य के लिये आध्यात्मिक आश्वासन प्रदान कर सकेगा'। उनका कहना था कि 'लोकतन्त्र और मानव तथा सामाजिक मान से मूल्यांकन इन दो बातों पर विश्वास ही हमारे लिये काफी है। यदि यह विश्वास है तो विज्ञान के बल से हम मानव व्यक्तित्व के उद्देश्य को सिद्ध कर सकते हैं'। उनकी धारणा थी कि 'जीवन के नये सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्य प्रेरणा देने के लिये पर्याप्त हैं। इन मूल्यों पर जिनका अटल विश्वास है वह उन पर उसी प्रकार दृढ़ रह सकते हैं जिस प्रकार धार्मिक व्यक्ति दुःख यातना भोगते हुए भी अपने धार्मिक विश्वास पर अटल रहता है'। उनके विचार में 'सामाजिक लोकतन्त्र हमें वह विश्वास प्रदान करता है जिससे हम जी सकते हैं और अन्त में हम उन कृत्रिम दीवारों को ढाह सकते हैं जो हम लोगों को एक दूसरे से अलग करने के लिये धर्म और जात-पाँत ने खड़ी की हैं'।

संस्कृति का स्वरूप

नरेन्द्रदेवजी के विचार में 'संस्कृति चित्त-भूमि की खेती है।

चित्त को सुभावित करना ही उसको सुसंस्कृत करना है'। जीवन और कर्म में 'चित्त की प्रधानता' है। 'चित्त ही जीवन को सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों से सुभावित और सुवासित करता है'. अतः सुभावित चित्त ही मनुष्य की क्रियाकलापों को सुसंस्कृत कर सकता है। उनके विचार में 'व्यक्तियों के चित्त के साथ साथ एक लोकचित्त भी बनता रहता है—समाज में कई बातों में समानता उत्पन्न होती हैं''जिन बातों में समानता उत्पन्न होती है''उन्हीं के आधार पर लोकचित्त भी बनता है'। सामाजिक सम्पर्क का भौगोलिक क्षेत्र सीमित होने के कारण 'प्राचीन काल में एक सुभावित चित्त के लिये इतना ही सम्भव था कि वह व्यक्तिगत रूप से विश्व के अखिल पदार्थों के साथ तादात्म्य स्थापित करे और जीवन मात्र के लिये मैत्री और अद्वैत की भावना से वासित हो', पर सम्पर्क के साधनों के विस्तार के कारण लोकचित्त के कार्यक्षेत्र का विस्तार हो रहा है, लोकचित्त का राष्ट्रचित्त में विकास हो रहा है, और वह विश्वचित्त, विश्व संस्कृति के रूप में भी प्रकट होने लगा है। नरेन्द्रदेवजी का कहना था कि 'राष्ट्रीयता की प्रबल भावना से प्रेरित हो एक देश की भौगोलिक सीमा के भीतर रहने वाले सभी लोग कुछ बातों में अपनी समानता और एकता का अनुभव करते हैं। एकता की भावना देश की सीमा का भी अतिक्रमण करती है, और एक विश्व की भावना की ओर अग्रसर होती है ... आज विविध राष्ट्रों का अपना अपना लोकचित्त भी है। किन्तु क्योंकि आज एक ही प्रकार के आचार-विचार सारे विश्व में प्रचलित हो रहे हैं इसलिये कुछ बातों में विविध राष्ट्रों के लोकचित्त भी समान होते जाते हैं'।

इस तरह नरेन्द्रदेवजी के विचार में संस्कृति मानवीय, सामाजिक तथा ऐतिहासिक है। वह मानवचित्त की खेती है। वह इतिहास की पृष्ठभूमि में सामाजिक सम्पर्क के सन्दर्भ में समुदाय में मानव द्वारा विकसित और प्रफुल्लित होती है, 'लोकचित्त तथा विश्वभावना का एवं सामान्य सामाजिक मान्यताओं और आचार-विचार का रूप धारण करती है'।

सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया

नरेन्द्रदेवजी के विचार में 'जीवन और संस्कृति दोनों परिवर्तनशील हैं। स्थिति के बदलने पर दोनों में परिवर्तन होता है'। इतिहास

के किसी युग में संस्कृति ह्रासोन्मुख होती है तो किसी युग में विकासोन्मुख। देशकाल के भेद से विचार बदलते रहते हैं, विश्वासों में परिवर्तन होता रहता है। नरेन्द्रदेवजी के विचार में इस परिवर्तन का सम्बन्ध सामाजिक विकास से है, 'आर्थिक संगठन के बदलने से सामाजिक सम्बन्ध बदलते हैं, नवीन उद्देश्यों और आकाँक्षाओं का जन्म होता है, उनकी पूर्ति के लिये नये मूल्यों को स्वीकार करना पड़ता है'। जहाँ 'बहुत से सामाजिक मूल्य दीर्घकालीन हैं, इतिहास ने बार-बार उनकी उपयोगिता सिद्ध कर दी है', वहाँ 'कुछ दूसरे मूल्य हैं जो जनता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से समय-समय पर सृजित होते हैं। राष्ट्र की प्रगति के लिये उन्हें भी अपनाना ही होता है'। सामाजिक संसार में 'परिस्थिति के बदलने पर ताजे पानी की तरह नई संस्कृति की आवश्यकता होती है। अन्यथा जीवन प्रवाह असम्भव हो जाता है'।

नवसंस्कृति का निर्माण

नरेन्द्रदेवजी के विचार में 'आदिकाल से मानवजाति का जो विकास हुआ है, मनुष्य ने जो ज्ञानोपार्जन और चिन्तन किया है, उससे जिस संस्कृति की विभिन्न युगों में सृष्टि हुई है, उसका यथार्थ ज्ञान रखने से ही और उस संस्कृति के उपयोगी अंशों को सुरक्षित रखते हुए उसको नया रूप प्रदान करके ही नवसंस्कृति का निर्माण हो सकता है'। उनकी धारणा थी कि 'इतने काल के सामाजिक विकास के बाद जो मौलिक मानवीय सत्य प्रतिष्ठित हो गये हैं, उन पर जोर देना, उन्हें समाज के पुनर्निर्माण में उचित स्थान दिलाने का प्रयत्न करना नितान्त आवश्यक है। उनकी अवहेलना करके सभ्य और सुन्दर सामाजिक जीवन नहीं चलाया जा सकता'। इस तरह नरेन्द्रदेवजी के विचार में जहाँ काल के प्रवाह से जीर्ण और अनुपयोगी' पुराने विचारों का 'परित्याग' जरूरी है, वहाँ 'क्षणिक नैतिकता के नाम पर सभी पुराने आदर्शों और सिद्धान्तों का बहिष्कार' तथा 'समाज के दीर्घकालीन अनुभव तथा संचित ज्ञान का अनादर अनुचित होगा'। उनकी राय में हमारा कर्तव्य है कि 'हम अपनी संस्कृति का सतर्क और वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करें, उसके जीवनपूर्ण तत्त्वों की रक्षा करें और आधुनिक विचारों से उनका सामञ्जस्य स्थापित करें'। नव संस्कृति के

निर्माण के लिये पुरानी संस्कृति के सजीव तत्त्वों की रक्षा के साथ साथ 'जीवन के विकासोन्मुख मूल्यों को अपनाना' तथा 'आधुनिक ज्ञान को अधिकृत कर देशकाल के अनुसार उसका प्रयोग' करना भी जरूरी है। विचारों के संघर्ष से ही नवीन विचार पल्लवित होते हैं'। 'आदान प्रदान से ही संस्कृतियाँ पुष्ट और ऐश्वर्यमय हुआ करती हैं'। अतः 'जो लोग नवीन मूल्यों को ग्रहण करने से भागते हैं और विचारधारा सम्बन्धी संघर्ष से घबराते हैं, वे अपने को विकास के पथ से विरत करते हैं'। पश्चिम की देन को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। 'उन सामाजिक और राजनीतिक मूल्यों को अपनाना ही होगा जो वर्तमान समाज के लिये अपरिहार्य हैं'। समाज हित तथा संस्कृति के विकास में विज्ञान का समुचित उपयोग भी नितान्त आवश्यक है।

सांस्कृतिक पुनर्जीवन

जहाँ नरेन्द्रदेवजी प्राचीन भारतीय संस्कृति के सर्वजनीन सजीव तत्त्वों का संरक्षण और नवीन संस्कृति में उनका समुचित समावेश आवश्यक समझते थे, वहाँ वे प्राचीन संस्कृति के पुनर्जीवन के आन्दोलन को निरर्थक ही नहीं हानिकर समझते थे। उनके विचार में 'पुरानी पद्धतियों को पुनः जीवित करने की चेष्टा घातक सिद्ध होगी। नया सामाजिक दृष्टिकोण जिसके विकास की हम लोग चेष्टा करते रहे हैं और जिसके द्वारा ही जन-शक्ति प्रदान की जा सकती है, उस प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण से दबा दिया जायगा जो भविष्य की भूतकालीन व्यवस्था का पोषक है'

भारतीय संस्कृति का वैज्ञानिक अध्ययन

डाक्टर मंगलदेव शास्त्री द्वारा रचित 'भारतीय संस्कृति का विकास—वैदिक धारा' पुस्तक की भूमिका में नरेन्द्रदेवजी ने लिखा कि 'भारतीय संस्कृति को तीन दृष्टियों से देखा जाता है। एक तो परम्परावादियों की संकीर्ण साम्प्रदायिक दृष्टि है और दूसरी इसके प्रतिवाद स्वरूप आधुनिकतावादियों की दृष्टि है जो सारी प्राचीन परम्परा को अन्ध-विश्वास और प्रतिक्रियावादिता ही मानती है। तीसरी दृष्टि ऐतिहासिक की दृष्टि है जो प्राचीन तथा नवीन, प्राच्य तथा को ऐतिहासिक दृष्टि से समन्वित करके भारत के विभिन्न समुदायों तथा

धर्मों के योग से भारतीय संस्कृति का स्वरूप निर्मित करती है। स्पष्ट है कि यही वैज्ञानिक दृष्टि संकीर्ण साम्प्रदायिक भावनाओं और विषमताओं को दूर करके देश के समस्त समुदायों में एकसूत्रता ला सकती है, राष्ट्र में एकात्मता की भावना उत्पन्न कर सकती है और देश की अनेक नवीन तथा विषम समस्याओं का समाधान कर सकती है'।

भारतीय संस्कृति के सजीव तत्त्व

नरेन्द्रदेवजी के विचार में भारतीय संस्कृति का 'सबसे बड़ा तत्त्व विभिन्न जीवन-प्रणालियों में एकता और जीवन के हर क्षेत्र में समन्वय स्थापित करना है। ... वैविध्य और वैभिन्य में एकता का सूत्र हमें सदा से अनुप्राणित करता रहा है'। उनके विचार में भारतीय संस्कृति की दूसरी विशेषता 'नैतिक व्यवस्था की स्थापना' तथा 'आचरण की शुद्धता' है। अपना ख्याल रखते हुए दूसरों का भी ख्याल रखना संस्कृति का मूल मन्त्र है। इसीलिये हमारे यहाँ कहा गया है कि 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'। यह सामाजिकता और मानवता का मूलमन्त्र है। 'उसका तीसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व विश्वभावना है, 'आत्मौपम्येन' तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की शिक्षा है। नरेन्द्रदेव जी का कहना था कि 'हमारी संस्कृति के दो पहलू रहे हैं। एक व्यक्तिवादी दूसरा समष्टिवादी अर्थात् विश्वजनीन। जब कभी हमने अपनी संस्कृति के सर्वजनीन पहलू पर ध्यान केन्द्रित किया, भारत का गौरव बौद्धिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में अधिक बढ़ा। यदि हम विश्व-प्रेम की भावना को, जो मानवमात्र के प्रति प्रेम उपजाती है, फिर अपना लें तो हम अपने देश को उसी स्तर पर पहुँचा सकते हैं'।

सारांश

इस तरह प्राचीन भारतीय संस्कृति के सर्वथा परित्याग की भावना तथा उसके पुनर्जीवन के आन्दोलन का विरोध करते हुए नरेन्द्र-देवजी 'एक ऐसी नयी सभ्यता का निर्माण करना चाहते थे, जिसका रूप रंग देशी हो, जिसमें पुरातन सभ्यता के उत्कृष्ट अंग सुरक्षित रहें और साथ-साथ उनमें ऐसे नवीन अंशों का भी समावेश हो जो आज जगत में प्रगतिशील हैं और संसार में नवीन आदर्श उपस्थित करना चाहते हैं'।

संस्कृत वाङ्मय

आचार्य नरेन्द्रदेव संस्कृत वाङ्मय की व्यापकता, गरिमा और गाम्भीर्य पर मुग्ध थे। वे बौद्ध और जैन आगम ग्रन्थों को भी संस्कृत वाङ्मय में शामिल करते थे और संस्कृत वाङ्मय के साथ-साथ इनका अध्ययन भी आवश्यक समझते थे। पर इस सब के साथ-साथ अर्वाचीन पाश्चात्य विद्याओं का अध्ययन भी वे आवश्यक बताते थे। उनके विचार में 'ज्ञान के सदृश दूसरी पवित्र वस्तु नहीं है', अतः 'विदेशियों से उसे लेने में हमें संकोच नहीं करना चाहिए'।

मातृभाषा

नरेन्द्र देवजी मातृ-भाषाओं के अध्ययन तथा उनके साहित्यिक भण्डार की अभिवृद्धि पर विशेष जोर देते थे। उनका कहना था कि 'माधुर्य और प्रसाद गुण मातृ-भाषा के साहित्य में ही सुगमता से आ सकता है। अतः मातृभाषा में साहित्य सृजन करने में हम को गौरव का अनुभव करना चाहिए'। उन्हें इस बात की खुशी थी कि 'सब देशी भाषाओं में एक ही प्रकार का झुकाव पाया जाता है', सभी 'स्थानीय प्रभावों के अतिरिक्त देशव्यापी भावों से प्रभावित' हैं। वे इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना राष्ट्र निर्माण के लिये आवश्यक समझते थे।

हिन्दी का प्रसार

आचार्य नरेन्द्रदेव के विचार में 'एक सामान्य संस्कृति को विकसित करने के लिये हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार' किया जाना भी आवश्यक है। पर उनकी धारणा थी कि यह काम 'अहिन्दी भाषा-भाषियों के हार्दिक सहयोग से और उनकी सद्भावना द्वारा ही सिद्ध हो सकता है'। वे यह जानते थे कि 'असहिष्णुता और जल्दबाजी से हिन्दी का प्रचार नहीं होगा'। उससे तो काम बनने की बजाय बिगड़ेगा, भाषावाद का बितंडा खड़ा हो जायगा, राष्ट्रीय एकता को हानि होगी। आचार्यजी का विचार था कि 'राष्ट्रीय एकता को प्रतिष्ठित करने के लिये मेल की प्रक्रिया की गति को तेज करना जरूरी है'। इस उद्देश्य से उनके विचार में 'हिन्दी भाषा-भाषियों को दक्षिण की एक

भाषा का अध्ययन करना चाहिए'। 'अहिन्दी भाषाभाषी अपन अपनी भाषा के साथ-साथ हिन्दी का भी अध्ययन करें जिसमें शनैः शन हिन्दी भाषा व्यापक रूप से देश में फैल जाय'। नरेन्द्रदेवजी यह भी राय थी कि 'जहाँ तक सम्भव हो सब देशी भाषाओं में समान पारिभाषिक शब्द व्यवहार में आवें', 'सब भारतीय भाषाएं एक लिपि को अपनायें' और 'हिन्दी भाषा के भण्डार को दूसरी भारतीय भाषाओं के साहित्यरत्नों के अनुवाद से परिपूर्ण किया जाय'। उनका कहना था कि राष्ट्रीय साहित्य को 'राष्ट्रीयता और जनतन्त्र' का, जो 'युग धर्म' हैं, 'प्रतिनिधित्व' करना पड़ेगा, पर उसमें यह सामर्थ्य तभी आ सकती है कि 'जब हिन्दी भाषा-भाषियों की चिन्तनधारा उदार और व्यापक हो और जब हिन्दी साहित्य भारत के विभिन्न साहित्यों को अपने में आत्मसात करें और उत्तर दक्षिण के भेद को मिटा दें'। उनकी इच्छा थी कि 'सब की समवेत चेष्टा से हिन्दी भाषा का साहित्य समृद्ध और उज्जवल हो, जिसमें उसको राष्ट्रीय पद प्राप्त हो सके, उसका सबको समान रूप से उचित गर्व हो'। इसके लिये विद्यार्थियों को कई भाषाएं अवश्य सीखनी होंगी। पर आचार्यजी इससे घबड़ाते नहीं थे। उनका तो कहना था कि 'भविष्य में किसी भी व्यक्ति को शिक्षित नहीं समझना चाहिए जब तक वह दो-तीन देशी भाषाओं का ज्ञान नहीं रखता' हो।

साहित्य और जीवन

आचार्य नरेन्द्रदेव जीवन और साहित्य के घनिष्ट सम्बन्ध पर जोर देते थे। उनका कहना था कि जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति साहित्य का एक प्रमुख काम है। अतः जीवन को सञ्चालित करने वाली शक्तियों के आधार पर ही साहित्य का मानदण्ड निश्चित किया जा सकता है। मनुष्य एक सामाजिक जीव है। उसके जीवन की प्रक्रियाएं समाज में होती हैं, समाज द्वारा प्रभावित होती हैं, समाज को प्रभावित करती हैं। अत साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह 'मनुष्य को समाज से पृथक करके अमूर्त मानवता के स्वतन्त्र प्रतीक के रूप में न देख कर उसे सामाजिक प्राणी के रूप में देखे। ऐसे समाज के सदस्य के रूप में जिसमें निरन्तर संघर्ष हो रहा है और जो इन संघर्षों के कारण प्रतिक्षण परिवर्तनशील है'

साहित्य का सामाजिक ध्येय

नरेन्द्रदेवजी तसलीम करते थे कि 'प्रत्येक रचनात्मक कृति द्वारा रचयिता को एक प्रकार का आन्तरिक सन्तोष होता है' और इस अर्थ में 'स्वान्तः सुखाय' की धारणा 'यथार्थ' है। पर 'कला सोद्देश्य होती है। प्रायः प्रत्येक रचना के पीछे एक सन्देश होता है'। साहित्य, साहित्यकार के दृष्टिकोण पर आधृत होता है, वह 'एक सामाजिक प्रक्रिया है। इसका समाज पर अनिवार्य रूप से प्रभाव पड़ता ही है। अतः साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह अपनी रचनाओं की सामाजिक प्रतिक्रियाओं पर सदा ध्यान रखे तथा व्यापक दृष्टिकोण से साहित्य का सृजन करे, ताकि उसकी रचनाएं जीवन के उत्कर्ष और समाज की प्रगति में सहायक हो सकें'।

नरेन्द्रदेवजी के विचार में 'विश्वव्यापी जीवन-दृष्टिकोण' को अपना कर ही साहित्यकार प्रगतिशील साहित्य का सृजन कर सकता है। 'मानवीय भावनाएं साहित्य के उपजीव्य हैं'। 'जीवन के केन्द्र में मानव को प्रतिष्ठित करने वाला साहित्य ही प्रगतिशील साहित्य है'।

साहित्यिक का कार्य

आचार्य नरेन्द्रदेव की धारणा थी कि 'साहित्यिक अपने कर्तव्य तभी निर्वाह कर सकता है जब कि वह जीवन का गहराई से अ[illegible] करे, वह समाज की जीवन-सरिता में ऊपरी तल पर सञ्चालित [illegible] वाली प्रवृत्तियों तक ही अपनी दृष्टि को सीमित न रखे, अन्तःस[illegible] सरस्वती की भाँति नीचे रह कर प्रच्छन्न रूप से काम करने वाली श[illegible] का भी अध्ययन करे'। अतः 'प्रगतिशील साहित्यिक को जीव[illegible] समस्याओं का अध्ययन करना होगा, अपनी रचनाओं में उसे समा[illegible] वर्तमान रूप का चित्रण करना होगा, जनता की मूक अभिलाषा[illegible] वाणी देना होगी, इतिहास का अध्ययन करके उसकी जीवन-दा[illegible] शक्तियों का समर्थन करते हुए जनता का मार्ग प्रदर्शन करना होगा'।

आचार्य नरेन्द्रदेव के विचार में साहित्यिक क्षेत्र में

भाषा का अध्ययन करना चाहिए'। 'अहिन्दी भाषाभाषी अपनी-अपनी भाषा के साथ-साथ हिन्दी का भी अध्ययन करें जिसमें शनैः शनैः हिन्दी भाषा व्यापक रूप से देश में फैल जाय'। नरेन्द्रदेवजी की यह भी राय थी कि 'जहाँ तक सम्भव हो सब देशी भाषाओं में समान पारिभाषिक शब्द व्यवहार में आवें', 'सब भारतीय भाषाएं एक लिपि को अपनायें' और 'हिन्दी भाषा के भण्डार को दूसरी भारतीय भाषाओं के साहित्यरत्नों के अनुवाद से परिपूर्ण किया जाय'। उनका कहना था कि राष्ट्रीय साहित्य को 'राष्ट्रीयता और जनतन्त्र' का, जो 'युग धर्म' हैं, 'प्रतिनिधित्व' करना पड़ेगा, पर उसमें यह सामर्थ्य तभी आ सकती है कि 'जब हिन्दी भाषा-भाषियों की चिन्तनधारा उदार और व्यापक हो और जब हिन्दी साहित्य भारत के विभिन्न साहित्यों को अपने में आत्मसात करें और उत्तर दक्षिण के भेद को मिटा दें'। उनकी इच्छा थी कि 'सब की समवेत चेष्टा से हिन्दी भाषा का साहित्य समृद्ध और उज्जवल हो, जिसमें उसको राष्ट्रीय पद प्राप्त हो सके, उसका सबको समान रूप से उचित गर्व हो'। इसके लिये विद्यार्थियों को कई भाषाएं अवश्य सीखनी होंगी। पर आचार्यजी इससे घबड़ाते नहीं थे। उनका तो कहना था कि 'भविष्य में किसी भी व्यक्ति को शिक्षित नहीं समझना चाहिए जब तक वह दो-तीन देशी भाषाओं का ज्ञान नहीं रखता' हो।

साहित्य और जीवन

आचार्य नरेन्द्रदेव जीवन और साहित्य के घनिष्ट सम्बन्ध पर जोर देते थे। उनका कहना था कि जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति साहित्य का एक प्रमुख काम है। अतः जीवन को सञ्चालित करने वाली शक्तियों के आधार पर ही साहित्य का मानदण्ड निश्चित किया जा सकता है। मनुष्य एक सामाजिक जीव है। उसके जीवन की प्रक्रियाएं समाज में होती हैं, समाज द्वारा प्रभावित होती हैं, समाज को प्रभावित करती हैं। अतः साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह 'मनुष्य को समाज से पृथक करके अमूर्त मानवता के स्वतन्त्र प्रतीक के रूप में न देख कर उसे सामाजिक प्राणी के रूप में देखे। ऐसे समाज के सदस्य के रूप में जिसमें निरन्तर संघर्ष हो रहा है और जो इन संघर्षों के कारण प्रतिक्षण परिवर्तनशील है'

साहित्य का सामाजिक ध्येय

नरेन्द्रदेवजी तसलीम करते थे कि 'प्रत्येक रचनात्मक कृति द्वारा रचयिता को एक प्रकार का आन्तरिक सन्तोष होता है' और इस अर्थ में 'स्वान्तः सुखाय' की धारणा 'यथार्थ' है। पर 'कला सोद्देश्य होती है। प्रायः प्रत्येक रचना के पीछे एक सन्देश होता है'। साहित्य, साहित्यकार के दृष्टिकोण पर आधृत होता है, वह 'एक सामाजिक प्रक्रिया है। इसका समाज पर अनिवार्य रूप से प्रभाव पड़ता ही है। अतः साहित्यकार का कर्तव्य है कि वह अपनी रचनाओं की सामाजिक प्रतिक्रियाओं पर सदा ध्यान रखे तथा व्यापक दृष्टिकोण से साहित्य का सृजन करे, ताकि उसकी रचनाएं जीवन के उत्कर्ष और समाज की प्रगति में सहायक हो सके'।

नरेन्द्रदेवजी के विचार में 'विश्वव्यापी जीवन-दृष्टिकोण' को अपना कर ही साहित्यकार प्रगतिशील साहित्य का सृजन कर सकता है। 'मानवीय भावनाएं साहित्य के उपजीव्य हैं'। 'जीवन के केन्द्र में मानव को प्रतिष्ठित करने वाला साहित्य ही प्रगतिशील साहित्य है'।

साहित्यिक का कार्य

आचार्य नरेन्द्रदेव की धारणा थी कि 'साहित्यिक अपने कर्तव्य का तभी निर्वाह कर सकता है जब कि वह जीवन का गहराई से अध्ययन करे, वह समाज की जीवन-सरिता में ऊपरी तल पर सञ्चालित होने वाली प्रवृत्तियों तक ही अपनी दृष्टि को सीमित न रखे, अन्तःसलिला सरस्वती की भाँति नीचे रह कर प्रच्छन्न रूप से काम करने वाली शक्तियों का भी अध्ययन करे'। अतः 'प्रगतिशील साहित्यिक को जीवन की समस्याओं का अध्ययन करना होगा, अपनी रचनाओं में उसे समाज के वर्तमान रूप का चित्रण करना होगा, जनता की मूक अभिलाषाओं को वाणी देना होगी, इतिहास का अध्ययन करके उसकी जीवन-दायिनी शक्तियों का समर्थन करते हुए जनता का मार्ग प्रदर्शन करना होगा'।

आचार्य नरेन्द्रदेव के विचार में साहित्यिक क्षेत्र में साहित्यिकों को 'चतुर्दिक व्याप्त संघर्ष, असंतुलन और असामञ्जस्य' का मुकाबला करना होगा तथा 'संघर्ष को समाप्त कर समाञ्जस्य स्थापित' करना ही होगा। उन्हें अवश्य ही 'उस साहित्य का विरोध करना है जिसकी

दृष्टि अतीत की ओर है, जो प्राचीनता और परम्परा का अन्धपुजारी है, जिसकी आस्था विश्व के प्रति नहीं, वर्तमान भारत के प्रति नहीं बल्कि प्राचीन भारत के किसी कल्पित विकृत रूप के प्रति है, जो संकुचित आकर्षणशील राष्ट्रीयता का प्रचार कर रहा है'। पर प्रगतिशील साहित्य के सृजन में संलग्न साहित्यकार को यह भी याद रखना है कि 'नयी व्यवस्था की स्थापना के साथ प्राचीन का सर्वथा लोप नहीं होता। अर्वाचीन में एक नैरन्तर्य, एक शृङ्खला, एक परम्परा बनी रहती है'। अतः 'अतीत के अनुभव के आलोक में वर्तमान को देखना तथा आज के समाज में जो शक्तियाँ काम कर रही हैं, उसको समझना तथा मानव-समाज की दृष्टि से उसका सञ्चालन करना कलाकार का काम है'। वह 'अतीत का सर्वथा परित्याग नहीं करता। वह साधक तत्त्वों को चुन लेता है, बाधक तत्त्वों का परित्याग करता है', साथ ही साथ 'नवीन जीवन के विकासमान मूल्यों को' अपनाता है तथा प्राचीन साधक तत्त्वों और नवीन विकासमान मूल्यों के समन्वय द्वारा 'स्वास्थ्यप्रद साहित्य' एवं नवीन संस्कृति का सृजन करता है। समाज की प्रगति में यही कलाकार का महत्त्वपूर्ण योग है।

आचार्य नरेन्द्रदेव का विचार था कि 'साहित्यिक अपने को जनता का पथ-प्रदर्शन करने के योग्य तभी बना सकता है, जब कि वह अपने को जीवन-संघर्ष से सर्वथा पृथक न रखे, उसमें जनसाधारण के साथ अपना तादात्म्य स्थापित करने की क्षमता हो, वह इतिहास का वैज्ञानिक अध्ययन करके उसके विकास की दिशा को पहचानने में समर्थ हो, उसकी जीवनदृष्टि सही हो' तथा उसे 'आत्माभिव्यक्ति' की पूरी स्वतन्त्रता हो। उनका कहना था कि 'जीवन-संघर्ष से पृथक रह कर सच्चे और प्रगतिशील साहित्य का सृजन सम्भव नहीं है'। पर वे मानते थे कि जहाँ 'संघर्ष के इतने निकट रहना कि वह उसका निरीक्षण कर सके' साहित्यिक के लिये आवश्यक है, वहाँ 'संघर्ष के सम्बन्ध में निष्पक्ष सम्मति बना सकने और साहित्य-सृजन के लिये अवकाश प्राप्त करने के लिये संघर्ष में सक्रिय भाग लेने से कलाकार को बचना पड़ता है'। साहित्य तो साहित्यिक की 'आत्माभिव्यक्ति का दूसरा नाम है'। उसके लिये कलाकार की आत्माभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा तो परम आवश्यक ही है।

सत्यं, शिवं, सुन्दरम्

नरेन्द्रदेवजी 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' का सिद्धान्त मानते थे। पर उनका कहना था कि परिस्थितियों के सन्दर्भ में इन मूल्यों की परिभाषा भी बदलती रही है। आज के वैज्ञानिक युग में व्यक्तिवाद, स्वार्थ और होड़ के सिद्धान्त को छोड़ कर सहकारिता द्वारा ही हम अपने जीवन में इन मूल्यों को आत्मसात कर सकते हैं, उपलब्ध साधनों का ठीक ठीक प्रयोग कर मानव-कल्याण की अभिवृद्धि कर सकते हैं।

कला के क्षेत्र में 'उन्मुक्त वातावरण में' इन तीनों मूल्यों की वे ऐसी 'समन्वित अभिव्यक्ति' चाहते थे जिससे 'स्वतन्त्र समाज के मानव-मूल्यों, सामाजिक आदर्शों, सामाजिक आकाँक्षाओं तथा व्यक्तियों की मानवोचित भावनाओं का उपयुक्त तथा सुबोध रूप में निरूपण' सम्भव हो। उनके विचार में समाजवादी समाज में 'कला वस्तुवादी होगी और सामाजिक तथा वस्तुगत और बुद्धिगत सत्यों का समान' रूप से प्रतिपादन करेगी। वह स्वतन्त्र सामूहिक प्रयास द्वारा प्राप्त होने वाले सुख और आनन्द को मूर्तिमान करेगी'। नरेन्द्रदेवजी की धारणा थी कि 'सत्य, शिव और सुन्दर' कला के अविच्छिन्न अवयव हैं। अतः यह जरूरी है कि सत्य की अभिव्यक्ति इस प्रकार की जाय कि उससे आनन्द और सामञ्जस्य की वृद्धि हो, न ही सुख और आनन्द को असत्य और असामञ्जस्य से मिलाया जाय और न सौन्दर्य में सत्य, सामाजिक सुख और सद्गुण का अभाव हो।

२४. सिद्धान्त

व्यक्ति और समष्टि

व्यक्ति और समष्टि के पारस्परिक सम्बन्ध के प्रश्न पर शुरू से (कई विचार धाराएं प्रचलित रहीं हैं। कुछ विद्वान व्यक्ति को समाज का मूल आधार स्वीकार करते हुए व्यक्तिवाद को पुष्ट करते हैं। उनके विचार में समाज व्यक्तियों का समूह है, प्रत्येक मनुष्य स्वत. उद्देश्‍ स्वरूप है, व्यक्तिगत प्रेरणाएं और स्वार्थ ही सामाजिक प्रक्रियाओं क मूल स्रोत हैं, व्यक्तिगत हितों की उपलब्धि में रुकावटों को दूर करना ही सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख उद्देश्य है। कुछ विद्वान् व्यक्ति के बजाय समष्टि की प्रधानता स्वीकार करते हुए समष्टिवाद को पुष्ट करते हैं। ये विचारक व्यक्ति को समष्टि का अवयव मात्र समझते हैं, व्यक्तिगत मानस को समष्टि के लोकमानस की कृति मानते हैं, समष्टि के उद्देश्य की सिद्धि ही व्यक्ति की वृत्ति स्वीकार करते हैं। जहाँ प्लेटो समष्टिवादी था, अरिस्टाटल मूलतः व्यक्तिवादी था। इसी तरह हीगल समष्टिवादी और कान्ट व्यक्तिवादी था। जहाँ व्यक्तिवाद ही पूंजीवाद और उदारवाद का मूल दार्शनिक आधार है, वहाँ समाज की समष्टिवादी व्याख्या ही फासिज्म और नाजिज्म की सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार हैं। उनके विचार में राष्ट्र और राज्य सब कुछ हैं, व्यक्ति कुछ नहीं है। राष्ट्र और राज्य के व्यक्तित्व में अपने व्यक्तित्व को विलीन करने में ही व्यक्ति की सफलता और परिपूर्णता है।

हीगल के विचारों से प्रभावित बहुत से कम्यूनिस्ट और कतिपय समाजवादी भी समष्टिवाद का समर्थन करते हैं। उनके विचार में भविष्य के आदर्श-समाज में मनुष्य अपने व्यक्तित्व का अनुभव ही नहीं करेगा और हर प्रकार से समुदाय में विलीन हो जायगा। उसका जीवन सामुदायिक जीवन हो जायगा; उसके विचार, उसकी अभिलाषाएं सामुदायिक हो जायंगी।

पर बहुत से विचारक व्यक्ति के महत्त्व को सर्वथा विनष्ट करने वाली इस समष्टिवादी विचारधारा को स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं। वे

समष्टि में व्यक्ति को विलीन करने के बजाय समता और स्वतन्त्रता के आधार पर एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते हैं जिसमें समष्टि और व्यक्ति का सामञ्जस्य हो, व्यक्ति समष्टि के महत्त्व और मर्यादाओं को स्वीकार करे, प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास और अभिव्यक्ति की समानरूप से समुचित सुविधा और स्वतन्त्रता प्राप्त हों, समष्टि के अधिकार और शक्ति का प्रयोग मानव हित की पुष्टि में हो।

आचार्य नरेन्द्रदेव व्यक्तिवादी और समष्टिवादी सामाजिक विश्लेषणों के समन्वय और सामञ्जस्य पर विश्वास करते थे। वे व्यक्ति और समष्टि दोनों के महत्त्व को स्वीकार करते थे, दोनों को अपनी गति, प्रगति के लिये अन्योन्याश्रित समझते थे। जहाँ व्यक्तिवादी व्यक्तिगत मानस के महत्त्व को स्वीकार करते हुए लोकमानस के अस्तित्व को स्वीकार ही नहीं करता और जहाँ समष्टिवादी लोकमानस की प्रधानता को स्वीकार करते हुए व्यक्तिगत मानस की स्वतन्त्र सत्ता को अस्वीकार करता है, वहाँ नरेन्द्रदेवजी 'समाज के सम्बन्धों को समझने के लिये व्यक्तिगत मानस और लोकमानस' दोनों पर विचार करना आवश्यक समझते थे। जहाँ व्यक्तिवादी मनुष्य की व्यक्तिगत प्रेरणाओं और क्रियाकलापों को सामाजिक प्रक्रियाओं का मूल आधार मानते हैं और समष्टिवादी व्यक्तिगत चेष्टाओं और गतिविधि को लोकमानस और सामाजिक प्रक्रियाओं और परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब समझते हैं, वहाँ नरेन्द्रदेवजी व्यक्ति और समाज दोनों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए संसार के समस्त व्यापार को मानव और समाज दोनों की क्रिया-प्रतिक्रियाओं का परिणाम समझते थे।

नरेन्द्रदेवजी के विचार में 'वस्तुतः व्यक्ति और समष्टि में कोई नैसर्गिक विरोध नहीं है'। विशुद्ध अहम् एक बौद्धिक कल्पना है, पूर्ण रूप से आत्मपूरित व्यक्ति का विचार नितान्त काल्पनिक है। 'मनुष्य सामाजिक प्राणी है', 'समाज के बाहर उसका अस्तित्व नहीं है'। समाज मनुष्य के जीवन का अनिवार्य तत्त्व है। 'सामुदायित्व अनिवार्य है'। उसको 'स्वीकार करके ही व्यक्ति आगे बढ़ सकता है'। 'मानवीय गुणों की सृष्टि समाज में ही होती है'। 'समाज में ही मानव का विकास हुआ है'। 'समाज से ही वह अपनी शक्तियों के विकास के लिये सामग्री पाता है, समाज में ही वह शक्तियों का प्रयोग कर उनको

विकसित करता है'। सामाजिक विकास के साथ ही साथ 'धीरे-धीरे व्यक्तित्व समृद्ध होता है'। 'ज्यों-ज्यों समाज ऊंचे स्तर में उठता है त्यों-त्यों व्यक्तित्व के विकास की गहराई बढ़ती जाती है'। एक कबीले के व्यक्ति और राष्ट्र के व्यक्ति की तुलना करके इसका अनुमान लगाया जा सकता है। दोनों के विचार, अनुभव और कल्पना में 'आकाश-पाताल का अन्तर है'। उस व्यक्ति के 'व्यक्तित्व की उदारता, समृद्धि और वैचित्र्य का क्या कहना' जो 'राष्ट्र की सीमा का उल्लंघन' कर, 'जाति, धर्म, रंग का भेद न कर मनुष्य मात्र के प्रति आदार और प्रीति का भाव रखता है' और जिसकी 'सूक्ष्म दृष्टि ··· गम्भीर और कोमल अनुभूति सकलविश्व से उसका तादात्म्य स्थापित करती है'। ऐसा अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व 'जगद्वन्द्य' है। इस तरह नरेन्द्रदेवजी के विचार में 'समग्र की पूर्णता में ही व्यक्ति की पूर्णता है, समाज का अंग बन कर ही, अपने संकुचित स्वार्थ को परित्याग करके ही, सहयोगयुक्त मानवकल्याण के प्रयासों द्वारा ही, व्यक्ति अपनी पूर्णता प्राप्त कर सकता है। आज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए मनुष्य को यह सब काम स्वेच्छा से ही करना है। इसी में उसका नैतिक विकास और समाज का भला है'।

पर व्यक्ति के महत्त्व को सर्वथा विनष्ट करके उसके अस्तित्व को समाज में सर्वथा विलीन करके भी मानव कल्याण की अभिवृद्धि सम्भव नहीं है। व्यक्ति साधन और साध्य दोनों है। मानव-शक्ति समाज हित की पुष्टि और अभिवृद्धि का एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है। पर प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन और लक्ष्य है। जीवन का विकास और लक्ष्य की साधना भी उसका कर्तव्य है। इसके लिये उसे सामाजिक साधनों के साथ-साथ स्वतन्त्र वातावरण की भी आवश्यकता है। नरेन्द्रदेवजी के विचार में 'स्वतन्त्र वातावरण में ही व्यक्तित्व निखरता है, उसका विकास होता है'। उनका कहना था कि स्वतन्त्र जीवन ऐसे समाज में ही सम्भव है जहाँ एक व्यक्ति को अपने नैतिक, बौद्धिक और कलात्मक जीवन की अभिव्यक्ति का पूरा और स्वतन्त्र अवसर प्राप्त हो और 'सामान्य जन गरीबी और अरक्षता से मुक्त हो'। 'यदि राज्य की ओर से व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अपहरण होता है, यदि उनके नागरिक अधिकार सुरक्षित नहीं हैं, यदि उसको अपने भावों को

व्यक्त करने तथा दूसरों के साथ सहयोग कर किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये संगठन बनाने की स्वतन्त्रता नहीं है तो व्यक्ति के विकास में बाधा पहुँचती है' ।

पर जिस तरह व्यक्तित्व के विकास के लिये स्वस्थ स्वतन्त्र सामाजिक वातावरण तथा सामाजिक सुविधाओं और साधनों की आवश्यकता होती है, उसी तरह समाज के विकास के लिये 'विभूति से सुशोभित मानव' जरूरी है। 'व्यक्तित्व को मिटा कर समाज समृद्ध नहीं हो सकता'। इतिहास साक्षी है कि जिस समाज में व्यक्ति के विकास में बाधा पहुँचायी गयी, उसकी स्वतन्त्रता का अपहरण किया गया और राज्य या समाज की ओर से विचारों का दमन हुआ उस समाज में गत्यावरोध हुआ तथा उसका ह्रास और पतन हुआ' ।

इस तरह स्वतन्त्र वातावरण में ही व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ 'समाज की उन्नति का क्रम' सम्भव है। पर समाज में 'व्यक्तियों को असमर्यादित स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती'। व्यक्तित्व के विकास तथा समाज की सुव्यवस्था दोनों के लिये व्यक्ति की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में मर्यादा को स्वीकार करना जरूरी है। पर 'स्वतन्त्रता का अर्थ उच्छृङ्खलता नहीं है, मर्यादाहीनता नहीं है। विकास प्राप्त मानव सुसंस्कृत है। वह दूसरों की स्वतन्त्रता का ध्यान रखता और स्वयं संयत होता है' ।

इस तरह अति व्यक्तिवाद और अतिसमष्टिवाद के भयावह दावों का 'प्रतिवाद' करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने व्यक्ति की मर्यादित स्वतन्त्रता तथा समष्टि के मर्यादित अधिकार को पुष्ट किया तथा 'व्यक्ति और समष्टि के सामञ्जस्य' को व्यक्तित्व के विकास तथा समाज की उन्नति दोनों के लिये जरूरी बताया।

नरेन्द्रदेवजी अपनी इस व्याख्या को मार्क्स और एंगिल्स के विचारों के अनुकूल समझते थे। उनका कहना था कि मार्क्स और एंगिल्स व्यक्ति को समष्टि में विलीन करने तथा मानव-स्वतन्त्रता का अपहरण करने के बजाय जीवन भर जनता की स्वतन्त्रता के लिये प्रयत्नशील रहे। वे दोनों व्यक्ति के पूर्ण विकास एवं जनसाधारण की स्वतन्त्रता को पुष्ट करने के निमित्त ही समाजवादी समाज का निर्माण

करना चाहते थे। मार्क्स ने स्वयं कहा है कि 'हम उन कम्यूनिस्टों में नहीं हैं जो व्यक्ति की स्वतन्त्रता का नाश करने के लिये कटिबद्ध हों जो समाज को एक विशाल बैरक या कारखाने में परिणित करना चाहते हैं। हम लोग स्वतन्त्रता के बदले बराबरी नहीं चाहते। हम लोगों का विश्वास है कि किसी भी सामाजिक व्यवस्था में वैसी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती जैसी ऐसे समाज में जो सामाजिक स्वामित्व पर आधारित हो'। नरेन्द्रदेवजी का कहना था कि मार्क्स तो राज्य के व्यक्तित्व में मानव के व्यक्तित्व को विलीन या विनिष्ट करने के बजाय ऐसे राज्यविहीन समाज की स्थापना करना चाहता था जिसमें मानव सर्व प्रकार के आधिपत्य और बाह्य नियन्त्रण से मुक्त हो, आत्मनियन्त्रण के सहारे स्वस्थ सामाजिक जीवन व्यतीत कर सके तथा सहयोगयुक्त मानव-कल्याण के प्रयासों द्वारा अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सके। नरेन्द्रदेवजी का कहना था कि मार्क्स स्वयं इस बात को स्वीकार करता था कि जिस प्रकार परिस्थितियाँ मनुष्य को बनाती हैं, उसी प्रकार मनुष्य परिस्थितियों को बनाता है। परिस्थितियों की गति-विधि और सम्भावनाओं की पृष्ठभूमि में संगठित मानव प्रयत्नों द्वारा ही समाज का क्रान्तिकारी नवनिर्माण सम्भव है।

जाति-व्यवस्था की समीक्षा

आचार्य नरेन्द्रदेव जाति-व्यवस्था तथा साम्प्रदायिकता को भारत के लिये अभिशाप समझते थे। वे स्वीकार करते थे कि जाति प्रथा बहुत 'पुरानी' और 'उसकी जीवन-शक्ति आश्चर्यजनक' है। पर उनके विचार में वह 'कालविपरीत तथा तत्त्वहीन' हो चुकी है और उसके कारण 'हिन्दू समाज का ह्रास और विघटन' होता जा रहा है। उन्हें दु:ख था कि स्वराज्य का मन्तव्य ठीक तौर पर न समझने के कारण स्वतन्त्रता के बाद जातिभावना क्षीण होने के बजाय 'दृढ़' होती जा रही है और उसने हमारे जीवन को विकृत और विषाक्त बना डाला है। वे जातिविहीन समाज को युग की माँग मानते थे। उनके विचार में 'जो संस्कृति भेदभाव रखती हो, मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखना नहीं चाहती हो, उस संस्कृति से आज हम अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा नहीं कर सकते। जो भेदभाव रखते हैं, मनुष्य को मनुष्य के रूप में

नहीं बल्कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में देखना चाहते हैं वे आज के युग में नागरिक होने के पात्र नहीं हैं'।

ऊंची जातियों के पारस्परिक राजनीतिक संघर्षों को वे स्थिर स्वार्थों पर आश्रित प्रतिक्रियावादी मध्ययुगीय मनोवृत्ति का कुचक्र समझते थे। हाँ, वे यह स्वीकार करते थे कि 'चुनावों में ऊंच और नीच जातियों का संघर्ष वस्तुत शोषकों और शोषितों के बीच चलने वाले संघर्ष का रूप है'। पर उनके विचार में संघर्ष का यह स्वरूप ठीक नहीं है। इस प्रकार जाँत-पाँत के आधार पर जातिवाद को दृढ़ बना कर वर्गविहीन समाजवादी समाज या स्वस्थ जनतन्त्र की स्थापना नहीं हो सकती। वे चाहते थे कि जनतान्त्रिक राज्य तथा समाजवादी समाज की स्थापना के निमित्त शोषित जनता को समझाया जाय कि 'जाति, बंश और सम्प्रदाय के भेदों को भुला कर शोषक वर्गों के आर्थिक प्रभुत्व के विरुद्ध वे संयुक्त मोर्चा कायम करें, चूसे जाने वाले मेहनतकशों का बिला लिहाज जात-पाँत और मजहब-मिल्लत एक खेमा बने' और उनके संयुक्त संघर्षों और प्रयत्नों द्वारा शोषणविहीन समाज का निर्माण हो। उनके विचार में 'केवल एक समाजवादी समाज में जो समता और सामाजिक न्याय पर प्रतिष्ठित होता है, उनकी सामाजिक, आर्थिक दशा में सुधार किया जा सकता है'। वे यह भी सोचते थे कि 'यदि हम निम्न जातियों को उचित रीति से शिक्षित करें और अपने आचरण से उन्हें दिखा दें कि हम उनके सामाजिक और आर्थिक स्तर को ऊंचा करने की सचमुच इच्छा रखते हैं और हम उनके उचित राजनीतिक अधिकारों को स्वीकार करने को तथा अपने एकाधिकार की प्रवृत्तियों को त्यागने को तैयार हैं तो जात-पाँत के संकीर्ण आधार पर छोटे-छोटे गुट बनाने की निरर्थकता हम उन्हें समझा सकते हैं'।

साम्प्रदायिकता की समीक्षा

नरेन्द्रदेवजी के विचार में 'साम्प्रदायिकता लोकतन्त्र का सबसे बड़ा शत्रु' तथा समाजवाद के मार्ग में 'सबसे बड़ी अड़चन' है। उससे 'हमारे राष्ट्र को खतरा' है। उनका कहना था कि 'साम्प्रदायिकता के कारण हमारी परम्परागत चिन्तन प्रणाली ने जिसका हमारी वर्तमान समस्याओं से कोई मेल नहीं है, अतिशय महत्त्व प्राप्त कर लिया है'

इस तरह साम्प्रदायिकता द्वारा सामाजिक क्रान्ति की 'भ्रूण हत्या' हो रही है। साम्प्रदायिक संस्थाएँ तो वास्तव में 'आस्तीन का साँप' हैं। उनके द्वारा जनकल्याण की अभिवृद्धि असम्भव है। वे तो वास्तव में प्रतिगामिता की पोषक हैं। नरेन्द्रदेवजी की धारणा थी कि 'जब तक इस देश के हिन्दू, सिक्ख और मुसलमान सही अर्थों में एक नहीं हो जाते, सबके सब राष्ट्रीयता के रंग में रंगे नहीं जाते और यह नहीं समझ लेते कि हिन्दुस्तान इन सब का देश है तथा सबको बराबर के अधिकार और उन्नति के अवसर मिलना चाहिए, उस समय तक हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिकता के प्रश्न हल नहीं होते'।

साम्प्रदायिक राष्ट्रीयता का विरोध

नरेन्द्रदेवजी हिन्दू राष्ट्र और हिन्दू राज्य के सिद्धान्तों को गलत और हानिकर समझते थे। उनके विचार में राष्ट्रीयता 'धर्म के भेदों से परे है'। उनका कहना था कि 'राष्ट्रीयता का अर्थ हिन्दू या मुस्लिम राष्ट्रीयता नहीं है। एक देश के भौगोलिक सीमा के भीतर रहने वाले विविध धर्म और बिरादरी के लोग जब अपनी एकता का अनुभव और विदेशियों से विभिन्नता का अनुभव करते हैं तभी राष्ट्रीयता जन्म लेती है'। उनका कहना था कि 'यदि हिन्दू राज्य का नारा कार्यान्वित किया गया तो लोकतन्त्र मुर्झा जायगा और हमारी सामाजिक व्यवस्था के वर्तमान दोष स्थायी बन जायेंगे, अनुदार और प्रतिक्रियावादी शक्तियों का जोर पुनः बढ़ जायगा और हिन्दू धर्म के नाम पर इस बात की पूरी कोशिश की जायगी कि लोकतन्त्रीय आदर्शों का आर्थिक क्षेत्र में विकास न हो सके। नया सामाजिक दृष्टिकोण, जिसके विकास की हम लोग चेष्टा कर रहे हैं और जिसके द्वारा ही जनशक्ति को नयी दिशा प्रदान की जा सकती है, उस प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण द्वारा दबा दिया जायगा जो भविष्य के विरुद्ध भूतकालीन व्यवस्था का पोषक है'। उनके विचार में 'हिन्दू समाज और राष्ट्रीयता दोनों के लिये जरूरी है कि हम अपने समाज को फिर से एक ऐसे नये आधार पर संगठित करें जो लोकतन्त्र के सिद्धान्त को मानता हो और जो विभिन्न धार्मिक समूहों को एकसूत्रता में बाँध कर उन्हें एक राष्ट्र बना सके'। उनकी धारणा थी कि 'सामाजिक असमानता को दूर करना और मानवमात्र के लिये आदर का भाव रखना हिन्दुओं

की उन्नति के लिये अति आवश्यक है। यदि हम अपने घर को संभालें, देश की आर्थिक समस्या को सुलझाएँ, देश के साधनों का विकास करें तथा राष्ट्रीयता और जनतन्त्र को पुष्ट करें, जिसमें सब नागरिक समानता का अनुभव कर राष्ट्रनिष्ठ बनें, तो हम एक ऐसी शक्ति अपने में पैदा करेंगे जो अमोघ कवच का काम देगी और विदेश में हमारा सम्मान बढ़ेगा'।

भाषावाद की समीक्षा

आचार्य नरेन्द्रदेव जातिवाद और साम्प्रदायिकता के साथ साथ भाषावाद और प्रान्तीयता को भी देश का अभिशाप समझते थे तथा अन्तर्प्रान्तीय सौहार्द और देशबन्धुत्व पर आश्रित व्यापक राष्ट्रीय भावना पर जोर देते थे। वे भाषा के आधार पर प्रादेशिक इकाइयों के पुनर्निर्माण के समर्थक थे, पर वे भाषा को राष्ट्र का आधार मान कर भारत को विभिन्न भाषा-भाषी राष्ट्रों का समूह मानने को तैयार नहीं थे। भाषा के नाम पर क्षेत्रीय भावनाओं को राष्ट्रीयता की मान्यता प्रदान करना वे देश की प्रगति के लिये घातक समझते थे। वे भाषा के प्रति निष्ठा का आदर करते थे, पर इस निष्ठा को देश-प्रेम से ऊँचा या उसके समान स्थान देना गलत समझते थे। वे चाहते थे कि भाषा पर आश्रित सभी सांस्कृतिक तथा समाजिक समस्याओं का शान्तिपूर्ण ढंग से निपटारा हो, देशभक्ति और देशहित को प्राथमिकता दी जाय, प्रत्येक राज्य या प्रदेश में भाषा-भाषी अल्प-संख्यकों के साथ सद्भावनापूर्ण व्यवहार किया जाय तथा विभिन्न भाषा-भाषी समूहों में सौहार्द को पुष्ट किया जाय। अन्तर्प्रान्तीय मनमुटाव तथा क्षेत्रीय भावनाओं के दुष्परिणामों के समाधान के लिये वे एकतन्त्र शासन प्रणाली की स्थापना जरूरी नहीं समझते थे। वे संघीय शासन-विधान को ही 'भारतीय स्थिति के उपयुक्त' समझते थे। उनके विचार में सांस्कृतिक स्तर पर 'मेल की प्रक्रिया की गति को तेज' करके, विभिन्न 'प्रदेशों के सांस्कृतिक सम्बन्ध को सुदृढ़' करके, अन्तर्प्रादेशिक 'बन्धुत्व' और सौहार्द को पुष्ट करके, सामाजिक न्याय के आधार पर सब विवादों का शान्तिपूर्ण ढंग से निबटारा करके, तथ राष्ट्रीय भावना को सुदृढ़ बना कर संकीर्ण क्षेत्रीयता की समस्या का समाधान किया जा सकता है।

राष्ट्रीयता

आचार्य नरेन्द्रदेव राष्ट्रीयता को इस युग की एक बड़ी देन तथा अन्तर्राष्ट्रीयता को युग की पुकार मानते थे। राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता के सामञ्जस्य को वे संसार की शान्ति और प्रगति के लिये आवश्यक समझते थे। वे देशबन्धुत्व पर आश्रित देशसेवा की भावना से अनुप्राणित तथा विश्वशान्ति और मानवमात्र के हित से मर्यादित उदात्त व्यापक राष्ट्रीयता के समर्थक तथा आक्रमणशील संकीर्ण राष्ट्रीयता के विरोधी थे।

उनके विचार में विभिन्न सम्प्रदायों, भाषाओं और बिरादरियों से सम्बन्धित नागरिकों को एक सूत्र में बाँधने वाली व्यापक राष्ट्रीय भावना ही देश में सुख-शान्ति की स्थापना तथा समृद्धि की वृद्धि कर सकती है। राष्ट्रीय एकता की प्रक्रिया को गतिशील बनाना वे जनकल्याण के लिये नितान्त आवश्यक समझते थे। इस काम के लिये 'सामान्य जीवन ध्येय' की सृष्टि और पुष्टि, 'सहयोगयुक्त प्रयास के अवसरों का निर्माण', सहज सहानुभूति की अभिवृद्धि, शिक्षा-दीक्षा द्वारा राष्ट्रीय चरित्र तथा सामान्य आचार-व्यवहार का विकास, सामान्य प्रतीकों की प्रतिष्ठा, अल्पसंख्यक समुदायों के हितों और अधिकारों की पूरी रक्षा तथा उनकी सांस्कृतिक भावनाओं का आदर एवं पिछड़ी जातियों की उन्नति पर 'विशेष ध्यान' वे परम आवश्यक मानते थे। नरेन्द्रदेवजी के विचार में राष्ट्रीय एकरूपता का यह कार्य सौहार्दपूर्ण वातावरण में सांस्कृतिक प्रक्रियाओं द्वारा ही ठीक तौर पर हो सकता है। यह काम 'बल पूर्वक नहीं हो सकता, क्योंकि बल का प्रयोग करने से तो तीव्र प्रतिक्रिया होती है और विरोध बढ़ जाता है'।

आचार्यजी के विचार में 'सच्चे राष्ट्रवाद का जनतन्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है'। जनतन्त्र ही उदारवादी व्यापक राष्ट्रीयता का आधार हो सकता है। अधिनायकत्व तो आक्रमणशील संकीर्ण राष्ट्रीयता को ही पुष्ट करता है, 'मानवता और व्यक्ति का लोप करके राज्य को ही सर्वेसर्वा बना देता है'। उसके द्वारा विश्वशान्ति और मानव-कल्याण असम्भव है। नरेन्द्रदेवजी संकीर्ण आक्रमणशील राष्ट्रीयता को 'इस युग का सबसे बड़ा अभिशाप' समझते थे। वे उसके 'कट्टर विरोधी'

थे। वे चाहते थे कि हम इस बात का सदा ध्यान रखें कि 'हमारी राष्ट्रीयता आक्रमणशील संकुचित राष्ट्रीयता की अधोगति को प्राप्त न होने पाये'। राष्ट्रीयता की प्रतिष्ठा के लिये वे 'सामाजिक असमानताओं को दूर करना' भी जरूरी समझते थे। समत्व ही राष्ट्रीयता का सुदृढ़ आधार है। वर्गहीन समाज में ही समता, स्वतन्त्रता और सहयोग के आधार पर राष्ट्रीय भ्रातृत्व सुचारु रूप से प्रतिष्ठित हो सकता है। वर्गों में विभाजित समाज में तो राष्ट्र कई भागों में बँटा रहता है और विभिन्न वर्गों में किसी-न-किसी रूप में संघर्ष बना ही रहता है।

विश्वभावना

राष्ट्रवादी नरेन्द्रदेव विश्वभावना से अनुप्राणित थे। वे मानव समाज की एकता पर विश्वास करते थे तथा विश्वशान्ति और विश्वहित की अभिवृद्धि एवं 'विश्व-बन्धुत्व' की पुष्टि प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय का पुनीत कर्तव्य समझते थे। 'संकीर्णता का परित्याग कर विश्वभावना का पोषण' तथा 'राष्ट्रीय प्रश्नों पर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से विचार वे आवश्यक समझते थे'। उनका कहना था कि 'हमारी समस्याएं शुद्ध राष्ट्रीय न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय होती जा रही हैं'। अतः इस युग में एकमात्र राष्ट्रीय भावना से काम नहीं चल सकता। उनकी धारणा थी कि 'राष्ट्रों के बीच जो गलतफहमी है उसे दूर करके समानता के सिद्धान्त पर आधारित पारस्परिक कल्याण भावना द्वारा ही हम स्थायी शान्ति एवं सुरक्षा स्थापित करने की आशा कर सकते हैं'। 'जब तक छोटे बड़े सभी राष्ट्रों के साथ समानता के आधार पर व्यवहार नहीं किया जाता, वर्तमान असमानताएं दूर नहीं की जातीं और धनी राष्ट्र गरीब राष्ट्रों के कल्याण को अपना प्रश्न नहीं समझते तब तक राष्ट्रीय संघर्षों को मिटाया नहीं जा सकता'।

उदात्त राष्ट्रीयता

इस तरह आचार्य नरेन्द्रदेव की राष्ट्रीयता देशबन्धुत्व और देशप्रेम की भावना से अनुप्राणित तथा समत्व, विश्वबन्धुत्व और जनतन्त्र की भावनाओं से समन्वित थी। वह अतिराष्ट्रवाद, विस्तारवाद और साम्राज्यशाही की भावना से रहित थी और समता के आधार पर विभिन्न राष्ट्रों के स्वतन्त्र सहयोग द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और

संगठन की समर्थक थी। देशभक्त नरेन्द्रदेव देशबन्धुत्व और देशहित की अभिवृद्धि के पोषक थे, पर वे पूंजीपतियों द्वारा समर्थित उस देशभक्ति के विरुद्ध थे जो राष्ट्र के गौरव, महिमा और वैभव के नाम पर पूंजीवादी व्यवस्था और आर्थिक साम्राज्यवाद की पुष्टि और विस्तार के लिये श्रमिक जनता को प्रेरित करती है। वे स्तालिन द्वारा प्रतिपादित और कम्यूनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय द्वारा समर्थित उस सोवियत भक्ति के भी विरोधी थे जो सोवियत संघ के नेतृत्व में संसार में मजदूरों की तानाशाही का समर्थन करती है और संसार की सब कम्यूनिस्ट पार्टियों को अपनी इच्छाओं को सोवियत भक्ति के अधीन रखने की सलाह देती है और पूँजीवादी साम्राज्यशाही का मुकाबला करने के नाम पर उन्हें सोवियत रूस की वैदेशिक नीति का समर्थन करने को बाध्य करती है।

पूँजीवाद की समीक्षा

आचार्य नरेन्द्रदेव सामन्तशाही के साथ साथ पूँजीवादी व्यवस्था को कालविपरीत तथा मानव के उत्कर्ष एवं समाज की प्रगति में बाधक समझते थे। वे सामन्तशाही की तुलना में पूँजीवादी व्यवस्था को अधिक प्रगतिशील मानते थे और उसकी कतिपय दीर्घकालीन मान्यताओं और देनों का संरक्षण सामाजिक विकास तथा मानव के अभ्युदय के लिये आवश्यक समझते थे। पर उनके विचार में पूँजीवादी व्यवस्था ऐसी आन्तरिक विषमताओं से दूषित है कि जिनका निराकरण पूँजीवादी सुधारों द्वारा असम्भव है। उनका कहना था कि 'उत्पादन की पूँजीवादी प्रक्रिया मानव श्रम के गौरव को नष्ट कर देती है।' मानव-श्रम 'बाजार भाव पर बाजार में बिकता है', पूँजीपतियों द्वारा उसका शोषण हो रहा है; पूंजीवादी व्यवस्था में वर्गसंघर्ष बढ़ता जा रहा है; आर्थिक शक्ति और साधन मुट्ठी भर पूँजीपतियों के हाथ में केन्द्रित हो रहे हैं, मुक्त व्यापार की प्रक्रिया ने इजारादारी का स्वरूप धारण कर लिया है, 'उत्पादन का सामाजीकरण हो गया है, पर उत्पादन के साधनों पर थोड़े से व्यक्तियों की मिलकियत बनी हुई है'।

आचार्य नरेन्द्रदेव सामन्तशाही राज्यव्यवस्था की तुलना में

पूँजीवादी लोकतान्त्रिक व्यवस्था को अच्छा समझते थे। वे यह भी स्वीकार करते थे कि सामन्तवादी आर्थिक व्यवस्था की तुलना में पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था में श्रमिक जनता अधिक स्वाधीन है। सामन्तों के अर्ध-दासों की तुलना में औद्योगिक मजदूरों को कहीं अधिक स्वतन्त्रता और अधिकार प्राप्त हैं। पर उनके विचार में पूँजीवादी व्यवस्था में भी श्रमिकों की शारीरिक और बौद्धिक शक्ति का स्वच्छन्द विकास नहीं हो पाता, आर्थिक परतन्त्रता के कारण राजनीतिक स्वतन्त्रता मानव को पराधीनता से पूरी तौर पर छुटकारा नहीं दिला पाती। 'सामाजिक और सांस्कृतिक असमानताएँ जन-जीवन में लोकतान्त्रिक भावनाओं के विकास में बहुत बड़ी बाधा हैं। आर्थिक विषमताओं और संघर्षों का निराकरण करके ही लोकतन्त्र को स्वस्थ और सबल बनाया जा सकता है' 'समाज में लोकतान्त्रिक मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जा सकता है। आर्थिक लोकतन्त्र द्वारा ही आर्थिक इजारादारी और राजनीतिक लोकतन्त्र की विषमता का ठीक तौर पर निराकरण हो सकता है।

इस तरह नरेन्द्रदेवजी की धारणा थी कि 'पूँजीवाद विकास की उस चरम सीमा को पहुँच गया है कि जहाँ वह उत्पादन की वृद्धि में रुकावट डालता है। पूँजीवादी प्रथा अपना काम समाप्त कर चुकी है। समाज की भावी उन्नति के लिये इस प्रथा का लोप आवश्यक है। पूँजीवाद की मर्यादित सीमा के भीतर उन्नति की अब कोई गुंजाइश नहीं है'। वे यह स्वीकार करते थे कि 'पूँजीवादी पद्धति की बुराइयां प्राचीन समाज में नहीं पायी जाती थीं'। पर उनके विचार में 'उनकी निज की बुराइयाँ कुछ कम नहीं थीं'। 'अतीत के पुनरुज्जीवन का प्रयत्न बालू से तेल निकालने के प्रयत्न की तरह सर्वथा विफल होगा', 'आज तक जो उन्नति हुई है उसको ताक पर रखकर नहीं, वरंच उसका उपयोग करके ही हमारा अभीष्ट सिद्ध होगा'। 'यदि हम मशीन युग की बुराइयों से बचना चाहते हैं तो उसका यह तरीका नहीं है कि हम पीछे कदम रखें और सारी औद्योगिक उन्नति को खत्म करके संसार की गरीबी और मुसीबत को बढ़ा दें'। 'जब छोटे से वर्ग का उत्पादन के साधनों पर स्वामीत्व नहीं रहेगा और वे सारे समाज की मिलकियत हो जायेंगे तब ही पूँजीवाद की आन्तरिक विषमता का निराकरण हो सकेगा'। वैज्ञानिक

समाजवाद को अपनाकर ही 'हम पूँजीवादी प्रथा के लाभ को सुरक्षित रखते हुए उसके दोषों को दूर कर सकेंगे'।

समाजवाद

आचार्य नरेन्द्रदेव की धारणा थी कि 'मनुष्य रोटी, शान्ति और स्वतन्त्रता तीनों चाहता है' और 'यह सब बातें सच्चे समाजवाद की स्थापना द्वारा ही प्राप्त हो सकती हैं'। उनका कहना था कि 'मानव-समाज का उद्धार सामाजिक शक्तियों के ऐसे नवीन संगठन द्वारा ही हो सकता है जो मनुष्य को उन साधनों का मालिक बनाये जो उसको जीवन प्रदान करते हैं'। उनके विचार में 'जब समाज के हित के लिये उद्योग-व्यवसाय का संगठन होगा और उत्पादन के सारे साधन व्यक्तियों की मिलकियत न होकर समाज की मिलकियत बन जायेंगे, तो समाज अपने साधनों के अनुसार जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये इतने परिमाण में वस्तुओं का उत्पादन करेगा कि समाज के प्रत्येक सदस्य को पूरी स्वतन्त्रता के साथ अपनी शक्तियों के विकास का अवसर मिलेगा। समाज के हाथ में जब उत्पन्न वस्तुओं का वितरण और विनिमय होगा, तो समाज में दरिद्रता और अशान्ति के स्थान में तुष्टि, पुष्टि और शान्ति विराजेगी'।

नरेन्द्रदेवजी इस बात को स्वीकार करते थे कि 'उत्पत्ति के साधनों को समाज के अधीन करने से अधिकारी वर्ग का प्रभुत्व बहुत बढ़ जाता है'। इसकी 'रोकथाम' वे आवश्यक समझते थे। उनके विचार में औद्योगिक लोकतन्त्र और व्यवसायों की यथासम्भव विकेन्द्रित व्यवस्था ही नौकरशाही के प्रभुत्व की बुराइयों का निराकरण है। उनका कहना था कि ऐसे नियम काम में लाये जायँ जिससे समाजीकृत उद्योगों पर 'जनता का...नियन्त्रण रहे', उनके प्रबन्ध में 'राज्य के अतिरिक्त मजदूरों का काफी हाथ' रहे। उनका यह भी विचार था कि 'स्वायत्त-शासन की संस्थाओं द्वारा भी कुछ व्यवसायों का सञ्चालन हो सकता है'।

नरेन्द्रदेवजी खेती के व्यवसाय को राजकीय उद्योग में बदलने के पक्ष में नहीं थे। वे सोवियत रूस में प्रचलित सामूहिक खेती के भी 'विरुद्ध' थे। वे चाहते थे कि समूचे गाँव के लोग मिलकर सहकारी

कृषि की प्रथा को अपनायें, सबकी जमीन एक साथ जोती बोई जाय. फसल के काटने के वक्त श्रम और क्षेत्रफल के हिसाब से पैदावार बाँट ली जाय। वे जानते थे कि 'गाँव वाले सरलता से सहकारिता को नहीं अपना लेंगे और हमें समझा बुझाकर प्रचार और प्रोत्साहन द्वारा उन्हें इसकी उपयोगिता पर विश्वास दिलाना होगा'। नरेन्द्रदेवजी सहकारिता को ही ग्रामीण आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था का मुख्य उपकरण बनाना चाहते थे। उनके विचार में 'सहयोग ही ग्राम-जीवन का आधार है', ग्रामीण जनता 'सहयोग से उत्पादन करे और सहयोग से ही अपने उत्पादन का क्रय-विक्रय करे' तथा 'सहयोग द्वारा देहातों में लोकतन्त्रात्मक चाल ढाल, रहन सहन...तथा लोकतन्त्र की परम्परा' प्रतिष्ठित एवं स्थापित की जायें।

इस तरह नरेन्द्रदेवजी के विचार में समाजवाद 'मौजूदा समाज की प्राचीन दासता, विषमता और असहिष्णुता को सदा के लिये दूर करके' एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहता है जो 'शोषणमुक्त' हो, जिसमें 'परस्पर विरोधी शोषक और शोषित आर्थिक वर्ग मिट जायें', जो 'सहयोग के आधार पर संगठित व्यक्तियों का सच्चा लोकतन्त्र बने', ऐसा 'समूह' बन जाय जिसमें 'एक व्यक्ति की उन्नति का अर्थ स्वभावतः दूसरे सदस्य की उन्नति हो और सब मिलकर परस्पर उन्नति करते हुए जीवन व्यतीत कर सकें' और 'समता, स्वतन्त्रता और भ्रातृत्व की स्थापना हो'। आचार्य नरेन्द्रदेव का कहना था कि समाजवाद एक ऐसा सिद्धान्त है जो 'मानव व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास पर उतना ही जोर देता है जितना आर्थिक स्वतन्त्रता पर' जो 'मनुष्य को विवशता के क्षेत्र से ऊपर उठाकर उसे स्वाधीनता के राज्य में ले जाता है', जो चाहता है कि 'मनुष्य अपनी असमर्थता से ऊपर उठकर 'सामाजिक विकास का नियन्त्रण कर सके'। इस तरह आचार्य नरेन्द्रदेव की धारणा थी कि 'समाजवाद एक स्वतन्त्र सुखी समाज में सम्पूर्ण स्वतन्त्र मनुष्यत्व को प्रतिष्ठित कर सकता है'। उनकी धारणा थी कि 'मानवता ही समाजवाद का आधार है' तथा 'समाजवाद ही श्रेणीविहीन नैतिकता तथा सामाजिक न्याय की स्थापना कर सकता है' एवं 'स्वतन्त्रता, समता और भ्रातृत्व के आधार पर एक सुन्दर, सबल मानव संस्कृति की सृष्टि कर सकता है' और व्यक्तित्व के

पूर्ण विकास को 'सम्भव बना सकता है। आचार्य नरेन्द्रदेव स्वीक करते थे कि 'समाजवादी समाज में भी समाज के सदस्यों में शारीरि और मानसिक अन्तर रहेगा ही' तथा 'जब तक समाज का अस्तित्व मौजूद है, समाज के भीतर विभिन्न कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिये श्रमविभाजन मौजूद रहेगा और फलस्वरूप अनेक पेशे भी रहेंगे', इसलिये समाजवादी समाज में पूर्ण एकरूपता तथा 'पूर्ण समता लाने का वायदा नहीं किया जा सकता'। समाजवाद तो कृत्रिम असमानताओं को दूर कर 'सबको अवसर की समानता' प्रदान करना चाहता है, वह समता के नाम पर स्वतन्त्रता को न्योछावर नहीं करना चाहता, वह तो समता और स्वतन्त्रता के समुचित समन्वय का ही समर्थन करता है।

जनतन्त्र

आचार्य नरेन्द्रदेव समाजवाद के साथ साथ जनतन्त्र को भी नवीन युग की पुकार मानते थे। वे दोनों के समर्थक थे, दोनों के घनिष्ट पारस्परिक सम्बन्ध पर जोर देते थे और उनका समुचित सामञ्जस्य स्वाभाविक तथा समाज की प्रगति के लिये आवश्यक समझते थे।

नरेन्द्रदेवजी लोकतान्त्रिक शासन-व्यवस्था को सर्वोत्तम शासन-व्यवस्था मानते थे तथा राज-शाही और सामन्तशाही के साथ-साथ हर प्रकार की साम्राज्यशाही और अधिनायकतन्त्र का विरोध विश्वशान्ति और मानव स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये आवश्यकता समझते थे। गुलामी, चाहे वह वैयक्तिक हो या राष्ट्रीय, जीवन के क्षेत्र को बहुत संकुचित कर देती है', गुलामी की अवस्था में जीवन का विकास अवरुद्ध हो जाता है', 'व्यक्ति और राष्ट्र मृत्यु की ओर चलने लगते हैं'। वे अमरीका के प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ स्वर्गीय वेंडल विल्की के इस विचार से सहमत थे कि 'स्वतन्त्रता अविभाज्य है और समान रूप से सबकी स्वतन्त्रता स्वीकार करके ही मानव स्वतन्त्र हो सकता है। संसार के सब भाग एक दूसरे से सम्बद्ध हैं और कोई राष्ट्र अकेले पूर्ण स्वतन्त्रता, शान्ति या विकास को प्राप्त नहीं कर सकता'। परतन्त्रता के विरुद्ध संघर्ष मानव का स्वभाव और कर्तव्य दोनों ही हैं।

नरेन्द्रदेवजी के विचार में मानव स्वतन्त्रता की समुचित रक्षा और अभिवृद्धि जनतान्त्रिक शासन-व्यवस्था में ही सम्भव है। राजाशाही

और सामन्तशाही में जनसाधारण को किसी एक विशिष्ट व्यक्ति या समुदाय का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ता है। 'अधिनायकतन्त्र आतंक पैदा करता है, मनुष्य को राज्य की मशीन का एक पुर्जा बना देता है और व्यक्तित्व के विकास का अवसर नहीं देता'। सुव्यवस्थित जनतन्त्र में ही बहुजन समाज अपने भाग्य का विधाता, अपने राष्ट्र का निर्माता बन सकता है, स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकता है, अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है।

नरेन्द्रदेवजी जनतान्त्रिक शासन व्यवस्था को पूँजीवादी युग की एक बड़ी देन स्वीकार करते थे। पर मुक्त व्यापार के सिद्धान्त को वे जनतन्त्र का अनिवार्य अंग नहीं मानते थे। मानव-श्रम के आदर को वे मानव-व्यक्तित्व के आदर का अविच्छिन्न अंग समझते थे। श्रम के गौरव का समुचित संरक्षण वे मानव की स्वतन्त्रता और गौरव के संरक्षण और अभिवृद्धि के लिये आवश्यक समझते थे। पर निजी सम्पत्ति के अधिकार की अखण्डता को वे स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। समाजहित की पुष्टि के निमित्त निजी सम्पत्ति की व्यवस्था के नियंत्रण को तथा बड़े-बड़े उद्योगों के समाजीकरण को वे जनतान्त्रिक स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं मानते थे। नरेन्द्रदेवजी का कहना था कि पूँजीवादी व्यवस्था में मुक्त व्यापार की सुविधा मुट्ठी पर पूँजीपतियों को ही प्राप्त है और उसका क्षेत्र निरन्तर सीमित होता जा रहा है, बहुसंख्यक मजदूरों को तो छोटे से समुदाय के आधिपत्य में ही काम करना पड़ता है। उनकी धारणा थी कि पूँजीपतियों की औद्योगिक व्यवस्था की तुलना में मजदूरों को औद्योगिक जनतन्त्र के जरिये ही जनतान्त्रिक प्रणाली को व्यापक बनाया जा सकता है, बहुसंख्यक मजदूरों को पूँजीपतियों के जनतन्त्र-विरोधी अधिकारों से मुक्त करा के उनके जनतान्त्रिक अधिकारों को वास्तविक बनाया जा सकता है, उनकी आर्थिक स्वतन्त्रता को पुष्ट किया जा सकता है, उनके जीवन स्तर को ऊँचा और उनके दैनिक जीवन को अधिक समाज-उपयोगी बनाया जा सकता है। नरेन्द्रदेवजी का कहना था कि 'राजनीतिक स्वतन्त्रता मानव को स्वतन्त्र नहीं करती। मानव तो तभी स्वतन्त्र होगा कि जब उसका जीवन खण्डित न हो, जब उसके जीवन के बौद्धिक और भौतिक अवयव उससे अलग न कर लिये जायँ, जब कि वह एक सामाजिक

जीव होकर अपनी जिन्दगी बसर करे और अपना काम-काज देखे और जब सब मनुष्य अपनी प्राकृतिक शक्तियों को ठीक तरह संगठित करें, सामाजिक शक्ति को राजनीतिक शक्ति के रूप में अपने से अलहदा न करें'।

इस तरह नरेन्द्रदेवजी समाजवाद द्वारा प्रतिपादित सामाजिक स्वतन्त्रता, सामाजिक समता, सामाजिक न्याय और सामाजिक जनतन्त्र के समर्थक थे। उनके विचार में एकमात्र राजनीतिक स्वतन्त्रता और राजनीतिक जनतन्त्र अपूर्ण है। वह जनतन्त्र अधूरा है जो राजनीतिक क्षेत्र में सीमित है जो 'समाज की आर्थिक विषमता को दूर करने में असमर्थ है'। उनके विचार में 'लोकतन्त्र केवल एक शासन पद्धति नहीं है बल्कि वह एक जीवन-प्रणाली है'। अतः 'लोकतान्त्रिक आदर्शों को केवल राजनीतिक क्षेत्र तक सीमित नहीं रखा जा सकता, मनुष्य के प्रत्येक क्षेत्र में उनको प्रतिष्ठित करना आवश्यक है'। वे लोकतन्त्र को प्रतिष्ठित करने के लिये जनता में 'लोकतान्त्रिक आदर्शों के प्रति सुदृढ़ आस्था आवश्यक' समझते थे और जनजीवन को लोकतान्त्रिक भावनाओं से अनुप्राणित करने के लिये 'अमानुषिक' आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक असमानताओं से संघर्ष कर उनको दूर करने की आवश्यकता स्वीकार करते थे। उनके विचार में समाज और जीवन में लोकतान्त्रिक आदर्शों का पूर्ण विकास और अभिव्यक्ति समाजवादी व्यवस्था में ही सम्भव है। 'समाजवाद ही सच्चे माने में लोकतन्त्र की स्थापना कर सकता है'। 'समाजवाद ही पूर्ण लोकतन्त्र है'। लोकतन्त्र तो समाजवाद का प्राण ही है। लोकतन्त्र की भावना और आदर्श समाजवाद में निहित हैं। जहां समाजवाद के बिना लोकतन्त्र अपूर्ण है, वहां लोकतन्त्र के बिना समाजवाद असम्भव है।

आचार्य नरेन्द्रदेव के विचार में मार्क्स लोकतन्त्र का समर्थक था। उसने जिस अधिनायकत्व की कल्पना की थी वह अल्पकालीन था और वह बहुसमुदाय का अल्प समुदाय पर अधिनायकत्व था। मार्क्स का लक्ष्य तो 'एक ऐसे वर्गहीन समाज की स्थापना था कि जिसमें सब लोग सब प्रकार के शोषण और अधिपत्य से मुक्त किसी बाहरी नियन्त्रण या राज्य दण्ड के भय के बिना सहयोग की भावना से प्रेरित हो स्वत समाज का सञ्चालन करें। यह तो जनतन्त्र का चरम विकास ही है'।

आचार्य नरेन्द्रदेव के विचार में 'लोकतन्त्र की जड़ें जनता में हैं'। सजग और शक्तिसम्पन्न जनता ही लोकतन्त्र का मुख्य आधार है। बालिग मताधिकार का 'क्रान्तिकारी सिद्धान्त' ही 'जनतन्त्र की आधार-शिला है'। जनता के सुशिक्षित और सुसंस्कृत बनाने का महान् उद्योग ही 'लोकतन्त्र की स्थापना में सच्चा सहायक हो सकता है'। 'सार्वभौमिक शिक्षा के बिना लोकतन्त्र का निर्माण सम्भव नहीं'। नरेन्द्रदेवजी का कहना था कि 'जनतन्त्र का अर्थ सामान्य जन के प्रति आदर और उसकी राष्ट्रीय विधायक शक्ति में विश्वास है'। जनता की क्षमता और विधायक शक्ति ही लोकतन्त्र की क्षमता और सफलता का मूल स्रोत है। अतः 'जनता जनार्दन की शिक्षा हमारा प्रधान कर्तव्य है'। उसे ऐसी शिक्षा प्रदान करना है कि जिससे लोकतान्त्रिक चरित्र का निर्माण हो सके, उसके अन्दर 'विवेचनात्मक शक्ति का विकास हो', वह 'विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं को भलीभांति समझ' सके, उसमें 'आत्मनिर्णय की क्षमता' आ सके। उन्हें यह 'विश्वास' हो जाय कि 'राज्य उनकी मान-महत्ता को स्वीकार करता है और शासन-व्यवस्था के वे स्वयं एक मुख्य अवयव हैं'।

नरेन्द्रदेवजी की धारणा थी कि 'स्वस्थ रचनात्मक विरोधी दल के अभाव में' 'शासन निरंकुश और भ्रष्ट हो जाता है', 'अधिनायकत्व की मनोवृत्ति का पनपना सुगम' हो जाता है। उनका तो कहना था कि 'अगर आप विरोधी दल की आवश्यकता से इनकार करते हैं तो इसका मतलब यह है कि आप निरकुश शासन का समर्थन करते हैं'। स्वस्थ विरोध के लिये वे धर्मनिरपेक्ष रचनात्मक दृष्टिकोण आवश्यक समझते थे। सरकार की एकमात्र ध्वंसात्मक आलोचना वे निरर्थक समझते थे। वे तो एक ऐसा विरोधी दल चाहते थे कि 'जो राज्य को किसी धर्म विशेष से सम्बद्ध करना न चाहता हो' और 'जिसकी आलोचना रचना और निर्माण के हित में हो न कि ध्वंस के लिये'। उनका कहना था कि 'सरकार की सम्पूर्ण भर्त्सना एक ऐसा खेल है जिसे हम अब खेल नहीं सकते। उससे कुछ काम नहीं होगा। सरकार की स्कीमों और कामों का आलोचनात्मक अध्ययन ही हमें ऐसी बुद्धिसंगत समीक्षा के योग्य बनायेगा जिसका असर सरकार और जनता दोनों पर पड़ सकेगा'। जनतान्त्रिक सिद्धान्तों और परम्पराओं की पुष्टि और जनतान्त्रिक

संसदीय प्रक्रियाओं का पालन भी वे एक जनतान्त्रिक विरोधी दल का कर्तव्य समझते थे।

कम्यूनिस्ट वर्ग-समाजों की राजनीतिक व्यवस्थाओं में विरोधी दल तथा बहुदलीय प्रणाली के औचित्य को स्वीकार करते हैं। पर उनके विचार में वर्गहीन समाज में बहुत से दलों के अस्तित्व का कोई औचित्य नहीं। उनका कहना है कि बहुत से वर्गों में विभाजित समाज में विभिन्न वर्गों के हितों का प्रतिनिधित्व करने वाले दल हो सकते हैं, पर वर्गहीन समाज मे वर्ग-हितों के संघर्ष के अभाव में एक से अधिक दल का कोई कारण नहीं है। आचार्य नरेन्द्रदेव कम्यूनिस्टों की इस दलील से सहमत नहीं थे। वे समाजवादी समाज में बहुदलीय व्यवस्था के औचित्य को स्वीकार करते थे। उनका कहना था कि समाजवादी समाज में भी नीति-रीति के सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है और इस मतभेद के आधार पर विभिन्न दलों की सृष्टि हो सकती है। उनका यह भी कहना था कि स्वस्थ जनतन्त्र के लिये विचारों और सिद्धान्तों का संघर्ष, अत. विभिन्न राजनीतिक पार्टियाँ जरूरी हैं। एक दलीय राजनीतिक व्यवस्था तो निरंकुशता और अधिनायकत्व को पुष्ट करती है, नागरिकों को सरकार की नीति-रीति के विरुद्ध एक संगठित विकल्प के रूप में अपना मत प्रकट करने का अवसर नहीं देती। आचार्य नरेन्द्रदेव की धारणा थी कि मार्क्स और एंगिल्स तो सन् १८७० में संगठित पेरिस कम्यून को मजदूरों के अधिनायकत्व की मान्यता प्रदान करते थे जिसमें कई दल श्रमिकों के हितों और विचारों का प्रतिनिधित्व करते थे।

आचार्य नरेन्द्रदेव जनतान्त्रिक समाजवाद की स्थापना के लिये 'पार्लियामेन्टरी काम, संघर्ष और रचनात्मक काम सभी आवश्यक' समझते थे। उनका विचार था कि 'अन्याय के विरुद्ध संघर्ष जनता में नयी जागृति पैदा करेंगे और इनमें आत्म-त्याग और भाईचारे के सद्‌गुणों का संचार करेंगे। ये उन्हें क्रियाशील बनायेंगे, शक्तियों को संगठित करेंगे और आत्मविश्वास को प्रोत्साहित करेंगे'। यह संघर्ष अवश्य सामाजिक क्रान्ति के महत्त्वपूर्ण उपकरण हैं। पर 'राष्ट्रव्यापी संघर्ष अपनी इच्छानुकूल जब चाहे शुरू नहीं किया जा

सकता' और क्रान्ति नित्य नहीं होती' तथा 'सुधारवादी समझा जाने वाला काम भी क्रान्ति का आधार बनता है'। अतः वे चाहते थे कि सोशलिस्ट कार्यकर्ता 'सामाजिक व्यवस्था का पूर्ण परिचय प्राप्त कर रचनात्मक क्रान्तिकारी योजनाओं को कार्यान्वित' करने के काम में जुट जायें। उनके विचार में 'यदि हम जनता के समक्ष निःस्वार्थ और रचनात्मक कार्यों द्वारा समाजवादी नीति को कार्यान्वित करने के लिये अपनी सचाई और योग्यता का प्रमाण पेश कर सके तो हम उनमें नया जीवन डाल सकते हैं और एक नया विश्वास उत्पन्न कर सकते हैं'।

२५. मार्क्सवाद

मार्क्सवादी धारणाएँ

आचार्य नरेन्द्रदेव मार्क्सवादी थे। वे मार्क्स और एंगिल्स के सामाजिक विश्लेषण और सामाजिक विकास की प्रक्रिया को मूलतः स्वीकार करते थे। पर वे मार्क्सवाद के भौतिक तत्त्वों के साथ-साथ उसके मानवीय तत्त्वों पर भी जोर देते थे। वे मार्क्सवाद के इस सिद्धान्त को मानते थे कि 'उत्पादक शक्तियों के विकास के अनुरूप सम्बन्ध कायम होते हैं, उत्पादक सम्बन्धों को जोड़कर समाज का आर्थिक ढाँचा बनता है और आर्थिक ढाँचे के आधार पर राजनीतिक और सांस्कृतिक ढाँचे की दीवार खड़ी होती है'। वे मार्क्स के इस सिद्धान्त को भी मानते थे कि 'किसी विशेष परिस्थिति में किसी विशेष प्रकार के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाले महापुरुष स्वयं बदली हुई परिस्थितियों के परिणाम होते हैं और उनका सिद्धान्त भी समाज में इसलिये स्वीकार किया जाता है कि वह नयी परिस्थिति के अनुकूल होता है'। वे यह भी स्वीकार करते थे कि 'किसी समाज की विचार-प्रणालियों में अर्थात् प्रचलित दर्शन, धर्म, राजनीति आदि में उस समय आधारभूत परिवर्तन होता है जबकि समाज की रचना में आधारभूत परिवर्तन होता है'। पर वे मार्क्सवाद की इन बातों पर भी जोर देते थे कि 'मनुष्य और परिस्थिति दोनों परिवर्तनशील और अस्थिर हैं', 'जिस प्रकार मनुष्य परिस्थितियों को बनाता है, उसी प्रकार परिस्थितियाँ मनुष्य को बनाती हैं,' और 'कानूनी और राजनीतिक संस्थाएँ, आर्थिक ढाँचे का परिणाम होते हुए भी, स्वतन्त्र शक्तियाँ बन जाती हैं और इतिहास की गतिविधि को प्रभावित करती हैं'। इस तरह आचार्यजी की राय में 'ऐतिहासिक विकास में अनेक कारण काम करते हैं' और नयी सामाजिक व्यवस्था को कायम करने के लिये अनुकूल सामाजिक परिस्थिति और प्रगति के साथ साथ मनुष्यों का सचेष्ट प्रयत्न भी जरूरी होता है। वह लेनिन की इस बात को ठीक समझते थे कि क्रान्ति के लिये क्रान्तिकारी परिस्थिति और क्रान्तिकारी प्रयत्न दोनों ही आवश्यक हैं। उनकी धारणा थी कि 'क्रान्ति स्वतः'

सफल नहीं होती''' क्रान्ति का संगठन सुदृढ़ होने से ही और क्रान्ति के संचालकों की दृष्टि स्पष्ट तथा रचनात्मक होने से ही क्रान्ति सफल होती है'। वे स्वीकार करते थे कि 'पुरानी आर्थिक प्रणाली को नाश करके उसके स्थान पर एक नयी आर्थिक प्रणाली कायम करना एक ऐसी घटना है जोकि मामूली सुधारवाद के रास्ते से नहीं हो सकती। समाज के ढाँचे में आधारभूत परिवर्तन की ऐतिहासिक आवश्यकता क्रान्ति द्वारा ही पूर्ण हो सकती है'। पर वे सुधार को क्रान्ति का आवश्यक अंग समझते थे और नये समाजवादी समाज के निर्माण के लिये संघर्ष के साथ-साथ क्रान्तिकारी रचनात्मक कार्य भी जरूरी समझते थे।

वर्ग-संघर्ष

वे मार्क्सवाद के वर्गीय विश्लेषण को मूलतः स्वीकार करते थे और वर्गविहीन समाज को कायम करने के लिये वर्ग-संघर्ष अनिवार्य समझते थे। वे वर्ग-सहयोग के अस्तित्व को भी स्वीकार करते थे और मानते थे कि विभिन्न वर्गों के हितों में संघर्ष होते हुए भी समाज के अस्तित्व के लिये किसी हद तक वर्ग-सहयोग अनिवार्य है। इसके बिना तो 'समाज छिन्न भिन्न हो जायगा'। पर वे वर्ग-संघर्ष को वर्गसमाज का अनिवार्य घटनाक्रम मानते थे। उनका कहना था कि वर्ग-संगठन और वर्ग-संघर्ष द्वारा ही शोषित वर्ग शोषण और आधिपत्य से छुटकारा पा सकता है और ऐसे समाज का निर्माण कर सकता है जिसमें वह शान्ति और समृद्धि का जीवन बिता सके। इस तरह शोषितों का वर्ग-संघर्ष सामाजिक क्रान्ति का मुख्य उपकरण तथा समाजवादी वर्गविहीन समाज की स्थापना का आवश्यक साधन है।

शोषितों के वर्ग-संघर्ष का समर्थन करते हुए नरेन्द्रदेवजी कहते थे कि 'वर्ग-संघर्ष ही सामाजिक क्रान्ति का आधार रहा है। समाजवादी लोग वर्ग संघर्ष को पैदा नहीं करते और न वे उसको पसन्द ही करते हैं। उनका उद्देश्य तो...समाज का ऐसा संगठन करना है जिसमें परस्पर विरोधी वर्गों और उनमें निरन्तर चलने वाले संघर्षों का अन्त हो जाय'। पर चूँकि वर्ग-संघर्ष के बिना शोषण और आधिपत्य से छुटकारा मिलना सम्भव नहीं है और वर्ग-संघर्ष द्वारा ही समाज का विकास हुआ है, इसलिये सोशलिस्टों को वर्ग-संघर्ष के लिये शोषित वर्गों को सचेत और संगठित करना पड़ता है और उनमें ऐसी चेतना पैदा

करनी होती है कि शोषित वर्गों की लड़ाई आर्थिक न रहकर राजनीतिक बन जाय।

इस तरह नरेन्द्रदेवजी मार्क्स की इस बात को तसलीम करते थे कि वर्ग-संघर्ष आर्थिक और राजनीतिक दोनों ही है। वे यह भी तसलीम करते थे कि पूँजीवादी युग में कल-कारखानों का मजदूर ही मुख्य क्रान्तिकारी वर्ग है। 'समाजवादी क्रान्ति का वही अग्रणी है'। उसका संगठन तथा उसकी चेतना और क्षमता समाजवादी क्रान्ति का मूल आधार है।

मध्यम श्रेणी के शिक्षित

पर लेनिन की तरह वे इस बात पर भी जोर देते थे कि केवल मजदूरों के बलबूते पर समाजवादी क्रान्ति सम्भव नहीं, उसके लिये तो मध्यम श्रेणी के शिक्षितों का क्रान्तिकारी समाजवादी नेतृत्व भी आवश्यक है। नरेन्द्रदेवजी का कहना था कि मार्क्सवादियों के अनुसार क्रान्तिकारी सिद्धान्त के बिना क्रान्तिकारी आन्दोलन नहीं हो सकता और समाजवाद के दर्शन की सृष्टि तथा उसका विकास विद्वानों और चिन्तकों द्वारा ही होता है। आने वाले समाज की भविष्यवाणी उनके द्वारा ही होती है। इस तरह निम्न मध्यमवर्गीय क्रान्तिकारी विचारक ही समाजवादी क्रान्ति के आध्यात्मिक साधन हैं।

किसान

किसानों के सम्बन्ध में अधिकांश मार्क्सवादी नेताओं की धारणाएं आचार्यजी को मान्य नहीं थीं। उनके विचार में किसी वर्ग की क्रान्तिकारिता उसकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर निर्भर होती है। साम्राज्यशाही तथा आर्थिक दासता से त्रसित एशिया का किसान परिस्थितिवश मूलतः क्रान्तिकारी है। उनकी क्रान्तिकारी आवश्यकताओं के आधार पर उनकी क्रान्तिकारी भावनाओं को जागृत और पुष्ट किया जा सकता है। उनकी धारणा थी कि एशिया में समाजवादी क्रान्ति की विजय के लिये आवश्यक है कि किसानों को संकीर्ण किसानवाद की बुराइयों को बताते हुए उन्हें समाजवाद का ऐतिहासिक महत्त्व समझाया जाय, उनके आर्थिक संघर्षों को समाजवादी संघर्षों से सम्बन्धित कर उन्हें समाजवादी क्रान्ति के प्रयत्नों में शामिल किया जाय तथा सहकारी संस्थाओं के माध्यम से उन्हें

समाजवादी निर्माण कार्य में लगाया जाय। इस सम्बन्ध में उनके विचार बहुत हद तक एंगिल्स के विचारों से मिलते जुलते थे जो छोटे किसानों को उनके हितों की रक्षा का विश्वास दिला कर उनकी क्रान्तिकारी भावनाओं को जागृत कर उन्हें समाजवादी क्रान्ति में शामिल करना चाहते थे।

दो युगों का कार्य

आचार्यजी का मत था कि भारत जैसे देश में समाजवादियों को एक साथ दो युगों का काम करना है। उन्हें कृषिक्रान्ति और समाजवादी क्रान्ति दोनों को सम्पन्न कर सामन्तशाही और पूंजीवाद दोनों को खत्म कर जनतन्त्र और समाजवाद दोनों को प्रतिष्ठित कर शोषणविहीन समाज कायम करना है। इस काम के लिये क्रान्तिकारी शिक्षितों के साथ-साथ श्रमिकों और किसानों दोनों के क्रान्तिकारी सहयोग की जरूरत है।

क्रान्ति का लक्ष्य

आचार्य नरेन्द्रदेव के विचार में 'जहां समाज में मौलिक परिवर्तन होना और राज्यशक्ति का एक वर्ग के हाथ से निकल कर दूसरे वर्ग के हाथ में जाना ही क्रान्ति है', वहां ऐसे वर्ग-विहीन समाज की रचना करना, जिसमें 'न कोई शासक है और न कोई शासित', सामाजिक क्रान्ति का लक्ष्य है।

लेनिन की तरह आचार्य नरेन्द्रदेव भी आतंक और षड्यन्त्र को क्रान्ति का अंग नहीं मानते थे। वे जनतान्त्रिक उपायों के अभाव में क्रान्ति के लिये संगठित सशस्त्र संघर्ष का समर्थन करते थे, पर हर परिस्थिति में सशस्त्र क्रान्ति को आवश्यक और लाभप्रद नहीं समझते थे। एंगिल्स की तरह आचार्यजी भी बालिग मताधिकार को 'क्रान्तिकारी सिद्धान्त' मानते थे, सामाजिक विकास की ओर एक 'क्रान्तिकारी कदम' समझते थे। वह एंगिल्स की इस बात से सहमत थे कि बालिग मताधिकार पर आधारित जनतन्त्र में जनतान्त्रिक ढंग से सामाजिक क्रान्ति को आगे बढ़ाया जा सकता है। बहुत-से नए हथियारों के आविष्कार से सरकारी पक्ष की फौजी ताकत बहुत बढ़ गयी है और उसके विरुद्ध सशस्त्र विप्लव कठिन हो गया है तथा जनतन्त्र में

जनतान्त्रिक उपायों से आगे बढ़ने की बजाय विप्लव का नारा लगाना हिमाकत होगी, शासक वर्गों के हाथ में खेलना होगा।

आचार्यजी की धारणा थी कि इस देश में समाजवादियों का कर्तव्य है कि वे जनतन्त्र-विरोधी भावनाओं और शक्तियों से जनतन्त्र की रक्षा करें, जनतान्त्रिक सिद्धान्तों के प्रति जनता की श्रद्धा को दृढ़ करें, राजनीतिक जनतन्त्र को सबल बनायें, और जनतान्त्रिक ढंग से समाजवादी क्रान्ति को सफल करें, समाजवादी समाज स्थापित करें।

सत्याग्रह

आचार्यजी जनतान्त्रिक उपायों में शान्तिमय हड़तालों और सत्याग्रह जैसे संघर्षों को भी शामिल करते थे। सत्याग्रह के सम्बन्ध में आचार्य नरेन्द्रदेव और महात्मा गान्धी दोनों में कुछ मौलिक मतभेद था। जहां महात्मा गान्धी सत्याग्रह को विरोधी के हृदय परिवर्तन का उपाय समझते थे, वहां आचार्य नरेन्द्रदेव सत्याग्रह को जन-संघर्ष का एक शान्तिमय ढंग समझते थे। जहां कांग्रेसी सरकारों के पोषक बहुत-से गान्धीवादियों का विचार है कि स्वराज्य में सत्याग्रह का कोई स्थान नहीं, वहाँ आचार्य नरेन्द्रदेव का कहना था कि जब गान्धीजी स्वराज्य में सत्याग्रह को समाजवादी समाज कायम करने का और अन्याय के प्रतिकार का उचित उपाय समझते थे, तब उसे शोषित अपने शोषण के निवारण के लिये भी जरूर प्रयोग कर सकते हैं और इस सम्बन्ध में गान्धीवादियों का विरोध अनुचित है। नरेन्द्रदेवजी की धारणा थी कि सत्याग्रह को वर्ग-संघर्ष या क्रान्ति का एक उपकरण स्वीकार कर लेने से 'मार्क्सवाद के किसी सिद्धान्त को कोई हानि नहीं पहुँचती'। उनका कहना था कि जहाँ मार्क्स के लिये सब प्रभावशाली उपायों का विश्लेषण करना असम्भव था वहाँ देशकाल के अनुसार कार्यक्रम में विभिन्नता का होना अनिवार्य है। देश-विशेष में कभी-कभी ऐसी संस्थाएँ जन्म लेती हैं जिनकी प्रतिष्ठा तथा गौरव सबको आकृष्ट करता है और जिनका प्रयोग देश-विशेष के अनुभव के अनुकूल होता है। आचार्यजी के विचार में सत्याग्रह को अपनाने से गान्धीवाद और मार्क्सवाद का समन्वय नहीं होता

मानवता

आचार्यजी मार्क्सवाद के नैतिक और सांस्कृतिक तत्त्वों पर विशेष जोर देते थे। वे समाजवाद को एक बड़ा नैतिक और सांस्कृतिक आन्दोलन समझते थे। आचार्य नरेन्द्रदेव मार्क्स को 'अपने युग का महान् मानवतावादी' मानते थे और उनके विचार में 'मार्क्स की विचार सरिणी का मुख्य विषय मानव था'। नरेन्द्रदेवजी का कहना था कि 'जिस प्रकार भूकम्प मापक यन्त्र पृथ्वी के सूक्ष्म से सूक्ष्म कम्पन का भी हिसाब रखता है उसी तरह मार्क्स मनुष्य के साधारण से साधारण कष्ट का हिसाब रखता था' और 'समाज के इस अन्याय को बर्दाश्त नहीं कर सकता था कि एक वर्ग के लोग सम्पन्न और सुसंस्कृत हों और दूसरे गुलामों की तरह रात-दिन मेहनत करने पर भी जिन्दगी की साधारण आवश्यकता से वंचित रखे जायँ'। नरेन्द्रदेवजी की धारणा थी कि समाजवादी सांस्कृतिक आन्दोलन का केन्द्र मानव है। 'मानव सर्वोपरि है'। 'जो सिद्धान्त, वाद या विचार—चाहे वह कोई धर्म हो या दर्शन या अर्थशास्त्र—मानव के उत्कर्ष को घटाता है, वह मार्क्स को मान्य नहीं है'।

मार्क्सवाद और नैतिकता

वे मार्क्स और एंगिल्स से सहमत थे कि 'वर्ग-समाज में मानवीय प्रेरणाओं का विकास अवरुद्ध हो जाता है और वर्ग-विहीन समाजवादी समाज में ही सच्ची मानवीयता सम्भव है'। एंगिल्स की तरह आचार्यजी भी यह तसलीम करते थे कि कुछ नैतिक नियम और आदर्श दीर्घकालीन होते हैं, पर वे यह भी मानते थे कि गतिशील और परिवर्तनशील संसार में सामाजिक परिवर्तनों के साथ नैतिक नियमों और सिद्धान्तों में भी तबदीली होती रहती है और नैतिक आदर्शों का सामाजिक आदर्शों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। उन्हें एंगिल्स का नैतिक विश्लेषण मूलतः स्वीकार था। उनकी तरह वे भी मानते थे कि सामाजिक व्यवस्था के साथ-साथ नैतिक संहिता भी बदलती है, वर्ग-समाज में शोषक और शोषितों के नैतिक आदर्शों में संघर्ष होता है, जहाँ शोषकवर्ग प्रचलित सामाजिक व्यवस्था की पोषक नैतिक व्यवस्था और धारणाओं का समर्थन करता है, वहाँ शोषित वर्ग और उसके

समर्थक विद्वान् क्रान्तिकारी नैतिकता को प्रतिपादित करते हैं, प्रचलित सामाजिक व्यवस्था और नैतिक पद्धतियों के आन्तरिक विरोधों की ओर ध्यान दिलाते हैं, वर्ग-समाज के सामाजिक और नैतिक नियमों की समीक्षा और आलोचना करते हैं और क्रान्ति के पक्ष में क्रान्तिकारी नैतिक तत्त्वों को प्रस्तुत करते हैं। आचार्यजी की राय थी कि वर्ग-विहीन समाजवादी समाज में ही नैतिक सिद्धान्तों के आन्तरिक विरोधों और संघर्षों का समाधान हो सकता है और सारे समाज को मान्य नैतिक व्यवस्था प्रतिष्ठित हो सकती है।

समाजवादी शील

रोज़ालक्ज़म्बर्ग की तरह आचार्यजी भी प्रत्येक क्रान्तिकारी के लिये मानवीय व्यवहार आवश्यक समझते थे। वे मानवता को समाजवाद का आधार मानते थे। मानवता से अनुप्राणित होना प्रत्येक समाजवादी कार्यकर्ता का कर्तव्य समझते थे। वे उनके लिये सामान्यशील, सौजन्य, शिष्टाचार और नैतिक नियमों का पालन करना जरूरी समझते थे। उनका कहना था कि समाजवादी आन्दोलन को ऐसे विद्याचरण-सम्पन्न कार्यकर्ताओं की जरूरत है कि जो समाजवाद को अपने जीवन का लक्ष्य बनाने को तैयार हों, जो अपने जीवन को जनता के जीवन से आत्मसात् करने को उद्यत हों और जो निष्काम सेवा के द्वारा प्राप्त उन्नयन और उमंग को ही उसका समुचित पुरस्कार समझें। वे चाहते थे कि प्रत्येक कार्यकर्ता अपने जीवन में 'ज्ञान की पिपासा, सत्य की आराधना, मौलिक सिद्धान्तों का स्पष्ट ज्ञान, नयी संस्कृति और नये समाज में निष्ठा, चरित्र की दृढ़ता और काम की लगन' आदि गुणों का पोषण करे।

वे तो शोषित वर्गों को भी समाजवादी मूल्यों और लक्ष्यों तथा समाजवादी व्यवस्था के प्रमुख सिद्धान्तों और प्रणालियों की जानकारी कराना तथा नैतिक व्यवहार में उन्हें दीक्षित करना जरूरी समझते थे। मजदूरों को सम्बोधित करते हुए नरेन्द्रदेवजी ने एक लेख में लिखा है कि 'नैतिक तथा आध्यात्मिक विशिष्टता प्राप्त करने का प्रयत्न वर्ग-संघर्ष का अविच्छिन्न अंग है। समाजवाद की लड़ाई मजदूर वर्ग के नैतिक उत्कर्ष की अपेक्षा करती है। यदि हम नैतिक आधार पर पूँजीवाद को घृणित बताते हैं तो हमको एक नैतिक स्तर पर समाज को एक नई

दृष्टि देनी चाहिए'। वे मार्क्स से सहमत थे कि 'सर्वहारा मजदूरों को प्रतिदिन के भोजन की अपेक्षा आत्म-विश्वास, स्वाभिमान और स्वतन्त्रता की कहीं अधिक जरूरत है'।

कम्यूनिस्टों की समीक्षा

आचार्य नरेन्द्रदेव मार्क्सवादी होते हुए भी कम्यूनिस्ट नहीं थे। वे कम्यूनिस्टों की नीति-रीति, गतिविधि और अनैतिक व्यवहार से बड़े असन्तुष्ट थे। वे कम्यूनिस्टों की तानाशाही मनोवृत्ति तथा विचारों की कट्टरता और संकीर्णता के बड़े विरोधी थे। उनकी धारणा थी कि 'कम्यूनिस्ट पार्टी के व्यवहार, उसकी चालबाजियों और दो मुखी कार्यवाहियाँ, उसकी निरी अवसरवादिता और दूसरों से व्यवहार करने में नैतिकता की पूरी अवहेलना करने के कारण समाजवाद बदनाम हो गया है'। 'कम्यूनिस्ट पार्टी द्वारा सार्वभौमिक सत्य की एकमात्र सरपरस्ती का तथा वास्तविक समाजवाद के एकमात्र नेतृत्व का' दावा करना तथा दूसरी सभी समाजवादी विचारधाराओं, आन्दोलनों एवं संगठनों को समाजवाद का शत्रु और प्रतिक्रियावादी समझना, उनके साथ शत्रु जैसा व्यवहार करना' आचार्यजी को बहुत अखरता था। वह इस प्रकार के संकीर्णता को 'साम्प्रदायिकता' के नाम से सम्बोधित करते थे और उसे समाजवाद की प्रगति के लिये घातक समझते थे।

उनका विचार था कि स्तालिन के अधिनायकत्व में सोवियत रूस और अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिज्म दोनों पथभ्रष्ट हो गये हैं। नरेन्द्रदेवजी रूस में प्रचलित तानाशाही और सर्वसत्तावाद (टोटीलिटेरियनिज्म) के कट्टर विरोधी थे। उनकी धारणा थी कि 'टोटीलिटेरियनिज्म' आतंक पैदा करता है और मनुष्य को राज्य की मशीन का पुर्जा बना देता है। वह मानव के मान को नष्ट करता है और व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर नहीं देता। वह नये प्रकार का जुल्म और गुलामी स्थापित करता है जिसमें नागरिक की अपनी इच्छा नहीं होती और उसे राज्य के औजार का काम करना होता है।

नरेन्द्रदेवजी स्तालिनशाही को मार्क्स द्वारा प्रतिपादित मजदूरों की तानाशाही मानने को तैयार नहीं थे। आचार्यजी के विचार में

सर्वहारा की तानाशाही की कल्पना मार्क्स ने उन देशों के लिये की थी जहाँ पर जनतान्त्रिक संस्थाएँ और प्रथाएँ घर नहीं कर पायी थीं और जहाँ पर पूँजीपति वर्ग अपने विरोधी शक्तियों के खिलाफ तुरन्त राज्य की सारी सैनिक शक्ति को लाकर खड़ा कर सकता था। इस एकाधिपत्य की कल्पना थोड़े समय के लिये की गयी थी, और इसका स्वरूप मेहनतकशों का जनतान्त्रिक एकाधिपत्य था, न कि किसी एक पार्टी का आधिपत्य'। इसलिये आचार्यजी की राय में मार्क्स के सिद्धान्त के अनुकूल रूस की विशेष परिस्थिति में थोड़े समय के लिये रूस में सर्वहारा की तानाशाही कायम की जा सकती थी। पर उस तानाशाही को स्थायी बनाये रखना और उसे कम्यूनिस्ट पार्टी की तानाशाही में और आगे चलकर नेतृत्व की तानाशाही में बदल देना मार्क्स के सिद्धान्त के विरुद्ध है। इस तरह आचार्यजी स्तालिनशाही को मार्क्सवाद का पोषक के बजाय शत्रु समझते थे। वह किसानों की रजामन्दी के बगैर जबर्दस्ती उनके खेतों के समूहीकरण को गलत समझते थे और इस सम्बन्ध में लाखों किसानों के वध को बड़ा जुर्म समझते थे। अपने कम्यूनिस्ट साथियों के साथ स्तालिन का दुर्व्यवहार, आचार्यजी की राय में, स्तालिन का अक्षम्य अत्याचार था।

नरेन्द्रदेवजी समाजवादी और कम्यूनिस्ट शक्तियों के अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का समर्थन करने को तैयार थे। पर वे अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिज्म के नाम पर सोवियत रूस को हिन्दुस्तान के मजदूरों की पितृभूमि मानना और संसार भर की कम्यूनिस्ट पार्टियों पर सोवियत रूस की कम्यूनिस्ट पार्टी का नेतृत्व लादना गलत समझते थे। वह समता के आधार पर स्वतन्त्र सहयोग को ही ठीक समझते थे।

हिन्दुस्तान की कम्यूनिस्ट पार्टी द्वारा सोवियत रूस और स्तालिनशाही का हर बात में समर्थन आचार्यजी को अखरता था। सोवियत रूस के हितों पर हिन्दुस्तान के हितों को न्योछावर करना, और रूसी नेताओं के इशारे पर भारतीय कम्यूनिस्टों द्वारा सन् १९३०-३२ के सविनय अवज्ञा आन्दोलन और सन् १९४२ में भारत छोड़ो संघर्ष का विरोध करना आचार्य जी की दृष्टि में देश और समाजवाद दोनों के प्रति गद्दारी थी। उनका निश्चित मत था कि स्वतन्त्र देश में ही समाजवादी समाज कायम किया जा सकता है और इसलिये हर

समाजवादी और मार्क्सवादी का कर्तव्य है कि वह दूसरी जनतान्त्रिक शक्तियों से मिलकर देश की आजादी के लिये संघर्ष करे और स्वतन्त्रता के संघर्षों में कोई बाधा उपस्थित न करें।

नरेन्द्रदेवजी का कहना था कि जनतन्त्र की पूँजीवादी कल्पना की कमियों को दिखाना कम्यूनिस्टों के लिये जरूरी था, लेकिन उदार परम्परा के प्रति आदर का भाव नष्ट करके उन्होंने बड़ी गलती की है। अपने प्रचार द्वारा उन्होंने 'जनतान्त्रिक संस्थाओं के प्रभाव को कम कर दिया। इस भारी भूल के कारण फासिज्म की वृद्धि हुई और फासिस्ट विचारधारा जिस तरह दुनियाँ में फैल गयी, उससे समाजवाद ही नहीं समस्त मानव की प्रगति खतरे में पड़ गयी'। समाजवादियों को 'जनतन्त्र और स्वतन्त्रता' में अपना विश्वास दृढ़ करना नितान्त आवश्यक है।

आचार्यजी का योगदान

इन सब बातों से यह साफ जाहिर है कि आचार्यजी मार्क्सवादी थे पर उनका मार्क्सवाद रूसी कम्यूनिज्म और कट्टरता का सहचर नहीं था। वह हर दर्शन की तरह मार्क्सवादी दर्शन को भी विकासशील मानते थे और स्वयं उन्होंने उनके विकास में योगदान दिया था। एक तो उन्होंने उदात्त राष्ट्रीयता और समाजवाद के समन्वय पर जोर देकर, और उत्तरदायी व्यापक राष्ट्रीयता को समाजवाद का अंग बनाकर मार्क्सवाद की एक बड़ी समस्या का समाधान किया। दूसरे उन्होंने कृषिक्रान्ति और समाजवादी क्रान्ति के योग पर जोर देकर और समाजवादी क्रान्ति के लिये मजदूरों और किसानों के संयुक्त मोर्चों की जरूरत बताकर तथा समता के आधार पर किसानों और मजदूरों के पारस्परिक सम्बन्ध कायम करने का पाठ पढ़ा कर मार्क्सवाद की दूसरी बड़ी समस्या का समाधान किया। तीसरे, सहकारिता और समूहीकरण का मौलिक भेद बताकर और सहकारिता को समाजवादी व्यवस्था का अंग बनाकर, उसके आधार पर किसानों की स्वेच्छा द्वारा ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था के निर्माण पर उन्होंने जोर दिया और इस तरह समूहीकरण के कारण समाजवाद के विरुद्ध किसानों के संघर्ष को शान्त करने का उन्होंने योग बताया। चौथे, उन्होंने जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण औद्योगिक जनतन्त्र और अर्ध-स्वतन्त्र कारपोरेशनों द्वारा समाजी-

कृत उद्योगों की व्यवस्था के सिद्धान्तों का मार्क्सवाद में प्रवेश कर उसे व्यापक और जनतान्त्रिक रूप प्रदान किया और जनतान्त्रिक केन्द्रवाद के सर्वसत्तावाद और केन्द्रित नौकरवाद से उसकी रक्षा की। पाँचवें, जनतन्त्र और समाजवाद की असंगति की धारणा का विरोध करके, जनतन्त्र की प्रेरणा को मानव प्रकृति का अंग बताकर, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और मानवीय अधिकारों की प्रधानता स्वीकार करके, आर्थिक जनतन्त्र और राजनीतिक जनतन्त्र के सम्बन्ध को स्थापित करके, जनतन्त्र में विरोधी दल के महत्त्व को तसलीम करके, जनतान्त्रिक राज्य में जनतान्त्रिक भावनाओं को जागृत, सुदृढ़ और व्यापक बताते हुए जनतान्त्रिक उपायों से, जिसमें सत्याग्रह और हड़ताल भी शामिल हैं, समाजवादी समाज बनाने पर जोर देकर, उन्होंने मार्क्सवाद के जनतान्त्रिक स्वरूप को निखारा और पुष्ट किया और उसे व्यक्तिपूजा और पार्टी डिक्टेटरशिप द्वारा विकृत किये जाने से बचाया। छठे, व्यक्ति की क्रियाशील शक्ति पर जोर देकर तथा यह बताकर कि 'व्यक्ति प्रकृति पर सक्रिय प्रतिक्रिया' करता है, परिस्थितियों की सम्भावनाओं के आधार पर 'परिस्थितियों को बदलता है', 'प्रकृति को बदलता है, अपने स्वभाव को बदलता है, अपनी शक्ति का विकास करता है, उन्होंने मार्क्स के अनियतिवादी तत्त्व को पुष्ट किया और उसके मनोविज्ञान की कमी को पूरा करने की तरफ कदम बढ़ाया। सातवें, दीर्घकालीन नैतिक मूल्यों का और सामान्यशील का पालन मार्क्सवादियों के लिये भी जरूरी बताकर, मानवता को मार्क्सवाद का आधार स्वीकार कर और मार्क्सवादी समाज के नैतिक मूल्यों का विश्लेषण कर मार्क्सवाद के नैतिक स्वरूप को पुष्ट किया और उसके नैतिक भंडार को परिपूर्ण किया। आठवें, समाजवादी संस्कृति के कतिपय मूल तत्त्वों की व्याख्या कर और उसे समाजवादी समाज के निर्माण का महत्त्वपूर्ण अंग बना कर उन्होंने मार्क्सवाद के सांस्कृतिक लक्ष्य की अभिवृद्धि की।

आचार्य नरेन्द्रदेव के इस महत्त्वपूर्ण योगदान को स्वीकार न करते हुए कुछ कट्टरपन्थी मार्क्सवादी उन पर संशोधनवाद (Revisionism) का दोष लगा सकते हैं, पर नरेन्द्रदेवजी इस अभियोग को स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। उनका कहना था—'मार्क्सवाद कोई अटल सिद्धान्त नहीं है। जीवन की गति के साथ वह भी बदलता

है। इसकी विशेषता इसका क्रान्तिकारी होना है। मार्क्स की शिक्षा में हेरफेर करना उस समय तक संशोधनवाद नहीं है जब तक आप इस परिवर्तन से उसके क्रान्तिकारी तत्त्व को सुरक्षित रखते हैं'। 'मार्क्सवाद को एक जिन्दा शास्त्र मानने में ही उसका गौरव है'। वास्तव में नरेन्द्रदेवजी का यह योगदान मार्क्सवाद के मानवतावादी और जनतान्त्रिक तत्त्वों का पोषक और विकास है। उसका अन्तरात्मा के अनुरूप है। मार्क्स की चिन्तनधारा में निहित है।

कम्यूनिस्ट संसार की गति-विधि

स्तालिनयुग में स्तालिनवाद ही मार्क्सवाद समझा जाता था। सर्वशक्तिसम्पन्न स्तालिन ने नाना प्रकार के कुचक्रों और आतंक द्वारा सोवियत रूस पर ऐसा व्यक्तिगत अधिकार स्थापित कर लिया था कि वहां किसी भी कम्यूनिस्ट विचारक को स्तालिन की नीति-रीति की समीक्षा का साहस ही नहीं होता था। पर स्तालिन के निधन के बाद ख़ुश्चेव के नेतृत्व में सोवियत रूस ने स्वीकार किया कि स्तालिन की नीति-रीति बहुत बातों में गलत थी और उसने अपना व्यक्तिगत आधिपत्य स्थापित कर मार्क्सवाद के सिद्धान्तों तथा सोवियत रूस की समाजवादी व्यवस्था के स्वरूप को विकृत कर दिया था तथा सैकड़ों निरपराधी कम्यूनिस्टों को निराधार 'सन्देह' पर मरवा डाला था।

स्तालिन-युग में, विशेषतः दूसरे विश्वयुद्ध के बाद, पूर्वी यूरोप के कम्यूनिस्टों को भी स्तालिन की नीति-रीति का बिना किसी चूं चरा के पालन करना ही पड़ता था। केवल यूगोस्लाविया ने सन् १९४८ में मार्शल टीटो के नेतृत्व में स्तालिन की नीति-रीति को मानने से इनकार किया और आगे चलकर सोवियत रूस की व्यवस्था की समीक्षा करते हुए उसे 'प्रशासनिक समाजवाद (Administrative socialism)' के नाम से सम्बोधित किया और औद्योगिक क्षेत्र में जनतान्त्रिक प्रणाली को प्रतिष्ठित किया। पर वहां भी राजनीतिक क्षेत्र में अधिनायकशाही कायम रही और जिलास जैसे क्रान्तिकारी को अपनी जनतान्त्रिक भावना और विचारों के कारण कारागार का दण्ड सहन करना ही पड़ा।

स्तालिन के निधन के बाद पोलैण्ड और हंगरी आदि देशों के बहुत से नवयुवकों ने भी स्तालिनवाद को मार्क्सवाद की सही व्याख्या मानने से इनकार कर दिया। स्तालिन की नीति-रीति तथा मार्क्सवाद के सम्बन्ध में जो विचार उन्होंने व्यक्त किये वे बहुत हद तक नरेन्द्रदेवजी के विचारों से मिलते जुलते थे और यदि हंगरी के विद्रोह को सोवियत रूस ने अपनी फौज द्वारा न कुचला होता तो पूर्वी यूरोप में मार्क्सवाद और समाजवादी व्यवस्था का स्वरूप सोवियत रूस द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों और व्यवस्था से बहुत भिन्न होता। यद्यपि सोवियत रूस के इस दमन के कारण पूर्वी यूरोप के इन देशों में मार्क्सवादी सिद्धान्तों और व्यवस्था का स्वतन्त्र विकास नहीं हो सका, पर अन्दर-अन्दर आग सुलगती ही रही और सन् १९६८ में चेकोस्लोवाकिया में एक उदार जनतान्त्रिक विरोध का रूप धारण कर उसने वहाँ की राज्य व्यवस्था में परिवर्तन शुरू कर दिया। जनवरी सन् १९६८ में चेकोस्लोवाकिया की कम्यूनिस्ट पार्टी के सम्मेलन ने नोवेतनी के स्थान पर आलेकजाण्डर डुबेचको पार्टी का मन्त्री नियुक्त किया तथा मार्क्सवाद के मानवीय और जनतान्त्रिक तत्त्वों के आधार पर नयी नीति एवं कार्यक्रम निर्धारित किया। सोवियत रूस की मौजूदा सरकार ने चेकोस्लोवाकिया की इस गति-विधि को प्रतिक्रियावादी तथा अन्तर्राष्ट्रीय समाजवाद के हितों के प्रति गद्दारी घोषित करते हुए उसे रोकने के लिये चेकोस्लोवाकिया के मामलों में हस्तक्षेप शुरू किया। यूरोप की बहुत सी कम्यूनिस्ट पार्टियों ने इस प्रकार के हस्तक्षेप पर अपना क्षोभ प्रकट किया। पर सोवियत रूस के नेताओं ने इस क्षोभ की उपेक्षा करते हुए हस्तक्षेप जारी रखा और आगे चल कर पूर्वी जर्मनी, पौलैण्ड, हंगरी तथा बलगेरिया की फौजों के साथ सोवियत रूस की फौज ने चेकोस्लोवाकिया पर आक्रमण कर उसे रूस के नेतृत्व के आगे सर झुकाने पर मजबूर किया। संसार के बहुतसे कम्यूनिस्ट इस आक्रमण से क्षुब्ध हुए, संसार के दूसरे प्रगतिशील तत्त्वों ने इसे राष्ट्रीय स्वतन्त्रता तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के प्रति जघन्य अपराध करार दिया। रूमानिया, यूगोस्लाविया, अलबानिया आदि कम्यूनिस्ट राज्यों को तो इस आक्रमण के बाद अपनी स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में भी शंका पैदा होने लगी। पर सोवियत रूस की समर्थक कम्यूनिस्ट पार्टियों और नेताओं ने, जिनमें हिन्दुस्तान की कम्यूनिस्ट पार्टियां भी शामिल हैं, इस हस्तक्षेप को अन्तर्राष्ट्रीय

कम्यूनिस्ट व्यवस्था की रक्षा के लिये आवश्यक करार देते हुए उसका समर्थन करना अपना कर्तव्य समझा। सोवियत रूस के कड़े व्यवहार से एक बार फिर पूर्वी यूरोप में स्वतन्त्र प्रगतिशील चिन्तन असम्भव हो गया है। सोवियत रूस के विचारकों ने भी जनतन्त्र तथा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के विरुद्ध कम्यूनिस्ट तानाशाही एवं अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व पर जोर देना शुरू कर दिया है।

उधर चीन में माओत्से तुंग ने स्तालिन का चोला धारण कर सर्व-सत्तावादी मनोवृत्ति में स्तालिन को भी मात कर दिया। जनतन्त्र और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का वहां नितान्त अभाव है। माओवाद ही वहां मार्क्सवाद का शुद्ध स्वरूप समझा जाता है। माओ के विचारों से भिन्न मार्क्सवादी विचार संशोधनवाद के नाम से सम्बोधित और दण्डित किये जाते हैं। संशोधनवाद चीन में सबसे बड़ा अपराध समझा जाता है। मार्क्सवाद की शुद्धता की बलिवेदी पर हजारों कम्यूनिस्ट शहीद कर दिये गये हैं। विवाद ने गृहयुद्ध और नरसंहार का रूप धारण कर लिया है।

निष्कर्ष

इस तरह रूस की क्रान्ति के बाद मार्क्सवाद ने सर्वसत्तावादी तथा जनतन्त्रवादी दो स्वरूप धारण कर लिये। स्तालिन, माओत्से तुंग और उनके अनुयायी सर्वसत्तावाद के समर्थक हैं, उनके विचार में सर्वसत्तावाद ही मार्क्सवाद का सच्चा स्वरूप है। दूसरी ओर आचार्य नरेन्द्रदेव और पूर्वी यूरोप के बहुतसे मार्क्सवादी विचारक जनतन्त्र और मानवता को मार्क्सवाद का मूलाधार मानते हैं। उनके विचार में स्तालिन और माओ ने मार्क्सवाद के स्वरूप को विकृत, उसके विकास को कुंठित तथा स्वतन्त्रता के प्रवाह को अवरुद्ध कर दिया है।

इस समय संसार में सर्वसत्तावादी मार्क्सवादियों का ही बोलबाला है। यद्यपि सोवियत रूस में स्तालिनवाद के परित्याग के बाद तथा चेकोस्लावेकिया पर आक्रमण करने से पहले सर्वसत्तावाद किसी हद तक ढीला हो गया था, पर चीन में माओ के सर्वसत्तावाद की विजय को ही सांस्कृतिक क्रान्ति की मान्यता प्राप्त है। किन्तु आचार्य नरेन्द्रदेव प्रभृति मार्क्सवादियों का दृढ़ विश्वास है कि

'भविष्य जनतान्त्रिक समाजवाद के साथ है'। मनुष्य सदा के लिये 'निरंकुश शासन को बर्दाश्त नहीं करेगा और न ही वह उन व्यवस्थाओं को सहन करेगा जो उसे दबाने के लिये बनी हैं'। 'स्वतन्त्रता और जनतान्त्रिक भावना' मनुष्य का स्वरूप है, आत्मविस्तार द्वारा अपने स्वरूप को प्राप्त करना ही मनुष्य का स्वभाव है'।

अनुक्रमणिका नं० 1

(नरेन्द्रदेवजी के विचार और कार्य)

सारी पुस्तक ही नरेन्द्रदेवजी के जीवन, क्रियाकलापों और विचारों से सम्बन्धित है। अधिकांश पृष्ठों में उनकी ही चर्चा है। पर निम्नलिखित अनुक्रमणिका की सहायता से अध्ययन में आसानी हो सकती है।

अनुक्रमणिका नं० २

(व्यक्ति और स्थान)

ए

ओ

क

न

प

अनुक्रमणिका नं० ३

(संस्था, सिद्धान्त, भावना, विषय, समूह, पुस्तक)

च

भ

व

शुद्धिपत्र

पुस्तक में भाषा और प्रूफ की कुछ अशुद्धियां रह गयी है। उनको ठीक करते हुए पढ़ने की कृपा की जाय। कुछ विशिष्ट अशुद्धियां निम्नलिखित है :—

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
७	७, ३०	मौलिक	भौतिक
६	१	१६६१	१८६१
२६	अन्तिम	दो	एक
३७	२४	बल्देवदास	बल्देवप्रसाद
४८	२६	तिलक कांग्रेस मे	तिलक के साथ नरेन्द्रदेवजी कांग्रेस मे
६८	४	पंदोराई	परन्दोराई
७३	५	सोशलिस्ट पार्टी मे	प्रजासोशलिस्टपार्टीका
८०	२, १८	१ अक्तूबर	३१ अक्तूबर
१३०	१८	मोतीबाग	मोतीमहल के पास
१३१	६	ट्रेड यूनियन	नेशनल ट्रेड यूनियन
१४१	२६	१६५७	१८५७
१६३	अन्तिम	२८ जून	१६ जून
१६५	२५	१६४८	१६४६
२०२	३	सहकार	सरकार
२०६	३	१८ जून	१६ जून
२६३	२४	१८३१	१६३१
२७०	१०	ट्रेड यूनियन	नेशनल ट्रेड यूनियन
२८६	२८	१६४६	१६४१
२८७	४	१६४६	१६४८
३०२	अन्तिम	प्रजासोशलिस्ट	सोशलिस्ट
३३५	१५	सस्कृत	संस्कृति
३५०	४	१६५१	१६५४
३५१	२३	जुलाई	जून
३६२	३-४, १४, १५	पाट्टमथानुपिल्ले	पट्टमथानुपिलये
३६७	२, २०	जनरल	जरनल
३७२	११	प्राफिट	प्राफेट
३६७	१६	कांग्रेस	कान्फ्रेन्स
४६४	१५	डुबेच	डुबचेक
		संयुक्तराष्ट्र अमरीका	संयुक्त राज्य अमरीका

नोट :—पृष्ठ १८५ को अन्तिम पंक्ति से निम्नलिखित शब्द निकाल दिये जायं :—
"जो उस समय भी छुपे छुपे काम कर रहे थे।"